साहू जैन निलयमें

जिन चैत्यालयकी स्थापनाके अवसरपर

सप्रेम भेंट

कलकत्ता
भाद्रपद शुक्ला ५
वीर संवत् २४८३

ज्ञानपीठ मूर्तिदेवी जैन ग्रन्थमाला हिन्दी ग्रथाङ्क—७

ज्ञानपीठ-पूजाञ्जलि

मूल-संस्कृत-सम्पादक
डा० ए० एन० उपाध्याय एम० ए०, डि० लिट्
सम्पादक
पण्डित फूलचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री

भा र ती य ज्ञा न पी ठ • का शी

प्रकाशक
अयोध्याप्रसाद गोयलीय
मन्त्री, भारतीय ज्ञानपीठ
दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी

•

प्रथम संस्करण
१९५७ ई०
मूल्य चार रुपये

•

मुद्रक
बाबूलाल जैन फागुल्ल
सन्मति मुद्रणालय
दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी



भगवान् महावीर

[श्रीमहावीरजी क्षेत्र (चाँदनगाँव) स्थित मूर्त्तिका चित्र]

णमो अरिहंताणं
णमो सिद्धाणं
णमो आइरियाणं
णमो उवज्झायाणं
णमो लोए सव्वसाहूणं

卐

विषय-सूची

[खण्ड १]

सामान्य पूजा पाठ [संस्कृत]

सामान्य पूजा-पाठ [हिन्दी]

[खण्ड २]

पर्व-पूजादि [संस्कृत]

पर्व-पूजादि [हिन्दी]

[खण्ड ३]

तीर्थंकर-पूजा [हिन्दी]

[खण्ड ४]

नैमित्तिक पूजा-पाठ

[खण्ड ५]

स्वाध्याय पाठ

[खण्ड ६]

स्तोत्रादि [संस्कृत]

स्तोत्र आदि [हिन्दी]

[खण्ड ७]

आरती जापादि

प्रास्ताविक वक्तव्य

जैनधर्म निवृत्तिप्रधान धर्म है। इसमें मुक्ति और उसके कारणोंकी मीमांसा साङ्गोपाङ्ग और सूक्ष्मताके साथ की गई है। इसका यह अर्थ नहीं कि इसमें प्रवृत्तिके लिए यत्किञ्चित् भी स्थान नहीं है। वस्तुतः प्रवृत्ति कथञ्चित् निवृत्तिका पूरक है। अशुभ और शुभसे निवृत्ति हो कर जीवकी शुद्ध आत्मस्वरूपमें प्रवृत्ति हो यह इसका अन्तिम लक्ष्य है। यहाँ शुभसे हमारा अभिप्राय शुभ रागसे है। राग भी बन्धका कारण है, इसलिए वह भी हेय है।

इसका अपना दर्शन है जो आत्माकी स्वतन्त्र सत्ताको स्वीकार करता है। आचार्य कुन्दकुन्द समयसारमें परसे भिन्न आत्माकी पृथक् सत्ताका मनोरम चित्र उपस्थित करते हुए कहते हैं—अहो आत्मन्! ज्ञान-दर्शन-स्वरूप तू अपनेको स्वतन्त्र और एकाकी अनुभव कर। विश्वमें तेरे दायें-बायें, आगे-पीछे और ऊपर-नीचे पुद्गलकी जो अनन्त राशि दिखलाई देती है उसमें अणुमात्र भी तेरा नहीं है। वह जड़ है और तू चेतन है। वह विनाशीक है और तू अविनाशीक पदका अधिकारी। उसके साथ सम्बन्ध स्थापित कर तूने खोया ही है, कुछ पाया नहीं। संसार खोनेका मार्ग है। प्राप्त करनेका मार्ग इससे भिन्न है।

जैनधर्म एकमात्र उसी मार्गका निर्देश करता है जो आत्माके निज स्वरूपकी प्राप्तिमें सहायक होता है। यद्यपि कहीं कहीं स्वर्गादिरूप अभ्युदय की प्राप्ति धर्मका फल कहा गया है किन्तु इसे औपचारिक ही समझना चाहिए। धर्मका साक्षात् फल आत्मविशुद्धि है। इसकी परमोच्च अवस्थाका नाम ही मोक्ष है। यह न तो शून्यरूप है और न इसमें आत्माका अभाव

ही होता है। संसारमें संकल्प-विकल्प और संयोगजन्य जो अनेक बाधाएँ उपस्थित होती हैं, मुक्तात्मामें उनका सर्वथा अभाव हो जाता है, इसीलिए जैनधर्ममें मुक्ति-प्राप्तिका उद्योग सबके लिए हितकारी माना गया है।

१ मुनिधर्म

दूसरे शब्दोंमें यह बात यों कही जा सकती है कि जैनधर्म प्रत्येक आत्माकी स्वतन्त्र सत्ताको स्वीकार करके व्यक्ति-स्वातन्त्र्यके आधारपर उसके बन्धनसे मुक्त होनेके मार्गका निर्देश करता है। तदनुसार इसमें मोक्षमार्गके दो भेद किये गये हैं—प्रथम मुनिधर्म और दूसरा गृहस्थधर्म। मुनिधर्म पूर्ण स्वावलम्बनकी दीक्षाका दूसरा नाम है।

अट्ठाईस मूलगुण—

इसमें किसी भी प्रकारकी हिंसा, असत्य, चोरी और अब्रह्मके लिए तो स्थान है ही नहीं। साथ ही साथ साधु अन्तरङ्ग और बहिरङ्ग पूर्ण परिग्रहका त्यागी होता है। वह अपना समस्त आचार-व्यवहार यत्नाचार-पूर्वक करता है। चलते समय जमीन शोधकर चलता है। बोलनेका संयम रखता है। यदि बोलता भी है तो हित, मित और प्रिय वचन ही बोलता है। शरीर द्वारा संयमकी रक्षाके लिए अयाचित और अनुद्दिष्ट निर्दोष भोजन दिनमें एक बार लेता है। पात्र और आसनको स्वीकार नहीं करता। आहारके ग्रहणकी पूर्ति अञ्जलिबद्ध दोनों हाथोंसे हो जाती है और खड़े-खड़े ही उपकरणोंमें आसक्ति किये विना आहार लिया जा सकता है, इसलिए पात्र और आसनका आश्रय नहीं लेता। संयमकी रक्षा और ज्ञानकी वृद्धिके लिए वह पीछी, कमण्डलु और शास्त्रको स्वीकार करता है। किन्तु उनके उठाने धरनेमें वह किसीको बाधा न पहुँचे इस अभिप्रायसे पूरी सावधानी रखता है। मल-मूत्र आदिका क्षेपण भी निर्जन्तु और एकान्त स्थानमें करता है। काय और मनकी यद्वा तद्वा प्रवृत्तिसे विरत रहता है। केश सम्मूर्छन

जीवोंकी उत्पत्तिके स्थान हैं इस अभिप्रायसे वह स्वयं अपने हाथसे उनके उत्पाटनका व्रत स्वीकार करता है। इसके लिए किसीसे कर्तरी और छुरा आदिकी याचना नहीं करता। कोई स्वेच्छासे लाकर देने भी लगे तो वह उन्हें स्वीकार नहीं करता। उनके स्वीकार करनेमें या उनसे काम लेनेमें वह अपने स्वावलम्बन व्रतकी हानि मानता है। उसकी अन्य परिग्रह आदिके समान शरीरमें भी आसक्ति नहीं होती, इसलिए वह न तो शरीरका संस्कार करता है और न स्नान ही करता है। आवरण और परिग्रहका त्याग कर देनेसे वह नग्न रहता है। आहार उतना ही लेता है जो शरीरके सन्धारणके लिए आवश्यक होता है। उसके मुँहमें आहारजन्य दुर्गन्ध आदिके उत्पन्न न होनेके कारण उसे दन्तधावन आदिकी भी आवश्यकता नहीं पड़ती। तथा वह अपने पाँच इन्द्रियोंके विषयोंसे सदा विरक्त रहता है। यह प्रत्येक साधुकी जीवन भरके लिए स्वीकृत चर्या है। इसका वह प्रतिदिन शरीरमें आसक्ति किये विना उत्तम रीतिसे पालन करता है।

साधुके मूलगुण अट्ठाईस होते हैं—पाँच महाव्रत, पाँच समिति, पाँच इन्द्रियोंके विषयोंका निरोध, सात शेष गुण और छह आवश्यक। इनमेंसे बाईस मूल गुणोंका विचार पूर्व ही कर आये हैं। छह आवश्यक ये हैं—सामायिक, चतुर्विंशतिस्तव, वन्दना, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान और व्युत्सर्ग। साधु इनका भी उत्तम रीतिसे पालन करता है। जीवन-मरण, लाभ-अलाभ, संयोग-वियोग, शत्रु-मित्र और सुख-दुःखमें समता परिणाम रखना और त्रिकाल देववन्दना करना सामायिक है। चौबीस तीर्थङ्करोंको नाम निरुक्ति और गुणानुकीर्तन करते हुए मन, वचन और कायकी शुद्धिपूर्वक प्रणाम करना चतुर्विंशतिस्तव है। पाँच परमेष्ठी और जिन प्रतिमाको कृतिकर्मके साथ मन, वचन और कायकी शुद्धिपूर्वक प्रणाम करना वन्दना है। द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावके आलम्बनसे व्रतविशेषमें या आहार आदिके ग्रहणके समय जो दोष लगता है उसकी मन, वचन और कायकी

सम्हालके साथ निन्दा और गर्हा करते हुए शुद्धि करना प्रतिक्रमण है। तथा अयोग्य नाम, स्थापना और द्रव्य आदिका मन, वचन और कायसे त्याग कर देना प्रत्याख्यान है।

विशेष नियम—

ये साधुके मूल गुण हैं। इनका वह नियमित रूपसे पालन करता है। इनके सिवा उक्त धर्मके पूरक कुछ उपयोगी नियम और हैं जिनको जीवन में उतारनेसे साधुधर्मकी रक्षा मानी जाती है। वे ये हैं—१. जो अपनेसे बड़े पुराने दीक्षित साधु हैं उनके सामने आनेपर अभ्युत्थान और प्रणाम आदि द्वारा उनकी समुचित विनय करता है। २. आगमार्थके सुनने और ग्रहण करनेमें रुचि रखता है। ३. गुरु आदिसे शंकाका निवारण विनय पूर्वक करता है। ४. श्रुतका अभ्यास बढ़ जाने पर न तो अहङ्कार करता है और न उसे छिपाता है। ५. ज्ञान और संयमके उपकरणोंके प्रति आसक्ति नहीं रखता। ६. जिस पुस्तकका स्वाध्याय करता है उसे ही स्वाध्याय समाप्त होने तकके लिए स्वीकार करता है। अनावश्यक पुस्तकोंके संग्रहमें रुचि नहीं रखता। अनुसन्धानके लिए अधिक पुस्तकोंका अवलोकन करना वर्जनीय नहीं है परन्तु उनके संग्रहमें रुचि नहीं रखता। ७. अपने गुरु और गुरु-कुलके अनुकूल प्रवृत्ति करता है। ८. संयमके योग्य क्षेत्र निर्जन वन, गिरि-गुफा या चैत्यालय आदिमें निवास करता है। ९. अन्य साधुओंकी आवश्यकतानुसार वैयावृत्य करता है। १०. गाँवमें एक दिन और शहरमें पाँच दिन निवास करता है। ११. पहले अपनी गुरु-परम्परासे आये हुए आगमका विधिपूर्वक अध्ययन करके अनन्तर गुरुकी आज्ञासे अन्य शास्त्रोंका अध्ययन करता है। १२. अध्ययन करनेके बाद यदि अन्य धर्मायतन आदि स्थानमें जानेकी इच्छा हो तो गुरुसे अनेक बार पृच्छापूर्वक अनुज्ञा लेकर अकेला नहीं जाता है किन्तु अन्य साधुओंके साथ जाता है। अकेले विहार करनेकी गुरु ऐसे साधुको ही अनुज्ञा देते हैं जो सूत्रार्थका ज्ञाता

है, उत्तम प्रकारसे तपश्चर्यामें रत है, जिसने सहनशक्ति बढ़ा ली है, जो शान्त और प्रशस्त परिणामवाला है, उत्तम संहननका धारी है, सब तपस्वियोंमें पुराना है, अपने आचारकी रक्षा करनेमें समर्थ है और जो देश-कालका पूर्ण ज्ञाता है। जो इन गुणोंका धारी नहीं है उसके एकल विहारी होने पर गुरुका अपवाद होनेका, श्रुतका विच्छेद होनेका और तीर्थके मलिन होनेका भय बना रहता है। तथा स्वैराचारकी प्रवृत्ति बढ़ने लगती है। और भी अनेक दोष हैं, इसलिए हर कोई साधु एकल बिहारी नहीं हो सकता। जो इस प्रवृत्तिको प्रोत्साहन देते हैं वे भी उक्त दोषोंके भागी होते हैं। प्रायः जो गारव दोपसे युक्त होता है, मायावी होता है, आलसी होता है, व्रतादिके पूर्णरूपसे पालन करनेमें असमर्थ होता है और पापबुद्धि होता है वही गुरुकी अवहेलना करके अकेला रहना चाहता है। १३. आर्यिका या अन्य स्त्रीके अकेली होने पर उनसे बातचीत नहीं करता और न वहाँ ठहरता ही है। १४. यदि बातचीत करनेका विशेष प्रयोजन हो तो अनेक स्त्रियोंके रहते हुए ही दूरसे उनसे बातचीत करता है। १५. आर्यिकाओं या अन्य व्रती श्राविकाओंके उपाश्रयमें नहीं ठहरता। १६. अपनी प्रभावबृद्धिके लिए मन्त्र, तन्त्र और ज्योतिष विद्याका उपयोग नहीं करता। १७. तैलमर्दन आदि द्वारा शरीरका संस्कार नहीं करता और सुगन्धी द्रव्योंका उपयोग नहीं करता। १८. शीत आदिकी बाधासे रक्षाके उपायोंका आश्रय नहीं लेता। १९. वसतिका आदिका द्वार स्वयं बन्द नहीं करता तथा वहाँ आनेवाले अन्य व्यक्तिको नहीं रोकता। २०. दीपक या लालटेनकी रोशनीको कम-अधिक नहीं करता। बैटरी भी पासमें नहीं रखता। २१. उष्णताका वारण करनेके लिए पंखे आदिका उपयोग नहीं करता। २२. अपने साथ नौकर आदि नहीं रखता। २३. किसीके साथ विसंवाद नहीं करता। २४. तीर्थादिकी यात्राके लिए अर्थका संग्रह नहीं करता और न इसकी पूर्तिके लिए उपदेश देता है। २५. तथा यात्राके

समय किसी प्रकारकी सवारीका उपयोग नहीं करता। पैदल ही विहार करता है। इन नियमोंके सिवा और भी बहुतसे नियम हैं जिनका वह संयमकी रक्षाके लिए भले प्रकार पालन करता है।

२ आर्यिकाओंके विशेष नियम

उक्त धर्मका समग्ररूपसे आर्यिका भी पालन करती हैं। इसके सिवा उनके लिए जो अन्य नियम बतलाये गये हैं उन्हें भी वे आचरणमें लाती हैं। वे अन्य नियम ये हैं—वे परस्परमें एक दूसरे के अनुकूल होकर एक दूसरेकी रक्षा करती हुई रहती हैं। २ रोष, वैरभाव और मायाभावसे रहित होकर लज्जा और मर्यादाका ध्यान रखती हुई उचित आचारका पालन करती हैं। ३ सूत्रका अध्ययन, सूत्रपाठ, सूत्रका श्रवण, उपदेश देना, बारह अनुप्रेक्षाओंका चिन्तवन, तप, विनय और संयममें सदा सावधान रहती हैं। ४ शरीरका संस्कार नहीं करतीं। ५. सादा बिना रंगा हुआ वस्त्र रखती हैं। ६. जहाँ गृहस्थ निवास करते हैं उस मकान आदिमें नहीं ठहरतीं। ७. कभी अकेली नहीं रहतीं। कमसे कम दो तीन मिलकर रहती हैं। ८ बिना प्रयोजनके किसीके घर नहीं जातीं। यदि प्रयोजनवश जाना ही पड़े तो गणिनीसे अनुज्ञा लेकर मिलकर ही जाती हैं। ९ रोना, बालक आदिको स्नान कराना, भोजन बनाना, दाई का कार्य और कृषि आदि छह प्रकारका आरम्भ कर्म नहीं करतीं। १० साधुओंका पाद-प्रक्षालन व उनका परि-मार्जन नहीं करतीं। ११ वृद्धा आर्यिकाको मध्यमें करके तीन, पाँच या सात आर्यिकाएँ मिल कर एक दूसरेकी रक्षा करती हुई आहारको जाती हैं। १२ आचार्यसे पाँच हाथ, उपाध्यायसे छह हाथ और अन्य साधुओंसे सात हाथ दूर रह कर गौ-आसनसे बैठकर उनकी वन्दना करती हैं।

जो साधु और आर्यिकाएँ इस आचारका पालन करते हैं वे जगत्में पूजा और कीर्तिको प्राप्त करते हुए अन्तमें यथानियम मोक्ष सुखके भागी होते हैं।

३ गृहस्थधर्म

मोक्ष-प्राप्तिका साक्षात् मार्ग मुनिधर्म ही है। किन्तु जो व्यक्ति मुनि-धर्मको स्वीकार करनेमें असमर्थ होते हुए भी उसे जीवनव्रत बनानेमें अनुराग रखते हैं वे गृहस्थ धर्मके अधिकारी माने गये हैं। मुनिधर्म उत्सर्ग मार्ग है और गृहस्थधर्म अपवाद मार्ग है। तात्पर्य यह है कि गृहस्थ-धर्मसे आंशिक आत्मशुद्धि और स्वावलम्बनकी शिक्षा मिलती है, इसलिए यह भी मोक्षका मार्ग माना गया है।

समीचीन श्रद्धा और उसका फल—

जो मुनिधर्म या गृहस्थधर्मको स्वीकार करता है उसकी पाँच परमेष्ठी और जिनदेव द्वारा प्रतिपादित शास्त्रमें अवश्य श्रद्धा होती है। वह अन्य किसीको मोक्षप्राप्तिमें साधक नहीं मानता, इसलिए आत्मशुद्धिकी दृष्टिसे इनके सिवा अन्य किसीकी वन्दना और स्तुति आदि नहीं करता। तथा उन स्थानोंको आयतन भी नहीं मानता जहाँ न तो मोक्षमार्गकी शिक्षा मिलती है और न मोक्षमार्गके उपयुक्त साधन ही उपलब्ध होते हैं। लौकिक प्रयोजनकी सिद्धिके लिए दूसरेका आदर-सत्कार करना अन्य बात है। वह जानता है कि शरीर मेरा स्वरूप नहीं है, इसलिए शरीर, उसकी सुन्दरता और बलका अहङ्कार नहीं करता। धन, ऐश्वर्य, कुल और जाति ये या तो माता-पिताके निमित्तसे प्राप्त होते हैं या प्रयत्नसे प्राप्त होते हैं। ये आत्माका स्वरूप नहीं हो सकते, इसलिए इनका भी अहङ्कार नहीं करता। ज्ञान और तप ये समीचीन भी होते हैं और असमीचीन भी होते हैं। जिसे आत्मदृष्टि प्राप्त है उसके ये असमीचीन हो ही नहीं सकते, इसलिए इन्हें मोक्षमार्गका प्रयोजक जान इनका भी अहङ्कार नहीं करता। धर्म आत्माका निज रूप है यह वह जानता है, इसलिए अपनी खोयी हुई उस निधिको प्राप्त करनेके लिए वह सदा प्रयत्नशील रहता है।

पाँच अणुव्रत—

इस प्रकार दृढ़ आस्थाके साथ सम्यग्दर्शनको स्वीकार करके वह अपनी शक्तिके अनुसार गृहस्थ धर्मके प्रयोजक बारह व्रतोंको धारण करता है। बारह व्रत ये हैं—पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत। हिंसा असत्य, चोरी, अब्रह्म और परिग्रहका वह एकदेश त्याग करता है, इसलिए उसके पाँच अणुव्रत होते हैं। तात्पर्य यह है कि वह त्रस हिंसासे तो विरत रहता ही है। बिना प्रयोजनके एकेन्द्रिय जीवोंका भी वध नहीं करता। ऐसा वचन नहीं बोलता जिससे दूसरेकी हानि हो या बोलनेसे दूसरोंके सामने अप्रामाणिक बनना पड़े। अन्यकी छोटी बड़ी किसी वस्तुको उसकी आज्ञाके विना स्वीकार नहीं करता। अपनी स्त्रीके सिवा अन्य सब स्त्रियोंको माता, बहिन या पुत्रीके समान मानता है और आवश्यकतासे अधिक धनका सञ्चय नहीं करता।

तीन गुणव्रत—

इन पाँच व्रतोंकी वृद्धिके लिए वह दिग्व्रत, देशव्रत और अनर्थदण्ड विरतिव्रत इन तीन गुणव्रतोंको भी धारण करता है। दिग्व्रतमें जीवन भरके लिए और देशव्रतमें कुछ कालके लिए क्षेत्रकी मर्यादा की जाती है। गृहस्थका पुत्र, स्त्री और धन-सम्पदासे निरन्तर सम्पर्क रहता है। इस कारण उसकी तृष्णामें वृद्धि होना सम्भव है। ये दोनों व्रत उसी तृष्णाको कम करनेके लिए या सीमित रखनेके लिए स्वीकार किये जाते हैं। प्रथम व्रतको स्वीकार करते समय वह इस प्रकारकी प्रतिज्ञा करता है कि मैं जीवनभर अपने व्यापार आदि प्रयोजनकी सिद्धि इस क्षेत्रके भीतर रहकर ही करूँगा। इसके बाहर होनेवाले व्यापार आदिसे या उसके निमित्त से होनेवाले लाभसे मुझे कोई प्रयोजन नहीं है। समय समयपर यथा नियम दूसरे व्रतको स्वीकार करते समय वह अपने इस क्षेत्रको और भी सीमित करता है और इसप्रकार अपनी तृष्णापर उत्तरोत्तर नियन्त्रण स्थापित करता

जाता है। इतना ही नहीं वह आजीविकामें और अपने आचार-व्यवहारमें उन्हीं साधनोंका उपयोग करता है जिनसे दूसरे प्राणियोंको किसी प्रकारकी बाधा नहीं होने पाती। जिनसे दूसरोंकी हानि होनेकी सम्भावना होती है उनका वह निर्माण भी नहीं करता और ऐसा करके वह स्वयंको अनर्थ-दण्डसे बचाता है।

चार शिक्षाव्रत—

वह अपने जीवनमें कुछ शिक्षाएँ भी स्वीकार करता है। प्रथम तो वह समता तत्त्वका अभ्यासकर अपने सामायिक शिक्षाव्रतको पुष्ट करता है। दूसरे पर्व दिनोंमें एकाशन और उपवास आदि व्रतोंको स्वीकारकर वह प्रोषधोपवास व्रतकी रक्षा करता है। शरीर सुखशील न बने और आत्म-शुद्धिकी ओर गृहस्थका चित्त जावे इस अभिप्रायसे वह इस व्रतको स्वीकार करता है। वह अपने आहार आदिमें प्रयुक्त होनेवाली सामग्रीका भी विचार करता है और मन तथा इन्द्रियोंको मत्त करनेवाली तथा दूसरे जीवोंको बाधा पहुँचाकर निष्पन्न की गई सामग्रीका उपयोग न कर उपभोग-परि-भोगपरिमाणव्रतको स्वीकार करता है। अतिथि सबका आदरणीय होता है और उससे संयमके अनुरूप शिक्षा मिलती है, इसलिए वह अतिथिसंविभाग व्रतको स्वीकार कर सबकी यथोचित व्यवस्था करता है। ये गृहस्थके द्वारा करने योग्य बारह व्रत हैं। इनके धारण करनेसे उसका गार्हस्थिक जीवन सफल माना जाता है।

४ कृतिकर्म-देवपूजा

हमने मुनिधर्म और गृहस्थधर्मका सामान्यरूपसे दिग्दर्शन कराते समय जिस प्रमुख धर्मका बुद्धिपूर्वक उल्लेख नहीं किया है वह है कृति-कर्म। कृतिकर्म साधु और गृहस्थ दोनोंके आवश्यक कार्योंमें मुख्य है। यद्यपि साधु सांसारिक प्रयोजनोंसे मुक्त हो जाता है फिर भी उसका चित्त भूलकर भी लौकिक समृद्धि, यश और अपनी पूजा आदिकी ओर आकृष्ट

न हो और गमनागमन, आहारग्रहण आदि प्रवृत्ति करते समय लगे हुए दोषोंका परिमार्जन होता रहे, इसलिए साधु कृतिकर्मको स्वीकार करता है। गृहस्थकी जीवनचर्या ही ऐसी होती है जिसके कारण उसकी प्रवृत्ति निरन्तर सदोष बनी रहती है, इसलिए उसे भी कृतिकर्म करनेका उपदेश दिया गया है।

पर्यायवाची नाम—

कृतिकर्मके मूलाचारमें चार पर्यायवाची नाम दिये हैं—कृति-कर्म, चितिकर्म, पूजाकर्म और विनयकर्म[1]। इनकी व्याख्या करते हुए वहाँ कहा गया है कि जिस अक्षरोच्चाररूप वाचनिक क्रियाके, परिणामोंकी विशुद्धिरूप मानसिक क्रियाके और नमस्कारादिरूप कायिक क्रियाके करनेसे ज्ञानावरणादि आठ प्रकारके कर्मोंका '**कृत्यते छिद्यते**' छेद होता है उसे कृतिकर्म कहते हैं। यह पुण्यसंचयका कारण है, इसलिए इसे चितिकर्म भी कहते हैं। इसमें चौबीस तीर्थंकरों और पाँच परमेष्ठी आदिकी पूजा की जाती है, इसलिए इसे पूजाकर्म भी कहते हैं तथा इसके द्वारा उत्कृष्ट विनय प्रकाशित होती है, इसलिए इसे विनयकर्म भी कहते हैं। यहाँ विनय की '**विनीयते निराक्रियते**' ऐसी व्युत्पत्ति करके इसका फल कर्मोंकी उदय और उदीरणा आदि करके उनका नाश करना भी बतलाया गया है। तात्पर्य यह है कि कृतिकर्म जहाँ कर्मोंकी निर्जराका कारण है वहाँ वह उत्कृष्ट पुण्य संचयमें हेतु है और विनय गुणका मूल है, इसलिए उसे प्रमादरहित होकर साधुओं और गृहस्थोंको यथाविधि करना चाहिए।

समय-विचार—

कृतिकर्म कब किया जाय इस प्रश्नका समाधान करते हुए लिखा है कि कृतिकर्म तीनों संध्याकालोंमें करना चाहिए[2]। वीरसेन स्वामी

---

१. मूलाचार षडावश्यकअधिकार गाथा ७९।

२. षट्खण्डागम कर्म अनुयोगद्वार सूत्र २८।

अपनी धवला टीकामें कहते हैं कि तीन बार ही करना चाहिए ऐसा कोई एकान्त नियम नहीं है। अधिक बार भी किया जा सकता है पर तीन बार अवश्य करना चाहिए। यह तो हम आगे बतलानेवाले हैं कि तीन सन्ध्याकालोंमें जो कृतिकर्म किया जाता है उसमें सामायिक, चतुर्विंशतिस्तव और वन्दना इन तीनोंकी मुख्यता है, इसलिए आजकल जिन विद्वानों और त्यागियोंका यह मत है कि साधुको प्रतिदिन देववन्दना करनी ही चाहिए ऐसा कोई नियम नहीं है उनका वह मत आगमसंगत नहीं जान पड़ता। तीनों संध्याकालोंमें किया जानेवाला कृतिकर्म साधु और श्रावक दोनोंका एक समान है। अन्तर केवल इतना है कि साधु अपरिग्रही होनेसे कृतिकर्म करते समय अक्षत आदि द्रव्यका उपयोग नहीं करता और गृहस्थ उसका भी उपयोग करता है।

गृहस्थका कृतिकर्म—

मूलाचारमें कृतिकर्मके व्याख्यानके प्रसंगसे विनयकी व्याख्या करते हुए उसके पाँच भेद किये हैं—लोकानुवृत्तिविनय, अर्थविनय, कामविनय, भयविनय और मोक्षविनय। अर्थविनय, कामविनय और भयविनय ये संसारकी प्रयोजक हैं यह स्पष्ट ही है। लोकानुवृत्तिविनय दो प्रकारकी है। एक वह जिसमें यथावसर सबका उचित आदर-सत्कार किया जाता है और दूसरी वह जो देवपूजा आदिके समय की जाती है। यहाँ देवपूजा अपने विभवके अनुसार करनी चाहिए यह कहा है[1]। इससे विदित होता है कि गृहस्थ कृतिकर्म करते समय अक्षत आदि सामग्रीका उपयोग करता है। वह सामग्री कैसी हो इसके सम्बन्धमें मूलाचार प्रथम अधिकारके श्लोक २४ की टीकामें आचार्य वसुनन्दि कहते हैं—जिनेन्द्रदेवकी पूजाके लिए गन्ध, पुष्प और धूप आदि जिस सामग्रीका उपयोग किया जावे वह

१. मूलाचार षडावश्यकाधिकार गाथा ८४।

प्रासुक और निर्दोष होनी चाहिए। इससे भी गृहस्थ कृतिकर्म करते समय सामग्रीका उपयोग करता है इसकी सूचना मिलती है।

आलम्बन—

कृतिकर्म करनेका मुख्य हेतु आत्मशुद्धि है। इसलिए यह विधि सम्पन्न करते समय उन्हींका आलम्बन लिया जाता है, जिन्होंने आत्मशुद्धि करके या तो मोक्ष प्राप्त कर लिया है या जो अरिहन्त अवस्थाको प्राप्त हो गये हैं। आचार्य, उपाध्याय और साधु तथा जिन-प्रतिमा और जिनवाणी ये भी आत्मशुद्धिमें प्रयोजक होने से उसके आलम्बन माने गये हैं। यहाँ यह प्रश्न होता है कि देवपूजा आदि कार्य बिना रागके नहीं होते और राग संसारका कारण है, इसलिए कृतिकर्मको आत्मशुद्धिमें प्रयोजक कैसे माना जा सकता है। समाधान यह है कि जब तक सराग अवस्था है तब तक जीवके रागकी उत्पत्ति होती ही है। यदि वह राग लौकिक प्रयोजनकी सिद्धिके लिए होता है तो उससे संसारकी वृद्धि होती है। किन्तु अरिहन्त आदि स्वयं राग और द्वेषसे रहित होते हैं। लौकिक प्रयोजनसे उनकी पूजा की भी नहीं जाती है, इसलिए उनमें पूजा आदिके निमित्तसे होनेवाला राग मोक्षमार्गका प्रयोजक होनेसे प्रशस्त माना गया है। मूलाचारमें भी कहा है कि जिनेन्द्रदेवकी भक्ति करनेसे पूर्व संचित सब कर्मोंका क्षय होता है। आचार्यके प्रसादसे विद्या और मन्त्र सिद्ध होते हैं। ये संसारसे तारनेके लिए नौकाके समान हैं। अरिहन्त, वीतराग धर्म, द्वादशाङ्ग वाणी, आचार्य, उपाध्याय और साधु इनमें जो अनुराग करते हैं उनका वह अनुराग प्रशस्त होता है। इनके अभिमुख होकर विनय और भक्ति करने से सब अर्थोंकी सिद्धि होती है। इसलिए भक्ति रागपूर्वक मानी गई है। किन्तु यह निदान नहीं है। निदान सकाम होता है और भक्ति निष्काम। यही इन दोनोंमें अन्तर है।

विधि—

वन्दनाके लिए जाते समय श्री जिनालयके दृष्टिपथमें आने पर '**दृष्टं जिनेन्द्रभवनं भवतापहारि**' पाठ पढ़े। अनन्तर हाथ-पैर धोकर '**णिसही णिसही णिसही**'[1] ऐसा तीन बार उच्चारण करके जिनालयमें प्रवेश करे। भगवान् जिनेन्द्रदेवके दर्शनसे पुलकित वदन और आत्मविभोर हो उनके सामने हाथ जोड़कर खड़ा हो जावे। अनन्तर दोष विशुद्धिके लिए ईर्यापथ शुद्धि करके यथाविधि सामायिकदण्डक, त्थोस्सामिदण्डक, चैत्यभक्ति और पञ्चगुरुभक्ति पढ़े। अन्तमें देववन्दना करते समय लगे दोषके परिमार्जनके लिए यथाविधि समाधिभक्ति पढ़कर देववन्दनाका कृतिकर्म सम्पन्न करे।

इस कृतिकर्मको करते समय कहाँ बैठकर अष्टाङ्ग नमस्कार करे, कहाँ खड़े खड़े ही नमस्कार करे तथा कहाँ मन, वचन और कायकी शुद्धिके सूचक तीन आवर्त करे आदि सब विधि विविध शास्त्रोंमें बतलाई गई है। इस विधिको सूचित करनेवाला एक सूत्र षट्खण्डागमके कर्म अनुयोगद्वारमें भी आया है।[2] उसके अनुसार कृतिकर्मके छह भेद होते हैं—उसका प्रथम विशेषण आत्माधीन है। कृतिकर्म पूरी स्वाधीनताके साथ करना चाहिए, क्योंकि पराधीन होकर किये गये कार्यसे इष्ट फलकी प्राप्ति नहीं होती। दूसरा विशेषण तीन प्रदक्षिणा देना है। गुरु, जिन और जिनगृहकी वन्दना करते समय तीन प्रदक्षिणा देकर नमस्कार करना चाहिए। तीसरा विशेषण तीन बार करना है। प्रदक्षिणा और नमस्कार आदि क्रिया तीन-तीन बार करनी

---

१. णिसही यह चैत्यालयका पर्यायनाम प्रतीत होता है। समैया समाजमें और इन्दौर आदि नगरोंमें इस शब्दका प्रयोग आज भी किया जाता है।

२. 'तमादाहीणं पदाहिणं तिक्खुत्तं तियोणदं चदुसिरं बारसावत्तं तं सव्वं किरियाकम्मं णाम ॥ २८ ॥

चाहिए। या एक दिनमें जिन, गुरु और जिनगृह आदिकी वन्दना कमसे कम तीन बार करनी चाहिए यह इसका भाव है। चौथा विशेषण भूमि पर बैठकर तीन बार अष्टाङ्ग नमस्कार करना है। सर्व प्रथम हाथ-पैर धोकर शुद्ध मनसे जिन-मन्दिरमें जाकर जिनदेवको बैठकर अष्टाङ्ग नमस्कार करे। यह प्रथम नति है। पुनः उठकर और जिनेन्द्रदेवकी प्रार्थना करके बैठकर अष्टाङ्ग नमस्कार करना यह दूसरी नति है। पुनः उठकर सामायिक-दण्डकसे आत्मशुद्धि करके तथा कषायके साथ शरीरका उत्सर्ग करके जिनेन्द्रदेवके अनन्त गुणोंका ध्यान करते हुए चौबीस तीर्थङ्कर जिन, जिनालय और गुरुओंकी स्तुति करके भूमिमें बैठकर अष्टाङ्ग नमस्कार करना यह तृतीय नति है। इस प्रकार एक कृतिकर्ममें तीन अष्टाङ्ग नमस्कार होते हैं। पाँचवाँ विशेषण चार बार सिर नवाना है। सामायिक दण्डकके आदिमें और अन्तमें तथा त्थोस्सामि दण्डकके आदिमें और अन्तमें इस प्रकार एक कृतिकर्ममें सब मिलाकर चार बार सिर झुकाकर नमस्कार किया जाता है। छठा विशेषण बारह आवर्त करना है। दोनों हाथोंको जोड़कर और कमलके समान मुकुलित करके दक्षिण भागसे प्रारम्भ करके वाम भागकी ओर ले जाकर और वाम भागसे पुनः दक्षिण भागकी ओर घुमाते हुए ले आना आवर्त है। इतनी विधि करनेसे एक आवर्त होता है। एक कृतिकर्ममें ऐसे बारह आवर्त होते हैं। सामायिकदण्डकके आदिमें और अन्तमें तथा त्थोस्सामिदण्डकके आदिमें और अन्तमें तीन तीन आवर्त होते हैं, इसलिए इनका जोड़ बारह हो जाता है।

मूलाचारमें अन्य सब विधि षट्खण्डागमके अनुसार कही है। मात्र वहाँ अष्टाङ्ग नमस्कार दो बार करनेका ही विधान है—प्रथम सामायिक-दण्डकके प्रारम्भमें और दूसरा थोस्सामिदण्डकके प्रारम्भमें। हरिवंशपुराण में भी भूमिस्पर्शनरूप दो ही अष्टाङ्ग नमस्कारोंका उल्लेख है—प्रथम सामायिक दण्डकके प्रारम्भमें और दूसरा त्थोस्सामिदण्डकके अन्तमें। इससे

प्रतीत होता है कि पूर्व कालमें देशभेदसे कृतिकर्मके बाह्य आचारमें थोड़ा बहुत अन्तर भी प्रचलित रहा है। इतना अवश्य है कि देववन्दनाके समय सामायिकदण्डक, त्थोस्सामिदण्डक, पञ्चगुरुभक्ति और यथासम्भव समाधि-भक्ति यथाविधि अवश्य पढ़ी जाती रही है। इस विषयकी विस्तृत चरचा श्री पं० पन्नालालजी सोनीने क्रियाकलापमें की है। विशेष जिज्ञासुओंको वहाँसे ज्ञान प्राप्त करके अपने कृतिकर्ममें संशोधन करनेमें उससे सहायता लेनी चाहिए।

वर्तमान पूजाविधि—

वर्तमानमें जो दर्शनविधि और पूजाविधि प्रचलित है उसमें वे सब गुण नहीं रहने पाये हैं जो षट्खण्डागम आदि में प्रतिपादित क्रिया-कर्ममें निर्दिष्ट किये गये हैं। अधिकतर श्रावक और त्यागीगण जिन्हें जितना अवकाश मिलता है उसके अनुसार इस विधिको सम्पन्न करते हैं। व्रती श्रावकोंमें और साधुओंमें त्रिकाल देववन्दनाका नियम तो एक प्रकारसे उठ ही गया है। प्रतिक्रमण और आलोचना करनेकी विधि भी समाप्त-प्राय ही है। यह कृतिकर्मका आवश्यक अङ्ग है। फिर भी समग्र पूजाविधि को देखनेसे ऐसा अवश्य प्रतीत होता है कि उसमें पूर्वोक्त देववन्दना (कृतिकर्म) का समावेश अवश्य किया गया है। इतना अवश्य है कि कुछ आवश्यक क्रियाएँ छूट गई हैं और कुछ नई आ मिली हैं। कृतिकर्म प्रारम्भ करनेके पूर्व ईर्यापथशुद्धि करनी चाहिए उसे वर्तमान समयमें व्रती श्रावक भी नहीं करते। अव्रती श्रावकोंकी बात अलग है। सामायिक-दण्डक समग्र तो नहीं पर उसका प्रारम्भिक भाग पंच नमस्कार मन्त्र और चत्तारिदण्डक पूजाविधिमें यथास्थान सम्मिलित कर लिया गया है। मात्र उसे पढ़ कर पुष्पाञ्जलि क्षेपण कर देते हैं। त्थोस्सामि दण्डक के स्थानमें **'श्रीवृषभो नः स्वस्ति'** यह स्वतिपाठ और पञ्चगुरुभक्तिके स्थानमें **'स्वस्ति श्रीत्रिलोकगुरुवे'** यह स्वस्तिपाठ वर्तमान पूजाविधिमें सम्मिलित है

पर इनके रखनेके क्रममें अन्तर है। अर्थात् पहले '**श्रीवृषभो नः स्वस्ति**' यह पढ़कर बादमें पंचगुरुभक्ति पढ़नी चाहिए पर होता इससे उलटा है। सो भी इन दोनों पाठोंको सब नहीं पढ़ते। प्राचीन चैत्यभक्ति दो मिलती हैं—एक लघु चैत्यभक्ति और दूसरी बृहच्चैत्यभक्ति। इनमेंसे लघु चैत्य-भक्ति पूजाविधिमें अवश्य सम्मिलित की गई है किन्तु वह अपने स्थानपर न होकर देव, गुरु और शास्त्र तथा बीस तीर्थंकरकी पूजाके बादमें आती है। जिसे वर्तमानमें कृत्रिमाकृत्रिम जिनालय पूजा कहते हैं वह लघु चैत्य-भक्ति ही है। इसे पढ़कर इसका आलोचना पाठ भी पढ़ते हैं और अन्तमें '**अथ पौर्वाह्निकं**' इत्यादि पढ़कर नौ बार णमोकार मंत्रका जाप भी करते हैं। '**अथ पौर्वाह्निकं**' इत्यादि पाठ द्वारा पञ्चगुरुभक्तिका कृत्य विज्ञापन किया गया है, इसलिए इसके आगे पञ्चगुरुभक्ति करनी चाहिए, इसे कोई नहीं जानता। कृतिकर्मके अन्तमें पहले समाधिभक्ति पढ़ी जाती थी उसे पूजा-विधिके अन्तमें वर्तमान समयमें भी यथास्थान पढ़ते हैं। जिसे आजकल शान्तिपाठ कहा जाता है वह समाधिभक्ति ही है। अन्तर केवल इतना है कि समाधिभक्तिमें '**प्रथमं करणं चरणं द्रव्यं नमः**' यहाँसे लेकर आगे का पाठ पढ़ा जाता था और शान्तिपाठमें '**शान्तिजिनं शशि**'—इत्यादि पाठ भी सम्मिलित कर लिया गया है। इससे उद्देश्यमें भी अन्तर आ गया है।

इतना सब लिखनेका अभिप्राय इतना ही है कि वर्तमान पूजाविधिमें यद्यपि पुराने कृतिकर्मका समावेश किया गया है पर कृत्यविज्ञापन; प्रति-क्रमण और आलोचना पाठ छोड़ दिये गये हैं। विधिमें जो एकरूपता थी वह भी नहीं रहने पाई है। देववन्दनाके समय हमें क्या कितना करना चाहिए यह कोई नहीं जानता। द्रव्यकी बहुलता और प्रधानता हो जानेसे कृतिकर्म देवदर्शन और देवपूजा इस प्रकार दो भागोंमें विभक्त हो गया है। वस्तुतः इन दोनोंमें कोई अन्तर नहीं है। गृहस्थ अपने साथ प्रासुक द्रव्य लाकर यथास्थान उसका प्रयोग करे यह बात अलग है

इसका निषेध नहीं है। पण्डितप्रवर आशाधरजीने श्रावककी दिनचर्यामें त्रिकाल देववन्दनाके समय दोनों प्रकारसे पूजा करनेका विधान किया है। प्रातःकालीन देववन्दनाका विधान करते हुए वे लिखते हैं कि श्री जिन-मन्दिरमें जाते समय गृहस्थको चार हाथ भूमि शोधकर जाना चाहिए। मन्दिरमें पहुँचकर और हाथ-पैर धोकर सर्वप्रथम **'जाव अरहंताणं'** इत्यादि वचन बोलकर पहले ईर्यापथशुद्धि करनी चाहिए। अनन्तर **'जयन्ति निर्जिता-शेष'**—इत्यादि पढ़कर या पूजाष्टक पढ़कर देववन्दना करनी चाहिए। सर्व-प्रथम जिनेद्रदेवकी पूजा करे। उसके बाद श्रुत और सूरिकी पूजा करे। इसे वे जघन्य वन्दनाविधि कहते हैं। तात्पर्य यह है कि अष्ट द्रव्यसे यदि गृहस्थ देववन्दना करता है तो सर्वोत्कृष्ट है और यदि अष्ट द्रव्यके बिना करता है तो भी हानि नहीं है। मात्र देववन्दना यथाविधि होनी चाहिए।

पूजाविधिका अन्य प्रकार—

साधारणतः देवपूजाका जो पुरातन प्रकार रहा है और उसका वर्तमान समयमें प्रचलित पूजाविधिमें जिस प्रकार समावेश किया गया है उसका हमने स्पष्टीकरण किया ही है। साथ ही उसमें जो न्यूनाधिकता हुई है उसपर भी हम विचार कर आये हैं। यहाँ हम पूजाके उस प्रकार का भी उल्लेख कर देना चाहते हैं जिसे सोमदेव सूरिने यशस्तिलकचम्पूमें निबद्ध किया है, क्योंकि वर्तमान पूजाविधिपर इसका विशेष प्रभाव दिखलाई देता है। वे लिखते हैं—

प्रस्तावना पुराकर्म स्थापना संनिधापनम्।
पूजा पूजाफलं चेति षड्विधं देवसेवनम् ॥कल्प ३६॥

देवपूजा छह प्रकारकी है—प्रस्तावना, पुराकर्म, स्थापना, संनिधापन, पूजा और पूजाफल। इन छह कर्मोंका विस्तृत विवेचन करते हुए वे लिखते हैं—जिनेन्द्रदेवका गुणानुवाद करते हुए अभिषेकविधि करनेकी प्रस्तावना करना प्रस्तावना है। पीठके चारों कोणोंपर जलसे भरे हुए चार कलशोंकी

स्थापना करना पुराकर्म है। पीठपर यथाविधि जिनेन्द्रदेवको स्थापित करना स्थापनाकर्म है। ये जिनेन्द्रदेव हैं, यह पीठ मेरुपर्वत है, जलपूर्ण ये कलश क्षीरोदधिके जलसे पूर्ण कलश हैं और मैं इन्द्र हूँ जो इस समय अभिषेकके लिए उद्यत हुआ हूँ—ऐसा विचार करना संनिधापन है। अभिषेक पूर्वक पूजा करना पूजा है और सबके कल्याणकी भावना करना पूजाफल है।

श्री सोमदेवद्वारा प्रतिपादित यह पूजाविधि वही है जो कि वर्तमान समयमें प्रचलित है। मात्र इसमें न तो वर्तमान समयमें प्रत्येक पूजाके प्रारम्भमें की जानेवाले आह्वानन, स्थापना और सन्निधीकरणका कोई विधान किया है और न विसर्जन विधिका ही निर्देश किया है। यद्यपि यहाँ पर जिन-प्रतिमाके स्थापित करनेको स्थापना और उसमें साक्षात् जिनेन्द्रदेवकी कल्पना करनेको संनिधापन कहा है, इसलिए इससे आह्वानन, स्थापना और सन्निधीकरणका भाव अवश्य लिया जा सकता है। जो कुछ भी हो, इतना स्पष्ट है कि इस विधिमें उस आचारका पूरी तरहसे समावेश नहीं होता जिसका निर्देश हम पहले कर आये हैं।

विचारणीय विषय—

इतना लिखनेके बाद हमें वर्तमान पूजाविधिमें प्रचलित दो-तीन बातोंका संकेत कर देना आवश्यक प्रतीत होता है। प्रथम बात आह्वानन, स्थापना और सन्निधीकरणके विषयमें कहनी है। वर्तमान समयमें जितनी पूजाएँ की जाती हैं उनको प्रारम्भ करते समय सर्वप्रथम यह क्रिया की जाती है। जैन परम्परामें स्थापना निक्षेपका बहुत अधिक महत्त्व है इसमें सन्देह नहीं। पण्डितप्रवर आशाधरजी ने जिनाकारको प्रकट करनेवाली मूर्तिके न रहने पर अक्षत आदिमें भी स्थापना करनेका विधान किया है[1]।

---

1 सागारधर्मामृत अध्याय २ श्लोक ३१।

किन्तु जहाँ साक्षात् जिनप्रतिमा विराजमान है और उसके आलम्बनसे पञ्च परमेष्ठी और चौबीस तीर्थङ्कर आदिकी पूजा की जा सकती है वहाँ क्या आह्वानन आदि क्रियाका किया जाना उपयुक्त है ? देववन्दनाकी जो प्राचीन विधि उपलब्ध होती है उसमें इसके लिए स्थान नहीं है यह बात उस विधिके देखनेसे स्पष्टतः लक्ष्यमें आ जाती है।

दूसरी बात विसर्जनके सम्बन्धमें कहनी है। विसर्जन आकर पूजाको स्वीकार करनेवालेका किया जाता है। किन्तु जैनधर्मके अनुसार कोई आता है और पूजामें अर्पण किये गये भागको स्वीकार करता है इस मान्यताको रञ्चमात्र भी स्थान नहीं है। पाँच परमेष्ठीके स्वरूपका विचार करनेसे यह बात और भी स्पष्ट हो जाती है। आगममें देववन्दनाकी जो विधि बतलाई है उसके अनुसार देववन्दनासम्बन्धी कृतिकर्म अन्तमें समाधिभक्ति करनेपर सम्पन्न हो जाता है, इसलिए मनमें यह प्रश्न उठता है कि पूजाके अन्तमें क्या विसर्जन करना आवश्यक है। इस समय जो विसर्जन पढ़ा जाता है उसके स्वरूपपर भी हमने विचार किया है। उससे मिलते-जुलते श्लोक ब्राह्मणधर्मके अनुसार किये जानेवाले क्रियाकाण्डमें भी पाये जाते हैं। तुलना कीजिए—

आह्वानं नैव जानामि नैव जानामि पूजनम्।
विसर्जनं न जानामि क्षमस्व परमेश्वर ॥१॥
मन्त्रहीनं क्रियाहीनं द्रव्यहीनं तथैव च।
तत्सर्वं क्षम्यतां देव रक्ष रक्ष जिनेश्वर ॥२॥ विसर्जनपाठ

इनके स्थानमें ब्राह्मणधर्ममें ये श्लोक उपलब्ध होते हैं—

आवाहनं न जानामि न जानामि विसर्जनम्।
पूजनं नैव जानामि क्षमस्व परमेश्वर ॥१॥
मन्त्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं जनार्दन।
यत्पूजितं मया देव परिपूर्णं तदस्तु मे ॥२॥

'ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि' इत्यादि श्लोक भी ब्राह्मण क्रियाविधिमें कुछ हेरफेरसे होना चाहिए ऐसा हमारा ख्याल है। किन्तु तत्काल उपलब्ध न होनेसे वह नहीं दिया गया है।

'आहूता ये पुरा देवाः' इत्यादि श्लोक प्रतिष्ठापाठका है। पञ्चकल्याणककी समस्त क्रिया मुख्यतया चतुर्णिकायके देव सम्पन्न करते हैं, इसलिए पञ्चकल्याणक प्रतिष्ठामें उनका आह्वानन और स्थापना की जाती है। तथा क्रियाविधिके सम्पन्न होनेपर उनका विसर्जन भी किया जाता है। इसलिए वहाँ पर इस श्लोककी सार्थकता भी है। देवपूजामें इसकी रञ्चमात्र भी सार्थकता नहीं है।

तीसरी बात अभिषेकके विषयमें कहनी है। सामान्यतः अभिषेकके विषयमें दो मत पाये जाते हैं। एक मत यह है कि जिन-प्रतिमाकी पञ्च-कल्याणक प्रतिष्ठा हो जाती है, इसलिए उसका अभिषेक जन्म-कल्याणकका प्रतीक नहीं हो सकता। दूसरे मतके अनुसार अभिषेक जन्म-कल्याणकका प्रतीक माना गया है। सोमदेव सूरि इस दूसरे मतके अनुसर्ता जान पड़ते हैं, क्योंकि उन्होंने अभिषेक-विधिका विधान करते समय वह सब क्रिया बतलाई है जो जन्माभिषेकके समय होती है। फिर भी यह अवश्य ही विचारणीय हो जाता है कि यदि अभिषेक जन्मकल्याणकके समय किये गये अभिषेकका प्रतीक है तो इसमें पञ्चामृताभिषेक कहाँ से आ गया। जन्मकल्याणकके समय तो केवल जलसे अभिषेक किया जाता है। आगमिक परम्पराके अनुसार इसके ऐतिहासिक अनु-सन्धानकी आवश्यकता है। इससे तथ्यों पर बहुत कुछ प्रकाश पड़नेकी सम्भावना है।

निष्कर्ष—

देवपूजाके विषयमें इतना ऊहापोह करनेसे निष्कर्षके रूपमें हमारे मन पर जो छाप पड़ी है वह यह है कि वर्तमान पूजाविधिमें कृतिकर्मका

जो आवश्यक अंश छूट गया है, यथास्थान उसे अवश्य ही सम्मिलित कर लेना चाहिए और प्रतिष्ठापाठके आधारसे इसमें जिस तत्त्वने प्रवेश कर लिया है उसका संशोधन कर देना चाहिए, क्योंकि पञ्चकल्याणक प्रतिष्ठा-विधिमें और देवपूजामें प्रयोजन आदिकी दृष्टिसे बहुत अन्तर है। वहाँ अप्रतिष्ठित प्रतिमाको प्रतिष्ठित करना यह प्रयोजन है और यहाँ प्रतिष्ठित प्रतिमाको साक्षात् जिन मानकर उसकी जिनेन्द्रदेवके समान उपासना करना यह प्रयोजन है।

दो शब्द

इस समय भारतीय ज्ञानपीठका ध्यान उस साहित्यके प्रकाशनकी ओर भी आकृष्ट हुआ है जिसका उपयोग गृहस्थके दैनंदिनके जीवनमें होता है। यह ज्ञानपीठ-पूजाञ्जलि उस साहित्यका एक अङ्ग है। इसमें पूजा और स्तुति-स्तोत्र सम्बन्धी विपुल सामग्री सङ्कलित की गई है।

सञ्चालक समितिकी योजनानुसार संस्कृत पूजाओंका संकलन श्रीमान् बाबू छोटेलाल जी कलकत्तावालोंने और उसका सम्पादन डा० ए० एन० उपाध्यायने किया है। संस्कृतकी कुछ पूजाओंका हिन्दी अनुवाद लगभग १० वर्ष पूर्व श्री पं० लालबहादुर जी शास्त्रीने किया था। आवश्यक परिवर्तन और संशोधनके साथ उसके यथासम्भव अंशका उपयोग भी इसमें किया गया है। शेष सामग्रीका संकलन श्री बाबूलाल जी फागुल्लने किया है। सामग्री किस क्रमसे रखी जाय इसका निर्देश ज्ञानपीठकी अध्यक्षा श्रीमती रमारानी जी और मा० साहु सा०के परमर्शानुसार श्रीमान् बाबू लक्ष्मीचन्द्र जी एम० ए० करते रहे हैं। उन्होंने एक तालिका बनाकर भेज दी थी। उसीके अनुसार मैंने इस कार्यको सम्पादित किया है। संस्कृत पूजाओंकी जो प्रेस कापी हमारे सामने रही है उसमें अनेक स्थानों पर कुछ अंश त्रुटित था। उसकी पूर्ति स्थानीय पंचायती मन्दिरके सरस्वती

भवनके व्यवस्थापक श्री मा० मथुरादास जी की कृपासे प्राप्त सामग्रीसे की गई है। इस कार्यमें हमें श्रीयुक्त पं० कैलाशचन्द्र जी शास्त्रीसे भी पूरा प्रोत्साहन मिला है। कार्यको आगे बढ़ानेमें हमें फागुल्ल जी, चतुर्वेदी जी व श्री सन्मति मुद्रणालयके कर्मचारियोंसे भी पूरी सहायता मिली है। प्रस्तुत पुस्तकमें जो कुछ अच्छाई है वह सब पूर्वोक्त महानुभावोंके परिश्रमका फल है।

पुस्तकके विषयोंका संकलन ज्ञानपीठके अनुरूप हो गया है। हमें विश्वास है कि समाजमें यह अपना उचित स्थान अपने गुणोंके कारण बना लेगी। अब तक ऐसा संस्करण देखनेमें नहीं आया है।

—फूलचन्द्र सि० शास्त्री

ज्ञानपीठ-पूजाञ्जलि

•

[खण्ड १]

सामान्य पूजा-पाठ [संस्कृत]

मङ्गलाष्टक

अणिमादि अनेक ऋद्धियोंसे युक्त तथा नमन करते हुए सुरेन्द्रों और असुरेन्द्रोंके मुकुटोंमें लगे हुए कान्तियुक्त रत्नोंकी प्रभासे जिनके चरणोंके नखरूपी चन्द्र भासमान हो रहे हैं, जो प्रवचन-रूपी वारिधिको वृद्धिगत करनेके लिए चन्द्रमाके समान हैं, जो सदा अपने स्वरूपमें स्थित रहते हैं और जिनकी योगीजन स्तुति करते हैं वे अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु पाँच परमेष्ठी तुम्हारा मङ्गल करें ॥ १ ॥

निर्दोष सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र यह पवित्र रत्नत्रय है। श्रीसम्पन्न मुक्तिनगरके स्वामी भगवान् जिनदेवने इसे अपवर्गको देनेवाला धर्म कहा है। इस प्रकार जो यह तीन प्रकारका धर्म कहा गया है वह तथा इसके साथ सूक्तिसुधा, समस्त जिन-प्रतिमा और लक्ष्मीका आकारभूत जिनालय मिलकर चार प्रकारका धर्म कहा गया है वह तुम्हारा मङ्गल करे ॥ २ ॥

तीन लोकमें विख्यात जो नाभेय आदि चौबीस तीर्थङ्कर हुए हैं, अनेक प्रकारकी विभूतिसे युक्त जो भरत आदि बारह चक्रवर्ती हुए हैं और जो सत्ताईस नारायण, प्रतिनारायण और बलभद्र हुए हैं। वे तीनों कालोंमें प्रसिद्ध त्रेसठ महापुरुष तुम्हारा मङ्गल करें ॥ ३ ॥

जयादिक आठ देवियाँ, सोलह विद्यादेवता, तीर्थङ्करोंकी चौबीस माताएँ और चौबीस पिता तथा उनके चौबीस यक्ष और चौबीस यक्षिणी, बत्तीस इन्द्र, तिथिदेवता, आठ दिक्कन्याएँ और दस दिक्पाल ये सब देवगण तुम्हारा मङ्गल करें ॥ ४ ॥

जो उत्तम तपसे वृद्धिको प्राप्त हुई पाँच सर्वौषधि ऋद्धियोंके स्वामी हैं, अष्टाङ्ग महानिमित्तोंमें कुशल हैं, आठ चारण ऋद्धियोंके

मङ्गलाष्टकम्

श्रीमन्नम्र-सुरासुरेन्द्र-मुकुट-प्रद्योत-रत्नप्रभा-
भास्वत्पाद-नखेन्दवः प्रवचनाम्भोधीन्दवः स्थायिनः ।
ये सर्वे जिन-सिद्ध-सूर्यनुगतास्ते पाठकाः साधवः
स्तुत्या योगिजनैश्च पञ्चगुरवः कुर्वन्तु ते मङ्गलम् ॥१॥

सम्यग्दर्शन-बोध-वृत्तममलं रत्नत्रयं पावनं
मुक्ति-श्री-नगराधिनाथ-जिनपत्युक्तोऽपवर्गप्रदः ।
धर्मः सूक्तिसुधा च चैत्यमखिलं चैत्यालयं श्र्यालयं
प्रोक्तं च त्रिविधं चतुर्विधममी कुर्वन्तु ते मङ्गलम् ॥२॥

नाभेयादि-जिनाधिपास्त्रिभुवनख्याताश्चतुर्विंशतिः
श्रीमन्तो भरतेश्वरप्रभृतयो ये चक्रिणो द्वादश ।
ये विष्णु-प्रतिविष्णु-लाङ्गलधराः सप्तोत्तरा विंशतिः
त्रैकाल्ये प्रथितास्त्रिषष्टिपुरुषाः कुर्वन्तु ते मङ्गलम् ॥३॥

देव्योऽष्टौ च जयादिका द्विगुणिता विद्यादिका देवताः
श्रीतीर्थङ्करमातृकाश्च जनका यक्षाश्च यक्ष्यस्तथा ।
द्वात्रिंशत्त्रिदशाधिपास्तिथिसुरा दिक्कन्यकाश्चाष्टधा
दिक्पाला दश चेत्यमी सुरगणाः कुर्वन्तु ते मङ्गलम् ॥४॥

ये सर्वौषधऋद्धयः सुतपसो वृद्धिंगताः पञ्च ये
ये चाष्टाङ्गमहानिमित्तकुशला येऽष्टाविधाश्चारणाः ।

धारी हैं, पाँच प्रकारके ज्ञानसे सम्पन्न हैं, तीन प्रकारके बलसे युक्त हैं और बुद्धि आदि सात प्रकारकी ऋद्धियोंके अधिपति हैं वे जगत्पूज्य गणधरदेव तुम्हारा मङ्गल करें ॥ ५ ॥

ऋषभ जिनकी कैलाश, वीर जिनकी पावापुर, वासुपूज्यकी चम्पा, नेमीश्वरकी ऊर्जयन्त और शेष जिनोंकी सम्मेदशिखर निर्वाण-भूमियाँ हैं। विभवसम्पन्न वे निर्वाणभूमियाँ तुम्हारा मङ्गल करें ॥ ६ ॥

ज्योतिषी, व्यन्तर, भवनवासी और वैमानिकोंके निवासस्थानमें तथा मेरु, कुलाचल, जम्बूवृक्ष, शाल्मलीवृक्ष, चैत्यवृक्ष, वक्षार गिरि, विजयार्धगिरि, इष्वाकारगिरि, कुण्डलनग, नन्दीश्वरद्वीप और मानुषोत्तर पर्वतपर स्थित जिन-चैत्यालय तुम्हारा मङ्गल करें ॥ ७ ॥

देवोंने समस्त तीर्थङ्करोंके जो गर्भावतार महोत्सव, जन्माभिषेक उत्सव, परिनिष्क्रमण उत्सव, केवलज्ञान महोत्सव और निर्वाण महोत्सव किये वे पञ्चकल्याणक तुम्हारा निरन्तर मङ्गल करें ॥ ८ ॥

इस प्रकार तीर्थङ्करोंके पाँच कल्याणक महोत्सवोंके समय तथा प्रातः काल जो बुद्धिमान् हर्षपूर्वक सौभाग्य और सम्पत्तिको देनेवाले इस जिन-मङ्गलाष्टकको सुनते हैं और पढ़ते हैं वे सज्जन पुरुष धर्म, अर्थ और कामपुरुषार्थसे युक्त लक्ष्मीको प्राप्त करते हैं और अन्तमें अपायरहित मोक्ष-लक्ष्मीको भी प्राप्त करते हैं ॥ ९ ॥

●

पञ्चज्ञानधरास्त्रयोऽपि बलिनो ये बुद्धिऋद्धीश्वराः
सप्तैते सकलार्चिता गणभृतः कुर्वन्तु ते मङ्गलम् ॥५॥

कैलासे वृषभस्य निर्वृतिमही वीरस्य पावापुरे
चम्पायां वसुपूज्यतुग्जिनपतेः सम्मेदशैलेऽर्हताम् ।
शेषाणामपि चोर्जयन्तशिखरे नेमीश्वरस्यार्हतो
निर्वाणावनयः प्रसिद्धविभवाः कुर्वन्तु ते मङ्गलम् ॥६॥

ज्योतिर्व्यन्तर-भावनामरगृहे मेरौ कुलाद्रौ तथा
जम्बू-शाल्मलि-चैत्यशाखिषु तथा वक्षार-रूप्याद्रिषु ।
इष्वाकारगिरौ च कुण्डलनगे द्वीपे च नन्दीश्वरे
शैले ये मनुजोत्तरे जिनगृहाः कुर्वन्तु ते मङ्गलम् ॥७॥

यो गर्भावतरोत्सवो भगवतां जन्माभिषेकोत्सवो
यो जातः परिनिष्क्रमेण विभवो यः केवलज्ञानभाक् ।
यः कैवल्यपुरप्रवेशमहिमा संभावितः स्वर्गिभिः
कल्याणानि च तानि पञ्च सततं कुर्वन्तु ते मङ्गलम् ॥८॥

इत्थं श्रीजिनमङ्गलाष्टकमिदं सौभाग्यसंपत्पदं
कल्याणेषु महोत्सवेषु सुधियस्तीर्थङ्कराणामुषः ।
ये शृण्वन्ति पठन्ति तैश्च सुजनैर्धर्मार्थकामान्विता
लक्ष्मीराश्रयते व्यपायरहिता निर्वाणलक्ष्मीरपि ॥९॥

इति मङ्गलाष्टकम्

दृष्टाष्टकस्तोत्र

आज मैंने जो भव्य जीवोंके तापको हरनेवाला है, जो अपरिमित विभवकी उत्पत्तिका हेतु है और जो दूध तथा समुद्रफेनके समान धवलोज्ज्वल शिखरके कगूँरोंमें लगे हुए ध्वजपंक्तिसे शोभायमान है ऐसे जिनालयके दर्शन किये ॥ १ ॥

आज मैंने जो तीन लोककी लक्ष्मीका एक आश्रय है, जो ऋद्धिसम्पन्न महामुनियोंसे सेव्यमान है और जहाँकी भूमि विद्याधरों और देवोंकी वधूजनोंके द्वारा विखेरी गई दिव्य पुष्पाञ्जलिके कारण शोभायमान हो रही है ऐसे जिनेन्द्रभवनके दर्शन किये ॥ २ ॥

आज मैंने जहाँ पर भवनवासी आदि देवोंकी गणिकाएँ गान कर रही हैं और जिसके विशाल गवाक्षजाल नाना प्रकारके मणियोंकी देदीप्यमान कान्तिसे कर्बुरित हो रहे हैं ऐसे जिनेन्द्रभवनके दर्शन किये ॥ ३ ॥

आज मैंने जहाँका दिगन्तराल देव, सिद्ध, यक्ष, गन्धर्व और किन्नरोंके द्वारा हाथमें वेणुनिर्मित वीणा लेकर नमस्कार करते समय किये गये संगीतनादसे आपूरित हो रहा है ऐसे जिनेन्द्रभवनके दर्शन किये ॥ ४ ॥

आज मैंने जो हिलती हुई सुन्दर मालाओंमें आकुल हुए भ्रमरोंके कारण ललित अलकोंकी शोभाको धारण कर रहा है और जो मधुर शब्द युक्त वाद्य और लयके साथ नृत्य करती हुई वाराङ्गनाओंकी लीलासे हिलते हुए वलय और नूपुरके नादसे रमणीय प्रतीत होता है ऐसे जिनेन्द्रभवनके दर्शन किये ॥ ५ ॥

दृष्टाष्टकस्तोत्रम्

दृष्टं जिनेन्द्रभवनं भवतापहारि
भव्यात्मनां विभव-संभव-भूरिहेतु ।
दुग्धाब्धि-फेन-धवलोज्ज्वल-कूटकोटी-
नद्ध-ध्वज-प्रकर-राजि-विराजमानम् ॥१॥

दृष्टं जिनेन्द्रभवनं भुवनैकलक्ष्मी-
धामर्द्धिवर्द्धित-महामुनि-सेव्यमानम् ।
विद्याधरामर-वधूजन-मुक्तदिव्य-
पुष्पाञ्जलि-प्रकर-शोभित-भूमिभागम् ॥२॥

दृष्टं जिनेन्द्रभवनं भवनादिवास-
विख्यात-नाक-गणिका-गण-गीयमानम् ।
नानामणि-प्रचय-भासुर-रश्मिजाल-
व्यालीढ-निर्मल-विशाल-गवाक्षजालम् ॥३॥

दृष्टं जिनेन्द्रभवनं सुर-सिद्ध-यक्ष-
गन्धर्व-किन्नर-करार्पित-वेणु-वीणा- ।
संगीत-मिश्रित-नमस्कृत-धारनादै-
रापूरिताम्बर-तलोरु-दिगन्तरालम् ॥ ४ ॥

दृष्टं जिनेन्द्रभवनं विलसद्विलोल-
मालाकुलालि-ललितालक-विभ्रमाणम् ।
माधुर्यवाद्य-लय-नृत्य-विलासिनीनां
लीला-चलद्वलय-नूपुर-नाद-रम्यम् ॥ ५ ॥

आज मैंने जो मणि, रत्न और स्वर्णसे निर्मित एक सौ आठ प्रकारके कलश चामर और दर्पण आदि समीचीन मङ्गलद्रव्योंसे शोभित हो रहा है और जो निर्मल मौक्तिक मालाओंसे सुशोभित है ऐसे जिनेन्द्रभवनके दर्शन किये ॥ ६ ॥

आज मैंने जहाँका उत्तुङ्ग शाल उत्तम प्रकारके देवदारु, कपूर, चन्दन और तरुष्क आदि सुगन्धित द्रव्योंसे बने हुए सुगन्धित धूपसे निकले हुए धूम्रके कारण मानो आकाशमें मेघ ही छाये हों इस प्रकारकी विचित्र शोभाको लिये हुए पवनके अभिघातसे हिलते हुए पताकाओंसे युक्त हो रहा है ऐसे जिनेन्द्रभवनके दर्शन किये ॥७॥

आज मैंने धवल आतपत्रकी छायामें लीन हुए यक्षकुमारोंके कारण जो ढुरते हुए शुक्ल चामरोंकी पंक्तिकी शोभाको धारण करता है और जो भामण्डलकी द्युतिसे युक्त प्रतिमाओंके कारण अत्यन्त अभिराम लग रहा है ऐसे जिनेन्द्रभवनके दर्शन किये ॥८॥

आज मैंने नाना प्रकारके पुष्पोंके उपहारके कारण जहाँकी सुन्दर रत्नभूमि रमणीय लग रही है, जो निरन्तर वसन्त ऋतुमें तिलक वृक्षकी शोभाको धारण करता है, जो सर्वोत्तम मङ्गलरूप है और जो समस्त श्रेष्ठ मुनिगणोंके द्वारा वन्दनीय है ऐसे जिनेन्द्र-भवनके दर्शन किये ॥ ९ ॥

आज मैंने जो मणि और काञ्चनके कारण विचित्र शोभाको लिये हुए उत्तुङ्ग सिंहासन आदि विभूतिसे युक्त जिनबिम्बसे शोभायमान हो रहा है, जिसकी निरुपम कीर्ति गाई जाती है, जो मेरे लिए मङ्गलस्वरूप है और जो समस्त श्रेष्ठ मुनियोंके द्वारा वन्दनीय है ऐसे जिनचैत्यालयके दर्शन किये ॥१०॥

दृष्टं जिनेन्द्रभवनं मणि-रत्न-हेम-
सारोज्ज्वलैः कलश-चामर-दर्पणाद्यैः ।
सन्मंगलैः सततमष्टशत-प्रभेदै-
र्विभ्राजितं विमल-मौक्तिक-दामशोभम् ॥६॥

दृष्टं जिनेन्द्रभवनं वरदेवदारु-
कर्पूर-चन्दन-तरुष्क-सुगन्धिधूपैः ।
मेघायमानगगने पवनाभिवात-
चञ्चच्चलद्विमल-केतन-तुङ्ग-शालम् ॥ ७ ॥

दृष्टं जिनेन्द्रभवनं धवलातपत्र-
च्छाया-निमग्न-तनु-यक्षकुमार-वृन्दैः ।
दोधूयमान-सित-चामर-पंक्तिभासं
भामण्डल-द्युतियुत-प्रतिमाभिरामम् ॥ ८ ॥

दृष्टं जिनेन्द्रभवनं विविधप्रकार-
पुष्पोपहार-रमणीय-सुरत्नभूमिः ।
नित्यं वसन्ततिलकश्रियमादधानं
सन्मंगलं सकल-चन्द्रमुनीन्द्र-वन्द्यम् ॥ ९ ॥

दृष्टं मयाद्य मणि-काञ्चन-चित्र-तुङ्ग-
सिंहासनादि-जिनबिम्ब-विभूतियुक्तम् ।
चैत्यालयं यदतुलं परिकीर्तितं मे
सन्मंगलं सकल-चन्द्रमुनीन्द्र-वन्द्यम् ॥१०॥

इति दृष्टाष्टकम्

अद्याष्टकस्तोत्र

हे देव ! आज मैंने अक्षय सम्पत्तिके हेतुभूत आपके दर्शन किये। इससे मेरा जन्म सफल हो गया और दोनों नेत्र सफल हो गये ॥ १ ॥

हे जिनेन्द्र ! आज आपका दर्शन करनेसे तरनेके लिए अत्यन्त कठिन यह गम्भीर संसाररूपी समुद्र मेरे लिए क्षणमात्रमें सुतर हो गया ॥ २ ॥

हे जिनेद्र ! आज आपका दर्शन करनेसे मेरा शरीर धुल गया, नेत्र निर्मल हो गये और मैंने धर्मतीर्थोंमें स्नान कर लिया ॥३॥

हे जिनेन्द्र ! आज आपका दर्शन करनेसे मेरा जन्म सफल हो गया, मुझे प्रशस्त सर्व मङ्गलोंकी प्राप्ति हो गई और मैं संसार-रूपी समुद्रसे तरकर पार हो गया ॥ ४ ॥

हे जिनेन्द्र ! आज आपका दर्शन करनेसे मैंने कषायके साथ आठ कर्मोंको जलाकर दूर कर दिया और मैं दुर्गतिसे पार हो गया ॥ ५ ॥

हे जिनेन्द्र ! आज आपका दर्शन करनेसे एकादश स्थानमें स्थित सब ग्रह सौम्य और शुभ हो गये तथा विघ्नजाल नष्ट हो गये ॥ ६ ॥

हे जिनेन्द्र ! आज आपका दर्शन करनेसे दुःख देनेवाला कर्मोंका महाबन्ध नष्ट हो गया और मैं सुखकर संगतिको प्राप्त हो गया ॥ ७ ॥

हे जिनेन्द्र ! आज आपका दर्शन करनेसे दुःखको उत्पन्न करने-वाले आठ कर्म नष्ट हो गये तथा मैं सुखसागरमें निमग्न हो गया ॥ ८ ॥

अद्याष्टकस्तोत्रम्

अद्य मे सफलं जन्म नेत्रे च सफले मम ।
त्वामद्राक्षं यतो देव हेतुमक्षयसंपदः ॥ १ ॥

अद्य संसार-गंभीर-पारावारः सुदुस्तरः ।
सुतरोऽयं क्षणेनैव जिनेन्द्र तव दर्शनात् ॥ २ ॥

अद्य मे क्षालितं गात्रं नेत्रे च विमले कृते ।
स्नातोऽहं धर्म-तीर्थेषु जिनेन्द्र तव दर्शनात् ॥३॥

अद्य मे सफलं जन्म प्रशस्तं सर्वमंगलम् ।
संसारार्णव-तीर्णोऽहं जिनेन्द्र तव दर्शनात् ॥ ४ ॥

अद्य कर्माष्टक-ज्वालं विधूतं सकषायकम् ।
दुर्गतेर्विनिवृत्तोऽहं जिनेन्द्र तव दर्शनात् ॥ ५ ॥

अद्य सौम्या ग्रहाः सर्वे शुभाश्चैकादश-स्थिताः ।
नष्टानि विघ्न-जालानि जिनेन्द्र तव दर्शनात् ॥६॥

अद्य नष्टो महाबन्धः कर्मणां दुःखदायकः ।
सुख-सङ्गं समापन्नो जिनेन्द्र तव दर्शनात् ॥७॥

अद्य कर्माष्टकं नष्टं दुःखोत्पादन-कारकम् ।
सुखाम्भोधि-निमग्नोऽहं जिनेन्द्र तव दर्शनात् ॥८॥

हे जिनेन्द्र! आज आपका दर्शन करनेसे मेरे शरीरमें मिथ्यात्वरूप अन्धकारका नाश करनेवाला ज्ञानरूपी सूर्य उदित हुआ है ॥ ९ ॥

हे जिनेन्द्र! आज आपका दर्शन करनेसे समस्त कल्मषको धोकर मैं सुकृती और तीन लोकमें पूज्य हो गया ॥ १० ॥

हे जिनेन्द्र! आपका दर्शन करते समय जो आपके गुणोंमें आनन्दपूर्वक अपने मनको लगाकर इस अष्टक स्तोत्रको पढ़ता है उसे आपका दर्शन करने मात्रसे सब अर्थोंमें सिद्धि या सर्वार्थ-सिद्धि प्राप्त हो जाती है ॥ ११ ॥

●

लघु-अभिषेक पाठ

तीन लोकके ईश, स्याद्वाद नीतिके नायक और अनन्त चतुष्टयके धनी श्रीसम्पन्न जिनेन्द्रदेवको नमस्कार करके मैंने मूल संघके अनुसार सम्यग्दृष्टि जीवोंके सुकृतकी एकमात्र कारणभूत जिनेन्द्रदेवकी यह पूजाविधि कही है ॥१॥

[इस श्लोकको पढ़कर श्री जिनचरणोंके अग्रभागमें पुष्पाञ्जलि क्षेपण करे]

श्रीसम्पन्न मेरु पर्वतके दर्भ और अक्षतसे युक्त पवित्र जलसे प्रक्षालित सुन्दर पीठपर मुक्ति रूपी लक्ष्मीके नायक श्री जिनदेवको स्थापित करके 'इन्द्र हूँ' इस प्रतिज्ञाके साथ मैं जिनेन्द्रदेवके अभि-षेकके समय अपने आभूषण स्वरूप आपके चरण कमलोंकी मालाको तथा यज्ञोपवीत, मुँदरी, कंगन और मुकुटको धारण करता हूँ ॥२॥

[इस श्लोकको पढ़कर माला और यज्ञोपवीत आदि धारण करने चाहिए।]

अद्य मिथ्यान्धकारस्य हन्ता ज्ञान-दिवाकरः ।
उदितो मच्छरीरेऽस्मिन् जिनेन्द्र तव दर्शनात् ॥९॥

अद्याहं सुकृती भूतो निर्धूताशेषकल्मषः ।
भुवन-त्रय-पूज्योऽहं जिनेन्द्र तव दर्शनात् ॥१०॥

अद्याष्टकं पठेद्यस्तु गुणानन्दित-मानसः ।
तस्य सर्वार्थसंसिद्धिर्जिनेन्द्र तव दर्शनात् ॥११॥

इति अद्याष्टकम्

•

लघु-अभिषेकपाठः

श्रीमज्जिनेन्द्रमभिवन्द्य जगत्त्रयेशं
स्याद्वाद-नायकमनन्त-चतुष्टयार्हम् ।
श्रीमूलसंघ-सुदृशां सुकृतैकहेतु-
र्जैनेन्द्र-यज्ञविधिरेष मयाभ्यधायि ॥ १ ॥

[श्लोकमिमं पठित्वा जिनचरणयोः पुष्पाञ्जलिं प्रक्षिपेत्]

श्रीमन्मन्दर[1]-सुन्दरे शुचिजलैर्धौतैः सदर्भाक्षतैः
पीठे मुक्तिवरं निधाय रचितां[2] त्वत्पाद-पद्मस्रजः[3] ।
इन्द्रोऽहं निज-भूषणार्थकमिदं यज्ञोपवीतं दधे
मुद्रा-कङ्कण-शेखराण्यपि तथा जैनाभिषेकोत्सवे ॥२॥

[इति पठित्वा यज्ञोपवीतादिसंधारणम् ।]

---

१ 'श्रीमन्मन्दरसुन्दरे शुचिजलैर्धौते सदर्भाक्षते' इति पाठः शुद्धः प्रतिभाति । २ रचितमिति पाठः । ३ त्वत्पादपद्मस्रजा इति पाठः ।

मैं विबुधेश्वरवृन्दके द्वारा वन्दनीय ऐसे श्री जिनेन्द्रदेवके चरणकमलको नमस्कार करके अभिषेक महोत्सवके प्रारम्भमें अपनी सुगन्धिके कारण आये हुए भ्रमर समूहके मधुर शब्दसे प्रशंसित किये गयेके समान अनिन्द्य गन्धका आरोपण करता हूँ ॥३॥

[इसे पढ़कर शरीरमें ललाट आदि नौ स्थानोंपर चन्दनका तिलक करना चाहिये]

इस लोकमें प्रभूत बल और दर्पसे युक्त, बुद्धिशाली तथा दिव्य कुलमें उत्पन्न हुए जो भी नागदेव हैं उनके समक्ष संरक्षणके लिए प्रशस्त जलसे स्नपनभूमिका प्रक्षालन करता हूँ ॥४॥

[इसे पढ़कर नागसन्तर्पणपूर्वक स्नपनभूमिका प्रक्षालन करे ।]

देवेन्द्रोंने क्षीरसमुद्रके जलके निर्मल प्रवाहसे संसारतापका हरण करनेवाले और अत्युन्नत जिस जिनपादपीठका अनेक बार प्रक्षालन किया है, समुपस्थित हुए उस पादपीठका मैं प्रक्षालन करता हूँ ॥५॥

[इसे पढ़कर पादपीठको स्थापितकर उसका प्रक्षालन करे ।]

श्रीसम्पन्न शारदाके मुखसे निकले हुए, सब जनोंके लिए सदा मङ्गलस्वरूप, विघ्नोंका नाश करनेवाले और स्वयं शोभासंपन्न ऐसे श्रीकार वर्णको मैं जिनेन्द्रदेवके भद्र पीठपर लिखता हूँ ॥६॥

[यह पढ़कर पाठ पीठपर 'श्री लिखे ।]

सौगन्ध्य-संगत-मधुव्रत-झङ्कृतेन
संवर्ण्यमानमिव गन्धमनिन्द्यमादौ ।
आरोपयामि विबुधेश्वर-वृन्द-वन्द्य-
पादारविन्दमभिवन्द्य जिनोत्तमानाम् ॥३॥

[इति पठित्वा नवस्थानेषु तिलकन्यासः]

ये सन्ति केचिदिह दिव्य-कुल-प्रसूता
नागाः प्रभूत-बल-दर्पयुता विबोधाः ।
संरक्षणार्थममृतेन शुभेन तेषां
प्रक्षालयामि पुरतः स्नपनस्य भूमिम् ॥४॥

[इति पठित्वा नागसन्तर्पणं भूमिशोधनं च]

क्षीरार्णवस्य पयसां शुचिभिः प्रवाहैः
प्रक्षालितं सुरवरैर्यदनेकवारम् ।
अत्युद्घमुद्यतमहं जिनपादपीठं
प्रक्षालयामि भव-संभव-तापहारि ॥ ५ ॥

[इति पठित्वा पीठप्रक्षालनम्]

श्रीशारदा-सुमुख-निर्गत-बीजवर्णं
श्रीमङ्गलीक-वर-सर्वजनस्य नित्यम् ।
श्रीमत्स्वयं क्षयति तस्य विनाशविघ्नं
श्रीकार-वर्ण-लिखितं जिन-भद्रपीठे (?)॥६॥

[इति पठित्वा पीठे श्रीकारलेखनम्]

हे इन्द्र, अग्नि, यम, नैऋत, वरुण, पवन, कुबेर, ऐशान, धरणीन्द्र और सोमदेव ! जिनेन्द्रदेवके अभिषेकके समय अपने अपने अनुचरों और अपने अपने चिह्नोंके साथ यहाँ आकर अपनी अपनी भेंटको स्वीकार कीजिए ॥७॥

[आगे लिखे हुए प्रत्येक मन्त्रको क्रमसे पढ़ता जाय और उस उस दिक्पालको अर्घ्य देता जाय ।]

१ ओं आं क्रौं ह्रीं हे इन्द्र ! आइए आइए, इन्द्रको अर्घ्य ।
२ ओं आं क्रौं ह्रीं हे अग्निदेव ! आइए आइए अग्निदेवको अर्घ्य ।
३ ओं आं क्रौं ह्रीं हे यमदेव ! आइए आइए, यमदेवको अर्घ्य ।
४ ओं आं क्रौं ह्रीं हे नैऋतदेव ! आइए आइए, नैऋतदेवको अर्घ्य ।
५ ओं आं क्रौं ह्रीं हे वरुणदेव ! आइए, आइए, वरुणदेवको अर्घ्य ।
६ ओं आं क्रौं ह्रीं हे पवनदेव ! आइए आइए, पवनदेवको अर्घ्य ।
७ ओं आं क्रौं ह्रीं हे कुबेरदेव ! आइए आइए, कुबेरदेवको अर्घ्य ।
८ ओं आं क्रौं ह्रीं हे ऐशानदेव ! आइए आइए, ऐशानदेवको अर्घ्य ।
९ ओं आं क्रौं ह्रीं हे धरणीन्द्रदेव ! आइए आइए, धरणीन्द्रदेवको अर्घ्य ।
१० ओं आं क्रौं ह्रीं हे सोमदेव ! आइए आइए, सोमदेवको अर्घ्य ।

जो पात्रमें रखे हुए दही, उज्वल अक्षत, मनोहर पुष्प और दीपसे सजाई गई है, तीन लोककी मङ्गलरूप है, सुखकी आलय है और कामका दाह करनेवाली है उससे हे विभो ! मैं आपकी आरती उतारता हूँ ॥८॥

[इसे पढ़कर पात्रमें रखे हुए दही आदिसे जिन देवकी आरती उतारे ।]

इन्द्राग्नि-दण्डधर-नैॠत-पाशपाणि-
वायूत्तरेश-शशिमौलि-फणीन्द्र-चन्द्राः ।
आगत्य यूयमिह सानुचराः सचिह्नाः
स्वं स्वं प्रतीच्छत बलिं जिनपाभिषेके ॥७॥

[पुरोलिखितान्मन्त्रानुच्चार्य क्रमशो दशदिक्पालकेभ्योऽर्घ्यसमर्पणम्]

१ ॐ आं क्रौं ह्रीं इन्द्र आगच्छ आगच्छ इन्द्राय स्वाहा ।
२ ॐ आं क्रौं ह्रीं अग्ने आगच्छ आगच्छ अग्नये स्वाहा ।
३ ॐ आं क्रौं ह्रीं यम आगच्छ आगच्छ यमाय स्वाहा ।
४ ॐ आं क्रौं ह्रीं नैॠत आगच्छ आगच्छ नैॠताय स्वाहा ।
५ ॐ आं क्रौं ह्रीं वरुण आगच्छ आगच्छ वरुणाय स्वाहा ।
६ ॐ आं क्रौं ह्रीं पवन आगच्छ आगच्छ पवनाय स्वाहा ।
७ ॐ आं क्रौं ह्रीं कुबेर आगच्छ आगच्छ कुबेराय स्वाहा ।
८ ॐ आं क्रौं ह्रीं ऐशान आगच्छ आगच्छ ऐशानाय स्वाहा ।
९ ॐ आं क्रौं ह्रीं धरणीन्द्र आगच्छ आ० धरणीन्द्राय स्वाहा ।
१० ॐ आं क्रौं ह्रीं सोम आगच्छ आगच्छ सोमाय स्वाहा ।

इति दिक्पालमन्त्राः

दध्युज्ज्वलाक्षत-मनोहर-पुष्प-दीपैः
पात्रार्पितं प्रतिदिनं महतादरेण ।
त्रैलोक्य-मङ्गल-सुखालय-कामदाह-
मारार्तिकं तव विभोरवतारयामि ॥८॥

[पात्रार्पितैर्दधितण्डुलपुष्पदीपैर्जिनस्यारार्तिकावतरणम्]

सुमेरु पर्वतके अग्रभागमें स्थित निर्मल पाण्डुक शिलापर स्थित श्री आदि जिनका पहले देवेन्द्रोंने अभिषेक किया था, कल्याणका इच्छुक मैं उन आदि जिनकी प्रतिमाकी स्थापना कर अक्षत, जल और पुष्पोंसे पूजा करता हूँ ॥९॥

[जल, अक्षत और पुष्पोंका क्षेपणकर श्रीवर्णके ऊपर प्रतिमाको स्थापित करे।]

जो उत्तमोत्तम पल्लवोंसे अञ्चित किये गये हैं, जो स्वर्ण, चाँदी और ताँबेसे निर्मित हैं और जलसे भरे हुए हैं ऐसे चार कलशोंको जिनवेदिकाके चारों कोणोंपर मानो चार समुद्र ही हों ऐसा मानकर स्थापित करे ॥१०॥

[पल्लवोंसे सुशोभित मुखवाले चार कलश पीठके चारों कोणोंपर स्थापित करे।]

मैं पवित्रभूत इस जलसे, परिमलबहुल इस चन्दनसे, लक्ष्मीके नेत्रोंको सुखकर और पवित्र इन अक्षतोंसे, उत्तम सुगन्धिवाले इन पुष्पोंसे, हृद्य इन नैवेद्योंसे, मखके भवनको प्रकाशित करनेवाले इन प्रदीपोंसे, सुगन्धिसे परिपूर्ण इन धूपोंसे और इन बड़े फलोंसे श्रीजिनेन्द्रदेवकी पूजा करता हूँ ॥ ११ ॥

[ओं ह्रीं श्री परमदेव अर्हत्परमेष्ठीके लिए अर्घ्य समर्पण करता हूँ।]

श्री जिनेन्द्रदेवके जो चरण दूरसे नम्र हुए इन्द्रोंके मुकुटोंके अग्रभागमें लगे हुए रत्नोंकी किरणच्छविसे धूसर हो रहे हैं और जो प्रस्वेद, ताप और मलसे मुक्त हैं उन जिनेन्द्रदेवका मैं भक्तिपूर्वक प्रकृष्ट जलसे अनेकानेक बार अभिषेक करता हूँ ॥ १२ ॥

यं पाण्डुकामल-शिलागतमादिदेव-
मस्नापयन्सुरवराः सुरशैलमूर्ध्नि ।
कल्याणमीप्सुरहमक्षत-तोय-पुष्पैः
संभावयामि पुर एव तदीय-बिम्बम् ॥९॥

[जलाक्षतपुष्पाणि निक्षिप्य श्रीवर्णे प्रतिमास्थापनम्]

सत्पल्लवार्चित-मुखान्कलधौतरौप्य-
ताम्रारकूट-घटितान्पयसा सुपूर्णान् ।
संवाह्यतामिव गतांश्चतुरः समुद्रान्
संस्थापयामि कलशाञ्जिनवेदिकान्ते ॥१०॥

[आम्रादिपल्लवशोभितमुखांश्चतुःकलशान् पीठचतुःकोणेषु स्थापयेत्]

आभिः पुण्याभिरद्भिः परिमल-बहुलेनामुना चन्दनेन
श्रीदृक्पेयैरमीभिः शुचि-सदकचयैरुद्गमैरेभिरुद्धैः ।
हृद्यैरेभिर्निवेद्यैर्मख-भवनमिमैर्दीपयद्भिः प्रदीपैः
धूपैः प्रायोभिरेभिः पृथुभिरपि फलैरेभिरीशं यजामि ॥११॥

[ॐ ह्रीं श्रीपरमदेवाय श्रीअर्हत्परमेष्ठिनेऽर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।]

दूरावनम्र-सुरनाथ-किरीट-कोटी-
संलग्न-रत्न-किरण-च्छवि-धूसराङ्घ्रिम् ।
प्रस्वेद-ताप-मल-मुक्तमपि प्रकृष्टै-
र्भक्त्या जलैर्जिनपतिं बहुधाऽभिषिञ्चे ॥१२॥

[ओं ह्रीं सब्र द्वीपोंके मध्य विराजमान जम्बूद्वीपमें भरतक्षेत्रमें, आर्य-खण्डमें·········नामके नगरमें सब्र मासोंमें उत्तम·········मासमें······ पक्षकी·········के शुभ दिन मुनि, आर्यिका, श्रावक और श्राविकाओंके समस्त कर्मोंका क्षय करनेके लिए मैं अन्तरङ्ग और बहिरङ्ग लक्ष्मीसे सुशोभित परम कृपालु भगवान् ऋषभदेवसे लेकर महावीर पर्यन्त चौबीस तीर्थङ्करोंका जलसे अभिषेक करता हूँ ।]

[इसे पढ़कर श्री जिन-प्रतिमापर कलशसे जलकी धारा छोड़े। तथा 'उदकचन्दन' पढ़कर अर्घ्य चढ़ावे ।]

उत्कृष्ट वर्णवाले नूतन हेमरसके समान मनोरम देहके प्रभावलयके सम्पर्कसे जिसकी दीप्ति लुप्त हो गई है और जो अपने सुगन्ध गुणके द्वारा अनुमेय है ऐसी अर्हत्परमेष्ठीके अभिषेकके योग्य घृतधाराको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ १३ ॥

[ओं ह्रीं सब्र द्वीपोंके मध्य विराजमान·········इत्यादि मन्त्रको पढ़ते हुए·········अन्तमें घीसे अभिषेक करता हूँ यह पढ़कर घीकी धारा देवे और अन्तमें 'उदकचन्दन' पढ़कर अर्घ्य चढ़ावे ।]

यह शरत्कालीन पूर्णमासीके चन्द्रमाके किरणसमूहका झरना ही है या अपने यशका प्रवाह ही है ऐसे शुचितर विविध प्रकारके दुग्धसे अभिषिक्त हुए जिनेन्द्रदेव मेरे चित्तके समीहितोंको सम्पादित करें ॥ १४ ॥

[ओं ह्रीं सब्र द्वीपोंके मध्य विराजमान·········इत्यादि मन्त्रको पढ़ते हुए अन्तमें दुग्धसे अभिषेक करता हूँ यह पढ़कर दुग्धकी धारा छोड़े और 'उदकचन्दन' पढ़कर अर्घ्य चढ़ावे ।]

[ॐ ह्रीं श्रीमन्तं भगवन्तं कृपालसन्तं वृषभादिमहावीर-पर्यन्तचतुर्विंशतितीर्थङ्करपरमदेवं आद्यानां आद्ये जम्बूद्वीपे भरतक्षेत्रे आर्यखण्डे·········नाम्नि नगरे मासानामुत्तमे मासे ·········मासे·········पक्षे·········शुभदिने मुन्यार्यिका-श्रावक-श्राविकाणां सकलकर्मक्षयार्थं जलेनाभिषिञ्चे नमः ।]

[इति पठित्वा जिनस्य जलाभिषेकं कृत्वा उदकचन्दनेति श्लोकं पठित्वा अर्घ्यं समर्पयेत्]

उत्कृष्ट-वर्ण-नव-हेम-रसाभिराम-
देह-प्रभा-वलय-संगम-लुप्त-दीप्तिम् ।
धारां घृतस्य शुभ-गन्ध-गुणानुमेयां
वन्देऽर्हतां सुरभि-संस्नपनोपयुक्ताम् ॥१३॥

[ॐ ह्रीं श्रीमन्तं भगवन्तं इत्यादिमन्त्रं पठित्वा घृतेनाभिषिञ्चे इति पठित्वा घृताभिषेकं कुर्यात् ।]

संपूर्ण-शारद-शशाङ्क-मरीचि-जाल-
स्यन्दैरिवात्मयशसामिव सुप्रवाहैः ।
क्षीरैर्जिनाः शुचितरैरभिषिच्यमानाः
संपादयन्तु मम चिर-समीहितानि ॥१४॥

[उपरितनं मन्त्रं पठित्वा जलेनाभिषिञ्चे इत्यस्मिन्स्थाने क्षीरेणाभि-षिञ्चे इत्युच्चार्य क्षीराभिषेकं कुर्यात् ।]

क्षीर समुद्रके जलमें उठनेवाली तरङ्गों से अञ्चित हुई फेनराशि की शुक्ल आभा जिसके सामने कुछ भी नहीं है ऐसी जिन-प्रतिमा पर छोड़ी गई दहीकी धारा हम लोगों की वाञ्छित सिद्धिको तत्काल सम्पादित करे ॥ १५ ॥

[ओं ह्रीं सब द्वीपोंके मध्य विराजमान············इत्यादि मन्त्रको पढ़ते हुए अन्तमें दहीसे अभिषेक करता हूँ यह पढ़कर दहीकी धारा छोड़े और 'उदकचन्दन' पढ़कर अर्घ्य चढ़ावे ।

जिन्होंने अपने हाथ उठाकर ललाटतट-देशमें अञ्जलिबद्ध किये हैं ऐसे देवेन्द्र, असुरेन्द्र और मर्त्येन्द्रोंके द्वारा जिन-प्रतिमा पर छोड़ी गई पेलकर निकाले हुए इक्षुरसकी धारा तुम लोगोको सद्यः पवित्र करे ॥१६॥

[ओं ह्रीं सब द्वीपोंके मध्य विराजमान······इत्यादि मन्त्रको पढ़ते हुए अन्तमें इक्षुरससे अभिषेक करता हूँ यह पढ़कर इक्षुरसकी धारा देवे और 'उदकचन्दन-' पढ़कर अर्घ्य चढ़ावे ।]

घी, दूध, दही और इक्षुरससे अभिषेक करनेके बाद उबटन लगाकर अब मैं एला, कालेय और कुंकुमके रससे मिश्रित उज्ज्वल सर्वौषधिरूप वारिपूरसे जिनदेवका अभिषेक करता हूँ ॥१७॥

[ओं ह्रीं सब द्वीपोंके मध्य विराजमान······इत्यादि मन्त्रको पढ़ते हुए अन्तमें सर्वौषधिसे अभिषेक करता हूँ यह पढ़कर सर्वौषधिकी धारा देवे और 'उदकचन्दन-' पढ़कर अर्घ्य चढ़ावे ।]

जिनके आमोदसे समस्त दिशाओंके अन्तराल सुवासित हो रहे हैं ऐसे कर्पूरबहल चार प्रकारके सुगन्धी द्रव्योंसे मिश्रित जलसे मैं जिनेन्द्रदेवका तीन लोकमें पावनभूत अभिषेक करता हूँ ॥१८॥

दुग्धाब्धि-वीचि-पयसाञ्चित-फेनराशि-
पाण्डुत्व-कान्तिमवधीरयतामतीव ।
दध्नां गता जिनपतेः प्रतिमां सुधारा
संपद्यतां सपदि वाञ्छित-सिद्धये नः ॥१५॥

[उपरितनं मन्त्रं पठित्वा जलेनाभिषिञ्चे इत्यस्मिन्स्थाने दध्नाभिषिञ्चे इति पठित्वा दध्यभिषेकं कुर्यात् ।]

भक्त्या ललाट-तटदेश-निवेशितोच्चै-
र्हस्तैश्च्युता सुरवरासुर-मर्त्यनाथैः ।
तत्काल-पीलित-महेक्षु-रसस्य धारा
सद्यः पुनातु जिन-बिम्ब-गतैव युष्मान् ॥१६॥

[उपरितनं मन्त्रं पठित्वा जलेनाभिषिञ्चे इत्यस्मिन्स्थाने इक्षुरसेनाभिषिञ्चे इति पठित्वा इक्षुरसाभिषेकं कुर्यात् ।]

संस्नापितस्य घृत-दुग्ध-दधीक्षुवाहैः
सर्वाभिरौषधिभिरर्हत उज्ज्वलाभिः ।
उद्वर्तितस्य विदधाम्यभिषेकमेला-
कालेय-कुंकुम-रसोत्कट-वारि-पूरैः ॥१७॥

[उपरितनमन्त्रमुच्चार्य जलेनाभिषिञ्चे इत्यस्मिन्स्थाने सर्वौषधिभिरभिषिञ्चे इति पठित्वा सर्वौषधिभिरभिषेकं कुर्यात् ।]

द्रव्यैरनल्प-घनसार-चतुःसमाद्यै-
रामोद-वासित-समस्त-दिगन्तरालैः ।
मिश्रीकृतेन पयसा जिनपुङ्गवानां
त्रैलोक्य-पावनमहं स्नपनं करोमि ॥१८॥

[ओं ह्रीं सब द्वीपोंके मध्य विराजमान······इत्यादि मन्त्रको पढ़ते हुए अन्तमें सुगन्ध जलसे अभिषेक करता हूँ ऐसा कहकर सुगन्ध जलकी धारा देवे और 'उदकचन्दन–'पढ़कर अर्घ्य चढ़ावे ।]

भव्य जीवोंके सैकड़ों इष्ट मनोरथोंकी शोभाको धारण करनेवाले समस्त पूर्ण सुवर्ण कलशोंसे संसाररूपी समुद्रको लांघनेके लिए सेतुरूप और तीन लोकके स्वामी श्री जिनेन्द्रका मैं अन्तमें अभिषेक करता हूँ ॥१६॥

[ओं ह्रीं सब द्वीपोंके मध्य विराजमान······इत्यादि मन्त्रको पढ़ते हुए अन्तमें सब कलशोंसे अभिषेक करता हूँ यह पढ़कर सब कलशोंसे अभिषेक करे और 'उदकचन्दन–' पढ़कर अर्घ्य चढ़ावे ।]

हे जिन ! आपके स्नपनका गन्धोदक मुक्ति लक्ष्मीरूपी वनिताके करके उदकके समान है, पुण्यरूपी अङ्कुरको उत्पन्न करनेवाला है, नागेन्द्र, देवेन्द्र और चक्रवर्तीके राज्यके अभिषेकके जलके समान है, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्ररूपी लताकी वृद्धिका सम्पादक है तथा कीर्ति, लक्ष्मी और जयका साधक है ॥२०॥

[इस श्लोकको पढ़कर गन्धोदकको ग्रहण करे ।]

इस प्रकार लघु अभिषेकपाठ समाप्त हुआ ।

[जलेनाभिषिञ्चे इति स्थाने सुगन्धजलेनेति पठित्वा स्नपनं कुर्यात्]

इष्टैर्मनोरथ-शतैरिव भव्यपुंसां
पूर्णैः सुवर्ण-कलशैर्निखिलैर्वसानैः ।
संसार-सागर-विलंघन-हेतु-सेतु-
माप्लावये त्रिभुवनैकपतिं जिनेन्द्रम् ॥१६॥

[उपरितनमन्त्रेणैव समस्तकलशैरभिषेकं कुर्यात्]

मुक्ति-श्री-वनिता-करोदकमिदं पुण्याङ्कुरोत्पादकं
नागेन्द्र-त्रिदशेन्द्र-चक्र-पदवी-राज्याभिषेकोदकम् ।
सम्यग्ज्ञान-चरित्र-दर्शनलता-संवृद्धि-संपादकं
कीर्ति-श्री-जय-साधकं तव जिन स्नानस्य गन्धोदकम् ॥२०॥

[श्लोकमिमं पठित्वा गन्धोदकं गृह्णीयात्]

इति श्रीलघ्वभिषेकविधिः समाप्तः ।

नित्य-पूजा प्रारम्भ

परमेष्ठीकी जय हो, जय हो, जय हो। नमस्कार हो, नमस्कार हो, नमस्कार हो।

अरिहन्तोंको नमस्कार हो, सिद्धोंको नमस्कार हो, आचार्योंको नमस्कार हो, उपाध्यायोंको नमस्कार हो, और लोकमें सब साधुओं-को नमस्कार हो।

[ओं ह्रीं अनादिमूलतन्त्रको नमस्कार हो। पुष्पाञ्जलि क्षेपण करता हूँ।]

चार पदार्थ मंगल स्वरूप हैं—अरहंत मंगल हैं, सिद्ध मंगल हैं, साधु मंगल हैं, और केवली द्वारा प्रज्ञप्त धर्म मंगल है। लोकमें चार पदार्थ सर्वश्रेष्ठ हैं—अरहंत सर्वश्रेष्ठ हैं, सिद्ध सर्वश्रेष्ठ हैं, साधु सर्वश्रेष्ठ हैं और केवली द्वारा प्रज्ञप्त धर्म सर्वश्रेष्ठ है।

चारकी शरणमें जाता हूँ—अरहंतोंकी शरणमें जाता हूँ, सिद्धोंकी शरणमें जाता हूँ, साधुओंकी शरणमें जाता हूँ। और केवली द्वारा प्रज्ञप्त धर्मकी शरणमें जाता हूँ।

[ओं अरहंतको नमस्कार है, पुष्पाञ्जलि क्षेपण करता हूँ।]

जो मनुष्य पवित्र या अपवित्र यहाँ तक कि सुस्थित या दुःस्थित भी पाँच नमस्कार मन्त्रका ध्यान करता है वह सब पापोंसे छूट जाता है ॥१॥

जो मनुष्य पवित्र या अपवित्र सब अवस्थाओंमें स्थित होकर परमात्माका स्मरण करता है वह भीतर और बाहर सर्वत्र पवित्र है ॥२॥

यह पञ्च नमस्कार मन्त्र अजेय है, सब विघ्नोंका विनाश करनेवाला है और सब मंगलोंमें पहला मंगल है ॥३॥

नित्य-पूजा प्रारभ्यते

ॐ जय जय जय। नमोऽस्तु नमोऽस्तु नमोऽस्तु।
णमो अरिहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं ॥१॥

[ॐ ह्रीं अनादिमूलमन्त्रेभ्यो नमः, पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि]

चत्तारि मंगलं–अरहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं,
साहू मंगलं, केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं।
चत्तारि लोगुत्तमा–अरहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा,
साहू लोगुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो।
चत्तारि सरणं पव्वज्जामि–अरहंते सरणं पव्वज्जामि,
सिद्धे सरणं पव्वज्जामि, साहू सरणं पव्वज्जामि,
केवलिपण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि।

[ॐ नमोऽर्हते स्वाहा, पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि]

अपवित्रः पवित्रो वा सुस्थितो दुःस्थितोऽपि वा।
ध्यायेत्पञ्च-नमस्कारं सर्व-पापैः प्रमुच्यते ॥१॥
अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा।
यः स्मरेत्परमात्मानं स बाह्याभ्यन्तरे शुचिः ॥२॥
अपराजितमन्त्रोऽयं सर्व-विघ्न-विनाशनः।
मङ्गलेषु च सर्वेषु प्रथमं मङ्गलं मतः ॥३॥

यह पञ्च नमस्कार मन्त्र सब पापोंका नाश करनेवाला और सब मंगलोंमें पहला मंगल है ॥४॥

'अर्हम्' ये अक्षर परब्रह्म परमेष्ठीके वाचक हैं और सिद्धसमूहके सुन्दर बीजाक्षर हैं। मैं इनको मन, वचन, कायसे नमस्कार करता हूँ ॥५॥

आठों कर्मोंसे रहित, मुक्तिरूपी लक्ष्मीके मन्दिर और सम्यक्त्वादि आठ गुणोंसे युक्त सिद्धसमूहको मैं नमस्कार करता हूँ ॥६॥

भगवान् जिनेन्द्रकी स्तुति करनेपर विघ्नसमूह नष्ट हो जाते हैं, शाकिनी, भूत और पन्नगोंका भय नहीं रहता तथा विष निर्विष हो जाता है ॥७॥

[पुष्पाञ्जलि क्षेपण करता हूँ।]

[सहस्रनाम स्तोत्र पढ़ते हुए क्रमसे दश अर्घ्य चढ़ावे। यदि समय न हो तो 'उदकचन्दन-' पढ़कर अर्घ्य चढ़ावे।]

मैं प्रशस्त मङ्गलगानके (मंगलीक जिनेन्द्रस्तवन के) शब्दोंसे गुंजायमान जिनमन्दिरमें जिनेन्द्रदेवका जल, चन्दन, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप, फल तथा अर्घसे पूजन करता हूँ।

[अनन्तचतुष्टय, समवसरण और आठ प्रतिहार्य आदि लक्ष्मीसे विभूषित जिनेन्द्रदेवके एक हजार आठ नामोंके लिए मैं अर्घ चढ़ाता हूँ।]

मैं तीन लोकके स्वामी, स्याद्वाद विद्याके नायक, अनन्तदर्शन, अनन्तज्ञान, अनन्तसुख और अनन्तवीर्यके धारक जिनेन्द्रदेवको नमस्कार करके जिनेशदेवके पूजनकी विधिको कहता हूँ जो पूजन मूलसंघके सम्यग्दृष्टि पुरुषोंके लिए पुण्यबन्धका प्रधान कारण है ॥ ८ ॥

एसो पंच-णमोयारो सव्व-पाव-प्पणासणो।
मंगलाणं च सव्वेसिं पढमं होइ मंगलं ॥४॥

अर्हमित्यक्षरं ब्रह्मवाचकं परमेष्ठिनः।
सिद्धचक्रस्य सद्बीजं सर्वतः प्रणमाम्यहम् ॥५॥

कर्माष्टक-विनिर्मुक्तं मोक्ष-लक्ष्मी-निकेतनम्।
सम्यक्त्वादि-गुणोपेतं सिद्धचक्रं नमाम्यहम् ॥६॥

विघ्नौघाः प्रलयं यान्ति शाकिनी-भूत-पन्नगाः।
विषं निर्विषतां याति स्तूयमाने जिनेश्वरे ॥७॥

[पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि।]

[सहस्रनामस्तोत्रं पठित्वा क्रमशोऽर्घ्यदशकं दद्यात्। समया-भावादधोलिखितं श्लोकं पठित्वा एकोऽर्घ्यो देयः।]

उदक-चन्दन-तण्डुल-पुष्पकैश्चरु-सुदीप-सुधूप-फलार्घ्यकैः।
धवल-मङ्गल-गान-रवाकुले जिन-गृहे जिननाथमहं यजे॥

[ॐ ह्रीं श्रीभगवज्जिनसहस्रनामभ्योऽर्घ्यं निर्वपमीति स्वाहा।]

श्रीमज्जिनेन्द्रमभिवन्द्य जगत्त्रयेशं
स्याद्वाद-नायकमनन्त-चतुष्टयार्हम्।
श्रीमूलसंघ-सुदृशां सुकृतैकहेतु-
जैनेन्द्र-यज्ञ-विधिरेष मयाऽभ्यधायि ॥८॥

तीन लोकके गुरु तथा जिनप्रधान (कषायोंको जीतनेवाले मुनीश्वरोंके स्वामी) के लिए कल्याण होवे। स्वाभाविक महिमा का उदय होनेसे भले प्रकार स्थित हुए भगवान्‌के लिए मंगल होवे। स्वाभाविक प्रकाशसे बढ़े हुए तथा केवलदर्शनसे युक्त जिनेन्द्रके लिए क्षेम होवे। उज्ज्वल, सुन्दर तथा अद्भुत समवसरणादि वैभववाले जिनेन्द्रके लिए कुशल होवे ॥ ९ ॥

उछलते हुए निर्मल केवलज्ञानरूपी अमृतमें तैरनेवाले, स्वभाव और परभावके प्रकाशक, तीन लोकमें व्याप्त एकमात्र चैतन्यको प्रकट करनेवाले और त्रिकालवर्ती सर्व पदार्थोंमें ज्ञानके द्वारा व्याप्त जिनेन्द्रदेवके लिए मंगल होवे ॥ १० ॥

अपने भावोंकी परम शुद्धताको पानेका अभिलाषी मैं देश और कालके अनुरूप जल, चन्दनादि द्रव्योंकी शुद्धताको पाकर जिनस्तवन, जिनबिम्बदर्शन आदि अनेक अवलम्बनोंका आश्रय लेकर भूतार्थरूप पूज्य अरहंतादिका पूजन करता हूँ ॥ ११ ॥

हे अर्हन् ! हे पुराणपुरुष ! हे पुरुषोत्तम ! यह असहाय मैं इन पवित्र समस्त जलादि द्रव्योंका आलम्बन लेकर अपने समस्त पुण्यको इस देदीप्यमान निर्मल केवलज्ञानरूपी अग्निमें एकाग्रचित्त होकर हवन करता हूँ ॥१२॥

[पुष्पाञ्जलि-क्षेपण करता हूँ ।]

स्वस्ति त्रिलोक-गुरवे जिन-पुङ्गवाय
स्वस्ति स्वभाव-महिमोदय-सुस्थिताय ।
स्वस्ति प्रकाश-सहजोर्जित-दृङ्मयाय
स्वस्ति प्रसन्न-ललिताद्भुत-वैभवाय ॥६॥

स्वस्त्युच्छलद्विमल-बोध-सुधा-प्लवाय
स्वस्ति स्वभाव-परभाव-विभासकाय ।
स्वस्ति त्रिलोकविततैक-चिदुद्गमाय
स्वस्ति त्रिकाल-सकलायत-विस्तृताय ॥१०॥

द्रव्यस्य शुद्धिमधिगम्य यथानुरूपं
भावस्य शुद्धिमधिकामधिगन्तुकामः ।
आलम्बनानि विविधान्यवलम्ब्य वल्गन्
भूतार्थ-यज्ञ-पुरुषस्य करोमि यज्ञम् ॥११॥

अर्हत्पुराण पुरुषोत्तम पावनानि
वस्तून्यनूनमखिलान्ययमेक एव ।
अस्मिञ्ज्वलद्विमल-केवल-बोधवह्नौ
पुण्यं समग्रमहमेकमना जुहोमि ॥१२॥

[इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि]

स्वस्ति-मङ्गल

श्री ऋषभजिन हम सबके लिए मङ्गलस्वरूप हों। श्री अजित जिन हम सबके लिए मङ्गलस्वरूप हों। श्री सम्भव जिन हम सबके लिए मङ्गलस्वरूप हों। श्री अभिनन्दन जिन हम सबके लिए मङ्गलस्वरूप हों। श्री सुमति जिन हम सबके लिए मङ्गलस्वरूप हों। श्री पद्मप्रभ जिन हम सबके लिए मङ्गलस्वरूप हों। श्री सुपार्श्व जिन हम सबके लिए मङ्गलस्वरूप हों। श्रीचन्द्रप्रभ जिन हम सबके लिए मङ्गलस्वरूप हों। श्री पुष्पदन्त जिन हम सबके लिए मङ्गलस्वरूप हों। श्री शीतल जिन हम सबके लिए मङ्गलस्वरूप हों। श्री श्रेयान्स जिन हम सबके लिए मङ्गलस्वरूप हों। श्री वासुपूज्य जिन हम सबके लिए मङ्गलस्वरूप हों। श्री विमल जिन हम सबके लिए मङ्गलस्वरूप हों। श्री अनन्त जिन हम सबके लिए मङ्गलस्वरूप हों। श्री धर्मजिन हम सबके लिए मङ्गलस्वरूप हों। श्री शान्ति जिन हम सबके लिए मङ्गलस्वरूप हों। श्री कुन्थु जिन हम सबके लिए मङ्गलस्वरूप हों। श्री अरनाथ जिन हम सबके लिए मङ्गल स्वरूप हों। श्री मल्लिजिन हम सबके लिए मङ्गलस्वरूप हों। श्री मुनि सुव्रत जिन हम सबके लिए मङ्गलस्वरूप हों। श्री नमि जिन हम सबके लिए मङ्गलस्वरूप हों। श्री नेमिनाथ जिन हम सबके लिए मङ्गलस्वरूप हों। श्री पार्श्व जिन हम सबके लिए मङ्गलस्वरूप हों और श्री वर्धमान जिन हम सबके लिए मङ्गलस्वरूप हों।

[मैं पुष्पाञ्जलि क्षेपण करता हूँ।]

अविनाशी, अचल और अद्‍भुत केवलज्ञानके धारक, देदीप्यमान मनःपर्ययज्ञान रूप शुद्ध ज्ञान वाले तथा दिव्य अवधिज्ञानके बलसे प्रबुद्ध महाऋषि हमारा कल्याण करें ॥१॥

स्वस्ति-मङ्गलम्

श्रीवृषभो नः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीअजितः ।
श्रीसम्भवः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीअभिनन्दनः ।
श्रीसुमतिः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीपद्मप्रभः ।
श्रीसुपार्श्वः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीचन्द्रप्रभः ।
श्रीपुष्पदन्तः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीशीतलः ।
श्रीश्रेयान् स्वस्ति, स्वस्ति श्रीवासुपूज्यः ।
श्रीविमलः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीअनन्तः ।
श्रीधर्मः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीशान्तिः ।
श्रीकुन्थुः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीअरनाथः ।
श्रीमल्लिः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीमुनिसुव्रतः ।
श्रीनमिः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीनेमिनाथः ।
श्रीपार्श्वः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीवर्धमानः ।

[पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि]

नित्याप्रकम्पाद्‌भुत-केवलौघाः स्फुरन्मनःपर्यय-शुद्धबोधाः ।
दिव्यावधिज्ञान-बलप्रबोधाः स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः॥१॥

कोष्ठस्थधान्योपम, एकबीज, संभिन्नसंश्रोतृत्व और पदानुसारित्व इन चार प्रकारकी बुद्धि ऋद्धिको धारण करनेवाले ऋषिराज हमारा मंगल करें ॥२॥

दिव्य मतिज्ञानके बलसे दूरसे ही स्पर्शन, श्रवण, आस्वादन, घ्राण और अवलोकन रूप पाँच इन्द्रियोंके विषयोंको धारण करने वाले ऋषिराज हम लोगोंका कल्याण करें ॥ ३ ॥

प्रज्ञाश्रमण, प्रत्येकबुद्ध, अभिन्नदशपूर्वी, चतुर्दशपूर्वी, प्रकृष्टवादी और अष्टांगमहानिमित्तके ज्ञाता मुनिवर हमारा कल्याण करें ॥४॥

जंघा, अग्निशिखा, श्रेणी, फल, जल, तन्तु, पुष्प, बीज और अंकुर पर चलनेवाले चारण ऋद्धिके धारक तथा आकाशमें स्वच्छन्द विहार करनेवाले मुनिवर हमारा कल्याण करें ॥ ५ ॥

अणिमा, महिमा, लघिमा और गरिमा-ऋद्धिमें कुशल तथा मन, वचन और कायबलके धारक योगीश्वर हमारा मंगल करें ॥६॥

कामरूपित्व, वशित्व, ईशत्व, प्राकाम्य, अन्तर्धान, आप्ति तथा अप्रतिघात ऋद्धिसे सम्पन्न ऋषिपुंगव हमारा क्षेम करें ॥ ७ ॥

दीप्ति, तप्त, महा, उग्र, घोर और घोरपराक्रम तपके तथा अघोरब्रह्मचारी ऋद्धिके धारी मुनिराज हमारा कल्याण करें ॥८॥

आमर्षौषधि, सर्वौषधि, आशीर्विषंविष, दृष्टिविषंविष, क्ष्वेलौषधि, विडौषधि, जल्लौषधि और मलौषधि ऋद्धिके धारी परम-ऋषि हमारा कल्याण करें ॥ ९ ॥

क्षीरस्रावी, घृतस्रावी, मधुस्रावी, अमृतस्रावी तथा अक्षीण-संवास और अक्षीणमहानस ऋद्धिधारी मुनिवर मंगल करें ॥ १० ॥

[प्रत्येक श्लोककी समाप्तिके बाद पुष्पाञ्जलि क्षेपण करे ।]

इस प्रकार परमऋषिस्वस्तिमङ्गलविधान समाप्त हुआ

कोष्ठस्थ-धान्योपममेकबीजं संभिन्नसंश्रोतृ-पदानुसारि ।
चतुर्विधं बुद्धिबलं दधानाः स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥२॥
संस्पर्शनं संश्रवणं च दूरादास्वादन-घ्राण-विलोकनानि ।
दिव्यान्मतिज्ञानबलाद्वहन्तः स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः॥३॥
प्रज्ञाप्रधानाः श्रवणाः समृद्धाः प्रत्येकबुद्धा दशसर्वपूर्वैः ।
प्रवादिनोऽष्टाङ्गनिमित्तविज्ञाःस्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः॥४॥
जङ्घावलि-श्रेणि-फलाम्बु-तन्तु-प्रसून-बीजाङ्कुर-चारणाह्वाः ।
नभोऽङ्गण-स्वैर-विहारिणश्च स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥५॥
अणिम्नि दक्षाः कुशला महिम्नि लघिम्नि शक्ताः कृतिनो गरिम्णि
मनो-वपुर्वाग्बलिनश्च नित्यं स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥६॥
सकामरूपित्व-वशित्वमैश्यं प्राकाम्यमन्तर्द्धिमथाप्तिमाप्ताः ।
तथाऽप्रतीघातगुणप्रधानाः स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥७॥
दीप्तं च तप्तं च तथा महोग्रं घोरं तपो घोरपराक्रमस्थाः ।
ब्रह्मापरं घोरगुणं चरन्तः स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥८॥
आमर्ष-सर्वौषधयस्तथाशीर्विषंविषा दृष्टिविषंविषाश्च ।
सखिल्ल-विड्-जल्ल-मलौषधीशाःस्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः॥९॥
क्षीरं स्रवन्तोऽत्र घृतं स्रवन्तो मधु स्रवन्तोऽप्यमृतं स्रवन्तः ।
अक्षीणसंवास-महानसाश्च स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥१०॥

[प्रतिश्लोकसमाप्तेरनन्तरं पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्]

इति परमर्षिस्वस्तिमङ्गलविधानम् ।

देव-शास्त्र-गुरुपूजा

जो सबके हितैषी हैं, सर्वज्ञ हैं, सब जीवोंके पापरूपी संतापको हरनेवाले हैं, संसारमें सर्वत्र जिनका यश है, विषय वासनाओंसे दूर हैं, घातिया कर्मोंसे रहित हैं, श्रीसम्पन्न हैं, मुक्ति सम्पत्ति-रूपी स्त्रीसे आलिङ्गित हैं, मनोहर कण्ठवाले देवेन्द्रोंके द्वारा जिनके चरण वन्दनीय हैं और जिनके पांचों कल्याणकोंकी पूजा होती है वे जिनेन्द्र भगवान् सदा जयशील हैं ॥१॥

हे महामनोज्ञ ! आपकी जय हो, जय हो, जय हो । हे त्रैलोक्याधिपति ! आपकी जय हो जय हो, संसार समुद्रमें डूबते हुओंके आपही रक्षक हैं । हे महान् मोहरूपी अंधकारको ध्वस्त करनेवाले सूर्य ! आपकी जय हो, जय हो । हे जिनेश ! आपकी जय हो, जय हो । हे नाथ ! आप प्रसन्न हों । मैं आपकी पूजा करता हूँ ॥२॥

[ॐ ह्रीं हे जिनेन्द्र भगवान् ! यहाँ आइये, आइये संवौषट् ।

ॐ ह्रीं हे जिनेन्द्र भगवान् ! यहाँ तिष्ठिये, तिष्ठिये ठः ठः ।

ॐ ह्रीं हे जिनेन्द्र भगवान् ! यहाँ मेरे समीप हूजिये, हूजिये वषट् ।]

हे देवि ! हे श्रुतदेवते ! हे भगवति ! तेरे चरणकमलोंमें भौंरेकी तरह मुझे स्नेह है, हे माता ! मेरी प्रार्थना है कि तुम सदा मेरे चित्तमें बनी रहो। हे जिन मुखसे उत्पन्न जिनवाणी ! तुम सदा मेरी रक्षा करो और मेरी ओर देखकर मुझपर प्रसन्न होओ। मैं अब आपकी पूजा करता हूँ ॥३॥

[ॐ ह्रीं जिनेन्द्रदेवके मुखकमलसे उत्पन्न हे द्वादशाङ्गरूप श्रुतज्ञान ! यहाँ आइये, आइये संवौषट् ।

ॐ ह्रीं जिनेन्द्रदेवके मुखकमलसे उत्पन्न हे द्वादशाङ्गरूप श्रुतज्ञान ! यहाँ ठहरिये, ठहरिये ठः ठः ।

ॐ ह्रीं जिनेन्द्रदेवके मुखकमलसे उत्पन्न हे द्वादशाङ्गरूप श्रुतज्ञान ! यहाँ मेरे समीप हूजिये हूजिये वषट् ।]

देव-शास्त्र-गुरुपूजा

सार्वः सर्वज्ञनाथः सकल-तनुभृतां पाप-संताप-हर्ता
त्रैलोक्याक्रान्त-कीर्तिः क्षत-मदनरिपुर्घातिकर्म-प्रणाशः ।
श्रीमान्निर्वाणसंपद्वरयुवति-करालीढ-कण्ठः सुकण्ठैः
देवेन्द्रैर्वन्द्य-पादो जयति जिनपतिः प्राप्त-कल्याण-पूजः ॥१॥

जय जय जय श्रीसत्कान्ति-प्रभो जगतां पते ।
जय जय भवानेव स्वामी भवाम्भसि मज्जताम् ॥
जय जय महामोह-ध्वान्त-प्रभातकृतेऽर्चनम् ।
जय जय जिनेश त्वं नाथ प्रसीद करोम्यहम् ॥२॥

[ॐ ह्रीं भगवज्जिनेन्द्र अत्र अवतर २ संवौषट् आह्वाननम् ।
ॐ ह्रीं भगवज्जिनेन्द्र अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम् ।
ॐ ह्रीं भगवज्जिनेन्द्र अत्र मम संनिहितो भव भव वषट् संनिधीकरणम् ।]

देवि श्रीश्रुतदेवते भगवति त्वत्पाद-पङ्करुह-
द्वन्द्वे यामि शिलीमुखत्वमपरं भक्त्या मया प्रार्थ्यते।
मातश्चेतसि तिष्ठ मे जिन-मुखोद्भूते सदा त्राहि मां
दृग्दानेन मयि प्रसीद भवतीं संपूजयामोऽधुना ॥३॥

[ॐ ह्रीं जिनमुखोद्भूतद्वादशाङ्गश्रुतज्ञान अत्र अवतर अवतर संवौषट् ।
ॐ ह्रीं जिनमुखोद्भूतद्वादशाङ्गश्रुतज्ञान अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः ।
ॐ ह्रीं जिनमुखोद्भूतद्वादशाङ्गश्रुतज्ञान अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् ।]

तपके कारण जिनकी बड़ी प्रतिष्ठा है, जो बड़े हैं और महात्मा हैं उन पूज्य गुरुके चरण-कमलोंकी मैं पूजा करता हूँ ॥४॥

[ओं ह्रीं हे आचार्य, उपाध्याय, सर्वसाधुसमूह ! यहाँ आइये आइये संवौषट् ।

ओं ह्रीं हे आचार्य, उपाध्याय, सर्वसाधुसमूह ! यहाँ तिष्ठिये तिष्ठिये ठः ठः ।

ओं ह्रीं हे आचार्य, उपाध्याय, सर्वसाधुसमूह ! यहाँ मेरे समीप हूजिये हूजिये वषट् ।]

देवेन्द्र, धरणेन्द्र और नरेन्द्र जिनकी वन्दना करते हैं, जो परम पदके अधिकारी हैं, जो सुन्दररूप या श्रेष्ठ वर्णोंसे सुशोभित हैं, उन जिनेन्द्र देव, शास्त्र और गुरुकी क्षीरोदधिके समान स्वच्छ और निर्मल जलसे मैं पूजा करता हूँ ॥५॥

[ओं ह्रीं अनन्तज्ञान शक्तिसे सम्पन्न, जन्ममरणादि अठारह दोषोंसे रहित तथा चौंतीस अतिशय, आठ प्रातिहार्य और चार अनन्तचतुष्टय इसप्रकार ४६ गुणोंसे युक्त परमब्रह्म श्रीअरहंत परमेष्ठीके लिए मैं जन्म जरा तथा मरणको नष्ट करनेके लिए जलको अर्पण करता हूँ ।

ओं ह्रीं जिनेन्द्रभगवान्के मुखकमलसे उत्पन्न, स्याद्वादनय गर्भित तथा आचारादि बारह अंगस्वरूप श्रुतज्ञानको जन्म, जरा और मरणको विनाश करनेके लिए जल अर्पण करता हूँ ।

ओं ह्रीं सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्रादि अनेक गुणोंसे शोभायमान आचार्य, उपाध्याय और समस्त साधुवर्गको मैं जन्म, जरा और मरणको नाश करनेके लिए जल अर्पण करता हूँ ।]

जिनका उपदेश जगत्के सभी सन्तप्त प्राणियोंके दुःखको दूर करनेवाला है उन देव, शास्त्र और गुरुकी मैं जिसपर भौंरे मँडरा रहे हैं ऐसे चन्दनसे पूजा करता हूँ ॥ ६ ॥

[ओं ह्रीं···संसारके संतापको विनष्ट करनेके लिए मैं चन्दन अर्पण करता हूँ ।]

संपूजयामि पूज्यस्य पादपद्मयुगं गुरोः ।
तपःप्राप्त-प्रतिष्ठस्य गरिष्ठस्य महात्मनः ॥४॥

[ॐ ह्रीं आचार्योपाध्यायसर्वसाधुसमूह ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् ।

ॐ ह्रीं आचार्योपाध्यायसर्वसाधुसमूह ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः ।

ॐ ह्रीं आचार्योपाध्यायसर्वसाधुसमूह ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् ।]

देवेन्द्र-नागेन्द्र-नरेन्द्रवंद्यान् शुंभत्पदान् शोभित-सारवर्णान् ।
दुग्धाब्धि-संस्पर्धिगुणैर्जलौघैर्जिनेन्द्र-सिद्धान्त-यतीन् यजेऽहम् ॥६

[ॐ ह्रीं परब्रह्मणेऽनन्तानन्तज्ञानशक्तये अष्टादशदोषरहिताय षट्चत्वारिंशद्गुणसहिताय अर्हत्परमेष्ठिने जन्ममृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।

ॐ ह्रीं जिनमुखोद्भूतस्याद्वादनयगर्भितद्वादशांगश्रुतज्ञानाय जन्ममृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।

ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रादिगुणविराजमानाचार्योपाध्याय-सर्वसाधुभ्यो जन्ममृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।]

ताम्यत्त्रिलोकोदर-मध्यवर्ति-समस्त-सत्त्वाहितहारि-वाक्यान् ।
श्रीचन्दनैर्गन्ध-विलुब्ध-भृंगैर्जिनेन्द्र-सिद्धान्त-यतीन् यजेऽहम् ॥

[ॐ ह्रीं ......संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा ।]

अपार संसाररूपी महासमुद्रसे तारनेके लिए जो बड़ी नौकाके समान हैं उन देव, शास्त्र और गुरुकी मैं दीर्घ, अत्रुटित और स्वच्छ अक्षतोंसे पूजा करता हूँ ॥ ७ ॥

[ॐ ह्रीं···अक्षय-पदकी प्राप्तिके लिए मैं अक्षतोंको अर्पण करता हूँ ।]

विनम्र भव्यरूपी कमलोंको विकसित करनेके लिए जो सूर्यके समान हैं, श्रेष्ठ हैं और चरणानुयोगके व्याख्यानमें अग्रणी हैं उन देव, शास्त्र और गुरुकी मैं कुन्द और कमल आदि फूलोंसे पूजा करता हूँ॥८॥

[ॐ ह्रीं···कामदेवके नाशके लिए मैं पुष्प अर्पण करता हूँ ।]

दुष्ट अहंकारी और सब जगह व्याप्त कामरूपी सर्पको बलपूर्वक मारनेके लिए जो गरुड़के समान हैं उन देव, शास्त्र और गुरुकी मैं उत्तम घीमें बने हुए षड्रस नैवेद्यसे पूजा करता हूँ ॥ ९ ॥

[ॐ ह्रीं···क्षुधारूपी रोगको नाश करनेके लिए मैं नैवेद्य अर्पण करता हूँ ।]

आत्महितके समस्त प्रयत्नको नष्टकर समस्त विश्वको अन्धा करनेवाले सब जीवोंके मोहरूपी अन्धकारको नष्ट करनेके लिए जो दीपकके समान हैं उन देव, शास्त्र और गुरुकी मैं स्वर्णके भाजनमें स्थित जगमगाते हुए दीपकोंसे पूजा करता हूँ ॥ १० ॥

[ॐ ह्रीं···अपने मोहरूपी अन्धकारको हटानेके लिए दीप अर्पण करता हूँ ।]

जो दुष्ट आठ कर्मरूपी ईंधनके मजबूत गट्ठरको जलानेके लिए जलती हुई आगके समान हैं उन देव, शास्त्र और गुरुकी मैं अन्य गन्ध-द्रव्योंसे अधिक सुगन्धित धूपसे पूजा करता हूँ ॥ ११ ॥

[ॐ ह्रीं···अपने आठ कर्मोंको जलानेके लिए धूप अर्पण करता हूँ ।]

क्षुब्ध और लोभी मनसे जो अगम्य हैं, मिथ्यावादियोंके मत-पर जिनका अस्खलित प्रभाव है उन देव, शास्त्र और गुरुकी मैं मोक्ष फलकी प्राप्तिके लिए फलोंसे पूजा करता हूँ ॥ १२ ॥

[ॐ ह्रीं···मोक्षफलकी प्राप्तिके लिए मैं फल अर्पण करता हूँ ।]

अपार-संसार-महासमुद्र-प्रोत्तारणे प्राज्य-तरीन् सुभक्त्या ।
दीर्घाक्षतांगैर्धवलाक्षतौघैर्जिनेन्द्र-सिद्धान्त-यतीन् यजेऽहम् ॥७॥

[ॐ ह्रीं··· अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ।]

विनीत-भव्याब्ज-विबोधसूर्यान्वर्यान् सुचर्या-कथनैक-धुर्यान् ।
कुन्दारविन्द-प्रमुखैः प्रसूनैर्जिनेन्द्र-सिद्धान्त-यतीन् यजेऽहम्॥८॥

[ॐ ह्रीं··· कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ।]

कुदर्प-कन्दर्प-विसर्प-सर्प-प्रसह्य-निर्णाशन-वैनतेयान् ।
प्राज्याज्यसारैश्चरुभी रसाढ्यैर्जिनेन्द्र-सिद्धान्त-यतीन् यजेऽहम्॥६

[ॐ ह्रीं··· क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ।]

ध्वस्तोद्यमान्धीकृत-विश्व-विश्वमोहान्धकार-प्रतिघात-दीपान् ।
दीपैः कनत्कांचन-भाजनस्थैर्जिनेन्द्र-सिद्धान्त-यतीन् यजेऽहम्॥१०

[ॐ ह्रीं··· मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा ।]

दुष्टाष्ट-कर्मेन्धन-पुष्ट-जाल-संधूपने भासुर-धूमकेतून् ।
धूपैर्विधूनान्य-सुगन्ध-गन्धैर्जिनेन्द्र-सिद्धान्त-यतीन् यजेऽहम्॥११

[ॐ ह्रीं··· अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ।]

क्षुभ्यद्विलुभ्यन्मनसाप्यगम्यान् कुवादि-वादाऽस्खलित-प्रभावान् ।
फलैरलं मोक्ष-फलाभिसारैर्जिनेन्द्र-सिद्धान्त-यतीन् यजेऽहम्॥१२

[ॐ ह्रीं··· मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा ।]

प्रशस्त जल, चन्दन, अक्षत, पुष्प समूह, नैवेद्य, दीप, धूम्रयुक्त निर्मल धूप तथा अनेक फलोंसे महान् पुण्यके कारण श्री देव, शास्त्र और गुरुकी मैं पूजा करता हूँ ॥ १३ ॥

[ॐ ह्रीं···मैं मुक्ति-पद पानेके लिए अर्घ अर्पण करता हूँ ।]

जो पुण्यात्मा मनुष्य प्रातः, मध्याह्न और सायंकाल अनेक प्रकारसे स्तुतिगान करते हुए भक्तिसे देव, शास्त्र और गुरुकी पूजा करते हैं वे भव्य मुनिपद धारणकर तपश्चरणसे विभूषित हो केवलज्ञानसे रुचिर उत्कृष्ट निर्वाण पदको प्राप्त करते हैं ॥ १४ ॥

[इति आशीर्वाद, पुष्पाञ्जलि क्षेपण करता हूँ ।]

निर्मल कान्तिके धारक तथा सुरों, असुरों और विपुल विभूतिवाले भरत आदि चक्रवर्तियोंसे पूजित श्री ऋषभनाथ, अजितनाथ, संभवनाथ, अभिनन्दननाथ, सुमतिनाथ, पद्मप्रभ, सुपार्श्वनाथ, चन्द्रप्रभ, पुष्पदंत, भगवान् शीतलनाथ, श्रेयांसनाथ, वासुपूज्य, निर्मलकान्तिवाले विमलनाथ, अनन्तनाथ, धर्मनाथ, शान्तिनाथ, जिनोत्तम कुन्थुनाथ, अरनाथ, मल्लिनाथ, मुनिसुव्रतनाथ, तीर्थंकर नमिनाथ, हरिवंशमें उत्पन्न हुए जिनेश्वर अरिष्टनेमि, कमठके उपसर्गोंको ध्वस्त करनेवाले और धरणेन्द्रसे पूजित पार्श्वनाथ, सिद्धार्थके कुलमें उत्पन्न हुए और कर्मोंका नाश करनेवाले श्री महावीर जिन मुनि, आर्यिका, श्रावक और श्राविका इस चतुर्विध संघको अविनश्वर शांति प्रदान करें ॥ १५–२० ॥

सद्वारि-गन्धाक्षत-पुष्पजातैर्नैवेद्य-दीपामल-धूप-धूम्रैः ।
फलैर्विचित्रैर्घन-पुण्य-योगाज्जिनेन्द्र-सिद्धान्त-यतीन् यजेऽहम्॥१३

[ओं ह्रीं...अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।]

ये पूजां जिननाथ-शास्त्र-यमिनां भक्त्या सदा कुर्वते
त्रैसन्ध्यं सुविचित्र-काव्य-रचनामुच्चारयन्तो नराः ।
पुण्याढ्या मुनिराज-कीर्ति-सहिता भूत्वा तपोभूषणा-
स्ते भव्याः सकलावबोध-रुचिरां सिद्धिं लभन्ते पराम् ॥१४॥

[इत्याशीर्वादः, पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि ।]

वृषभोऽजितनामा च सम्भवश्चाभिनन्दनः ।
सुमतिः पद्मभासश्च सुपार्श्वो जिनसत्तमः ॥१५॥
चन्द्राभः पुष्पदन्तश्च शीतलो भगवान्मुनिः ।
श्रेयांश्च वासुपूज्यश्च विमलो विमल-द्युतिः ॥१६॥
अनन्तो धर्मनामा च शान्तिः कुन्थुर्जिनोत्तमः ।
अरश्च मल्लिनाथश्च सुव्रतो नमि-तीर्थकृत् ॥१७॥
हरिवंश-समुद्भूतोऽरिष्टनेमिर्जिनेश्वरः ।
ध्वस्तोपसर्ग-दैत्यारिः पार्श्वो नागेन्द्र-पूजितः ॥१८॥
कर्मान्तकृन्महावीरः सिद्धार्थ-कुल-सम्भवः ।
एते सुरासुरौघेण पूजिता विमलत्विषः ॥१९॥
पूजिता भरताद्यैश्च भूपेन्द्रैर्भूरि-भूतिभिः ।
चतुर्विधस्य संघस्य शान्तिं कुर्वन्तु शाश्वतीम् ॥२०॥

मेरी जिनेन्द्रदेवमें सदा बार-बार भक्ति हो, क्योंकि उनकी भक्तिसे होनेवाला सम्यग्दर्शन ही संसारका निवारण कर मोक्षका कारण होता है ॥ २७ ॥

[पुष्पाञ्जलि क्षेपण करता हूँ]

मेरी द्वादशाङ्ग श्रुतमें सदा बार-बार भक्ति हो, क्योंकि इसके निमित्तसे होनेवाला सम्यग्ज्ञान ही संसारका निवारण कर मोक्षका दाता होता है ॥ २८ ॥

[पुष्पाञ्जलि क्षेपण करता हूँ]

मेरी गुरुमें सदा बार-बार भक्ति हो, क्योंकि इनके निमित्तसे प्रकट होनेवाला चारित्र ही संसारका विनाशकर मोक्षका कारण होता है ॥ २९ ॥

[पुष्पाञ्जलि क्षेपण करता हूँ]

•

देव-जयमाला

हे ऋषभ ! युगके आदिमें आपने मनुष्योंको षट् कर्मोंका उपदेश दिया, भूमि आदि वितरणकर सम्पत्तिका विभाजन किया तथा राजसिंहासनसे प्रजाका पालन किया। इस तरह क्षात्र धर्मको सफल कर बादमें आपने तपश्चरण किया, केवलज्ञान पाया और क्रमसे अरहंत तथा सिद्ध परमात्मा बन गये ॥ १ ॥

बड़े-बड़े ऋषियोंसे पूज्य हे ऋषभ जिन ! आपकी जय हो। राग-द्वेषको जीतनेवाले हे अजितनाथ ! आपकी जय हो। जन्म-मरणको नष्ट कर देनेवाले हे संभवनाथ ! आप की जय हो। भव्यरूपी कमलों को विकसित करनेवाले हे अभिनन्दन जिन ! आपकी जय हो ॥२॥

जिने भक्तिर्जिने भक्तिर्जिने भक्तिः सदाऽस्तु मे ।
सम्यक्त्वमेव संसार-वारणं मोक्ष-कारणम् ॥२१॥

[पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि]

श्रुते भक्तिः श्रुते भक्तिः श्रुते भक्तिः सदाऽस्तु मे ।
सज्ज्ञानमेव संसार-वारणं मोक्ष-कारणम् ॥२२॥

[पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि]

गुरौ भक्तिर्गुरौ भक्तिर्गुरौ भक्तिः सदाऽस्तु मे ।
चारित्रमेव संसार-वारणं मोक्ष-कारणम् ॥२३॥

[पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि]

●

देव-जयमाला

वत्ताणुट्ठाणें जणु धणदाणें पइं पोसिउ तुहुं खत्तधरु ।
तवचरणविहाणे केवलणाणें तुहुं परमप्पउ परमपरु ॥१॥

जय रिसह रिसीसर-णविय-पाय ।
जय अजिय जियंगय-रोस-राय ॥
जय संभव संभव-कय-विओय ।
जय अहिणंदण णंदिय-पओय ॥२॥

सुमति और सम्यक्त्वका प्रकाश करनेवाले हे सुमति जिन ! आपकी जय हो । लक्ष्मीके निवासस्थल हे पद्मप्रभ जिन ! आपकी जय हो । सुन्दर शरीरके धारी हे सुपार्श्व जिन ! आपकी जय हो । चन्द्रमाके समान प्रभावान् हे चन्द्रप्रभ जिन ! आपकी जय हो ॥३॥

अन्तरङ्गका दमन करनेवाले हे पुष्पदन्त जिन ! आपकी जय हो । जिनके शीतल वचन हैं ऐसे हे शीतल जिन ! आपकी जय हो । कल्याणरूपी किरण समूहके लिए सूर्यके समान हे श्रेयांस जिन ! आपकी जय हो । पूज्य पुरुषोंमें भी पूज्य हे वासुपूज्य जिन ! आपकी जय हो ॥ ४ ॥

निर्मल गुणश्रेणिस्थानके धारक हे विमल जिन ! आपकी जय हो । अनन्त ज्ञानके धारी हे अनन्त जिन ! आपकी जय हो । धर्म तीर्थके प्रवर्तक क्षमाशील हे धर्म जिन ! आपकी जय हो । शान्तिरूपी छत्रके धारण करनेवाले हे शान्ति जिन ! आपकी जय हो ॥ ५ ॥

कुन्थु आदि जन्तुओंपर दया करनेवाले हे कुन्थु जिन ! आपकी जय हो । मुख्य रूपसे लक्ष्मीके निकेतन और श्रुतके प्रणेता हे अर जिन ! आपकी जय हो । मालतीके पुष्पोंकी मालाके समान सुगन्धिवाले हे मल्लि जिन ! आपकी जय हो । सुव्रतोंके कारण हे मुनिसुव्रत जिन ! आपकी जय हो ॥ ६ ॥

अमरसमूहके स्वामी इन्द्रोंके द्वारा नमस्कार किये गये हे नमि जिन ! आपकी जय हो । धर्मरूपी रथके चक्रकी धुराके समान हे नेमि जिन ! आपकी जय हो । भवरूपी पाशको छेदनेके लिए कृपाणके समान हे पार्श्व जिन ! आपकी जय हो । जिनका यश सदा वर्द्धमान है ऐसे हे वर्द्धमान जिन ! आपकी जय हो ॥७॥

जय सुमइ सुमइ-सम्मय-पयास ।
जय पउमप्पह पउमा-णिवास ॥
जय जयहि सुपास सुपास-गत्त ।
जय चंदप्पह चंदाहवत्त ॥३॥
जय पुप्फयंत दंतंतरंग ।
जय सीयल सीयल-वयण-भंग ।
जय सेय सेय-किरणोह-सुज्ज ।
जय वासुपुज्ज पुज्जाणुपुज्ज ॥४॥
जय विमल विमल-गुणसेढि-ठाण ।
जय जयहि अणंताणंत-णाण ॥
जय धम्म धम्म-तित्थयर संत ।
जय संति संति-विहियायवत्त ॥५॥
जय कुंथु कुंथु-पहुअंगि सदय ।
जय अर-अर-मा-हर विहिय-समय ॥
जय मल्लि मल्लिआ-दाम-गंध ।
जय मुणिसुव्वय सुव्वय-णिबंध ॥६॥
जय णमि णमियामर-णियर-सामि ।
जय णेमि धम्म-रह-चक्क-णेमि ॥
जय पास पास-छिंदण-किवाण ।
जय वड्ढमाण जस-वड्ढमाण ॥७॥

इस तरह जिनके प्रसिद्ध नाम हैं, जो पापके विनाशक हैं, सर्वोत्कृष्ट हैं, देव जिन्हें नमस्कार करते हैं, जो अनादि-निधन हैं और जिन्होंने मिथ्यामतोंको शान्त कर दिया है उन अरहंतोंको मैं प्रणाम करता हूँ ॥८॥

[ॐ ह्रीं वृषभ जिनसे लेकर महावीर पर्यन्त चौबीस तीर्थङ्करोंको मैं अर्घ समर्पण करता हूँ ।]

शास्त्र-जयमाला

जो संपत्ति और सुखका कारण है, कर्मोंको विदारण करनेवाली है, संसार समुद्रसे पार करनेके लिए नौकाके समान है तथा स्वर्ग और मोक्षके सङ्गमका कारण है उस जिनवाणीको मैं अपनी शक्तिके अनुसार नमस्कार करता हूँ ॥१॥

जिसके शब्द जिनेन्द्रके मुखसे निकले हैं, जिसे गणधरोंने विविध ग्रन्थोंमें निबद्ध किया है, जो तीन लोककी मण्डनरूप है और जो धर्मकी खान है उस जिनवाणीको मैं सदा प्रणाम करता हूँ ॥२॥

जिसमें बहु, बहुविध आदि पदार्थोंके आश्रयसे अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणाके भेदसे मतिज्ञानके ३३६ भेदोंका वर्णन किया है उस जिनवाणीको मैं सदा नमस्कार करता हूँ ॥३॥

घत्ता

इह जाणिय-णामहिं दुरिय-विरामहिं
परहिं वि णमिय-सुरावलिहिं ।
अणिहणहिं अणाइहिं समिय-कुवाइहिं
पणविवि अरहंतावलिहिं ।।

[ॐ ह्रीं वृषभादिमहावीरान्तचतुर्विंशतिजिनेभ्यो अर्घं निर्वपामीति स्वाहा]

शास्त्र-जयमाला

संपइ-सुह-कारण कम्म-वियारण
भव-समुद्द-तारणतरणं ।
जिणवाणि णमस्समि सत्ति पयासमि
सग्ग-मोक्ख-संगम-करणं ।।१।।
जिणिंद-मुहाओ विणिग्गय-तार ।
गणिंद-विगुंफिय गंथ-पयार ।।
तिलोयहि मंडण धम्मह खाणि ।
सया पणमामि जिणिंदह वाणि ।।२।।
अवग्गह-ईह-अवायजुएहिं ।
सुधारणभेयहिं तिण्णिसएहिं ।।
मई छत्तीस बहु-प्पमुहाणि ।
सया पणमामि जिणिंदह वाणि ।।३।।

श्रुतज्ञान दो प्रकारका है—अङ्गबाह्य और अङ्गप्रविष्ट। अङ्ग-बाह्य अनेक प्रकारका है। अङ्गप्रविष्ट १२ प्रकारका है। इस प्रकार जो तीन जगत्में सर्वश्रेष्ठ है, इन्द्र और नरेन्द्र जिसकी पूजा करते हैं उस जिनवाणीको मैं सदा प्रणाम करता हूँ ॥४॥

जिसमें तीर्थंकर, गणधर और चक्रवर्तियोंकी विभूति तथा उनके पूर्वकृत पुण्य और लब्धियोंका वर्णन है वह प्रथमानुयोग है। उस जिनवाणीको मैं सदा नमस्कार करता हूँ ॥५॥

जिसमें युक्तिपूर्वक लोक और अलोकका, तीनों कालोंके स्वरूपका (युगोंके परिवर्तनका) तथा चतुर्गतियोंका वर्णन है वह दूसरा करणानुयोग है। उस जिनवाणीको मैं सदा प्रणाम करता हूँ ॥६॥

जिसमें मुनियोंके विविध प्रकारके चारित्रका वर्णन है तथा जो युक्तिपूर्वक श्रावक धर्मका ज्ञान कराता है वह तीसरा चरणानुयोग है। उस जिनवाणीको मैं सदा नमस्कार करता हूँ ॥७॥

जो जीव, अजीव, पुण्य, पाप, बन्ध और मोक्ष आदि तत्त्वोंके प्रकाशके लिए नेत्रके समान है वह चौथा द्रव्यानुयोग है। उस जिनवाणीको मैं सदा नमस्कार करता हूँ ॥८॥

सुदं पुण दोण्णि अणेय-पयार ।
सुबारह-भेय जगत्तय-सार ॥
सुरिंद-णरिंद-समुच्चिय जाणि ।
सया पणमामि जिणिंदह वाणि ॥४॥
जिणिंद-गणिंद-णरिंदह रिद्धि ।
पयासइ पुण्ण पुरा किउ लद्धि ॥
णिउग्गु पहिल्लउ एहु वियाणि ।
सया पणमाणि जिणिंदह वाणि ॥५॥
जु लोय-अलोयह जुत्ति जणेइ ।
जु तिण्णि वि काल सरूव भणेइ ॥
चउग्गइ-लक्खण दुज्जउ जाणि ।
सया पणमामि जिणिंदह वाणि ॥६॥
जिणिंद-चरित्त विचित्त मुणेइ ।
सुसावहि धम्मह जुत्ति जणेइ ॥
णिउग्गु वि तिज्जउ इत्थु वियाणि ।
सया पणमामि जिणिंदह वाणि ॥७॥
सुजीव-अजीवह तच्चह चक्खु ।
सुपुण्णु वि पाव वि बंध वि मुक्खु ॥
चउत्थु णिउग्गु वि भासिय जाणि ।
सया पणमामि जिणिंदह वाणि ॥८॥

अवान्तर अनेक भेदोंको लिये हुए अवधिज्ञान तीन प्रकारका है—देशावधि, परमावधि और सर्वावधि। चौथा मनःपर्यय-ज्ञान ऋजुमति और विपुलमतिके भेदसे दो प्रकारका है। पांचवां केवलज्ञान क्षायिक ज्ञान है। इस प्रकार जिसमें वर्णन है उस जिनवाणीको मैं सदा नमस्कार करता हूँ ॥९॥

भगवान् जिनेन्द्रका ज्ञान तीन लोकोंको प्रकाश करनेके लिए सूर्यके समान है, गाढ़ अज्ञानान्धकारका विनाशक है, सुखका निधान है, ज्ञानकी महिमाको जानकर भक्तिपूर्वक सब लोग उसकी पूजा करो। मैं सदा जिनवाणीको नमस्कार करता हूँ ॥१०॥

जिस द्वादशाङ्ग वाणीमें एक सौ बारह करोड़ तिरासी लाख अट्ठावन हजार पाँच पद हैं, मैं उस जिनवाणीको नमस्कार करता हूँ ॥११॥

जिसके एक-एक पदमें इक्यावन करोड़ आठ लाख चौरासी हजार छह: सौ साढ़े इक्कीस ग्रन्थपद (३२ अक्षरप्रमाण अनुष्टुप् श्लोक) हैं, मैं उस जिनवाणीको सदा नमस्कार करता हूँ ॥१२॥

इस प्रकार जो निर्मल बुद्धिका धारक भव्य प्राणी जिनवाणी-को अपने चित्तमें धारण करता है वह इन्द्र और नरेन्द्रोंकी संपत्ति प्राप्तकर और क्रमसे केवलज्ञान प्राप्तकर संसारसे पार उतर जाता है ॥१३॥

[ओं ह्रीं श्री जिनमुखोद्भूत और स्याद्वाद-नयगर्भित द्वादशाङ्ग श्रुतज्ञानके लिए अर्घ समर्पण करता हूँ।]

तिभेयहिं ओहि वि णाणु विचित्तु ।
चउत्थ रिजू विउलं मइ उत्तु ॥
सुखाइय केवलणाण वियाणि ।
सया पणमामि जिणिंदह वाणि ॥९॥
जिणिंदह णाणु जग-त्तय-भाणु ।
महातम णासिय सुक्ख-णिहाणु ॥
पयचउ भत्तिभरेण वियाणि ।
सया पणमामि जिणिंदह वाणि ॥१०॥
पयाणि सुबारह कोडि सयेण ।
सुलक्ख तिरासिय जुत्ति-भरेण ॥
सहस अट्ठावण पंच वियाणि ।
सया पणमामि जिणिंदह वाणि ॥११॥
इक्कावण कोडिउ लक्ख अठेव ।
सहस चुलसीदिय सा छक्केव ॥
सढाइगवीसह गन्थ-पयाणि ।
सया पणमामि जिणिंदह वाणि ॥१२॥

घत्ता

इह जिणवर-वाणि विशुद्धमई ।
जो भवियण णिय-मण धरई ॥
सो सुर-णरिंद संपइ लहई ।
केवलणाण वि उत्तरई ॥१३॥

[ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भूतस्याद्वादनयगर्भितद्वादशांगश्रुत-ज्ञानायार्घं निर्वपामीति स्वाहा ।]

गुरु-जयमाला

तीर्थङ्करपदकी कारण सोलहकारण भावनाएँ भव्योंको संसार समुद्रसे तारनेवाली हैं उनका अर्जन करो। तथा दया-धर्मके अंगस्वरूप तपःकर्म, निष्परिग्रहता और पाँच महाव्रतोंको पालो ॥१॥

जो मुनि शीलवान् है, इंन्द्रिय-संयमी हैं, योगसम्पन्न हैं, ११ अंग तथा १४ पूर्वोंका पाठ और स्तवन करते हैं मैं उन महान् ऋषियोंको नमस्कार करता हूँ ॥२॥

जिन्हें पदानुसारी, कोष्टबुद्धि और आकाशगामिनी ऋद्धि प्राप्त हो गई हैं, जो एकाशनादि तप करते हैं, वृक्षके नीचे या शिला पर्वतादिपर जो वर्षा अथवा आतापन योग धारण करते हैं ॥३॥

जो मौनसे चन्द्रायण व्रतको धारण करते हैं, वनमें जहाँ-तहाँ निवास करते हैं, जो पाँच महाव्रतोंको धारण करनेमें धीर हैं तथा पाँच समिति और तीन गुप्तियोंको वीरताके साथ पालन करते हैं ॥४॥

जो देहसे उदासीन रहते हैं, राग, रोष, भय और मोहसे रहित हैं, कुगतिका निवारण करते हैं, लोभसे रहित हैं और काम-क्रोधादि पापोंका विनाश करते हैं ॥५॥

पसीना, धूल और तृणसे जिनका शरीर लिप्त रहता है, जो आरम्भ और परिग्रहसे विरक्त हैं, सदा नगर, और ग्राम आदिसे बाहर रहते हैं, वेला, तेला, चौला आदि तप करते हैं ॥६॥

जो एक या दो ग्रास आहार करते हैं, रुचिपूर्वक नीरस भोजनको भी करते हैं और जो श्मशानमें स्थित होकर उत्तम शुक्लध्यानसे कर्मोंको नष्ट करते हैं उन मुनिवरोंकी मैं वन्दना करता हूँ ॥७॥

गुरु-जयमाला

भवियह भव-तारण सोलह-कारण अज्जवि तित्थयरत्तणहं ।
तवकम्म असंगइ दयधम्मंगइ पालवि पंच महव्वयहं ॥१॥

वंदामि महारिसि सीलवंत, पंचिंदिय-संजम जोगजुत्त ।
जे ग्यारह अंगह अणुसरंति, जे चउदह पुव्वह मुणि थुणंति॥२॥

पादाणुसारि-वरकुट्ठबुद्धि, उप्पण्णु जाह आयासरिद्धि ।
जे पाणाहारी तोरणीय, जे रुक्ख-मूल आतावणीय ॥३॥

जे मोणिधाय चन्दाहणीय, जे जत्थतत्थ वणि णिवासणीय ।
जे पंच-महव्वय धरणधीर,जे समिदि-गुत्ति पालणहि वीर॥४॥

जे वड्ढहि देह विरत्तचित्त, जे राय-रोस-भय-मोह-चित्त ।
जे कुगइहि संवरु विगयलोह, जे दुरियविणासणकामकोह ॥५॥

जे जल्लमल्लतणगत्तलित्त, आरंभ-परिग्गह जे विरत्त ।
जे तिण्णकाल बाहर गमंति, छट्ठट्ठम-दसमउ तउ चरंति॥ ६॥

जे इक्कगास दुइगास लिंति, जे णीरस-भोयण रइ करंति ।
ते मुणिवर वंदउं ठियमसाण, जे कम्म डहइ वर सुक्कझाण॥७॥

जो बारह प्रकारका संयम धारण करते हैं, चारों प्रकारकी विकथाओंका त्याग कर देते हैं और जो बाईस परिषहोंको सहन करते हैं वे मुनि संसाररूपी महासमुद्रको पार करते हैं ॥८॥

जिन धर्मात्माओंकी पृथ्वीपर सब स्तुति करते हैं, जो कायोत्सर्गमें ही रात्रि व्यतीत कर देते हैं, मुक्तिरूपी स्त्रीके इच्छुक हैं और पन्द्रह दिन या एक माहमें आहार लेते हैं ॥९॥

जो सदा गोदोहन आसन, वीरासन, धनुषासन, शय्यासन तथा वज्रासनसे ध्यान लगाते हैं, जो तपके प्रभावसे आकाशमें गमन करते हैं और जो पर्वतोंकी गुफा-कन्दराओंमें और विवरोंमें निवास करते हैं ॥१०॥

जिनका चित्त शत्रु और मित्रमें समभाव रहता है उन चारित्रमें दृढ़ मुनियोंको मैं नमस्कार करता हूँ। जो चौबीस प्रकारके परिग्रहसे विरक्त हैं, जगमें पवित्र उन मुनियोंकी मैं वन्दना करता हूँ ॥११॥

जो एकाग्र चित्तसे ध्यानमें स्थिर रहते हैं, मोक्षके पात्र हैं उन महा ऋषियोंकी मैं वन्दना करता हूँ। जिनके रत्नत्रयसे युक्त शुद्ध भाव हैं उन स्थिरस्वभावी मुनिवरोंकी मैं वन्दना करता हूँ ॥१२॥

जो तपश्चरणमें शूरवीर हैं, संयम धारण करनेमें धीर हैं, मुक्ति-वधूके अनुरागी हैं, रत्नत्रयसे युक्त हैं, कर्मके विनाशक हैं उन श्रेष्ठ महर्षियोंका मैं स्मरण करता हूँ ॥१३॥

[ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रादि गुणोंसे युक्त आचार्य, उपाध्याय और सर्व साधुओंके लिए मैं महा अर्घ समर्पण करता हूँ ।]

बारहविह संजम जे धरंति, जे चारिउ विकहा परिहरंति ।
बावीस परीषह जे सहंति, संसार-महण्णउ ते तरंति ॥८

जे धम्मबुद्धि महियलि थुणंति, जे काउस्सग्गे णिसि गमंति ।
जे सिद्धि-विलासणि अहिलसंति, जे पक्ख-मास आहार लिंति ॥९

गोदूहण जे वीरासणीय, जे धणुह-सेज्ज-वज्रासणीय ।
जे तव-बलेण आयास जंति, जे गिरि-गुह-कंदर-विवर थंति ॥१०

जे सत्तु-मित्त समभाव चित्त, ते मुणिवर वंदउ दिढ-चरित्त ।
चउवीसह गंथह जे विरत्त, ते मुणिवर वंदउ जग-पवित्त ॥११

जे सुज्झाणिज्झा एकचित्त, वंदामि महारिसि मोक्खपत्त ।
रयण-त्तय-रंजिय सुद्ध-भाव, ते मुणिवर वंदउ ठिदि-सहाव ॥१२

घत्ता

जे तप-सूरा संजम-धीरा सिद्ध-वधू अणुराईया ।
रयण-त्तय-रंजिय कम्मह-गंजिय ते ऋसिवर मय झाईया ॥१३

[ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रादिगुणविराजमानाचार्यो-
पाध्यायसर्वसाधुभ्यो महार्घं निर्वपामीति स्वाहा ।]

विद्यमान-बीस-तीर्थंकर-पूजा

जम्बूद्वीप, धातकीखण्डद्वीप और पुष्कराद्धद्वीपमें पाँच विदेह हैं। प्रत्येक विदेहमें चार-चार तीर्थंकर हैं। उन प्रत्येक तीर्थंकरोंकी मैं नित्य पूजा करता हूँ ॥१॥

[ॐ ह्रीं विद्यमान बीस तीर्थङ्कर ! यहाँ आइए, आइए संवौषट् ।

ॐ ह्रीं विद्यमान बीस तीर्थङ्कर ! यहाँ ठहरिए, ठहरिए ठः ठः ।

ॐ ह्रीं विद्यमान बीस तीर्थङ्कर ! यहाँ मेरे सम्मुख होइए,होइए, वषट् ।]

मैं उत्तम केशर और कपूरसे सुगन्धित गंगाके जलकी निर्मल धारासे सम्पूर्ण मंगल और इच्छित पदार्थोंको देनेवाले महान् बीस तीर्थंकरोंकी पूजा करता हूँ ॥२॥

[ॐ ह्रीं सीमन्धर, जुगमन्धर, बाहु, सुबाहु, सञ्जातक, स्वयम्प्रभ, ऋषभानन, अनन्तवीर्य, सूरप्रभ, विशालकीर्ति, वज्रधर, चन्द्रानन, भद्रबाहु, भुजङ्गम, ईश्वर, नेमिप्रभ, वीरसेन, महाभद्र, देवयश और अजितवीर्य इन बीस विद्यमान तीर्थङ्करोंको जन्म-मृत्यके विनाशके लिए जल समर्पित करता हूँ, स्वाहा ।]

मैं सम्पूर्ण जड़ता, रोग और आतपको दूर करनेवाले मलयाचलके चन्दन और केशरके जलसे सभी मङ्गल और इच्छित पदार्थोंके दाता महान् बीस तीर्थंकरोंकी पूजा करता हूँ ॥३॥

[ॐ ह्रीं ··· विद्यमान बीस तीर्थङ्करोंको संसार तापके शमनके लिए मैं चन्दन अर्पित करता हूँ ।]

उत्तम मोतियोंके पुञ्जके समान अत्यन्त उज्ज्वल और सरल अतिनिर्मल चावलोंके द्वारा सभी मंगल और इच्छित पदार्थोंके दाता महान् बीस तीर्थंकरोंको मैं पूजा करता हूँ ॥४॥

[ॐ ह्रीं ··· विद्यमान बीस तीर्थङ्करोंको अक्षय-पदकी प्राप्तिके लिए मैं अक्षत अर्पित करता हूँ ।]

विद्यमान-विंशति-तीर्थङ्कर-पूजा

श्रीमज्जम्बू-धातकि-पुष्कराद्ध-द्वीपेषूच्चैर्ये विदेहाः शराः स्युः ।
वेदा वेदा विद्यमाना जिनेन्द्राः प्रत्येकं तांस्तेषु नित्यं यजामि ॥

[ॐ ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरा अत्र अवतरत अवतरत संवौषट् ।
ॐ ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरा अत्र तिष्ठत तिष्ठत ठः ठः ।
ॐ ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरा अत्र मम सन्निहिता भवत भवत वषट् ।]

अष्टकम्

सुरनदी-जल-निर्मल-धारया प्रवर-कुङ्कुम-चन्द्रसुसारया ।
सकल-मङ्गल-वाञ्छित-दायकान् परम-विंशति-तीर्थपतीन् यजे ॥

[ओं ह्रीं सीमन्धर-जुगमन्धर-बाहु-सुबाहु-सञ्जातक-स्वयम्प्रभ-ऋषभानन-अनंतवीर्य-सूरप्रभ-विशालकीर्ति-वज्रधर-चन्द्रानन-भद्रबाहु-भुजङ्गम-ईश्वर-नेमिप्रभ-वीरसेन-महाभद्र-देवयशोऽजितवीर्येति विंशतिविद्यमानतीर्थङ्करेभ्यो जन्ममृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ॥१॥]

मलय-चन्दन-केशर-वारिणा निखिल-जाड्य-रुजातप-हारिणा ।
सकल-मङ्गल-वाञ्छित-दायकान् परम-विंशति-तीर्थपतीन् यजे ॥

[ॐ ह्रीं ··· विद्यमानविंशतितीर्थङ्करेभ्यः संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा ।]

सरल-तन्दुलकैरतिनिर्मलैः प्रवर-मौक्तिक-पुञ्ज-बहूज्ज्वलैः ।
सकल-मङ्गल-वाञ्छित-दायकान् परम-विंशति-तीर्थपतीन् यजे ॥

[ॐ ह्रीं ··· ··· विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्योऽक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ।]

जिनपर सुगन्धसे भ्रमर गुञ्जार रहे हैं ऐसे मौलश्री, केतकी और चम्पाके फूलोंसे सभी मंगल और अभीष्टके दाता महान् बीस तीर्थंकरोंकी मैं पूजा करता हूँ ॥५॥

[ओं ह्रीं······विद्यमान बीस तीर्थङ्करोंको काम-बाणके नाशके लिए मैं पुष्प अर्पित करता हूँ ।]

श्रेष्ठ लड्डू, खाजे, पूए, पूरी, दाल और भात आदिसे सभी मङ्गल और वाञ्छित पदार्थोंके दाता महान् बीस तीर्थंकरोंकी मैं पूजा करता हूँ ॥६॥

[ओं ह्रीं······विद्यमान बीस तीर्थङ्करोंको क्षुधा रोगकी शान्तिके लिए मैं नैवेद्य अर्पित करता हूँ ।]

स्वच्छ सोनेके पात्रमें रक्खे हुए अत्यन्त प्रकाशमान सुन्दर दीपकोंके द्वारा सभी मङ्गल और वाञ्छित पदार्थोंके दाता महान् बीस तीर्थंकरोंकी मैं पूजा करता हूँ ॥७॥

[ओं ह्रीं······विद्यमान बीस तीर्थङ्करोंको मैं मोहरूपी अन्धकारको दूर करनेके लिए दीप अर्पण करता हूँ ।]

जिनके धुएँसे सब जगह निर्मल सुगन्धि फैल रही है ऐसी अगरु चन्दन आदिकी खास धूपोंके द्वारा सभी मङ्गल और वाञ्छित पदार्थोंके दाता महान् बीस तीर्थंकरोंकी मैं पूजा करता हूँ ॥८॥

[ओं ह्रीं······आठ प्रकारके कर्मोंका नाश करनेके लिए मैं विद्यमान बीस तीर्थङ्करोंको धूप अर्पण करता हूँ ।]

मैं उत्तम सुपारी, लोंग, आम, बहुतसे दाडिम, केला और नारियलोंके द्वारा मङ्गल और वाञ्छित पदार्थोंके दाता महान् बीस तीर्थंकरोंकी पूजा करता हूँ ॥९॥

[ओं ह्रीं······मोक्ष फलकी प्राप्तिके लिए मैं विद्यमान बीस तीर्थङ्करोंको फल अर्पित करता हूँ ।]

बकुल-केतकि-चम्पक-पुष्पकैः परिमलागत-षट्पद-वृन्दकैः ।
सकल-मङ्गल-वाञ्छित-दायकान् परम-विंशति-तीर्थपतीन् यजे ॥

[ॐ ह्रीं······विद्यमानविंशतितीर्थङ्करेभ्यः कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ।]

प्रवर-मोदक-खज्जक-पूपकैः वरसुमण्डक-सूप-शुभौदनैः ।
सकल-मङ्गल-वाञ्छित-दायकान् परम-विंशति-तीर्थपतीन् यजे ॥

[ॐ ह्रीं······विद्यमानविंशतितीर्थङ्करेभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ।]

अतिसुदीप्तिमयैर्वरदीपकैर्विमल-काञ्चन-भाजन-संस्थितैः ।
सकल-मङ्गल-वाञ्छित-दायकान् परम-विंशति-तीर्थपतीन् यजे ॥

[ॐ ह्रीं······विद्यमानविंशतितीर्थङ्करेभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा ।]

अगुरु-चन्दन-मुख्य-सुधूपकैः प्रचुर-धूप-ततामलगन्धकैः ।
सकल-मङ्गल-वाञ्छित-दायकान् परम-विंशति-तीर्थपतीन् यजे ॥

[ॐ ह्रीं······विद्यमानविंशतितीर्थङ्करेभ्यः कर्माष्टदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ।]

प्रवर-पूग-लवङ्ग-सदाम्रकैः प्रचुर-दाडिम-मोच-सुचोचकैः ।
सकल-मङ्गल-वाञ्छित-दायकान् परम-विंशति-तीर्थपतीन् यजे ॥

[ॐ ह्रीं······विद्यमानविंशतितीर्थङ्करेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा ।]

जल, चन्दन, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप, और फल आदिके द्वारा सकल मङ्गल और वाञ्छित पदार्थोंके दाता महान् बीस तीर्थंकरोंको मैं पूजा करता हूँ ॥१०॥

[ओं ह्रीं······अत्युत्तम पदकी प्राप्तिके लिए मैं विद्यमान बीस तीर्थङ्करोंको अर्घ अर्पण करता हूँ]

जयमाला

पाँचसौ धनुष ऊँचा जिनका शरीर है, जो विदेह-क्षेत्रमें भव्यरूपी कमलोंको प्रतिबोधित करते हुए तथा अज्ञानान्धकारको दूर करते हुए विहार कर रहे हैं उन बीस विहरमाण तीर्थंकरोंको मैं प्रणाम करता हूँ ॥१॥

मैं सीमन्धर जिनेन्द्रको नमस्कार करता हूँ, दुःखका दलन करनेवाले युग्मन्धर स्वामीको नमस्कार करता हूँ, बाहु और सुबाहु स्वामीको नमस्कार करता हूँ। ये सब जम्बूद्वीपके विदेह-क्षेत्रसे मोक्ष जानेवाले हैं ॥२॥

संजात और स्वयंप्रभ जिनेन्द्र जयवंत रहें, धर्मका प्रकाश करनेवाले ऋषभानन, अनन्तवीर्य, सूरप्रभ, विशालकीर्ति, वज्रधर तथा आठवें चन्द्राननको मैं प्रणाम करता हूँ। ये धातकीखंडके विदेह-क्षेत्रसे मोक्षगामी हैं। पुष्करार्द्धद्वीपके विदेहसे मोक्ष जानेवाले श्रीभद्रबाहु, भुजङ्गम और जगत्‌के नाथ ईश्वर जिनेन्द्र, नेमिप्रभ, वीरसेन, तथा संसार-समुद्रसे तारनेवाले श्री महाभद्र जिनेन्द्रको मैं नमस्कार करता हूँ। मैं देवयश तथा पापसे मुक्त श्री अजितवीर्य जिनेन्द्रको प्रणाम करता हूँ ॥३-५॥

इस प्रकार सुर-असुरोंसे नमस्कृत इन विहरमाण बीस तीर्थंकरोंकी मैंने स्तुति की है। इस जयमालाको जो पढ़ते हैं, पढ़ाते हैं अथवा मनमें स्मरण करते हैं वे मनुष्य परमपद मोक्षको प्राप्त करते हैं ॥६॥

[ओं ह्रीं······विद्यमान बीस तीर्थङ्करोंको मैं महार्घ प्रदान करता हूँ।]

जल-सुगन्ध-प्रसून-सुतन्दुलैश्चरु-प्रदीपक-धूप-फलादिभिः ।
सकल-मङ्गल-वाञ्छित-दायकान् परम-विंशति-तीर्थपतीन् यजे ॥
[ॐ ह्रीं ···विद्यमानविंशतितीर्थङ्करेभ्योऽनर्घपदप्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।]

•

जयमाला

श्रीबीस-जिणेसर विहरमाण, पणमामि पंचसय-धणुपमाण।
जे भविय-कमल पडिबोहयंत, विहरंति विदेहे तम हरंत ॥१॥
सीमंधर पणवों जिणवरिंद, जुगमंधर वंदों दुह-दलिंद ।
हों वंदों बाहु-सुबाहुसामि, जंबू-विदेह जे सिद्धिगामि ॥२॥
संजाइ सयंपहु जिण जयंति, ऋषभानन धम्म पयासयंति ।
तह णंतवीर सूरप्प होइ, वंदों विसाल वज्रधरोइ ॥३॥
चंदानन अट्ठम-दीव वीर, हौं पणऊं पत्त जे भवह तीर ।
तहं पुइकरार्ध जिण भद्दबाहु, भुयंगम ईसर जगइ णाहु ॥४॥
णेमिप्पह प्रणवों वीरसेण, महाभद्द भवंबुहि तरिउ जेण ।
मैं पणवों देवजस सुभाव, जिण अजियवीर जिय मुक्कपाव ॥५

घत्ता

ए वीर जिणेसर णमिय सुरेसर विहरमाण मइ संथुणियं ।
जे भणहिं भणावहिं अरु मन भावहिं ते णर पावहिं परमपयं ॥६
[ॐ ह्रीं···विद्यमानविंशतितीर्थङ्करेभ्यो महार्घं निर्वपामीति स्वाहा ।]

कृत्रिमाकृत्रिम जिनचैत्य-पूजा

त्रिलोकसम्बन्धी कृत्रिमाकृत्रिम सुन्दर चैत्यालयोंकी तथा भवनवासी,व्यन्तर, ज्योतिष्क और कल्पवासी देवोंके चैत्यालयोंकी मैं सदा वन्दना करता हूँ और दुष्ट कर्मोंकी शान्तिके लिए पवित्र जल, गन्ध, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप तथा फलके द्वारा उनकी पूजा करता हूँ ॥१॥

[ओं ह्रीं कृत्रिम और अकृत्रिम चैत्यालयोंके जिनबिम्बोंके लिए मैं अर्घ अर्पण करता हूँ ।]

क्षेत्रोंमें, उनके बीचके पर्वतोंपर, नन्दीश्वरमें तथा सुमेरुपर बने जितने जिन-चैत्यालय हैं उन सबको मैं बन्दना करता हूँ ॥२॥

पृथ्वीके नीचे, व्यन्तर, भवनवासी और कल्पवासी देवोंके यहाँ तथा इस मध्य लोकमें मनुष्योंके द्वारा बनाये गये देव तथा राजाओंसे पूजित, जितने कृत्रिम-अकृत्रिम चैत्यालय हैं उन सबका मैं भावपूर्वक स्मरण करता हूँ ॥३॥

जम्बूद्वीप, धातकीखंड और पुष्करार्द्ध इन तीन क्षेत्रोंमें श्वेत, लाल, नील, पीत और हरितवर्णवाले; सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्रके धारी और कर्मरूपी ईंधनको जलानेवाले जितने भूत, भावी और वर्तमान तीर्थंकर हैं उन सबको मेरा नमस्कार है ॥४॥

शोभासंयुक्त सुमेरु, कुलाचल, वैताढ्य पर्वत, शाल्मलीवृक्ष, जंबूवृक्ष, वक्षारगिरि,चैत्यवृक्ष,रतिकरगिरि,रुचकगिरि, कुण्डलगिरि, मानुषोत्तर पर्वत,इष्वाकारगिरि, अञ्जनगिरि, दधिमुखपर्वत, व्यंतर-लोक, स्वर्गलोक, ज्योतिर्लोक और भवनवासियोंके पाताललोक-में जितने चैत्यालय हैं उन सबको मैं नमस्कार करता हूँ ॥५॥

कृत्रिमाकृत्रिम-जिनचैत्य-पूजा

कृत्याकृत्रिम-चारु-चैत्यनिलयान् नित्यं त्रिलोकीगतान्
वन्दे भावन-व्यन्तरान् द्युतिवरान् स्वर्गामरावासगान् ॥
सद्गन्धाक्षत-पुष्प-दाम-चरुकैः सद्दीप-धूपैः फलै-
द्रव्यैर्नीरमुखैर्यजामि सततं दुष्कर्मणां शान्तये ॥१॥

[ॐ ह्रीं कृत्रिमाकृत्रिमचैत्यालयसम्बन्धिजिनबिम्बेभ्योऽर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।]

वर्षेषु वर्षान्तर-पर्वतेषु नन्दीश्वरे यानि च मन्दरेषु ।
यावन्ति चैत्यायतनानि लोके सर्वाणि वन्दे जिनपुङ्गवानाम् ॥२

अवनि-तल-गतानां कृत्रिमाकृत्रिमाणां
वन-भवन-गतानां दिव्य-वैमानिकानाम् ।
इह मनुज-कृतानां देवराजार्चितानां
जिनवर-निलयानां भावतोऽहं स्मरामि ॥३॥

जम्बू-धातकि-पुष्करार्ध-वसुधा-क्षेत्र-त्रये ये भवा-
श्चन्द्राम्भोज-शिखण्डिकण्ठ-कनक-प्रावृड्घनाभा जिनाः ।
सम्यग्ज्ञान-चरित्र-लक्षणधरा दग्धाष्ट-कर्मेन्धनाः
भूतानागत-वर्तमान-समये तेभ्यो जिनेभ्यो नमः ॥४॥

श्रीमन्मेरौ कुलाद्रौ रजतगिरिवरे शाल्मलौ जम्बुवृक्षे
वक्षारे चैत्यवृक्षे रतिकर-रुचके कुण्डले मानुषाङ्के ।
इष्वाकारेऽञ्जनाद्रौ दधिमुख-शिखरे व्यन्तरे स्वर्गलोके
ज्योतिर्लोकेऽभिवन्दे भवन-महितले यानि चैत्यालयानि ॥५॥

कुन्द पुष्प, चन्द्रमा और वर्फके समान श्वेत दो तीर्थङ्कर, इन्द्र नीलमणिके समान नीलवर्ण दो तीर्थङ्कर, बन्धूक पुष्पके समान लाल वर्णवाले दो तीर्थङ्कर, प्रियङ्गु पुष्पके समान हरित वर्णवाले दो तीर्थङ्कर, बाकीके स्वर्णके समान पीतवर्ण वाले सोलह तीर्थङ्कर जो जन्म-मृत्युसे रहित हैं, सम्यग्ज्ञानरूपी सूर्य हैं और देवोंसे वन्द-नीय हैं, हमें सिद्धि-प्रदान करें ॥६॥

[ओं ह्रीं तीन लोकवर्ती कृत्रिम और अकृत्रिम चैत्यालयोंको अर्घ अर्पित करता हूँ ।]

हे भगवन् ! चैत्यभक्ति और तत्सम्बन्धी कायोत्सर्ग करके मैं उसकी आलोचना करना चाहता हूँ । अधोलोक, मध्यलोक और ऊर्ध्वलोकमें जितनी कृत्रिम और अकृत्रिम जिन-प्रतिमाएँ हैं उन सबकी भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिष्क और कल्पवासी ये चारों निकायोंके देव तीनों लोकोंमें दिव्य गन्धसे, दिव्य पुष्पसे, दिव्य धूपसे, दिव्य चूर्णसे, दिव्य सुगन्धित द्रव्यसे, दिव्य अभि-षेकसे अर्चना करते हैं, पूजा करते हैं, वन्दना करते हैं, नमस्कार करते हैं । मैं भी यहीं से तत्रस्थ प्रतिमाओंकी सदा अर्चा करता हूँ, पूजा करता हूँ, वन्दना करता हूँ, और नमस्कार करता हूँ । मेरे दुःखका क्षय हो, कर्मोंका क्षय हो, बोधिका लाभ हो, सुगतिमें गमन हो, समाधिमरण हो और जिनगुण सम्पत्ति हो ।

[अब मैं प्रातः, मध्याह्न और सायंकालकी देववन्दनामें पूर्व आचार्य-परम्पराके अनुसार सम्पूर्ण कर्मोंके क्षयके लिए भावपूजा, वन्दना और स्तुतिके साथ पाँच महागुरु-भक्तिसम्बन्धी कायोत्सर्ग करता हूँ ।]

कायोत्सर्गके करते हुए मैं सब पाप कर्म और दुश्चरित्रके कारण शरीरसे ममता छोड़ता हूँ ।

अरिहन्तोंको नमस्कार हो, सिद्धोंको नमस्कार हो, आचार्योंको नमस्कार हो, उपाध्यायोंको नमस्कार हो और लोकमें सब साधुओंको नमस्कार हो ।

द्वौ कुन्देन्दु-तुषार-हार-धवलौ द्वाविन्द्रनील-प्रभौ
द्वौ बन्धूक-सम-प्रभौ जिनवृषौ द्वौ च प्रियङ्गुप्रभौ ।
शेषाः षोडश जन्म-मृत्यु-रहिताः सन्तप्त-हेम-प्रभा-
स्ते संज्ञान-दिवाकराः सुर-नुताः सिद्धिं प्रयच्छन्तु नः ॥६॥

[ॐ ह्रीं त्रिलोकसम्बन्धि-कृत्रिमाकृत्रिमचैत्यालयेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।]

इच्छामि भंते ! चेइयभत्ति-काउसग्गो कओ तस्सालोचेउं । अहलोय-तिरियलोय-उड्ढलोयम्मि किट्टिमाकिट्टिमाणि जाणि जिणचेइयाणि ताणि सव्वाणि तीसु वि लोएसु भवणवासिय-वाणविंतर-जोइसिय-कप्पवासिय त्ति चउव्विहा देवा सपरिवारा दिव्वेण गंधेण दिव्वेण पुप्फेण दिव्वेण धूवेण दिव्वेण चुण्णेण दिव्वेण वासेण दिव्वेण ह्लाणेण णिच्चकालं अच्चंति पुज्जंति वंदंति णमस्संति । अहमवि इह संतो तत्थ संताइ णिच्चकालं अच्चेमि पुज्जेमि वंदामि णमंसामि । दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसम्पत्ती होउ मज्झं ।

अथ पौर्वाह्णिक-माध्याह्निक-आपराह्णिकदेववन्दनायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजा-वन्दना-स्तवसमेतं श्रीपञ्चमहागुरुभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम् ।

-ताव कायं पावकम्मं दुच्चरियं वोस्सरामि ।
णमो अरिहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं ।
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं ।

सिद्धपूजा [द्रव्याष्टक]

ऊपर और नीचे रेफसे युक्त तथा बिन्दुसंयुक्त हकार लिखे अर्थात् 'ह्रीं' लिखे। उसे ब्रह्मस्वरसे वेष्टित करे। दिग्गत कमलके आठ[१] पत्रोंपर ८ वर्ग लिखे। और पत्रोंकी आठों सन्धियोंमें 'तत्त्व' अर्थात् 'णमो अरहंताणं' लिखे। पत्रोंके भीतर किनारोंपर ओंकार लिखे। फिर सम्पूर्ण यन्त्रको ह्रींकारकी तीन रेखाओंसे वेष्टित करे। यह सिद्ध यन्त्र है। इस देवका जो चिन्तवन करता है वह मुक्तिका भोक्ता कर्म-रूपी हाथीके नाशके लिए सिंहके समान होता है ॥१॥

[ओं ह्रीं हे सिद्धचक्राधिपति सिद्धपरमेष्ठिन् ! यहाँ आइए आइए संवौषट्।

ओं ह्रीं हे सिद्धचक्राधिपति सिद्धपरमेष्ठिन् ! यहाँ ठहरिए ठहरिए ठः ठः।

ओं ह्रीं हे सिद्धचक्राधिपति सिद्धपरमेष्ठिन् ! यहाँ मेरे समीपमें विराजिये विराजिये वषट्।]

कर्मसम्बन्धसे रहित सूक्ष्म, नित्य, निरामय, अमूर्त और शान्त सिद्ध परमात्माको मैं नमस्कार करता हूँ ॥२॥

[सिद्धयन्त्रकी स्थापना करे]

सिद्धालयमें जिनका क्रमसे निवास होता रहता है, जो परमात्माके द्वारा जानने योग्य हैं, हीनाधिक धर्मरहित हैं, संसार और शरीर जिनका छूट गया है उन सिद्धसमूहकी रेवा नदी, सुन्दर तालाब और यमुनाके जलसे मैं पूजा करता हूँ ॥३॥

---

(१) पत्र एकपर १४ स्वर। पत्र २ पर कवर्ग। पत्र ३ पर चवर्ग। पत्र ४ पर टवर्ग। पत्र ५ पर तवर्ग। पत्र ६ पर पवर्ग। पत्र ७ पर य र ल व। पत्र ८ पर श ष स ह।

सिद्धपूजा [द्रव्याष्टक]

ऊर्ध्वाधोरयुतं सबिन्दु सपरं ब्रह्मस्वरावेष्टितं
वर्गापूरित-दिग्गताम्बुज-दलं तत्सन्धि-तत्त्वान्वितम् ।
अन्तःपत्र-तटेष्वनाहतयुतं ह्रींकार-संवेष्टितं
देवं ध्यायति यः स मुक्ति-सुभगो वैरीभ-कण्ठीरवः ॥

[ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपते सिद्धपरमेष्ठिन् ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् ।

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपते सिद्धपरमेष्ठिन् ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः ।

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपते सिद्धपरमेष्ठिन् ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् ।]

निरस्त-कर्म-सम्बन्धं सूक्ष्मं नित्यं निरामयम् ।
वन्देऽहं परमात्मानममूर्तमनुपद्रवम् ॥ २ ॥

[सिद्धयन्त्रस्थापनम् ।]

सिद्धौ निवासमनुगं परमात्म-गम्यं
हान्यादि-भाव-रहितं भव-वीत-कायम् ।
रेवापगा-वर-सरो-यमुनोद्भवानां
नीरैर्यजे कलशगैर्वर-सिद्ध-चक्रम् ॥ ३ ॥

[ओं ह्रीं क्षायिक सम्यक्त्व, अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त वीर्य अगुरुलघुत्व, अवगाहनत्व, सूक्ष्मत्व और निराबाधत्व गुणसे सम्पन्न सिद्धचक्राधिपति सिद्धपरमेष्ठीको मैं जन्म और मृत्युके विनाशके लिए जल अर्पण करता हूँ।]

महान् सुखके देनेवाले, घनकर्मोंसे रहित, सम्यक्त्व और सुखसे परिपूर्ण तथा जन्मकी पीड़ासे रहित सिद्धसमूहकी मैं पृथ्वीको सुगन्धित करनेवाले सुगन्धित हरिचन्दनसे पूजा करता हूँ ॥४॥

[ओं ह्रीं ...... सिद्धचक्राधिपति सिद्धपरमेष्ठीको मैं संसारसम्बन्धी तापका विनाश करनेके लिए चन्दन अर्पण करता हूँ।]

जो सबको अवगाहन देने रूप गुणसे संयुक्त हैं, उत्तम समाधिमें स्थित हैं, सिद्ध हैं, स्वरूपमें निपुण हैं, कृतकृत्य हैं, और विशाल हैं उन सिद्धोंकी मैं सुगन्धित शालि-वनके धान्यसे निकले हुए श्रेष्ठ अक्षतोंके चन्द्रमाके समान स्वच्छ पुञ्जसे पूजा करता हूँ ॥५॥

[ओं ह्रीं ...... सिद्धचक्राधिपति सिद्धपरमेष्ठीको अक्षयपदकी प्राप्तिके लिए मैं अक्षत समर्पण करता हूँ।]

सदा अपने अन्तिम शरीरके बराबर रहनेवाले, 'सिद्ध' यह अनादि संज्ञा धारण करनेवाले, अन्य द्रव्यकी अपेक्षासे रहित, अमृतस्वरूप तथा जन्म-मरणसे रहित सिद्ध-समूहकी मैं मन्दार, कुन्द और कमल आदि वनस्पतिके पुष्पोंसे पूजा करता हूँ ॥६॥

[ओं ह्रीं ...... सिद्धचक्राधिपति सिद्धपरमेष्ठीको काम-बाणका नाश करनेके लिए मैं पुष्प अर्पित करता हूँ।]

[ॐ ह्रीं क्षायिकसम्यक्त्व-अनन्तज्ञान-अनन्तदर्शन-अनन्तवीर्य-अगुरुलघुत्व-अवगाहनत्व-सूक्ष्मत्व–निराबाधत्वगुणसम्पन्न—सिद्ध–चक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने जन्ममृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।]

आनन्द-कन्द-जनकं घन-कर्म-मुक्तं
सम्यक्त्व-शर्म-गरिमं जननार्ति-वीतम् ।
सौरभ्य-वासित-भुवं हरि-चन्दनानां
गन्धैर्यजे परिमलैर्वर-सिद्ध-चक्रम् ॥ ४ ॥

[ॐ ह्रीं······सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने संसारताप-विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा ।]

सर्वावगाहन-गुणं सुसमाधि-निष्ठं
सिद्धंस्वरूप-निपुणं कमलं विशालम् ।
सौगन्ध्य-शालि-वनशालि-वराक्षतानां
पुञ्जैर्यजे शशि-निभैर्वर-सिद्ध-चक्रम् ॥ ५ ॥

[ॐ ह्रीं ········ सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अक्षयपद-प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ।]

नित्यं स्वदेह-परिमाणमनादिसंज्ञं
द्रव्यानपेक्षममृतं मरणाद्यतीतम् ।
मन्दार-कुन्द-कमलादि-वनस्पतीनां
पुष्पैर्यजे शुभतमैर्वर-सिद्ध-चक्रम् ॥ ६ ॥

[ॐ ह्रीं··········सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने कामबाण-विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ।]

जो ऊर्ध्वगमन-स्वभाववाले हैं, मनसे रहित हैं, आत्माके स्वाभाविक मूल गुणोंसे युक्त हैं, आकाशके समान भासित होने-वाले हैं उन सिद्धोंकी दूध, अन्न और घीसे बने हुए रसपूर्ण बड़ोंसे मैं सदा पूजा करता हूँ ॥७॥

[ओं ह्रीं ······सिद्धचक्राधिपति सिद्धपरमेष्ठीको क्षुधा-रोगका विनाश करनेके लिए मैं नैवेद्य अर्पित करता हूँ ।]

जिन्होंने आतङ्क, शोक, भय, रोग और अभिमानको नष्ट कर दिया है जो निर्द्वन्द्वभावसे युक्त हैं और महिमाके स्थान हैं उन सिद्धोंकी कपूर और वर्तिकाबहुल स्वर्णदीपकोंसे मैं पूजा करता हूँ ॥८॥

[ओं ह्रीं ··· ···सिद्धचक्राधिपति सिद्धपरमेष्ठीको मोहान्धकारका नाश करनेके लिए मैं दीप समर्पण करता हूँ ।]

जो एक साथ सम्पूर्ण संसारको पूरी तरहसे जानते हैं, और तीन कालकी वस्तुओंके प्रकाशित करनेके लिए दीपकके समान हैं उन सिद्धोंकी सुगन्धित द्रव्य और कपूर मिश्रित धूपसे मैं पूजा करता हूँ ॥९॥

[ओं ह्रीं ······ सिद्धचक्राधिपति सिद्धपरमेष्ठीको दुष्ट आठ कर्मोंका दहन करनेके लिए मैं धूप समर्पण करता हूँ ।]

सिद्ध, असुर और मनुष्योंके अधिपति जिनका सदा ध्यान करते हैं, जो शिवस्वरूप हैं और सकल भव्य पुरुषोंद्वारा वन्दनीय हैं उन सिद्धोंकी नारंगी, सुपारी, केला और नारियल आदि श्रेष्ठ फलोंसे मैं पूजा करता हूँ ॥१०॥

[ओं ह्रीं ··· ···सिद्धचक्राधिपति सिद्धपरमेष्ठीको मोक्ष फलकी प्राप्तिके लिए मैं फल समर्पण करता हूँ ।]

ऊर्ध्व-स्वभाव-गमनं सुमनो-व्यपेतं
ब्रह्मादि-बीज-सहितं गगनावभासम् ।
क्षीरान्न-साज्य-वटकै रस-पूर्ण-गर्भै-
र्नित्यं यजे चरुवरैर्वर-सिद्ध-चक्रम् ॥ ७ ॥

[ॐ ह्रीं······सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने क्षुधारोग-विध्वंसनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ।]

आतङ्क-शोक-भय-रोग-मद-प्रशान्तं
निर्द्वन्द्व-भाव-धरणं महिमा-निवेशम् ।
कर्पूर-वर्ति-बहुभिः कनकावदातैर्दीपै-
र्यजे रुचिवरैर्वर-सिद्ध-चक्रम् ॥ ८ ॥

[ॐ ह्रीं······सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने मोहान्धकार-विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा ।]

पश्यन्समस्त-भुवनं युगपन्नितान्तं
त्रैकाल्य-वस्तु-विषये निविड-प्रदीपम् ।
सद्द्रव्य-गन्ध-घनसार-विमिश्रितानां
धूपैर्यजे परिमलैर्वर-सिद्ध-चक्रम् ॥ ९ ॥

[ॐ ह्रीं······सिद्धिचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अष्टकर्म-दहनाय धूपं निवपामीति स्वाहा ।]

सिद्धासुरादिपति-यक्ष-नरेन्द्र-चक्रै-
र्ध्येयं शिवं सकल-भव्य-जनैः सुवन्द्यम् ।
नारङ्गि-पूग-कदली-फल-नारिकेलैः
सोऽहं यजे वरफलैर्वर-सिद्ध-चक्रम् ॥ १० ॥

[ॐ ह्रीं······सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरिमेष्ठिने मोक्षफल-प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा ।]

मैं विमलसेन सुगन्धित जल, भौंरे जिसपर मंडरा रहे हैं ऐसा चन्दन, फूल, निर्मल अक्षत, सुन्दर नैवेद्य, दीप, सुगन्धित धूप, विविध प्रकारके श्रेष्ठ फल, इन सबको सिद्धोंके चरणोंमें इष्ट अर्थकी सिद्धिके लिए एक साथ चढ़ाता हूँ ॥११॥

[ओं ह्रीं······सिद्धचक्राधिपति सिद्धपरमेष्ठीको अनर्घ्यपदकी प्राप्तिके लिए मैं अर्घ्य समर्पण करता हूँ ।]

जो ज्ञानोपयोगसे विमल हैं फिर भी जिनका स्वरूप निर्मल है। अत्यन्त सूक्ष्मस्वभावी हैं फिर भी जो अनन्त शक्तिमान् हैं। कर्म-समूह रूपी वनको जलानेके लिए अग्नि हैं फिर भी जो सुखरूपी धान्यके बीज हैं उन उपमारहित श्रेष्ठ सिद्ध-चक्रको मैं नमस्कार करता हूँ ॥१२॥

आठ कर्मोंसे रहित मोक्ष-लक्ष्मीके मन्दिर, और सम्यक्त्वादि आठ गुणोंसे युक्त सिद्धसमूहको मैं नमस्कार करता हूँ ॥१३॥

[ओं ह्रीं ······ सिद्धचक्राधिपति सिद्धपरमेष्ठीको मैं महार्घ्य समर्पण करता हूँ ।]

तीन लोकके बड़े-बड़े शक्तिशाली जीव जिनके चरणोंकी वन्दना करते हैं वे तीर्थङ्कर भी एकाग्रचित्तसे जिनकी आराधनाकर मोक्ष-लक्ष्मीको प्राप्त हुए, जो क्षायिक सम्यक्त्व, अनन्त ज्ञान, अनन्त वीर्य और निर्मल अव्याबाध आदि गुणोंके धारी हैं उन विशुद्ध उदयसे सम्पन्न सिद्धोंकी मैं सदा स्तुति करता हूँ ॥१४॥

[मैं पुष्पाञ्जलि क्षेपण करता हूँ ।]

गन्धाढ्यं सुपयो मधुव्रत-गणैः संगं वरं चन्दनं
पुष्पौघं विमलं सदक्षत-चयं रम्यं चरुं दीपकम्।
धूपं गन्धयुतं ददामि विविधं श्रेष्ठं फलं लब्धये
सिद्धानां युगपत्क्रमाय विमलं सेनोत्तरं वाञ्छितम्॥११॥

[ॐ ह्रीं ......सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अनर्घ्यपद-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।]

ज्ञानोपयोगविमलं विशदात्मरूपं
सूक्ष्म-स्वभाव-परमं यदनन्तवीर्यम्।
कर्मौघ-कक्ष-दहनं सुख-शस्य-बीजं
वन्दे सदा निरुपमं वर-सिद्ध-चक्रम्॥१२॥

कर्माष्टक-विनिर्मुक्तं मोक्ष-लक्ष्मी-निकेतनम्।
सम्यक्त्वादि-गुणोपेतं सिद्धचक्रं नमाम्यहम्॥१३॥

[ॐ ह्रीं ......सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने महार्घं निर्वपामीति स्वाहा।]

त्रैलोक्येश्वर-वन्दनीय-चरणाः प्रापुः श्रियं शाश्वतीं
यानाराध्य निरुद्ध-चण्ड-मनसः सन्तोऽपि तीर्थङ्कराः।
सत्सम्यक्त्व-विबोध-वीर्य-विशदाव्याबाधता द्यैर्गुणै-
र्युक्तांस्तानिह तोष्टवीमि सततं सिद्धान् विशुद्धोदयान्॥१४॥

[पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि।]

जयमाला

हे वीतराग, सनातन, शान्त, अखण्ड, निरोग, निर्भय, निर्मल श्रेष्ठ, उत्तम स्थान, ज्ञानके भण्डार और मोहरहित विशुद्ध सिद्धसमूह ! आप हमपर प्रसन्न हों ॥१॥

हे सांसारिक भावोंको नष्ट करनेवाले, शरीररहित, समतारूपी अमृतसे ओत-प्रोत, देवस्वरूप, संग-रहित, बन्धरहित, कषाय रहित तथा मोहसे रहित विशुद्ध सिद्धसमूह ! आप हमपर प्रसन्न हों ॥२॥

हे पाप और कर्मरूपी जालको नष्ट करनेवाले, सदा निर्मल केवलज्ञानकी केलिके निकेतन, संसाररूपी समुद्रको पार करनेवाले, शान्त और मोहरहित विशुद्ध सिद्धसमूह ! आप हम पर प्रसन्न हों ॥३॥

हे अनन्त सुखरूपी अमृतके समुद्र, धीर; भावकर्म, द्रव्यकर्म और नोकर्मको उड़ानेके लिए विपुल वायुस्वरूप, कामको नष्ट करनेवाले, अपने स्वरूपमें विशेषरूपसे रमण करनेवाले और निर्मोही विशुद्ध सिद्धसमूह ! आप हमपर प्रसन्न हों ॥४॥

हे विकाररहित, शोकको तर्जित करनेवाले, ज्ञानरूपी उत्तम नेत्रसे संसारको देखनेवाले, भाररहित, शब्दरहित, वर्णरहित और निर्मोही विशुद्ध सिद्धसमूह ! आप हमपर प्रसन्न हों ॥५॥

हे कर्मफलके खेदसे रहित, अशरीरी, सब प्रकारके व्यवधानोंसे पारङ्गत, नित्य, सुखरूपी अमृतके पात्र, उत्तम सम्यक्त्वसे सुशोभित, सबके स्वामी और मोहरहित विशुद्ध सिद्धसमूह ! आप हम पर प्रसन्न हों ॥६॥

जयमाला

विराग सनातन शान्त निरंश, निरामय निर्भय निर्मल हंस ।
सुधाम विबोध-निधान विमोह, प्रसीद विशुद्ध सुसिद्ध-समूह ।।

विदूरित-संसृति-भाव निरङ्ग, समामृत-पूरित देव विसङ्ग ।
अबन्ध कषाय-विहीन विमोह, प्रसीद विशुद्ध सुसिद्ध-समूह ।।

निवारित-दुष्कृत-कर्म-विपाश, सदामल-केवल-केलि-निवास ।
भवोदधि-पारग शान्त विमोह, प्रसीद विशुद्ध सुसिद्ध-समूह ।।

अनन्त-सुखामृत-सागर-धीर, कलङ्क-रजो-मल-भूरि-समीर ।
विखण्डित-काम विराम विमोह, प्रसीद विशुद्ध सुसिद्ध-समूह ।।

विकार-विवर्जित तर्जित-शोक, विबोध-सुनेत्र-विलोकित-लोक ।
विहार विराव विरङ्ग विमोह, प्रसीद विशुद्ध सुसिद्ध-समूह ।।

रजोमल-खेद-विमुक्त विगात्र, निरन्तर नित्य सुखामृत-पात्र ।
सुदर्शन-राजित नाथ विमोह, प्रसीद विशुद्ध सुसिद्ध-समूह ।।

हे मनुष्य और देवों द्वारा पूज्य निर्मल स्वभाववाले, अनन्त बड़े-बड़े मुनियोंसे पूज्य, हाव भाव आदि विकारोंसे रहित, सदा उदयशील, विश्वस्वरूप, महेश और मोहरहित विशुद्ध सिद्ध समूह ! आप हम पर प्रसन्न हों ॥७॥

हे दम्भरहित, तृष्णारहित, दोषरहित, निद्रारहित, परमोत्कृष्ट, सुख देनेवाले, साररूप, तन्द्रारहित, कोपरहित, रूपरहित, शंका-रहित और मोहरहित विशुद्ध सिद्धसमूह ! आप हम पर प्रसन्न हों ॥८॥

हे जरा और मरणसे रहित, विहारवर्जित, अचिन्त्य, निर्मल, अहंकाररहित, अचिन्त्य चारित्रके धारी, दर्परहित और मोहरहित विशुद्ध सिद्धसमूह ! आप हम पर प्रसन्न हों ॥९॥

हे वर्णरहित, गन्धरहित, मानरहित, लोभरहित, माया रहित, शरीररहित, शब्दरहित, लौकिक शोभासे शून्य, आकुलता रहि '. असहाय, सबका हित करनेवाले और मोहरहित विशुद्ध सिद्धसमूह ! आप हम पर प्रसन्न हों ॥१०॥

इस प्रकार जो मनुष्य अद्भुत अर्थात् संसारी आत्माओंसे भिन्न समयसार स्वरूप, सुन्दर चैतन्य चिह्नवाले, पर परणतिसे रहित, पद्मनन्दि आचार्य द्वारा वन्दनीय, सम्पूर्ण गुणोंके मन्दिर और विशुद्ध सिद्धसमूहका स्मरण करता है, नमस्कार करता है और स्तुति करता है वह मुक्तिका अधिकारी होता है ॥११॥

[ॐ ह्रीं······सिद्धचक्राधिपति सिद्धपरमेष्ठीके लिए महार्घ समर्पण करता हूँ।]

नरामर-वन्दित निर्मल-भाव, अनन्त-मुनीश्वर-पूज्य विहाव।
सहोदय विश्व महेश विमोह, प्रसीद विशुद्ध सुसिद्ध-समूह ॥

विदम्भ वितृष्ण विदोष विनिद्र, परापर शङ्कर सार वितन्द्र।
विकोप विरूप विशङ्क विमोह, प्रसीद विशुद्ध सुसिद्ध-समूह ॥

जरा-मरणोज्झित वीत-विहार, विचिन्तित निर्मल निरहङ्कार।
अचिन्त्य-चरित्र विदर्प विमोह, प्रसीद विशुद्ध सुसिद्ध-समूह ॥

विवर्ण विगन्ध विमान विलोभ, विमाय विकाय विशब्द विशोभ।
अनाकुल केवल सर्व विमोह, प्रसीद विशुद्ध सुसिद्ध-समूह ॥

घत्ता

असम-समयसारं चारु-चैतन्य-चिह्नं
पर-परिणति-मुक्तं पद्मनन्दीन्द्र-वन्द्यम्।
निखिल-गुण-निकेतं सिद्ध-चक्रं विशुद्धं
स्मरति नमति यो वा स्तौति सोऽभ्येति मुक्तिम् ॥

[ॐ ह्रीं ... ... सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।]

सिद्धपूजा [भावाष्टक]

अपने मनरूपी मणिके पात्रमें भरे हुए समता रसरूपी अनुपम अमृतरसकी धारासे केवलज्ञानरूपी कलासे मनोहर सहज सिद्ध परमात्माकी मैं पूजा करता हूँ ॥१॥

[ओं ह्रीं क्षायिकसम्यक्त्व, अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त वीर्य, अगुरुलघुत्व, अवगाहनत्व, सूक्ष्मत्व और निराबाधत्व गुणसे सम्पन्न सिद्धचक्राधिपति सिद्ध परमेष्ठीको जन्म मृत्युका विनाश करनेके लिए मैं जल अर्पण करता हूँ ।]

सहजरूपसे कर्म-कलङ्कको नष्ट करनेवाले ऐसे निर्मल भाव रूपी सुगन्धित चन्दनसे अनुपम गुणसमूहके नायक सहज सिद्ध परमात्माकी मैं पूजा करता हूँ ॥२॥

[ओं ह्रीं ... ... सिद्धचक्राधिपति सिद्धपरमेष्ठीको संसार सम्बन्धी तापका विनाश करनेके लिए मैं चन्दन अर्पण करता हूँ ।]

बड़े से बड़े समस्त दोषोंका शोधन करनेमें समर्थ स्वभाव रूपी स्वच्छ चावलोंसे अप्रतिहत ज्ञानके धारी सहज सिद्ध परमात्माकी मैं पूजा करता हूँ ॥३॥

[ओं ह्रीं ... ... सिद्धचक्राधिपति सिद्धपरमेष्ठीको अक्षयपदकी प्राप्तिके लिए मैं अक्षत समर्पण करता हूँ ।]

सहज क्रियारूप करके द्वारा शोधी गई आत्मस्वभाव रूपी सुन्दर फूलोंकी सुशोभित मालासे उत्कृष्ट योगके बलसे वशमें किये गये सहज सिद्ध परमात्माको मैं पूजा करता हूँ ॥४॥

[ओं ह्रीं ... ... सिद्धचक्राधिपति सिद्धपरमेष्ठीको कामवाणका नाश करनेके लिए मैं पुष्प समर्पण करता हूँ ।]

सिद्धपूजा [भावाष्टक]

निज-मनो-मणि-भाजन-भारया शम-रसैक-सुधारस-धारया ।
सकल-बोध-कला-रमणीयकं सहज-सिद्धमहं परिपूजये ।।१।।

[ॐ ह्रीं ...... सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने जन्ममृत्यु-विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।]

सहज-कर्म-कलङ्क-विनाशनैरमल-भाव-सुवासित-चन्दनैः ।
अनुपमान-गुणावलि-नायकं सहज-सिद्धमहं परिपूजये ।।२।।

[ॐ ह्रीं ...... सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने संसारताप-विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा ।]

सहज-भाव-सुनिर्मल-तन्दुलैः सकल-दोष-विशाल-विशोधनैः ।
अनुपरोध-सुबोध-निधानकं सहज-सिद्धमहं परिपूजये ।।३।।

[ॐ ह्रीं .... सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अक्षयपद-प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ।]

समयसार-सुपुष्प-सुमालया सहज-कर्मकरेण विशोधया ।
परम-योग-बलेन वशीकृतं सहज-सिद्धमहं परिपूजये ।।४।।

[ॐ ह्रीं ...... सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने कामबाण-विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ।]

जन्म, जरा और मरणको नष्ट करनेवाले सहज ज्ञानरूपी सुन्दर नैवेद्यसे अमर्याद और प्रचुर आत्म-गुणोंके निकेतन सहज और सिद्ध परमात्माकी मैं पूजा करता हूँ ॥५॥

[ओं ह्रीं ...... सिद्धचक्राधिपति सिद्धपरमेष्ठीको क्षुधारोगका विनाश करनेके लिए मैं नैवेद्य समर्पण करता हूँ ।]

भोगाकांक्षारूपी अन्धकारको नष्ट करनेवाले सहज सम्यक्त्व रूपी दीपकसे निरवधि आत्मविकास द्वारा विकासको प्राप्त हुए सहज सिद्ध परमात्माकी मैं पूजा करता हूँ ॥६॥

[ओं ह्रीं ... ... सिद्धचक्राधिपति सिद्धपरमेष्ठीको मोहान्धकारका नाश करनेके लिए मैं दीप समर्पण करता हूँ ।]

आत्मगुणोंके घातक कर्ममलोंको नष्ट करनेवाली अपने अक्षय गुणरूपी धूपसे विशद बोध और अनन्त सुखस्वरूप सहजसिद्ध परमात्माकी मैं पूजा करता हूँ ॥७॥

[ओं ह्रीं ... ... सिद्धचक्राधिपति सिद्धपरमेष्ठीको दुष्ट आठ कर्मोंका दहन करनेके लिए मैं धूप समर्पण करता हूँ ।]

सहज रूपसे कुभाव भावोंका शोधन करनेवाली उत्कृष्ट भाव रूपी फल संपत्तिसे अपने गुणोंका स्फुरण होनेसे निरञ्जनपदको प्राप्त हुए सहज सिद्ध परमात्माकी मैं पूजा करता हूँ ॥८॥

[ओं ह्रीं ... ... सिद्धचक्राधिपति सिद्धपरमेष्ठीको मोक्षफलकी प्राप्तिके लिए मैं फल समर्पण करता हूँ ।]

नेत्रोन्मीली विकासको प्राप्त हुए भावसमूहके द्वारा जो पुरुष चिन्तामणिके समान शुद्ध भाव और उत्तम ज्ञानरूपी जल, गन्ध, अक्षत, पुष्पमाला, नैवेद्य, दीप, धूप और फलोंसे आत्मस्वादी, बाधारहित ज्ञानके स्वामी और अचल सिद्ध परमात्माकी पूजा करता है उसके लिए वह पूजा अनन्त ज्ञानका कारण होती है, अतः हम भी उन सिद्ध परमात्माकी पूजा करते हैं ॥९॥

[ओं ह्रीं ... ... सिद्धचक्राधिपति सिद्धपरमेष्ठीको अनर्घ्यपदकी प्राप्तिके लिए मैं अर्घ्य समर्पण करता हूँ ।]

अकृत-बोध-सुदिव्य-निवेद्यकैर्विहित-जाति-जरा-मरणान्तकैः ।
निरवधि-प्रचुरात्म-गुणालयं सहज-सिद्धमहं परिपूजये ॥५॥

[ॐ ह्रीं······सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने क्षुधारोग-विध्वंसनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ।]

सहज-रत्न-रुचि-प्रतिदीपकैः रुचि-विभूति-तमः-प्रविनाशनैः ।
निरवधि-स्वविकास-विकासनं सहज-सिद्धमहं परिपूजये ॥६॥

[ॐ ह्रीं······सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने मोहान्धकार-विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा ।]

निज-गुणाक्षय-रूप-सुधूपनैः स्वगुण-घाति-मल-प्रविनाशनैः ।
विशद-बोध-सुदीर्घ-सुखात्मकं, सहज-सिद्धमहं परिपूजये ॥७॥

[ॐ ह्रीं······सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अष्टकर्म-दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ।]

परम-भाव-फलावलि-सम्पदा सहज-भाव-कुभाव-विशोधया ।
निज-गुणस्फुरणात्म-निरञ्जनं सहज-सिद्धमहं परिपूजये ॥८॥

[ॐ ह्रीं······सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा ।

नेत्रोन्मीलि-विकास-भाव-निवहैरत्यन्त-बोधाय वै
वार्गन्धाक्षत-पुष्प-दाम-चरुकैः सद्दीप-धूपैः फलैः ।
यश्चिन्ता-मणि-शुद्ध-भाव-परम-ज्ञानात्मकैरर्चयेत्
सिद्धं स्वादुमगाध-बोधमचलं सञ्चचयामो वयम् ॥९॥

[ॐ ह्रीं······सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

शान्तिपाठ

जिनका मुख चन्द्रमाके समान निर्मल है, जो शील, गुण, व्रत और संयमके पात्र हैं, जिनका शरीर १०८ लक्षणोंसे युक्त है और जिनके नेत्र कमलके समान हैं उन शान्तिनाथ भगवान्को मैं नमस्कार करता हूँ ॥१॥

जो चक्रवर्तियोंमें पाँचवें चक्रवर्ती हैं, इन्द्र और नरेन्द्रोंके समूहसे पूजनीय हैं, संघकी शान्तिकी इच्छासे मैं उन शान्तिके करनेवाले सोलहवें तीर्थङ्करको नमस्कार करता हूँ ॥२॥

जिनके देवमयी अशोकवृक्ष[1], देवोंके द्वारा की गई पुष्प-वर्षा, दुन्दुभि बाजा, सिंहासन, एक योजन तक दिव्यध्वनिका घोष, तीन छत्र, चामर युगल और भामण्डल शोभा देते हैं उन जगत्पूज्य और शान्तिके करनेवाले शान्तिनाथ भगवान्को सिर नवाकर नमस्कार करता हूँ। वे शान्तिनाथ जिन समस्त संघको और मुझे शान्तिपाठ पढ़नेसे अति शीघ्र परम शान्ति दें ॥३-४॥

जो तीर्थङ्कर जन्मोत्सवके समय इन्द्रादिके द्वारा मुकुट, कुण्डल, और रत्नोंके हारसे पूजित हुए तथा जिनके चरण-कमलोंकी स्तुति देवगणोंने की वे श्रेष्ठवंशी तथा जगत्के दीपक २४ तीर्थङ्कर मुझे सदा शान्ति देवें ॥५॥

पूजा करनेवालोंको, प्रजाके रक्षकोंको, मुनीन्द्रोंको और सामान्य तपस्वियोंको तथा देश, राष्ट्र, नगर और राज्यको भगवान् जिनेन्द्र शान्ति प्रदान करें ॥६॥

---

१. अशोकवृक्ष, देवकृतपुष्पवर्षा, दिव्यध्वनि, चामर, सिंहासन, भामण्डल, दुन्दुभि, छत्र, ये तीर्थङ्करोंके आठ प्रातिहार्य होते हैं।

शान्तिपाठः

शान्तिजिनं शशि-निर्मल-वक्त्रं शील-गुण-व्रत-संयम-पात्रम् ।
अष्टशतार्चित-लक्षण-गात्रं नौमि जिनोत्तममम्बुज-नेत्रम् ॥१॥

पञ्चममीप्सित-चक्रधराणां पूजितमिन्द्र-नरेन्द्र-गणैश्च ।
शान्तिकरं गण-शान्तिमभीप्सुः षोडश-तीर्थकरं प्रणमामि ॥२॥
दिव्य-तरुः[1] सुर-पुष्प-सुवृष्टिर्दुन्दुभिरासन-योजन-घोषौ ।
आतपवारण-चामर-युग्मे यस्य विभाति च मण्डलतेजः ॥३॥
तं जगदर्चित-शान्ति-जिनेन्द्रं शान्तिकरं शिरसा प्रणमामि ।
सर्वगणाय तु यच्छतु शान्तिं मह्यमरं पठते परमां च ॥४॥

येऽभ्यर्चिता मुकुट-कुण्डल-हार-रत्नैः
शक्रादिभिः सुरगणैः स्तुत-पाद-पद्माः ।
ते मे जिनाः प्रवर-वंश-जगत्प्रदीपा-
स्तीर्थङ्कराः सतत-शान्तिकरा भवन्तु ॥५॥

संपूजकानां प्रतिपालकानां यतीन्द्र-सामान्य-तपोधनानाम् ।
देशस्य राष्ट्रस्य पुरस्य राज्ञः करोतु शान्तिं भगवाञ्जिनेन्द्रः ॥६॥

---

१. अशोकवृक्षः सुरपुष्पवृष्टिः दिव्यध्वनिश्चामरमासनञ्च ।
भामण्डलं दुन्दुभिरातपत्रं सत्प्रातिहार्याणि जिनेश्वराणाम् ॥

सब प्रजाका कल्याण हो। राजा बलवान् और धार्मिक हो। मेघ समय-समयपर अच्छी वृष्टि करें। सब रोगोंका नाश हो। जगत्में प्राणियोंको दुर्भिक्ष, चोरोंका उपद्रव तथा मारी (प्लेग) क्षणभरके लिए भी न हो और सब सुखोंका देनेवाला जैनधर्म सदा फैला रहे ॥७॥

घातिया कर्मोंका नाश करनेवाले और केवलज्ञानरूपी सूर्य ऋषभदेव आदि तीर्थङ्कर जगत्में शान्ति करें ॥८॥

इष्ट-प्रार्थना

प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानुयोगको नमस्कार हो।

शास्त्रका अभ्यास, जिनेन्द्रदेवका दर्शन, निरन्तर श्रेष्ठ पुरुषोंकी सङ्गति, श्रेष्ठ चरित्रवान् पुरुषोंके गुणसमूहकी कथा, परदोषके कहनेमें मौन, सबसे मिष्ट और हितकारी बोलना तथा आत्मतत्त्वकी भावना ये बातें मुझे भव-भवमें तब तक मिलें जबतक मोक्षकी प्राप्ति न हो ॥९॥

हे जिनेन्द्र! आपके चरण मेरे हृदयमें और मेरा हृदय आपके चरणोंमें तब तक लीन रहे जब तक मुझे मोक्षकी प्राप्ति न हो ॥१०॥

हे ज्ञानदेव! जो मैंने अक्षरहीन, पदहीन, अर्थहीन तथा मात्राहीन पढ़ा हो उसे क्षमा करो और मेरे दुःखका नाश करो ॥११॥

हे तीनों लोकोंके बन्धु जिनवर! आपके चरणोंकी शरणसे मेरा दुःख-क्षय हो, मेरे कर्मोंका क्षय हो, मुझे समाधिमरण और बोधिका लाभ हो ॥१२॥

क्षेमं सर्व-प्रजानां प्रभवतु बलवान्धार्मिको भूमिपालः
काले काले च सम्यग्वर्षतु मघवा व्याधयो यान्तु नाशम् ।
दुर्भिक्षं चौर-मारी क्षणमपि जगतां मा स्म भूज्जीवलोके
जैनेन्द्रं धर्मचक्रं प्रभवतु सततं सर्व-सौख्य-प्रदायि ॥७॥
प्रध्वस्त-घाति-कर्माणः केवलज्ञान-भास्कराः ।
कुर्वन्तु जगतां शान्तिं वृषभाद्या जिनेश्वराः ॥८॥

इष्ट-प्रार्थना

प्रथमं करणं चरणं द्रव्यं नमः

शास्त्राभ्यासो जिनपति-नुतिः सङ्गतिः सर्वदार्यैः
सद्वृत्तानां गुण-गण-कथा दोष-वादे च मौनम् ।
सर्वस्यापि प्रिय-हित-वचो भावना चात्मतत्त्वे
सम्पद्यन्तां मम भव-भवे यावदेतेऽपवर्गः ॥९॥

तव पादौ मम हृदये मम हृदयं तव पद-द्वये लीनम् ।
तिष्ठतु जिनेन्द्र तावद्यावन्निर्वाण-सम्प्राप्तिः ॥१०॥

अक्खर- पयत्थ-हीणं मत्ता-हीणं च जं मए भणियं ।
तं खमउ णाणदेव य मज्झ वि दुक्ख-क्खयं दिंतु ॥११॥

दुक्ख-खओ कम्म-खओ समाहिमरणं च बोहि-लाहो य ।
मम होउ जगद्-बंधव तव जिणवर चरण-सरणेण ॥१२॥

स्तुति

हे परम आनन्दके कारण, त्रिभुवनके गुरु जिनवर ! मुझ किङ्कर पर ऐसी करुणा करो जिससे मुक्तिकी प्राप्ति होवे ॥१३॥

हे अर्हन्, दुःखबहुल भवस्थितिसे मैं अत्यन्त विरक्त हूँ। हे भवहर ! मुझ दीनपर ऐसी करुणा करो जिससे पुनः भवकी प्राप्ति न होवे ॥१४॥

मैं विषय-भवकूपमें पड़ा हुआ हूँ, कृपा करके उससे आप मेरा उद्धार करें। यह बात मैं बार-बार दुहराता हूँ कि भवकूपसे उद्धार करनेमें एकमात्र आपही समर्थ हैं ॥१५॥

हे जिनेश ! आप कारुणिक हैं, आप स्वामी हैं और आपही समर्थ हैं, इसलिए मैं आपके समस्त मोहरूपी शत्रुके मानका मर्दन करनेवाली यह करुणा भरी पुकार कर रहा हूँ ॥१६॥

अन्य किसीके द्वारा किसी मनुष्यके प्रताडित होनेपर ग्रामपतिको भी करुणा उत्पन्न होती है। हे जगतके पति जिनदेव ! मैं तो कर्मोंके द्वारा रँगा गया हूँ। मुझपर आपकी करुणा कैसे नहीं होगी, अ र्थात् अवश्य होगी।

मेरा एकमात्र यही निवेदन है कि दया करके मेरी इस जन्म-सन्ततिका अन्त करें। मैं उससे अत्यन्त दग्ध हो रहा हूँ, इसलिए हे देव ! मेरी यह करुणा भरी पुकार है ॥१८॥

हे जिन ! संसारके तापसे तप्त हुआ मैं जबतक आपके करुणामृतसे शीतल चरणकमल-युगलको अपने हृदयमें धारण करता हूँ तभी तक मैं सुखी रहता हूँ ॥१९॥

हे पद्मनन्दि आचार्यके द्वारा प्रशंसित गुण समूहवाले, जगतके एकमात्र शरणरूपी भगवन् ! मैं आपको प्रणाम करता हूँ। बहुत कहनेसे क्या ? शरणको प्राप्त हुए इस जनपर आप करुणा करें ॥२०॥

[पुष्पाञ्जलि क्षेपण करता हूँ।]

स्तुतिः

त्रिभुवन-गुरो, जिनेश्वर परमानन्दैक-कारण कुरुष्व ।
मयि किङ्करेऽत्र करुणां यथा तथा जायते मुक्तिः ॥१३॥

निर्विण्णोऽहं नितरामर्हन्बहु-दुःखया भवस्थित्या ।
अपुनर्भवाय भवहर, कुरु करुणामत्र मयि दीने ॥१४॥

उद्धर मां पतितमतो विषमाद्भवकूपतः कृपां कृत्वा ।
अर्हन्नलमुद्धरणे त्वमसीति पुनः पुनर्वच्मि ॥१५॥

त्वं कारुणिकः स्वामी त्वमेव शरणं जिनेश तेनाहम् ।
मोह-रिपु-दलित-मानं फूत्करणं तव पुरः कुर्वे ॥१६॥

ग्रामपतेरपि करुणा परेण केनाप्युपद्रुते पुंसि ।
जगतां प्रभो न किं तव जिन मयि खलु कर्मभिः प्रहते ॥१७॥

अपहर मम जन्म दयां कृत्वा चेत्येकवचसि वक्तव्यम् ।
तेनातिदग्ध इति मे देव बभूव प्रलापित्वम् ॥१८॥

तव जिन चरणाब्ज-युगं करुणामृत-शीतलं यावत् ।
संसार-ताप-तप्तः करोमि हृदि तावदेव सुखी ॥१९॥

जगदेक-शरण भगवन् नौमि श्रीपद्मनन्दित-गुणौघ ।
किं बहुना कुरु करुणामत्र जने शरणमापन्ने ॥२०॥

[परिपुष्पाञ्जलिं क्षिपामि]

विसर्जन

ज्ञानसे या अज्ञानसे जो शास्त्रोक्तविधि मैं न कर सका हूँ, हे जिनवर ! आपके प्रसादसे वह सब पूर्ण हो ॥१॥

मैं न तो आवाहन जानता हूँ, न पूजन करना जानता हूँ, और न विसर्जन करना जानता हूँ । हे परमेश्वर ! क्षमा करो ॥२॥

जो कुछ मन्त्रमें कमी रही हो, क्रियामें कमी रही हो, द्रव्यमें कमी रही हो, हे देव ! वह सब क्षमा करो । हे जिनवर ! रक्षा करो, रक्षा करो ॥३॥

विसर्जनम्

ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि शास्त्रोक्तं न कृतं मया ।
तत्सर्वं पूर्णमेवास्तु त्वत्प्रसादाज्जिनेश्वर ॥१॥

आह्वानं नैव जानामि नैव जानामि पूजनम् ।
विसर्जनं न जानामि क्षमस्व परमेश्वर ॥२॥

मन्त्र-हीनं क्रिया-हीनं द्रव्य-हीनं तथैव च ।
तत्सर्वं क्षम्यतां देव रक्ष रक्ष जिनेश्वर ॥३॥

सामान्य पूजा-पाठ [हिन्दी]

पञ्च मङ्गल-पाठ

[कविवर रूपचन्दजी]

पणविवि पंच परमगुरु गुरु जिनसासनो।
सकलसिद्धिदातार सुविघन विनासनो॥
सारद अरु गुरु गौतम सुमतिप्रकासनो।
मंगल कर चउ संघहिं पापपणासनो॥
पापहि प्रणासन गुणहिं गरुआ दोष अष्टादश रहिउ।
धरि ध्यान करम विनासि केवलज्ञान अविचल जिन लहिउ॥
प्रभु पञ्चकल्याणक विराजित सकल सुर नर ध्यावहीं।
त्रैलोक्यनाथ सुदेव जिनवर जगत मङ्गल गावहीं॥ १॥

गर्भकल्याणक

जाके गरभकल्याणक धनपति आइयो।
अवधिज्ञान परवान सु इंद्र पठाइयो॥
रचि नव बारह जोजन नयरि सुहावनी।
कनकरयणमणिमंडित मंदिर अति बनी॥
अति बनी पोरि पगारि परिखा सुवन उपवन सोहये।
नर नारि सुन्दर चतुर भेख सु देख जन-मन मोहये।
तहँ जनकगृह छह मास प्रथमहिं रतन-धारा बरसियो।
पुनि रुचिकवासिनि जननि-सेवा करहिं सबबिधि हरसियो॥२॥

सुरकुंजरसम कुंजर धवल धुरंधरो।
केहरि-केशर-शोभित नख सिख सुंदरो॥
कमला-कलस-न्हवन दुइ दाम सुहावनी।
रवि-ससि-मंडल मधुर मीन-जुग पावनी॥
पावनि कनक-घट-जुगम पूरन कमलकलित सरोवरो।
कल्लोलमालाकुलित सागर सिंहपीठ मनोहरो॥
रमणीक अमर-विमान फणिपति-भुवन रवि-छवि छाजई।
रुचि रतन-रासि दिपंन्त दहन सु तेजपुंज विराजई॥३॥

ये सखि सोरह सुपने सूती सयनहीं।
देखे माय मनोहर पच्छिम रयनहीं॥
उठि प्रभात पिय पूछियो अवधि प्रकाशियो।
त्रिभुवनपति सुत होसी फल तिहँ भासियो॥
भासियो फल तिहिं चित दंपति परम आनंन्दित भये।
छह मास परि नव मास पुनि तहँ रैन दिन सुखसों गये॥
गर्भावतार महंत महिमा सुनत सब सुख पावहीं।
भणि 'रूपचन्न' सुदेव जिनवर जगत मंगल गावहीं॥ ४॥

जन्मकल्याणक

मति-श्रुत-अवधिविराजित जिन जब जनमियो।
तिहुं लोक भयो छोभित सुरगन भरमियो॥
कल्पवासि-घर घंट अनाहद बज्जिया।
जोतिषघर हरिनाद सहज गलगाज्जिया॥

गज्झिया सहजहिं संख भावन भुवन सबद सुहावने।
विंतर-निलय पटु पटह बज्जहिं कहत महिमा क्यों बने॥
कंपित सुरासन अवधिबल जिन-जनम निहचै जानियो।
धनराज तब गजराज मायामयी निरमय आनियो॥ ५॥

जोजन लाख गयंद वदन सौ निरमये।
वदन वदन वसु दंत दंत सर संठये॥
सर-सर सौ पनवीस कमलिनी छाजहीं।
कमलिनि कमलिनि कमल पचीस विराजहीं॥

राजहीं कमलिनी कमलऽठोतर सौ मनोहर दल बने।
दल-दलहिं अपछर नटहिं नवरस हाव भाव सुहावने॥
मणि कनक किंकणि वर विचित्र सु अमरमण्डप सोहये।
घन घंट चँवर धुजा पताका देखि त्रिभुवन मोहये॥ ६॥

तिहिं करि हरि चढि आयउ सुर-परिवारियो।
पुरिहि प्रदच्छन दे त्रय जिन जयकारियो॥
गुपत जाय जिन-जननिहिं सुख निद्रा रची।
मायामयि सिसु राखि तौ जिन आन्यो सची॥

आन्यो सची जिनरूप निखत नयन तृपित न हूजिये।
तब परम हरषित हृदय हरणा सहस लोचन पूजिये॥
पुनि करि प्रणाम जु प्रथम इंद्र उछंग धरि प्रभु लीनऊ।
ईसान इंद्र सु चंद्र-छवि सिर छत्र प्रभु के दीनऊ॥ ७॥

सनतकुमार माहेंद्र चमर दुइ ढारहीं।
सेस सक्र जयकार सबद उच्चारहीं॥
उच्छव-सहित चतुरविधि सुर हरषित भये।
जोजन सहस निन्यानव गगन उलँघि गये॥
लँघि गये सुरगिर जहां पांडुक-वन विचित्र विराजहीं।
पांडुक-शिला तहँ अर्द्धचंद्र समान मणि-छवि छाजहीं॥
जोजन पचास विशाल दुगुणायाम वसु ऊंची गनी।
वर अष्ट-मङ्गल कनक-कलसनि सिंहपीठ सुहावनी॥ ८॥

रचि मणिमंडप सोभित मध्य सिंहासनो।
थाप्यो पूरव-मुख तहँ प्रभु कमलासनो॥
बाजहिं ताल मृदंग वेणु वीणा घने।
दुंदुभि प्रमुख मधुर धुनि अवर जु बाजने॥
बाजने बाजहिं सची सब मिलि धवल मंगल गावहीं।
पुनि करहिं नृत्य सुरांगना सब देव कौतुक धावहीं॥
भरि छीरसागर जल जु हाथहिं हाथ सुरगिरि ल्यावहीं।
सौधर्म अरु ईशान इंद्र सु कलस ले प्रभु न्हावहीं॥९॥

वदन उदर अवगाह कलसगत जानियो।
एक चार वसु जोजन मान प्रमानिये॥
सहस-अठोतर कलसा प्रभुके सिर ढरइँ।
पुनि सिंगार प्रमुख आचार सबै करइँ।

करि प्रगट प्रभु महिमा महोच्छव आनि पुनि मातहिं दये।
धनपतिहिं सेवा राखि सुरपति आप सुरलोकहिं गये॥
जनमाभिषेक महंत महिमा सुनत सब सुख पावहीं।
भणि 'रूपचन्द' सुदेव जिनवर जगत मंगल गावहीं॥१०॥

तपकल्याणक

श्रमजलरहित सरीर सदा सब मल-रहिउ।
छीर-वरन वर रुधिर प्रथम आकृति लहिउ॥
प्रथम सार संहनन सरूप विराजहीं।
सहज सुगंध सुलच्छन मंडित छाजहीं॥

छाजहिं अतुल बल परम प्रिय हित मधुर वचन सुहावने।
दस सहज अतिशय सुभग मूरति बाललील कहावने॥
आबाल काल त्रिलोकपति मन-रुचिर उचित जु नित नये।
अमरोपनीत पुनीत अनुपम सकल भोग विभोगये॥ ११ ॥

भव तन भोग विरत्त कदाचित चित्तए।
धन जोबन पिय पुत्त कलत्त अनित्त ए॥
कोउ न सरन मरन दिन दुख चहुंगति भरयो।
सुख दुख एकहि भोगत जिय विधिवसि परयो॥

परयो विधिवसि आन चेतन आन जड़ जु कलेवरो।
तन असुचि परतैं होय आस्रव परिहरेतैं संवरो।
निरजरा तपबल होय समकित बिन सदा त्रिभुवन भम्यो।
दुर्लभ विवेक बिना न कबहूं परम धरम विषै रम्यो॥१२॥

ये प्रभु बारह पावन भावन भाइया।
लौकांतिक वर देव नियोगी आइया॥
कुसुमांजलि दे चरन कमल सिर नाइया।
स्वयंबुद्ध प्रभु थुतिकर तिन समुझाइया॥

समुझाय प्रभुको गये निजपुर पुनि महोच्छव हरि कियो।
रुचि रुचिर चित्र विचित्र सिविका कर सुनंदन बन लियो॥
तहँ पंचमुट्ठी लोंच कीनों प्रथम सिद्धनि थुति करी।
मंडिय महाव्रत पंच दुद्धर सकल परिगह परिहरी॥ १३॥

मणिमय भाजन केस परिट्ठिय सुरपती।
छीरसमुद-जल खिप करि गयो अमरावती॥
तप-संयम-बल प्रभुको मनपरजय भयो।
मौनसहित तप करत काल कछु तहँ गयो॥

गयो कछु तहँ काल तपबल रिद्धि वसुविधि सिद्धिया॥
जसु धर्मध्यानबलेन खयगय सप्त प्रकृति प्रसिद्धिया।
खिपि सातवें गुण जतन विन तहँ तीन प्रकृति जु बुधि बढिउ।
करि करण तीन प्रथम सुकलबल खिपकसेनी प्रभु चढिउ॥१४॥

प्रकृति छतीस नवें गुणथान विनासिया।
दसवें सूच्छम लोभ प्रकृति तहँ नासिया॥
सुकल-ध्यानपद दूजो पुनि प्रभु पूरियौ।
बारहवें गुण सोरह प्रकृति जु चूरियौ॥

चूरियौ त्रेसठ प्रकृति इह विधि घातिया-करमनितणी।
तप कियो ध्यानप्रयन्त बारह बिधि त्रिलोक-सिरोमणी॥
निःक्रमण-कल्याणक सुमहिमा सुनत सब सुख पावहीं।
भणि 'रूपचन्द' सुदेव जिनवर जगत मंगल गावहीं॥१५॥

ज्ञानकल्याणक

तेरहवें गुणथान सयोगि जिनेसुरो।
अनंत-चतुष्टय-मंडिय भयो परमेसुरो॥
समवसरन तब धनपति बहुविधि निरमयो।
आगमजुगति प्रमान गगनतल परि ठयो॥
परि ठयो चित्र विचित्र मणिमय सभामंडप सोहये।
तिहि मध्य बारह बने कोठे बनक सुर-नर मोहये।
मुनि कलपवासिनि अरजिका पुनि ज्योति-भौम-भवन-तिया।
पुनि भवन व्यन्तर नभग सुर नर पसुनि कोठे बैठिया॥१६॥
मध्यप्रदेश तीन मणिपीठ तहाँ बने।
गंधकुटी सिंहासन कमल सुहावने॥
तीन छत्र सिर सोहत त्रिभुवन मोहए।
अंतरीच्छ कमलासन प्रभुतन सोहए॥
सोहये चौसठ चमर दुरत अशोकतरुतल छाजए।
पुनि दिव्यधुनि प्रतिसबदजुत तहँ देव दुंदभि बाजए।
सुरपुहुपवृष्टि सुप्रभामण्डल कोटि रवि-छवि छाजए।
इमि अष्ट अनुपम प्रातिहारज वर विभूति विराजए॥१७॥

दुइसै जोजन मान सुभिच्छ चहूँ दिसी ।
गगनगमन अरु प्राणी-वध नहिं अह-निसी ॥
निरुपसर्ग निरहार सदा जगदीश ए ।
आनन चार चहूँदिसि सोभित दीसए ॥

दीसय असेस विसेस विद्या विभव वर ईसुरपना ।
कायाविवर्जित सुद्ध फटिक समान तन प्रभुका बना ।
नहिं नयन-पलक पतन कदाचित केस नख सम छाजहीं ।
ये घातियाछ्यजनित अतिशय दस विचित्र विराजहीं ॥१८॥

सकल अरथमय मागधिभाषा जानिए ।
सकल जीवगत मैत्रीभाव बखानिए ॥
सकल रितुज फल-फूल-वनस्पति मन हरै ।
दरपनसम मनि अवनि पवन-गति अनुसरै ॥

अनुसरै परमानंद सबको नारि नर जे सेवता ।
जोजन प्रमान धरा सुमार्जहिं जहाँ मारुत देवता ॥
पुनि करहिं मेघकुमार गंधोदक सुवृष्टि सुहावनी ।
पदकमलतर सुर खिपहिं कमल सु धरणि ससिसोभा बनी ॥१९॥

अमल गगनतल अरु दिसि तहँ अनुहारहीं ।
चतुरनिकाय देवगण जय जयकारहीं ॥
धर्मचक्र चलै आगैं रवि जहँ लाजहीं ।
पुनि भृंगारप्रमुख वसु मंगल राजहीं ॥

राजहीं चौदह चारु अतिशय देव रचित सुहावने।
जिनराज केवलज्ञानमहिमा अवर कहत कहा बने॥
तब इन्द्र आय कियो महोच्छव सभा सोभा अति बनी।
धर्मोपदेश दियो तहाँ उच्चरिय वानी जिनतनी ॥२०॥

छुधा तृषा अरु रोग रोष असुहावने।
जनम जरा अरु मरण त्रिदोष भयावने॥
रोग सोग भय विस्मय अरु निद्रा घनी।
खेद स्वेद मद मोह अरति चिंता गनी॥

गनिये अठारह दोष तिनकरि रहित देव निरंजनो।
नव परम केवललब्धि मंडिय सिव-रमनि-मन रंजनो॥
श्रीज्ञानकल्याणक सुमहिमा सुनत सब सुख पावहीं।
भणि 'रूपचन्द' सुदेव जिनवर जगत मंगल गावहीं ॥२१॥

निर्वाणकल्याणक

केवलदृष्टि चराचर देख्यो जारिसो।
भव्यनि प्रति उपदेस्यो जिनवर तारिसो॥
भवभय भीत भविकजन सरणै आइया।
रत्नत्रय-लच्छन सिव-पंथ लगाइया॥

लगाइया पन्थ जु भव्य पुनि प्रभु तृतिय सुकल जु पूरियो।
तजि तेरवां गुणथान जोग अजोगपथ पग धारियो॥
पुनि चौदहें चौथे सुकलबल बहत्तर तेरह हती।
इमि घाति वसुविध कर्म पहुँच्यो समयमें पंचमगती ॥२२॥

लोकसिखर तनुवात-बलयमहँ संठियो।
धर्मद्रव्य विन गमन न जिहि आगैं कियो॥
मयनरहित मूषोदर अंबर जारिसो।
किमपि हीन निज-तनुतैं भयो प्रभु तारिसो॥
तारिसो पर्जय नित्य अविचल अर्थपर्जय छनछयी।
निश्चयनयेन अनन्तगुण विवहार नय वसु गुणमयी॥
वस्तुस्वभाव विभावविरहित सुद्ध परिणति परिणयो।
चिद्रूप परमानंदमंदिर सिद्ध परमातम भयो॥२३॥

तनुपरमाणू दामिनिपर सब खिर गए।
रहे सेस नख-केशरूप जे परिणए॥
तब हरिप्रमुख चतुरविधि सुरगण शुभ सच्यो।
मायामयि नख-केशरहित जिनतनु रच्यो॥
रचि अगर-चन्दनप्रमुख परिमल द्रव्य जिन जयकारियो।
पदपतित अगनिकुमार मुकुटानल सुविध संस्कारियो॥
निर्वाण कल्याणक सु महिमा सुनत सब सुख पावहीं।
भणि 'रूपचन्द' सुदेव जिनवर जगत मंगल गावहीं॥२४॥

मैं मतिहीन भगतिवस भावन भाइया॥
मंगल गीतप्रबंध सु जिनगुण गाइया॥
जो नर सुनहिं बखानहिं सुर धरि गावहीं।
मनवांछित फल सो नर निहचै पावहीं॥

पावहीं आठों सिद्धि नव-निधि मन प्रतीत जो लावहीं।
भ्रमभाव छूटै सकल मनके निजस्वरूप लखावहीं॥
पुनि हरहिं पातक टरहिं विघन सु होहिं मंगल तिन नये।
भणि 'रूपचन्द' त्रिलोकपति जिनदेव चउसंघहि जये॥२५॥

विनयपाठ

इहि बिधि ठाडो होयके प्रथम पढ़ैं जो पाठ।
धन्य जिनेश्वर देव तुम नाशे कर्म जु आठ॥१॥
अनंत चतुष्टयके धनी तुम ही हो सिरताज॥
मुक्ति-बधूके कन्त तुम तीन भुवनके राज॥२॥
तिहुँ जगकी पीडा हरन भवदधि शोषणहार।
ज्ञायक हो तुम विश्वके शिव-सुखके करतार॥३॥
हरता अघअँधियारके करता धर्मप्रकाश।
थिरतापद दातार हो धरता निजगुणरास॥४॥
धर्मामृत उर जलधिसों ज्ञानभानु तुम रूप।
तुमरे चरण सरोजको नावत तिहुँ जग भूप॥५॥
मैं बंदौं जिनदेवको कर अति निरमल भाव।
कर्मबंधके छेदने और न कछू उपाव॥६॥
भविजनकों भवकूपतैं तुमही काढ़नहार।
दीनदयाल अनाथपति आतम गुणभंडार॥७॥
चिदानंद निर्मल कियो धोय कर्मरज मैल।
सरल करी या जगतमैं भविजनको शिवगैल॥८॥

तुम पद-पंकज पूजतैं विघ्न-रोग टर जाय।
शत्रु मित्रताकों धरैं विष निरविषता थाय ॥९॥
चक्री खगधर इंद्रपद मिलैं आपतैं आप।
अनुक्रम करि शिवपद लहैं नेम सकल हनि पाप॥१०॥
तुम विन मैं व्याकुल भयो जैसे जल विन मीन।
जन्म जरा मेरी हरो करो मोहिं स्वाधीन ॥११॥
पतित बहुत पावन किये गिनती कौन करेव।
अंजनसे तारे कुधी जय जय जय जिनदेव ॥१२॥
थकी नाव भवदधिविषै तुम प्रभु पार करेय।
खेवटिया तुम हो प्रभू जय जय जय जिनदेव॥१३॥
रागसहित जगमें रुल्यो मिले सरागी देव।
वीतराग भेट्यो अबै मेटो राग-कुटेव ॥१४॥
कित निगोद कित नारकी कित तिर्यंच अज्ञान।
आज धन्य मानुष भयो पायो जिनवर थान॥१५॥
तुमको पूजैं सुरपती अहिपति नरपति देव।
धन्य भाग्य मेरो भयो करन लग्यो तुम सेव॥१६॥
अशरणके तुम शरण हो निराधार आधार।
मैं डूबत भवसिंधुमें खेअ लगाओ पार ॥१७॥
इंद्रादिक गणपति थके कर विनती भगवान।
अपनो विरद निहारिकैं कीजे आप समान ॥१८॥

तुमरी नेक सुदृष्टितैं जग उतरत है पार।
हा हा डूब्यो जात हों नेक निहार निकार ॥१९॥
जो मैं कह हूँ औरसों तो न मिटै उरझार।
मेरी तो तोसों बनी तातैं करौं पुकार ॥२०॥
बंदों पाचौं परम गुरु सुर गुरु बंदत जास।
विघन हरन मंगल करन पूरन परम प्रकाश ॥२१॥
चौबीसों जिनपद नमों नमों शारदा माय।
शिवमग साधक साधु नमि रच्यो पाठ सुखदाय ॥२२॥

●

देव-शास्त्र-गुरुपूजा

[कविवर द्यानतरायजी]

अडिल्ल छन्द

प्रथम देव अरहंत सुश्रुत सिद्धान्त जू।
गुरु निरग्रंथ महंत मुकतिपुरपंथ जू ॥
तीन रतन जगमाहिं सो ये भवि ध्याइये।
तिनकी भक्तिप्रसाद परमपद पाइये ॥ १ ॥

दोहा

पूजों पद अरहंतके पूजों गुरुपदसार।
पूजों देवी सरस्वती नितप्रति अष्टप्रकार ॥ २ ॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुसमूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुसमूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुसमूह! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

गीताछन्द

सुरपति उरग नरनाथ तिनकरि बन्दनीक सुपदप्रभा।
अति शोभनीक सुवरण उज्जल देख छवि मोहित सभा।
वर नीर क्षीरसमुद्र घट भरि अग्र तसु बहुविधि नचूँ।
अरहंत श्रुत-सिद्धान्त गुरु-निरग्रंथ नित पूजा रचूँ ॥१॥

दोहा

मलिन वस्तु हर लेत सब जल-स्वभाव मलछीन।
जासों पूजों परमपद देव शास्त्र गुरु तीन ॥१॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ॥ १ ॥

जे त्रिजग-उदर मझार प्रानी तपत अति दुद्धर खरे।
तिन अहितहरन सुवचन जिनके परम शीतलता भरे ॥
तसु भ्रमरलोभित घ्राणपावन सरस चन्दन घिसि सचूँ।
अरहंत श्रुत-सिद्धान्त गुरु-निरग्रंथ नित पूजा रचूँ ॥ २ ॥

दोहा

चंदन शीतलता करै तपत वस्तु परवीन।
जासों पूजों परमपद देव शास्त्र गुरु तीन ॥२॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा ॥ २ ॥

यह भवसमुद्र अपार तारण के निमित्त सुविधि ठई।
अति दृढ़ परमपावन जथारथ भक्ति वर नौका सही ॥
उज्जल अखंडित सालि तंदुल पुंज धरि त्रयगुण जचूँ।
अरहंत श्रुत-सिद्धान्त गुरु-निरग्रंथ नित पूजा रचूँ ॥ ३ ॥

दोहा

तंदुल सालि सुगंधि अति परम अखंडित बीन।
जासों पूजों परमपद देव शास्त्र गुरु तीन ॥३॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ॥३॥

जे विनयवंत सुभव्य-उर-अंबुजप्रकाशन भान हैं।
जे एक मुख चारित्र भाषत त्रिजगमाहिं प्रधान हैं॥
लहि कुंदकमलादिक पहुप भव भव कुवेदनसों बचूँ।
अरहंत श्रुत-सिद्धांत गुरु-निरग्रंथ नित पूजा रचूँ ॥ ४ ॥

दोहा

विविध भाँति परिमल सुमन भ्रमर जास आधीन।
जासों पूजों परमपद देव शास्त्र गुरु तीन ॥ ४ ॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः कामवाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ४ ॥

अति सबल मदकंदर्प जाको क्षुधा-उरग अमान है।
दुस्सह भयानक तासु नाशनको सुगरुडसमान है॥
उत्तम छहों रसयुक्त नित नैवेद्य करि घृतमें पचूँ।
अरहंत श्रुत-सिद्धांत गुरु-निरग्रंथ नित पूजा रचूँ ॥ ५ ॥

दोहा

नानाविध संयुक्तरस व्यंजन सरस नवीन।
जासों पूजों परमपद देव शास्त्र गुरु तीन ॥५॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः क्षुधारोगविध्वंसनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ५ ॥

जे त्रिजग-उद्यम नाश कीने मोह-तिमिर महाबली।
तिहि कर्मघाती ज्ञानदीपप्रकाशजोति प्रभावली॥
इह भाँति दीप प्रजाल कंचनके सुभाजनमें खचूँ।
अरहंत श्रुत-सिद्धांत गुरु-निरग्रंथ नित पूजा रचूँ॥६॥

दोहा

स्वपरप्रकाशक जोति अति दीपक तमकरि हीन।
जासों पूजों परमपद देव शास्त्र गुरु तीन॥६॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा॥६॥

जो कर्म-ईंधन दहन अग्निसमूह सम उद्धत लसै।
वर धूप तासु सुगंधिताकरि सकलपरिमलता हँसै॥
इह भाँति धूप चढ़ाय नित भव-ज्वलनमाहिं नहीं पचूँ।
अरहंत श्रुत-सिद्धांत गुरु-निरग्रंथ नित पूजा रचूँ॥७॥

दोहा

अग्निमाँहिं परिमल दहन चंदनादि गुणलीन।
जासों पूजों परमपद देव शास्त्र गुरु तीन॥७॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्योऽष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा॥७॥

लोचन सुरसना घ्रान उर उत्साहके करतार हैं।
मोपै न उपमा जाय वरणी सकल फलगुणसार हैं॥
सो फल चढ़ावत अर्थपूरन परम अमृतरस सचूँ।
अरहंत श्रुत-सिद्धांत गुरु-निरग्रंथ नित पूजा रचूँ॥८॥

दोहा

जे प्रधान फल फलविषैं पंजकरण-रस-लीन।
जासों पूजों परमपद देव शास्त्र गुरु तीन ॥८॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ८ ॥

जल परम उज्ज्वल गंध अक्षत पुष्प चरु दीपक धरूँ।
वर धूप निर्मल फल विविध बहु जनमके पातक हरूँ॥
इह भाँति अर्घ चढ़ाय नित भवि करत शिव-पंकति मचूँ।
अरहंत श्रुत-सिद्धांत गुरु-निरग्रन्थ नित पूजा रचूँ ॥९॥

दोहा

वसुविधि अर्घ संजोयकै अति उछाह मन कीन।
जासों पूजों परमपद देव शास्त्र गुरु तीन ॥९॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्योऽनर्घपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ९ ॥

जयमाला

दोहा

देव शास्त्र गुरु रतन शुभ तीन रतन करतार।
भिन्न भिन्न कहुँ आरतो अल्प सुगुणविस्तार ॥ १ ॥

पद्धरी छन्द

चउ कर्मसु त्रेसठ प्रकृति नाशि, जीते अष्टादश दोषराशि।
जे परम सुगुण हैं अनंत धीर, कह वतके छयालिस गुण गंभीर।

शुभ समवसरणशोभा अपार, शत इंद्र नमत कर सीस धार।
देवाधिदेव अरहंत देव, बंदों मन वच तन करि सुसेव॥
जिनकी धुनि है ओंकाररूप, निरअक्षरमय महिमा अनूप।
दश-अष्ट महाभाषा समेत, लघुभाषा सात शतक सुचेत॥
सो स्याद्वादमय सप्तभंग, गणधर गूंथे बारह सुअंग।
रवि शशि न हरै सो तम हराय, सो शास्त्र नमों बहु प्रीति ल्याय
गुरु आचारज उवझाय साध, तन नगन रतनत्रयनिधि अगाध
संसार-देह वैराग धार, निरवांछि तपैं शिवपद निहार॥
गुण छत्तिस पच्चिस आठवीस भवतारनतरन जिहाज ईस।
गुरुकी महिमा बरनी न जाय, गुरु नाम जपों मन वचन काय॥

सोरठा

कीजे शक्ति प्रमान शक्ति बिना सरधा धरै।
'द्यानत' सरधावान अजर अमर पद भोगवै॥

ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

बीस तीर्थङ्करपूजा

[कविवर द्यानतरायजी]

दीप अढाई मेरु पन सब तीर्थंकर बीस।
तिन सबकी पूजा करूं मन वच तन धरि सीस ॥१॥

ॐ ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थङ्कराः अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थङ्कराः ! अत्र तिष्ठत तिष्ठत ठः ठः।
ॐ ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थङ्कराः ! अत्र मम सन्निहिता भवत भवत वषट्।

इंद्र-फणींद्र-नरेंद्र-वंद्य पद निर्मल धारी।
शोभनीक संसार सार गुण हैं अविकारी ॥
क्षीरोदधि सम नीरसों (हो) पूजों तृषा निवार।
सीमंधर जिन आदि दे बीस विदेह मँझार ॥
श्रीजिनराज हो भव तारणतरण जहाज ॥ १ ॥

ॐ ह्रीं सीमंधर-युग्मन्धर-बाहु-सुबाहु-सञ्जात-स्वयंप्रभ-ऋषभानन-अनन्तवीर्य्य-सूरप्रभ-विशालकीर्ति-वज्रधर-चन्द्रानन-भद्रबाहु-भुजङ्गम-ईश्वर-नेमिप्रभ-वीरषेण-महाभद्र-देवयशोऽजितवीर्य्येति विंशतिविद्यमानतीर्थङ्करेभ्यो जन्ममृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ॥१॥

तीन लोकके जीव पाप आताप सताये।
तिनकों साता दाता शीतल वचन सुहाये ॥
बावन चंदन सों जजूं (हो) भ्रमन तपन निरवार ॥सीमं०॥

ॐ ह्रीं·····विद्यमानविंशतीर्थङ्करेभ्यो भवतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा ॥२॥

यह संसार अपार महासागर जिनस्वामी।
तातैं तारे बड़ी भक्ति-नौका जगनामी॥
तंदुल अमल सुगंधसों (हो) पूजों तुम गुणसार। सीमं०॥

ॐ ह्रीं······विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्योऽक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ॥ ३ ॥

भविक-सरोज-विकाश निंद्य-तमहर रविसे हो।
जति-श्रावक आचार कथनको तुम्हीं बड़े हो॥
फूल सुवास अनेकसों (हो) पूजों मदनप्रहार। सीमं०॥

ॐ ह्रीं······विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यः कामवाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ॥४॥

काम-नाग विषधाम नाशको गरुड कहे हो।
छुधा महादवज्वाल तासुको मेघ लहे हो॥
नेवज बहुघृत मिष्टसों (हो) पूजों भूखविडार। सीमं०॥

ॐ ह्रीं······विद्यमानविंशतितीर्थङ्करेभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥५॥

उद्यम होन न देत सर्व जगमाहिं भर्यो है।
मोह-महातम घोर नाश परकाश कर्यो है॥
पूजों दीप प्रकाशसों (हो) ज्ञानज्योति करतार। सीमं०॥

ॐ ह्रीं······विद्यमानविंशतितीर्थङ्करेभ्यः मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ६ ॥

कर्म आठ सब काठ भार विस्तार निहारा।
ध्यान अगनिकर प्रगट सरब कीनो निरवारा ॥
धूप अनूपम खेवतें (हो) दुःख जलैं निरधार। सीमं०॥

ॐ ह्रीं······विद्यमानविंशतितीर्थङ्करेभ्योऽष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ७ ॥

मिथ्यावादी दुष्ट लोभऽहंकार भरे हैं।
सबको छिनमें जीत जैनके मेर खड़े हैं ॥
फल अति उत्तमसों जजों (हो) वांछित फलदातार। सीमं०॥

ॐ ह्रीं······विद्यमानविंशतितीर्थङ्करेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ८ ॥

जल फल आठों दर्व अरघ कर प्रीति धरी है।
गणधर इन्द्रनिहूतैं थुति पूरी न करी है ॥
'द्यानत' सेवक जानके (हो) जगतैं लेहु निकार। सीमं०।

ॐ ह्रीं······विद्यमानविंशतितीर्थङ्करेभ्योऽनर्घपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ९ ॥

जयमाला

सोरठा

ज्ञान-सुधाकर चन्द भविक-खेत हित मेघ हो।
भ्रम-तम भान अमन्द तीर्थङ्कर बीसों नमों ॥

चौपाई

सीमंधर सीमंधर स्वामी, जुगमन्धर जुगमन्धर नामी।
बाहु बाहु जिन जगजन तारे, करम सुबाहु बाहुबल दारे ॥१॥

जात सुजातं केवलज्ञानं, स्वयंप्रभू प्रभु स्वयं प्रधानं।
ऋषभानन ऋषि भानन दोषं, अनंतवीरज वीरजकोषं ॥२॥
सौरीप्रभ सौरीगुणमालं, सुगुण विशाल विशाल दयालं।
वज्रधार भवगिरि वज्जर हैं, चन्द्रानन चन्द्रानन वर हैं ॥३॥
भद्रबाहु भद्रनिके करता, श्रीभुजंग भुजंगम हरता।
ईश्वर सबके ईश्वर छाजैं, नेमिप्रभु जस नेमि विराजैं ॥४॥
वीरसेन वीरं जग जानै, महाभद्र महाभद्र बखानै।
नमों जसोधर जसधरकारी, नमों अजितवीरज बलकारी ॥५॥
धनुष पाँचसै काय विराजैं, आव कोडिपूरव सब छाजैं।
समवसरण शोभित जिनराजा, भव-जल-तारनतरन जिहाजा॥
सम्यक रत्न-त्रयनिधि दानी, लोकालोक प्रकाशक ज्ञानी।
शत इन्द्रनिकरि वंदित सोहैं, सुर नर पशु सबके मन मोहैं॥

दोहा

तुमको पूजै वंदना करै धन्य नर सोय।
'द्यानत' सरधा मन धरै, सो भी धरमी होय ॥ ८ ॥

ॐ ह्रीं······· विद्यमानविंशतितीर्थङ्करेभ्योऽर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

सिद्धचक्रपूजा

[श्री हीराचन्दजी]

अष्ट करम करि नष्ट अष्ट गुण पायकैं,
अष्टम वसुधा माहिं विराजे जायकैं।
ऐसे सिद्ध अनन्त महन्त मनायकैं,
संवौषट् आह्वान करूँ हरषायकै ॥ १ ॥

ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं सिद्धपरमेष्ठिन्! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं सिद्धपरमेष्ठिन्! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं सिद्धपरमेष्ठिन्! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

त्रिभंगी

हिमवनगत गंगा आदि अभंगा तीर्थ उतंगा सरवंगा।
आनिय सुरसंगा सलिल सुरंगा करि मन चंगा भरि भ्रंगा ॥
त्रिभुवनके स्वामी त्रिभुवनकामी अन्तरजामी अभिरामी।
शिवपुरविश्रामी निजनिधि पामी सिद्ध जजामी शिरनामी ॥

ॐ ह्रीं अनाहतपराक्रमाय सकलकर्मविनिर्मुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये जलं निर्वपामीति स्वाहा ॥ १ ॥

हरिचन्दन लायो कपूर मिलायो बहु महकायो मन भायो।
जल संग घसायो रंग सुहायो चरन चढ़ायो हरषायो ॥
त्रिभुवनके स्वामी त्रिभुवनकामी अन्तरजामी अभिरामी।
शिवपुरविश्रामी निजनिधि पामी सिद्ध जजामी शिरनामी ॥

ॐ ह्रीं अनाहतपराक्रमाय सकलकर्मविनिर्मुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये चंदनं निर्वपामीति स्वाहा ॥ २ ॥

तंदुल उजियारे शशि-दुति टारे कोमल प्यारे अनियारे।
तुषखण्ड निकारे जलसु पखारे पुंज तुम्हारे ढिंग धारे॥
त्रिभुवनके स्वामी त्रिभुवनकामी अन्तरजामी अभिरामी।
शिवपुरविश्रामी निजनिधि पामी सिद्ध जजामी शिरनामी॥

ॐ ह्रीं अनाहतपराक्रमाय सकलकर्मविनिर्मुक्ताय श्रीसिद्ध-चक्राधिपतये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ॥ ३ ॥

सुरतरुकी बारी प्रीतविहारी करि या प्यारी गुलजारी।
भरि कंचन-थारी माल सँवारी तुम पदधारी अतिसारी।
त्रिभुवनके स्वामी त्रिभुवनकामी अन्तरजामी अभिरामी।
शिवपुरविश्रामी निजनिधि पामी सिद्ध जजामी शिरनामी॥

ॐ ह्रीं अनाहतपराक्रमाय सकलकर्मविनिर्मुक्ताय श्रीसिद्ध-चक्राधिपतये पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ४ ॥

पकवान निवाजे स्वाद विराजे अमृत लाजे क्षुत भाजे।
बहु मोदक छाजे घेवर खाजे पूजन काजे करि ताजे॥
त्रिभुवनके स्वामी त्रिभुवनकामी अन्तरजामी अभिरामी।
शिवपुरविश्रामी निजनिधि पामी सिद्ध जजामी शिरनामी॥

ॐ ह्रीं अनाहतपराक्रमाय सकलकर्मविनिर्मुक्ताय श्रीसिद्ध-चक्राधिपतये नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ५ ॥

आपापर भासै ज्ञान प्रकासै चित्त विकासै तम नासै ।
ऐसे विध खासे दीप उजासे धरि तुम पासे उल्लासे ॥
त्रिभुवनके स्वामी त्रिभुवनकामी अन्तरजामी अभिरामी ।
शिवपुरविश्रामी निजनिधि पामी सिद्ध जजामी शिरनामी ॥

ॐ ह्रीं अनाहतपराक्रमाय सकलकर्मविनिर्मुक्ताय श्रीसिद्ध-चक्राधिपतये दीपं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ६ ॥

चुम्बत अलिमाला गन्ध विशाला चन्दन काला गरुवाला ।
तस चूर्ण रसाला करि ततकाला अगनी ज्वालामें डाला ॥
त्रिभुवनके स्वामी त्रिभुवनकामी अन्तरजामी अभिरामी ।
शिवपुरविश्रामी निजनिधि पामी सिद्ध जजामी शिरनामी ॥

ॐ ह्रीं अनाहतपराक्रमाय सकलकर्मविनिर्मुक्ताय श्रीसिद्ध-चक्राधिपतये धूपं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ७ ॥

श्रीफल अतिभारा पिस्ता प्यारा दाख छुहारा सहकारा ।
ऋतु ऋतुका न्यारा सत्फलसारा अपरम्पारा लै धारा ॥
त्रिभुवनके स्वामी त्रिभुवनकामी अन्तरजामी अभिरामी ।
शिवपुरविश्रामी निजनिधि पामी सिद्ध जजामी शिरनामी ॥

ॐ ह्रीं अनाहतपराक्रमाय सकलकर्मविनिर्मुक्ताय श्रीसिद्ध-चक्राधिपतये फलं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ८ ॥

जल फल वसु वृन्दा अरघ अमंदा जजत अनंदाके कंदा ।
मेटो भवफंदा सब दुखदंदा हीराचंदा तुम बंदा ॥
त्रिभुवनके स्वामी त्रिभुवनकामी अन्तरजामी अभिरामी ।
शिवपुरविश्रामी निजनिधि पामी सिद्ध जजामी शिरनामी॥

ॐ ह्रीं अनाहतपराक्रमाय सकलकर्मविनिर्मुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ६ ॥

जयमाला

ध्यान-दहन विधि-दारु दहि पायो पद निरवान ।
पंचभावजुत थिर थये नमौं सिद्ध भगवान ॥ १ ॥

त्रोटक छन्द

सुख सम्यकदर्शन ज्ञान लहा, अगुरूलघु सूक्षम वीर्य महा ।
अवगाह अबाध अघायक हो, सब सिद्ध नमौं सुखदायक हो॥
असुरेंन्द्र सुरेंद्र नरेंद्र जजैं, भुचरेंद्र खगेंद्र गणेंद्र भजैं ।
जर-जामन-मर्ण मिटायक हो, सब सिद्ध नमौं सुखदायक हो ॥
अमलं अचलं अकलं अकुलं, अछलं असलं अरलं अतुलं ।
अरलं सरलं शिवनायक हो, सब सिद्ध नमौं सुखदायक हो ॥
अजरं अमरं अघरं सुधरं, अडरं अहरं अमरं अधरं ।
अपरं असरं सबलायक हो, सब सिद्ध नमौं सुखदायक हो ॥
वृषवृन्द अमन्द न निंद लहै, निरदंद अफंद सुछंद रहै ।
नित आनंदवृंद बधायक हो, सब सिद्ध नमौं सुखदायक हो॥

भगवंत सुसंत अनंतगुनी, जयवंत महंत नमंत मुनी।
जगजंतुतणों अघघायक हो, सब सिद्ध नमौं सुखदायक हो ॥
अकलंक अटंक शुभंकर हो, निरडंक निशंक शिवंकर हो।
अभयंकर शंकर क्षायक हो, सब सिद्ध नमौं सुखदायक हो ॥
अतरंग अरंग असंग सदा, भवभंग अभंग उतंग सदा।
सरवंग अनंगनसायक हो, सब सिद्ध नमौं सुखदायक हो ॥
ब्रहमंड जु मंडलमंडन हो, तिहुँ दंड प्रचंड विहंडन हो।
चिदपिंड अखंड अकायक हो,सब सिद्ध नमौं सुखदायक हो ॥
निरभोग सुभोग वियोग हरै, निरजोग अरोग अशोग धरै।
भ्रमभंजन तीक्षन सायक हो,सब सिद्ध नमौं सुखदायक हो ॥
जय लक्ष्य अलक्ष्य सुलक्षक हो, जय दक्षक पक्षक रक्षक हो।
पण अक्ष प्रतक्ष खपायक हो,सब सिद्ध नमौं सुखदायक हो ॥
अप्रमाद अनाद सुस्वादरता, उनमाद विवाद विषादहता।
समता रमता अकषायक हो,सब सिद्ध नमौं सुखदायक हो ॥
निरभेद अखेद अछेद सही, निरवेद निवेदन वेद नहीं।
सब लोक-अलोकके ज्ञायक हो,सब सिद्ध नमौं सुखदायक हो॥
अमलीन अदीन अरीन हने, निज लीन अधीन अछीन बने।
जमकौ घनघात बचायक हो,सब सिद्ध नमौं सुखदायक हो ॥
न अहार निहार विहार कबै, अविकार अपार उदार सबै।
जगजीवनके मनभायक हो, सब सिद्ध नमौं सुखदायक हो ॥

असमंध अधंद अरंध भये, निरबंध अखंद अगंध ठये।
अमनं अतनं निरवायक हो, सब सिद्ध नमौं सुखदायक हो ॥
निरवर्ण अकर्ण उधर्ण बली, दुखहर्ण अशर्ण सुशर्ण भली।
बलि मोहकि फौज भगायक हो, सब सिद्ध नमौं सुखदायक हो।
अविरुद्ध अक्रुद्ध अजुद्ध प्रभू, अतिशुद्ध प्रबुद्ध समृद्ध विभू।
परमातम पूरन पायक हो, सब सिद्ध नमौं सुखदायक हो ॥
विररूप चिद्रूपस्वरूप द्युती, जसकूप अनूपम भूप भुती।
कृतकृत्य जगत्त्रयनायक हो, सब सिद्धि नमौं सुखदायक हो।
सब इष्ट अभीष्ट विशिष्ट हितू, उतकिष्ट वरिष्ट गरिष्ट मितू।
शिव तिष्ठत सर्व सहायक हो, सब सिद्ध नमौं सुखदायक हो॥
जय श्रीधर श्रीधर श्रीवर हो, जय श्रीकर श्रीभर श्रीझर हो।
जय ऋद्धि सुसिद्धि बढ़ायक हो, सब सिद्ध नमौं सुखदायक हो॥

सिद्ध सुगुण को कहि सकै ज्यों विलस्त नभ मान।
हिराचन्द तातैं जजै करहु सकल कल्यान॥

ॐ ह्रीं ...... अनाहतपराक्रमाय सकलकर्मविनिर्मुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥

सिद्ध जजै तिनको नहिं आवै आपदा,
पुत्र पौत्र धन धान्य लहै सुख सम्पदा।
इंद्र चंद्र धरणेंद्र जु होयकै
जावै मुकति मझार करम सब खोयकै॥

इत्याशीर्वादाय पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि

अर्घावली

सामान्य अर्घ

उदकचन्दनतन्दुलपुष्पकैश्चरुसुदीपसुधूपफलार्घकैः ।
धवलमङ्गलगानरवाकुले जिनगृहे जिननाथमहं यजे ।।

ॐ ह्रीं .... अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

देव शास्त्र गुरु

गीता छन्द

जल परम उज्ज्वल गंध अक्षत पुष्प चरु दीपक धरूँ ।
वर धूप निरमल फल विविध बहु जनमके पातक हरूँ ।।
इह भाँति अर्घ चढ़ाय नित भवि करत शिव पंकत मचूँ ।
अरहंत श्रुत सिद्धान्त गुरु निरग्रन्थ नित पूजा रचूँ ।।

दोहा

वसुविधि अर्घ संजोयके अति उछाह मन कीन ।
जासों पूजों परम पद देव शास्त्र गुरु तीन ।।

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो अनर्घपदप्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

बीस तीर्थंकर

जल फल आठों द्रव्य अर्घ कर प्रीति धरी है।
गणधर इंद्रन हूतैं थुति पूरी न करी है॥
द्यानत सेवक जानके जगतैं लेहु निकार।
सीमंधर जिन आदि दे बीस विदेह मंझार॥
श्री जिनराज हो भवतारण तरण जिहाज।

ॐ ह्रीं सीमंधर-जुगमंधर-बाहु-सुबाहु-संजातक-स्वयंप्रभु-ऋषभानन-अनन्तवीर्य-सूरप्रभु-विशालकीर्ति-वज्रधर-चन्द्रानन-चंद्रबाहु-भुजङ्गम-ईश्वर-नेमीश्वर-वीरसेन-महाभद्र-देवयशो-अजितवीर्यविद्यमानविंशतितीर्थङ्करेभ्यो अनर्घपदप्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

अकृत्रिम चैत्यालय

बसु कोटि सुछप्पन लाख ऊपर सहस सत्याणवे मानिये।
सत चार पै गिन ले इक्यासी भवन जिनवर जानिये॥
तिहुँ लोक भीतर सासते सुर असुर नर पूजा करें।
तिन भवनको हम अर्घ लेकै पूजि हैं जग दुख हरें॥

ॐ ह्रीं तीन लोक सम्बन्धी आठ करोड़ छप्पन लाख सत्तानवे हजार चारसौ इक्यासी अकृत्रिम चैत्यालयेभ्यो अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

कृत्रिम चैत्यालय

कृत्याकृत्रिमचारुचैत्यनिलयान् नित्यं त्रिलोकीगतान्
वन्दे भावनव्यन्तरान् द्युतिवरान् स्वर्गामरावासगान् ॥
सद्गन्धाक्षतपुष्पदामचरुकैः सद्दीपधूपैः फलै- ।
र्द्रव्यैर्नीरमुखैर्यजामि सततं दुष्कर्मणां शान्तये ॥ १ ॥

ओं ह्रीं कृत्रिमाकृत्रिमचैत्यालयसंबंधिजिनबिम्बेभ्योऽर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

सिद्ध-परमेष्ठी

जल फल वसु वृंदा अरघ अमंदा जगत अनंदाके कंदा ।
मेटो भव फंदा सब दुख दंदा हीराचन्दा तुम बन्दा ॥
त्रिभुवनके स्वामी त्रिभुवन नामी अंतरयामी अभिरामी ।
शिवपुरविश्रामी निजनिधि पामी सिद्ध जजामी सिरनामी ॥

ॐ ह्रीं सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

पञ्च परमेष्ठी

मनमाहिं भक्ति अनादि नमि हों देव अरहंतको सही ।
श्री सिद्ध पूजूँ अष्ट गुणमय सूरिगुण छत्तीस ही ॥
अंग-पूर्वधारी जजौं उपाध्याय साधु गुण अठबीस जी ।
ये पंच गुरु निरग्रंथ सुमंगलदायी जगदीश जी ॥

ॐ ह्रीं श्री अरहंत-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-सर्वसाधु-पंच-परमेष्ठिभ्यो अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

चौबीस तीर्थंकर

जल फल आठों शुचिसार ताको अर्घ करों।
तुमको अरपों भवतार भव तरि मोक्ष वरों॥
चौबीसों श्री जिनचन्द आनंद कन्द सही।
पद जजत हरत भव-फंद पावत मोक्ष मही॥

ॐ ह्रीं श्रीवृषभादिचतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यो अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

निर्वाणक्षेत्र

जल गंध अच्छत फूल चरु फल धूप दीपायन धरौं।
"द्यानत" करो निरभय जगत तैं जोर कर बिनती करौं॥
सम्मेदगिर गिरनार चम्पा पावापुर कैलास कौं।
पूजों सदा चौबीस जिन निर्वाणभूमि निवास कौं॥

ॐ ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थङ्करनिर्वाणक्षेत्रेभ्यो अनर्घपदप्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

सप्तऋषि

जल गंध अक्षत पुष्प चरुवर दीप धूप सु लावना।
फल ललित आठों द्रव्य मिश्रित अर्घ कीजे पावना॥
मन्वादि चारणऋद्धिधारक मुनिनकी पूजा करूँ।
ता करें पातिक हरें सारे सकल आनंद विस्तरूँ॥

ॐ ह्रीं श्रीमनु-सुरमनु-श्रीनिचय-सर्वसुन्दर-जयवान्-विनय-लालस-जयमित्रसप्तऋषिभ्यो अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

महार्घ

गीता छन्द

मैं देव श्री अर्हन्त पूजूँ सिद्ध पूजूँ चाव सों
आचार्य श्री उवझाय पूजूँ साधु पूजूँ भाव सों ।
अर्हन्त-भाषित वैन पूजूँ द्वादशांग रचे गनी
पूजूँ दिगम्बर गुरुचरन शिव हेत सब आशा हनी ॥
सर्वज्ञभाषित धर्म दशविधि दया-मय पूजूँ सदा ।
जजि भावना षोडश रतनत्रय जा बिना शिव नहिं कदा ॥
त्रैलोक्यके कृत्रिम अकृत्रिम चैत्य चैत्यालय जजूँ ।
पन मेरु नन्दीश्वर जिनालय खचर सुर पूजित भजूँ ॥
कैलास श्री सम्मेद श्री गिरनार गिरि पूजूँ सदा ।
चम्पापुरी पावापुरी पुनि और तीरथ सर्वदा ॥
चौबीस श्री जिनराज पूजूँ बीस क्षेत्र विदेह के ।
नामावली इक सहस वसु जय होय पति शिवगेह के ॥

दोहा

जल गंधाक्षत पुष्प चरु दीप धूप फल लाय ।
सर्व पूज्य पद पूज हूँ बहु विध भक्ति बढ़ाय ॥

ॐ ह्रीं निर्वाणक्षेत्रेभ्यो महार्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

शान्ति-पाठ

शांतिनाथ मुख शशि उनहारी । शील-गुणव्रत-संयमधारी ॥
लखन एक सौ आठ विराजैं । निरखत नयन कमलदल लाजैं ॥
पंचम चक्रवर्तिपद धारी । सोलस तीर्थंकर सुखकारी ॥
इंद्र नरेंद्र पूज्य जिन नायक । नमो शांतिहित शांति विधायक ॥
दिव्य विटप पहुपनकी बरषा । दुंदुभि आसन वाणी सरसा ॥
छत्र चमर भामंडल भारी । ये तुव प्रातिहार्य मनहारी ॥
शांति जिनेश शांति सुखदाई । जगत्पूज्य पूजौं शिर नाई ॥
परम शांति दीजै हम सबको । पढ़ैं तिन्हें पुनि चार संघको ॥

वसंततिलका

पूजैं जिन्हें मुकुट हार किरीट लाके ।
इंद्रादि देव अरु पूज्य पदाब्ज जाके ॥
सो शांतिनाथ वरवंश जगत्प्रदीप ।
मेरे लिये करहिं शांति सदा अनूप ॥६॥

इन्द्रवज्रा

संपूजकोंको प्रतिपालकोंको यतीनको औ यतिनायकोंको ।
राजा प्रजा राष्ट्र सुदेशको ले कीजै सुखी हे जिन शांतिको दे॥

स्रग्धरा छन्द

होवै सारी प्रजाको सुख बलयुत हो धर्मधारी नरेशा ।
होवै वर्षा समै पै तिलभर न रहै व्याधियोंका अँदेशा ॥
होवै चोरी न जारी सुसमय बरतै हो न दुष्काल मारी ।
सारे ही देश धारैं जिनवर-वृषको जो सदा सौख्यकारी ॥

दोहा

घातिकर्म जिन नाश करि पायो केवलराज ।
शांति करो सब जगतमें वृषभादिक जिनराज ॥

मन्दाक्रान्ता

शास्त्रोंका हो पठन सुखदा लाभ सत्संगतीका ।
सद्वृत्तोंका सुजस कहके दोष ढाकूँ सभीका ॥
बोलूँ प्यारे वचन हितके आपका रूप ध्याऊँ ।
तौ लौं सेऊँ चरण जिनके मोक्ष जौ लौं न पाऊँ ॥

आर्य्या

तव पद मेरे हियमें मम हिय तेरे पुनीत चरणोंमें ।
तब लौं लीन रहौ प्रभु जब लौं पाया न मुक्तिपद मैंने॥
अक्षर पद मात्रासे दूषित जो कछु कहा गया मुझसे ।
क्षमा करो प्रभु सो सब करुणा करि पुनि छुड़ाहु भवदुखसे॥
हे जगबन्धु जिनेश्वर ! पाऊँ तव चरण शरण बलिहारी ।
मरण समाधि सुदुर्लभ कर्मोंका क्षय सुबोध सुखकारी ॥

विसर्जन

बिन जाने वा जानके रही टूट जो कोय।
तुम प्रसादतैं परम गुरु सो सब पूरन होय ॥१॥
पूजनविधि जानूँ नहीं नहिं जानूं आह्वान।
और विसर्जन हू नहीं क्षमा करहु भगवान ॥२॥
मन्त्रहीन धनहीन हूँ क्रियाहीन जिनदेव।
क्षमा करहु राखहु मुझे देहु चरणकी सेव ॥३॥

स्तुतिपाठ

तुम तरण-तारण भव-निवारण भविकमन आनंदनो।
श्रीनाभिनंदन जगतवंदन आदिनाथ निरंजनो ॥
तुम आदिनाथ अनादि सेऊँ सेय पदपूजा करूँ।
कैलाश गिरिपर रिषभ जिनवर पदकमल हिरदै धरूँ ॥
तुम अजितनाथ अजीत जीते अष्टकर्म महाबली।
इह विरद सुनकर सरन आयो कृपा कीज्यो नाथजी ॥
तुम चंद्रवदन सु चंद्रलच्छन चंद्रपुरि परमेश्वरो।
महासेननंदन जगतवंदन चंद्रनाथ जिनेश्वरो ॥

तुम शांति पाँच कल्याण पूजों शुद्ध मन वच काय जू ।
दुर्भिक्ष चोरी पापनाशन विघन जाय पलाय जू ॥
तुम बालब्रह्म विवेक-सागर भव्य-कमल विकाशनो ।
श्रीनेमिनाथ पवित्र दिनकर पाप-तिमिर विनाशनो॥
जिन तजी राजुल राजकन्या कामसेन्या वश करी ।
चारित्ररथ चढ़ि होय दूलह जाय शिव-रमणी वरी ॥
कंदर्प दर्प सु सर्पलच्छन कमठ शठ निर्मद कियो ।
अश्वसेननंदन जगतवंदन सकल सँघ मंगल कियो ॥
जिनधरी बालकपणे दीक्षा कमठ-मान विदारकैं ।
श्रीपार्श्वनाथ जिनेंद्रके पद मैं नमों शिर धारकैं ॥
तुम कर्मघाता मोक्षदाता दीन जानि दया करो ।
सिद्धार्थनंदन जगतवंदन महावीर जिनेश्वरो ॥
छत्र तीन सोहैं सुर नर मोहैं वीनती अब धारिये ।
कर जोड़ सेवक वीनवै प्रभु आवागमन निवारिये ॥
अब होउ भव भव स्वामि मेरे मैं सदा सेवक रहों ।
कर जोड़ यो वरदान मांगूँ मोक्षफल जावत लहों ॥
जो एक माहीं एक राजत एक मांहिं अनेकनो ।
इक अनेककी नाहिं संख्या नमूं सिद्ध निरंजनो ॥

चौपाई

मैं तुम चरण-कमल गुण गाय। बहुविधि भक्ति करी मन लाय
जनम जनम प्रभु पाऊँ तोहि। यह सेवा-फल दीजे मोहि ॥
कृपा तिहारी ऐसी होय। जामन मरन मिटावो मोय।
बार बार मैं बिनती करूँ। तुम सेवा भव-सागर तरूँ ॥
नाम लेत सब दुख मिट जाय। तुम दर्शन देख्या प्रभु आय ॥
तुम हो प्रभु देवनके देव। मैं तो करूँ चरण तव सेव ॥
मैं आयो पूजनके काज। मेरो जन्म सफल भयो आज ॥
पूजा करके नवाऊँ शीश। मुझ अपराध क्षमहु जगदीश ॥

दोहा

सुख देना दुख मेटना यही तुम्हारी बान।
मो गरीबकी बीनती सुन लीज्यो भगवान ॥
पूजन करते देवकी आदि मध्य अवसान।
सुरगनके सुख भोगकर पावै मोक्ष निदान ॥
जैसी महिमा तुमविषैं और धरै नहिं कोय।
जो सूरजमें जोति है तारणमें नहिं सोय ॥
नाथ तिहारे नामतैं अघ छिन माहिं पलाय।
ज्यों दिनकर परकाशतैं अंधकार विनशाय ॥
बहुत प्रशंसा क्या करूँ मैं प्रभु बहुत अजान।
पूजाविधि जानूं नहीं सरन राखि भगवान ॥

[खण्ड २]

पर्व-पूजादि [संस्कृत]

षोडशकारण-पूजा

परम प्रमोदरूप इन्द्रके पदको धारणकर अपने अन्दर अपने-आपको धन्य मानता हुआ तीर्थङ्कर लक्ष्मीकी कारणभूत दर्शन-विशुद्धि आदि सोलह कारण भावनाओंकी मैं पूजा करता हूँ ॥१॥

[ओं ह्रीं दर्शनविशुद्धि आदि सोलह कारण, यहाँ आइए आइए संवौषट् ।

ओं ह्रीं दर्शनविशुद्धि आदि सोलह कारण, यहाँ ठहरिए ठहरिए ठः ठः ।

ओं ह्रीं दर्शनविशुद्धि आदि सोलह कारण, यहाँ मेरे सन्निकट हूजिए हूजिए वषट् ।]

सोनेकी झारीसे निकली हुई जलकी इन उन्नत धाराओंसे तीर्थङ्कर लक्ष्मीकी कारणभूत दर्शनविशुद्धि आदि सोलह कारण भावनाओंकी मैं पूजा करता हूँ ॥ २ ॥

[ओं ह्रीं दर्शनविशुद्धि, विनयसम्पन्नता, शील और व्रतोंमें अनतिचारता, आभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग, आभीक्ष्ण संवेग, शक्तिपूर्वक त्याग, शक्तिपूर्वक तप, साधुसमाधि, वैयावृत्त्यकरण, अर्हद्भक्ति, आचार्यभक्ति, बहुश्रुतभक्ति, प्रवचनभक्ति, आवश्यकापरिहाणि, मार्गप्रभावना और प्रवचनवत्सलत्वरूप तीर्थङ्करके सोलह कारणोंको जन्म, जरा और मृत्युका विनाश करनेके लिए जल अर्पित करता हूँ ।]

कपूरके पूरसे सुवासित श्रीखण्डके चन्दनसे तीर्थङ्कर लक्ष्मीकी कारणभूत दर्शनविशुद्धि आदि सोलह कारण भावनाओंकी मैं पूजा करता हूँ ॥ ३ ॥

[ओं ह्रीं·····सोलह कारणोंको संसार-तापका नाश करनेके लिए चन्दन अर्पित करता हूँ ।]

षोडशकारण-पूजा

ऐन्द्रं पदं प्राप्य परं प्रमोदं धन्यात्मतामात्मनि मन्यमानः ।
दृक्शुद्धि-मुख्यानि जिनेन्द्र-लक्ष्म्या महाम्यहं षोडश-कारणानि ॥

[ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणानि अत्रावतरत अवतरत संवौषट् ।

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणानि अत्र तिष्ठत तिष्ठत ठः ठः ।

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणानि अत्र मम सन्निहिता भवत भवत वषट् ।]

सुवर्ण-भृङ्गार-विनिर्गताभिः पानीय-धाराभिरिमाभिरुच्चैः ।
दृक्शुद्धि-मुख्यानि जिनेन्द्र-लक्ष्म्या महाम्यहं षोडशकारणानि॥

[ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्धि-विनयसम्पन्नता-शीलव्रतेष्वनतिचारा-भीक्ष्णज्ञानोपयोग-संवेग-शक्तितस्त्याग-तपः-साधुसमाधि - वैयावृत्त्य-करणार्हद्भक्ति-आचार्यभक्ति-बहुश्रुतभक्ति-प्रवचनभक्ति-आवश्यका-परिहाणि-मार्गप्रभावना-प्रवचनवात्सल्येतितीर्थकरत्वकारणेभ्यो जन्म-जरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।]

श्रीखण्ड-पिण्डोद्भव-चन्दनेन कर्पूर-पूरैः सुरभीकृतेन ।
दृक्शुद्धि-मुख्यानि जिनेन्द्र-लक्ष्म्या महाम्यहं षोडश-कारणानि॥

[ॐ ह्रीं···षोडशकारणेभ्यः संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा ।]

समस्त जगत्को रुचिकर, दीर्घ, अखण्ड, स्वच्छ और सुगन्धित अक्षतोंसे तीर्थङ्कर लक्ष्मीकी कारणभूत दर्शनविशुद्धि आदि सोलह कारण भावनाओंकी मैं पूजा करता हूँ ॥ ४ ॥

[ओं ह्रीं···सोलह कारणोंको अक्षय पदकी प्राप्तिके लिए अक्षत अर्पित करता हूँ।]

जिनपर भौंरे गुंजार कर रहे हैं ऐसे कमल, जाती, केतकी और चम्पा आदि प्रमुख फूलोंसे तीर्थङ्कर लक्ष्मीकी कारणभूत दर्शन-विशुद्धि आदि सोलह कारण भावनाओंकी मैं पूजा करता हूँ ॥५॥

[ओं ह्रीं···सोलह कारणोंको कामबाणका नाश करनेके लिए पुष्प अर्पित करता हूँ।]

सारभूत और ताजे पक्वान्नरूप नाना प्रकारके सुन्दर नैवेद्योंसे तीर्थङ्कर लक्ष्मीकी कारणभूत दर्शनविशुद्धि आदि सोलह कारण भावनाओंकी मैं पूजा करता हूँ ॥ ६ ॥

[ओं ह्रीं···सोलह कारणोंको क्षुधारोगका नाश करनेके लिए दीप अर्पित करता हूँ।]

जिनके प्रकाशसे अन्धकारका समूह नष्ट हो गया है ऐसे तेज और उल्लासमय शिखारूप प्रभायुक्त प्रदीपोंसे तीर्थंकर लक्ष्मी की कारणभूत सोलह कारण भावनाओंकी मैं पूजा करता हूँ ॥ ७ ॥

[ओं ह्रीं···सोलह कारणोंको मोहान्धकारका नाश करनेके लिए दीप अर्पित करता हूँ।]

अग्निमें आहुति देनेसे जिसकी दिव्य गन्ध निकल रही है ऐसी कपूर और कालागुरुके चूर्णकी धूपसे तीर्थंकर लक्ष्मीकी कारण-भूत सोलह कारण भावनाओंकी मैं पूजा करता हूँ ॥ ८ ॥

[ओं ह्रीं···सोलह कारणोंको दुष्ट आठ कर्मोंका नाश करनेके लिए धूप अर्पित करता हूँ।]

स्थूलैरखण्डैरमलैः सुगन्धैः शाल्यक्षतैः सर्व-जगन्नमस्यैः ।
दृक्शुद्धि-मुख्यानि जिनेन्द्र-लक्ष्म्या महाम्यहं षोडश-कारणानि॥

[ॐ ह्रीं ··· षोडशकारणेभ्योऽक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा]

गुञ्जद्द्विरेफैः शतपत्र-जाती-सत्केतकी-चम्पक-मुख्य-पुष्पैः ।
दृक्शुद्धि-मुख्यानि जिनेन्द्र-लक्ष्म्या महाम्यहं षोडश-कारणानि ॥

[ॐ ह्रीं ··· षोडशकारणेभ्यः कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ।]

नवीन-पक्वान्न-विशेषसारैर्नानाप्रकारैश्चरुभिर्वरिष्ठैः ।
दृक्शुद्धि-मुख्यानि जिनेन्द्र-लक्ष्म्या महाम्यहं षोडश-कारणानि॥

[ॐ ह्रीं ··· षोडशकारणेभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ।]

तेजोमयोल्लास-शिखैः प्रदीपैर्दीप-प्रभैर्ध्वस्त-तमो-वितानैः ।
दृक्शुद्धि-मुख्यानि जिनेन्द्र-लक्ष्म्या महाम्यहं षोडश-कारणानि॥

[ॐ ह्रीं ··· षोडशकारणेभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा ।]

कर्पूर-कृष्णागुरु-चूर्णरूपैर्धूपैर्हुताशाहुत-दिव्य-गन्धैः ।
दृक्शुद्धि-मुख्यानि जिनेन्द्र-लक्ष्म्या महाम्यहं षोडश-कारणानि॥

[ॐ ह्रीं ··· षोडशकारणेभ्यो दुष्टाष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ।]

नारियल, सुपारी, आम और बिजौरा आदि रसीले उत्तम फलोंसे तीर्थंकर लक्ष्मीकी कारणभूत दर्शनविशुद्धि आदि सोलह कारण भावनाओंकी मैं पूजा करता हूँ ॥ ९ ॥

[ओं ह्रीं सोलह कारणोंको मोक्षफलकी प्राप्तिके लिए फल अर्पित करता हूँ ।]

अर्हन्त पदकी कारण सोलह कारण भावनाओंकी पूजा विधिमें जल, चन्दन, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप और फलसे निर्मित अर्घपात्र मेरे लिए प्रशस्त मङ्गलका विस्तार करे ॥ १० ॥

[ओं ह्रीं सोलह कारणोंको अनर्घ्य पदकी प्राप्तिके लिए अर्घ अर्पित करता हूँ ।]

●

प्रत्येक-अर्घ

जब जब उपवास करे तब तब मोक्ष-सुखकी देनेवाली इन सोलह कारण भावनाओंको भी सुनना चाहिए ॥

[यन्त्रके ऊपर पुष्पाञ्जलि क्षेपण करता हूँ ।]

हिंसा, असत्य और मिथ्यात्वसे रहित तथा आठ अङ्ग सहित सम्यग्दर्शन दर्शनकी विशुद्धिका कारण है ॥ १ ॥

[ओं ह्रीं मैं दर्शनविशुद्धिके लिए अर्घ अर्पित करता हूँ ।]

मन, वचन और कर्मकी शुद्धिपूर्वक दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तपका जहाँ आदर किया जाता है वह विनयसम्पन्नता है ॥ २ ॥

[ओं ह्रीं मैं विनयसम्पन्नताके लिए अर्घ अर्पित करता हूँ ।]

सन्नालिकेराक्रमुकाम्र-बीजपूरादिभिः सारफलै रसालैः ।
दृक्शुद्धि-मुख्यानि जिनेन्द्र-लक्ष्म्या महाम्यहं षोडश-कारणानि॥

[ॐ ह्रीं···षोडशकारणेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा ।]

पानीय-चन्दनरसाक्षत-पुष्प-भोज्य-
सद्दीप-धूप-फल-कल्पितमर्घपात्रम् ।
आर्हन्त्य-हेत्वमल-षोडश-कारणानां
पूजा-विधौ विमल-मङ्गलमातनोतु ॥

[ॐ ह्रीं···षोडशकारणेभ्योऽनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।]

●

प्रत्येकार्घम्

यदा यदोपवासाः स्युराकर्ण्यन्ते तदा तदा ।
मोक्ष-सौख्यस्य कर्तॄणि कारणान्यपि षोडश ॥

[यन्त्रोपरि पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि]

असत्य-सहिता हिंसा मिथ्यात्वं च न दृश्यते ।
अष्टाङ्गं यत्र संयुक्तं दर्शनं तद्विशुद्धये ॥१॥

[ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्धयेऽर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।]

दर्शन-ज्ञान-चारित्र-तपसां यत्र गौरवम् ।
मनो-वाक्-काय-संशुद्ध्या सा ख्याता विनय-स्थितिः॥२॥

[ॐ ह्रीं विनयसंपन्नतायै अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।]

जहाँ पाँच व्रत सहित अनेक शीलोंसे परिपूर्णताको प्राप्त हुई पच्चीस क्रियाएँ होती हैं उसे शीलव्रत कहते हैं ॥३॥

[ओं ह्रीं निरतिचार शीलव्रतके लिए मैं अर्घ अर्पित करता हूँ ।]

योग्य कालमें पाठ, स्तवन और ध्यान करना, शास्त्रका मनन करना, गुरुको नमन करना और उपदेश देना इन्हें लोकमें अभीक्ष्णज्ञानोपयोगता कहते हैं ॥४॥

[ओं ह्रीं अभीक्ष्णज्ञानोपयोगके लिए मैं अर्घ अर्पित करता हूँ ।]

जहाँ पुत्र, मित्र, स्त्री और सांसारिक विषयोंसे विरक्ति होती है उसे पण्डितजन संवेग कहते हैं ॥५॥

[ओं ह्रीं संवेगके लिए मैं अर्घ अर्पित करता हूँ ।]

जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट पात्रोंको जहाँ शक्तिके अनुसार चार प्रकारका दान दिया जाता है वह दानसंस्थिति कहलाती है ॥६॥

[ओं ह्रीं शक्तिपूर्वक किये गये त्यागके लिए मैं अर्घ अर्पित करता हूँ।]

जहाँ मोक्षकी इच्छासे शक्ति और भक्तिके अनुसार बारह प्रकारका तपश्चरण किया जाता है वह तपसंस्थिति कहलाती है ॥७॥

[ओं ह्रीं शक्तिपूर्वक किये गये तपके लिए मैं अर्घ अर्पित करता हूँ ।]

मरण, उपसर्ग, रोग, इष्ट वियोग और अनिष्ट संयोगसे जहाँ किसी प्रकारका भय नहीं होता है उसे साधुसमाधि जानना चाहिए ॥८॥

[ओं ह्रीं साधुसमाधिके लिए मैं अर्घ अर्पित करता हूँ ।]

अनेक-शील-सम्पूर्णं व्रत-पञ्चक-संयुतम् ।
पञ्चविंशति-क्रिया यत्र तच्छीलव्रतमुच्यते ॥३॥
[ॐ ह्रीं निरतिचारशीलव्रतायार्घं निर्वपामीति स्वाहा ।]

काले पाठः स्तवो ध्यानं शास्त्रे चिन्ता गुरौ नतिः ।
यत्रोपदेशना लोके शास्त्र-ज्ञानोपयोगता ॥४॥
[ॐ ह्रीं अभीक्ष्णज्ञानोपयोगायार्घं निर्वपामीति स्वाहा ।]

पुत्र-मित्र-कलत्रेभ्यः संसार-विषयार्थतः ।
विरक्तिर्जायते यत्र स संवेगो बुधैः स्मृतः ॥५॥
[ॐ ह्रीं संवेगायार्घं निर्वपामीति स्वाहा ।]

जघन्य-मध्यमोत्कृष्ट-पात्रेभ्यो दीयते भृशम् ।
शक्त्या चतुर्विधं दानं सा ख्याता दान-संस्थितिः ॥६॥
[ॐ ह्रीं शक्तितस्त्यागायार्घं निर्वपामीति स्वाहा ।]

तपो द्वादश-भेदं हि क्रियते मोक्ष-लिप्सया ।
शक्तितो भक्तितो यत्र भवेत्सा तपसः स्थितिः ॥७॥
[ॐ ह्रीं शक्तितस्तपसे अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।]

आर्या

मरणोपसर्ग-रोगादिष्टवियोगादनिष्टसंयोगात् ।
न भयं यत्र प्रविशति साधु-समाधिः स विज्ञेयः ॥८॥
[ॐ ह्रीं साधुसमाधयेऽर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।]

जो मुनीश्वर कोढ़, उदरकी पीड़ा, शूल, वात, पित्त, सिरकी पीड़ा, खाँसी, स्वांस, बुढ़ापा आदि रोगोंसे पीड़ित हैं उन्हें भक्ति-पूर्वक दवा देना, आहार देना, सुश्रूषा करना और पथ्य देना ये कार्य जहाँ किये जाते हैं उसे वैयावृत्त्य कहते हैं ॥९-१०॥

[ओं ह्रीं वैयावृत्त्यकरणरूप धर्मके लिए मैं अर्घ अर्पित करता हूँ ।]

जहाँ मन, वचन और कायसे जिन नामके दो अक्षरों (अर्हं या जिन) का स्मरण किया जाता है उसे अर्हद्भक्ति कहते हैं ॥११॥

[ओं ह्रीं अर्हद्भक्तिके लिए मैं अर्घ अर्पित करता हूँ ।]

मुनियोंके आहार कर जाने पर आहार करना, आहारके लिए द्वारापेक्षण करना, मुनियोंका आहार न होनेपर रस आदि छोड़ देना या उपवास करना, उनके चरणोंकी वन्दना, पूजा, प्रणाम, विनय और नमस्कार ये क्रियाएँ जहाँ की जाती हैं वह गुरु-भक्ति मानी गई है ॥१२-१३॥

[ओं ह्रीं आचार्यभक्तिके लिए मैं अर्घ अर्पित करता हूँ ।]

जिसमें जीवोंकी जन्म-जन्मान्तरकी कथाओंका वर्णन है जो अनेकान्त तत्त्व और लोकालोकको बतलानेवाली है ऐसी जिन-वाणीका जहाँ व्याख्यान किया जाता है उसे बहुश्रुतभक्ति कहते हैं ॥१४॥

[ओं ह्रीं बहुश्रुतभक्तिके लिए मैं अर्घ अर्पित करता हूँ ।]

छः द्रव्य, पाँच अस्तिकाय, सात तत्त्व, नौ पदार्थ और कर्म प्रकृतियोंके विच्छेद आदिका जिसमें वर्णन है उस आगमका पढ़ना प्रवचनभक्ति है ॥१५॥

[ओं ह्रीं प्रवचनभक्तिके लिए मैं अर्घ अर्पित करता हूँ ।]

अनुष्टुप्

कुष्ठोदर-व्यथा-शूलैर्वात-पित्त-शिरोर्तिभिः ।
कास-श्वास-जरा-रोगैः पीडिता ये मुनीश्वराः ॥९॥
तेषां भैषज्यमाहारं शुश्रूषा पथ्यमादरात् ।
यत्रैतानि प्रवर्तन्ते वैयावृत्त्यं तदुच्यते ॥१०॥
[ॐ ह्रीं वैयावृत्त्यकरणायार्घं निर्वपामीति स्वाहा ।]
मनसा कर्मणा वाचा जिन-नामाक्षरद्वयम् ।
सदैव स्मर्यते यत्र सार्हद्भक्तिः प्रकीर्तिता ॥११॥
[ॐ ह्रीं अर्हद्भक्तये ऽर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।]
निर्ग्रन्थ-भुक्तितो भुक्तिस्तस्य द्वारावलोकनम् ।
तद्भोज्यालाभतो वस्तु-रसत्यागोपवासता ॥ १२॥
तत्पाद-वन्दना पूजा प्रणामो विनयो नतिः ।
एतानि यत्र जायन्ते गुरु-भक्तिर्मता च सा ॥१३॥
[ॐ ह्रीं आचार्यभक्तये ऽर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।]
भव-स्मृतिरनेकान्त-लोकालोक-प्रकाशिका ।
प्रोक्ता यत्रार्हता वाणी वर्ण्यते सा बहुश्रुतिः ॥१४॥
[ॐ ह्रीं बहुश्रुतभक्तये ऽर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।]
षड्-द्रव्य-पञ्च-कायत्वं सप्त-तत्त्वं नवार्थता ।
कर्म-प्रकृति-विच्छेदो यत्र प्रोक्तः स आगमः ॥१५॥
[ॐ ह्रीं प्रवचनभक्तये ऽर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।]

प्रतिक्रमण, कायोत्सर्ग, समता, वन्दना, स्तुति और स्वाध्याय ये छह आवश्यक जहाँ किये जाते हैं उसे आवश्यकभावना कहते हैं ॥१६॥

[ओं ह्रीं आवश्यकापरिहाणिके लिए मैं अर्घ अर्पित करता हूँ ।]

जिनदेवका अभिषेक, श्रुतका व्याख्यान, गीत, वाद्य तथा नृत्य आदि पूजा जहाँ की जाती है वह सन्मार्ग-प्रभावना है ॥१७॥

[ओं ह्रीं सन्मार्गप्रभावनाके लिए मैं अर्घ अर्पित करता हूँ ।]

चारित्र गुणके धारी शीलवान् मुनियोंका जहाँ आदर किया जाता है उसे वात्सल्य कहते हैं ॥१८॥

[ओं ह्रीं प्रवचनवत्सलत्वके लिए मैं अर्घ अर्पित करता हूँ ।]

जयमाला

अनेक गुणोंके समुद्र, अशुभका क्षय करनेवाले और केवलज्ञानरूपी सूर्य तीर्थङ्करोंको प्रणाम करके मैं संसार-भ्रमणको मिटानेवाली सोलह कारण भावनाओंका कथन करता हूँ ॥१॥

मन, वचन और कायसे त्रिकरण शुद्धि करके दृढ़तासे परम दर्शनविशुद्धिको धारण करो तथा मुक्तिरूपी स्त्रीके हृदयके सुन्दर हारस्वरूप चारों प्रकारकी विनयको मत छोड़ो ॥२॥

जिनकी भक्ति संसारके कारणोंका हरण करती है उन शीलके भेदोंका निरन्तर पालन करो तथा जो ज्ञानोपयोगमें समय बिताता है उसकी कीर्ति समस्त संसारमें फैल जाती है ॥३॥

प्रतिक्रमस्तनूत्सर्गः समता वन्दना स्तुतिः ।
स्वाध्यायः पठ्यते यत्र तदावश्यकमुच्यते ॥१६॥
[ॐ ह्रीं आवश्यकापरिहाणयेऽर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।]
जिन-स्नानं श्रुताख्यानं गीत-वाद्यं च नर्तनम् ।
यत्र प्रवर्तते पूजा सा सन्मार्गप्रभावना ॥१७॥
[ॐ ह्रीं सन्मार्गप्रभावनायै अर्घं निर्वपामीति स्वाहा]
चारित्र-गुण-युक्तानां मुनीनां शील-धारिणाम् ।
गौरवं क्रियते यत्र तद्वात्सल्यं च कथ्यते ॥१८॥
[ॐ ह्रीं प्रवचनवत्सलत्वायार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।]

जयमाला

भव भवहिं निवारण सोलह कारण पयडमि गुण-गण-सायरहं ।
पणविवि तित्थंकर असुह-खयंकर केवलणाण-दिवायरहं॥१॥

पद्धरि छंद

दिढ धरहु परम दंसण-विसुद्धि ।
मण-वयण-काय-विरइय-तिसुद्धि ।
मा छंडहु विणउ चउ-पयार
जो मुत्ति-वरांगण-हियहिं हार ॥२॥
अणुदिणु परिपालउ सील-भेउ, जो हत्ति हरइ संसार-हेउ ।
णाणोपजोग जो काल गमइ, तसु तणिय कित्तिभुवणयहिं भमइ॥३॥

जो संवेग और त्यागका अनुसरण करते हैं वे शीघ्र ही संसार-समुद्रसे पार होते हैं। जो सत्पात्रको चारों प्रकारका दान देते हैं वे भोगभूमिके प्रशस्त सुख प्राप्त करते हैं।

जो बारह प्रकारका तपश्चरण करते हैं वे स्वर्गमें देवोंकी दश प्रकारकी सम्पदा प्राप्त करते हैं। जो साधु समाधिको धारण करते हैं वे नियमसे कालके वश नहीं होते।

जो वैयावृत्त्य करना जानता है वह सब दोषोंको हरण करनेवाला होता है। जो मनमें अरहंत देवका स्मरण करता है उसे विषयभोग नष्ट करनेमें कोई विलम्ब नहीं लगता।

जो प्रवचनके समान गुरुओंको नमस्कार करते हैं वे चतुर्गति रूप संसारमें परिभ्रमण नहीं करते। जो मनुष्य उपाध्यायोंकी भक्ति करते हैं वे अपने रत्नत्रयके धारी होते हैं।

जो छह आवश्यकोंका चित्तसे पालन करते हैं वे लोकाग्रमें स्थित पञ्चम सिद्धगतिको प्राप्त होते हैं। जो मार्ग-प्रभावना करते हैं वे मरकर अहमिन्द्र होते हैं।

जो प्रवचन कार्यमें समर्थ होते हैं जिनेन्द्रके समान उनके कर्मोंका क्षय होता है। जो वात्सल्य पैदा होनेके कारण जुटाते हैं वे तीर्थङ्कर पद प्राप्त करते हैं।

व्रत और शीलके धारी जो प्राणी कर्मोंका नाश करनेवाले इन सोलह कारणोंका पालन करते हैं वे स्वर्गमें इन्द्र और पृथ्वी पर नरेन्द्रका पद पाकर अन्तमें मुक्तिरूपी स्त्रीके हृदयको हरनेवाले होते हैं, अर्थात् मुक्ति प्राप्त करते हैं।

[ओं ह्रीं दर्शनविशुद्धि आदि सोलह कारणोंको अनर्घ्यपदकी प्राप्तिके लिए मैं अर्घ अर्पित करता हूँ।]

संवेउ चाउ जे अणुसरंति, वेएण भवण्णउ ते तरंति।
जे चउविह-दाण सुपत्त देय, ते भोगभूमि-सुह सत्थ लेय ॥

जे तव तवंति बारह-पयार, ते सग्ग-सुरहँ दह-विहव-सार।
जे साहु-समाधि धरंति थक्कु, सो हवइ ण कालमुहं धुवक्कु ॥

जो जाणइ वेयावच्चकरण, सो होइ सव्व-दोसाण हरण।
जो चिंतइ मणि अरिहंत देव, तसु विसय हणंतइ कवण खेव ॥

पव्वयण-सरिस जे गुरु णमंति, चउगइ-संसार ण ते भमंति।
बहु-सुयहँ भत्ति जे णर करंति। अप्पउ रयण-त्तय ते धरंति॥

जो छह आवासइ चित्त देइ, सो सिद्ध पंच सहरत्थ लेइ।
जे मग्ग-पहावण आयरंति, ते अहमिंदत्तणु संभवंति ॥

जे पवयण-कज्ज-समत्थ हंति, तहँ कम्म जिणिंदह खवण भंति।
जे वच्छलच्छ-कारण वहंति, ते तित्थयरत्तउ पुह लहंति ॥

घत्ता

जे सोलह-कारण कम्म-वियारण जे धरंति वय-सील-धरा।
ते दिवि अमरेसुर पहुमि णरेसुर सिद्धवरंगण-हियहि हरा ॥

[ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्धयादिषोडशकारणेभ्योऽनर्घपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।]

जो पवित्र यतिवर इन सोलह कारण-भावनाओंकी भावना करते हैं वे निश्चयसे तीर्थंकरपद, परिपूर्ण आयु, उत्तम कुल, सम्पत्ति, मेरु पर विधिपूर्वक अभिषेक, देवतापद, राज्यसुख, अनेक प्रकारके तप और अन्तमें सुखका स्थान मोक्षको प्राप्त करते हैं।

[आशीर्वाद]

•

पञ्च-मेरु-पूजा [पुष्पाञ्जलि-पूजा]

सुदर्शनमेरु

पुष्पांजलि व्रतकी शुद्धिके लिए आह्वानन आदि विधिके साथ सुदर्शन मेरु पर स्थित जिनप्रतिमाओंको स्थापना करता हूँ ॥१॥

[ओं ह्रीं सुदर्शन मेरुसम्बन्धी जिनचैत्यालयोंमें स्थित जिनप्रतिमासमूह यहां आइए आइए संवौषट्।

ओं ह्रीं सुदर्शन मेरुसम्बन्धी जिनचैत्यालयोंमें स्थित जिनप्रतिमासमूह यहां ठहरिये ठहरिये ठः ठः।

ओं ह्रीं सुदर्शन मेरु सम्बन्धी जिनचैत्यालयोंमें स्थित जिनप्रतिमासमूह यहां मेरे निकटवर्ती होइए होइए वषट्।]

चन्द्रमाकी स्वच्छ किरणोंके समान गंगाजलकी निर्मल धारासे प्रथम सुदर्शन मेरु सम्बन्धी चारों दिशाओंके सोलह जिनालयोंकी नित्य पूजा करो ॥२॥

[ओं ह्रीं सुदर्शन मेरुसम्बन्धी भद्रशाल, नन्दन, सौमनस और पाण्डुक वनके पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तरदिशासम्बन्धी जिन-चैत्यालयोंमें स्थित जिनबिम्बोंके लिए मैं जल अर्पण करता हूँ।]

एताः षोडश-भावना यतिवराः कुर्वन्ति ये निर्मला-
स्ते वै तीर्थकरस्य नाम पदवीमायुर्लभन्ते कुलम् ।
वित्तं काञ्चन-पर्वतेषु विधिना स्नानार्चनं देवतां
राज्यं सौख्यमनेकधा वर-तपो मोक्षं च सौख्यास्पदम् ॥

[इत्याशीर्वादः ।]

•

पञ्च-मेरु-पूजा [पुष्पाञ्जलि-पूजा]

सुदर्शनमेरु

जिनान्संस्थापयाम्यत्राह्वाननादि-विधानतः ।
सुदर्शन-भवान् पुष्पाञ्जलि-व्रत-विशुद्धये ॥१॥

[ॐ ह्रीं सुदर्शनमेरुसम्बन्धिजिनचैत्यालयस्थ-जिनप्रतिमासमूह अत्र अवतर अवतर संवौषट् ।

ॐ ह्रीं सुदर्शनमेरुसम्बन्धिजिनचैत्यालयस्थ-जिनप्रतिमासमूह अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः ।

ॐ ह्रीं सुदर्शनमेरुसम्बन्धिजिनचैत्यालयस्थ-जिनप्रतिमासमूह अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् ।]

स्वर्धुनी-जल-निर्मल-धारया
विशद-कान्ति-निशाकर-भारया ।
प्रथम-मेरु-सुदर्शन-दिक्स्थितान्
यजत षोडश-नित्य-जिनालयान् ॥२॥

[ॐ ह्रीं सुदर्शनमेरुसम्बन्धिभद्रशाल-नन्दन-सौमनस-पाण्डुक-वनसम्बन्धिपूर्वदक्षिणपश्चिमोत्तरस्थजिनचैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्यो जलं निर्वपामीति स्वाहा ।]

सुगन्धित कुङ्कुमके सौरभसे मिश्रित घिसे हुए मलयागिरिके चन्दनके जलसे प्रथम सुदर्शन मेरुसम्बन्धी चारों दिशाओंके सोलह जिनालयोंकी प्रतिदिन पूजा करो ॥३॥

[ओं ह्रीं सुदर्शन मेरुसम्बन्धी...जिनबिम्बोंके लिए मैं चन्दन अर्पित करता हूँ ।]

अखंड, निर्मल और चन्द्रमाकी किरणोंके समान धवल शालि के अक्षतोंसे प्रथम सुदर्शन मेरुसम्बन्धी चारों दिशाओंके सोलह जिनालयोंकी पूजा करो ॥ ४ ॥

[ओं ह्रीं सुदर्शन मेरुसम्बन्धी···जिनबिम्बोंके लिए मैं अक्षत अर्पित करता हूँ ।]

कल्पवृक्ष, कमल, चंपा, वकुल, मालती और केतकीके सुन्दर पुष्पोंसे प्रथम सुदर्शन मेरुसम्बन्धी चारों दिशाओंके सोलह जिनालयोंकी नित्य पूजा करो ॥ ५ ॥

[ओं ह्रीं सुदर्शन मेरुसम्बन्धी···जिनबिम्बोंके लिए मैं पुष्प अर्पित करता हूँ ।]

सोनेके बर्तनमें रक्खे हुए और उत्तम स्वादवाले बढ़िया घीके सुगन्धित पकवानोंसे प्रथम मेरु सम्बन्धी चारों दिशाओंके सोलह जिनालयोंकी नित्य पूजा करो ॥ ६ ॥

[ओं ह्रीं सुदर्शन मेरुसम्बन्धी······जिनबिम्बोंके लिए मैं नैवेद्य अर्पित करता हूँ ।]

मलय-चन्दन-मर्दित-सद्द्रवैः सुरभि-कुङ्कुम-सौरभ-मिश्रितैः ।
प्रथम-मेरु-सुदर्शन-दिक्स्थितान् .... ॥३॥

[ॐ ह्रीं सुदर्शनमेरुसम्बन्धि···जिनबिम्बेभ्यः चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा ।]

अशकलैरमलैः शुभ-शालिजैर्विधुकरोज्ज्वल-कान्तिभिरक्षतैः ।
प्रथम-मेरु-सुदर्शन-दिक्स्थितान्.................. ॥४॥

[ॐ ह्रीं सुदर्शनमेरुसम्बन्धि···जिनबिम्बेभ्यः अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा ।]

अमरपुष्प-सुवारिज-चम्पकैर्वकुल-मालति-केतकि-सम्भवैः ।
प्रथम-मेरु-सुदर्शन-दिक्स्थितान्................. ॥५॥

[ॐ ह्रीं सुदर्शनमेरुसम्बन्धि···जिनबिम्बेभ्यः पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ।]

घृतवरादि-सुगन्ध-चरूत्करैः कनक-पात्रचितैर्रनाप्रियैः ।
प्रथम-मेरु-सुदर्शन-दिक्स्थितान्................ ॥६॥

[ॐ ह्रीं सुदर्शनमेरुसम्बन्धि···जिनबिम्बेभ्यो नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ।]

चारों ओर प्रकाश करनेवाले तथा चञ्चल ज्योतिवाले मणि और घीके नये दीपकोंसे प्रथम मेरुसम्बन्धी चारों दिशाओंके सोलह जिनालयोंकी नित्य पूजा करो ॥ ७ ॥

[ओं ह्रीं सुदर्शन मेरुसम्बन्धी······जिनबिम्बोंके लिए मैं दीप अर्पित करता हूँ ।

अपनी सुगन्धसे संसारको सुगन्धित करनेवाली ऐसी अगुरु और हरिचन्दनकी धूपसे प्रथम मेरुसम्बन्धी चारों दिशाओंके सोलह चैत्यालयोंकी नित्य पूजा करो ॥ ८ ॥

[ओं ह्रीं सुदर्शन मेरुसम्बन्धी······जिनबिम्बोंके लिए मैं धूप अर्पित करता हूँ ।]

सुन्दर, सरस और पके हुए सुपारी अनार और नीबू आदि फलोंसे प्रथम मेरुसम्बन्धी चार दिशाओंके सोलह चैत्यालयोंकी नित्य पूजा करो ॥ ९ ॥

[ओं ह्रीं सुदर्शन मेरुसम्बन्धी······जिनबिम्बोंके लिए मैं फल अर्पित करता हूँ ।]

मैं (रत्नचन्द्र) निर्मल जलकी धारा, शुभ्र चन्दन, स्वच्छ अक्षत, सुन्दर फूल, रुचिकर और अपने लिए इष्ट नैवेद्य, अन्धकार को नष्ट करनेवाले दीपक, जलती हुई धूप तथा फलोंसे चाँदीके पात्रमें अर्घ बनाकर मेरुसम्बन्धी जिनलयोंकी पूजा करता हूँ ॥१०॥

[ओं ह्रीं सुदर्शन मेरुसम्बन्धी······जिनबिम्बोंके लिए मैं अर्घ्य समर्पित करता हूँ ।]

मणि-घृतादि-नवैर्वरदीपिकैस्तरल-दीप्ति-विरोचित-दिग्गणैः ।
प्रथम-मेरु-सुदर्शन-दिक्स्थितान् ··············· ॥ ७ ॥

[ॐ ह्रीं सुदर्शनमेरुसम्बन्धि···जिनबिम्बेभ्यो दीपं निर्वपामीति स्वाहा ।]

अगुरु-देवतरूद्भव-धूपकैः परिमलोद्गम-धूपित-विष्टपैः ।
प्रथम-मेरु-सुदर्शन-दिक्स्थितान् ··············· ॥८॥

[ॐ ह्रीं सुदर्शनमेरुसम्बन्धि···जिनबिम्बेभ्यो धूपं निर्वपामीति स्वाहा ।]

क्रमुक-दाडिम-निम्बुक-सत्फलैः प्रमुख-पक्व-फलैः सरसोत्तमैः ।
प्रथम-मेरु-सुदर्शन-दिक्स्थितान् ··················॥ ९ ॥

[ॐ ह्रीं सुदर्शनमेरुसम्बन्धि···जिनबिम्बेभ्यः फलं निर्वपामीति स्वाहा ।]

विमल-सलिल-धारा-शुभ्र-गन्धाक्षतोघैः
कुसुम - निकर - चारु - स्वेष्ट - नैवेद्य-वर्गैः ।
प्रहत-तिमिर - दीपैर्धूप - धूम्रैः फलैश्च
रजत-रचितमर्घं रत्नचन्द्रो भजेऽहम् ॥१०॥

[ॐ ह्रीं सुदर्शनमेरुसम्बन्धि···जिनबिम्बेभ्योऽर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।]

जयमाला

जम्बूद्वीपमें स्थित जिस महान् सुमेरु पर्वतकी पूर्व आदि चारों दिशाओंमें भद्रशाल आदि चार वन अनेक पृथिवीसे उत्पन्न हुए वृक्षोंसे सुशोभित हैं उस पर्वतसम्बन्धी सोलह महाजिनालयोंमें स्थित जिन-प्रतिमाओंकी भक्तिपूर्वक अनेक स्तोत्रोंसे मैं स्तुति करता हूँ।

जन्म-मरणसे रहित, देवताओंसे नमस्कृत, निर्दोष, स्वेद-रहित, दूधके समान देहवाले तथा सबके द्वारा पूजित प्रथम मेरु सम्बन्धी वीतराग जिनेन्द्र भव्योंके उपकारके लिए हों।

शुद्ध वर्णसे अङ्कित शुद्ध भावको धारण करने वाले, रत्नोंके वर्णोंके समान उज्ज्वल, समीचीन गुणोंसे परिपूर्ण तथा सबके द्वारा पूजित प्रथम मेरुसम्बन्धी वीतराग जिनेन्द्र भव्योंके उपकारके लिए हों।

मान और मायासे रहित, मुक्तिसम्बन्धी भावोंसे परिपूर्ण, विशुद्ध केवलज्ञानसे शंकादि दोषोंको नष्ट करनेवाले और भले प्रकारसे पूजित प्रथम मेरुसम्बन्धी वीतराग जिनेन्द्र भव्योंके उपकारके लिए हों।

पूर्ण चन्द्रमाके समान कान्तिको धारण करनेवाले, चन्द्र-सूर्यके समान प्रतापी, तेजस्वी तथा भले प्रकार पूजित प्रथम मेरु-सम्बन्धी वीतराग जिनेन्द्र भव्योंके उपकारके लिए हों।

जयमाला

जम्बूद्वीप-धरा-स्थितस्य सुमहामेरोश्च पूर्वादिषु
दिग्भागेषु चतुर्षु षोडश-महाचैत्यालये सद्वनैः ।
नाना - द्रुमाज - विभूषितैर्मणिमयैर्भद्रादिशालान्तकैः
संयुक्तस्य निवासिनो जिनवरान् भक्त्या स्तवीमि स्तवैः ॥

जन्मदूरा नता देवकैर्निष्कलाः स्वेदवीताः सदा क्षीर-देहाकुलाः ।
मेरु-सम्बन्धिनो वीतरागा जिनाः सन्तु भव्योपकाराय संपूजिताः॥

शुद्ध-वर्णाङ्किताः शुद्ध-भावोद्धरा रत्न-वर्णोज्ज्वलाः सद्गुणैर्निर्भराः।
मेरु-सम्बन्धिनो वीतरागा जिनाः सन्तु भव्योपकाराय संपूजिताः॥

मान-मायातिगा मुक्ति-भावोद्धराः शुद्ध-सद्बोध-शङ्कादि-दोषाहराः ।
मेरु-सम्बन्धिनो वीतरागा जिनाः सन्तु भव्योपकाराय संपूजिताः॥

पूर्ण-चन्द्राभ-तेजोभिनर्विशकाः चन्द्र-सूर्य-प्रतापाः करावेशकाः।
मेरु-सम्बन्धिनो वीतरागा जिनाः सन्तु भव्योपकाराय संपूजिताः ॥

इस प्रकार स्वर्ग-मोक्षादि फलोंको देनेवाले, सर्वज्ञ, गहन पापको नाश करनेवाले, देव और इन्द्रोंसे पूज्य, विलाप आदि समस्त दोषोंसे रहित और कान्तिमान् वीतराग जिनेन्द्र सबकी सिद्धिके कारण हों।

[ओं ह्रीं सुदर्शनमेरुसम्बन्धी भद्रशाल, नन्दन, सोमनस और पाण्डुक वनके पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिशाके जिन-चैत्यालयोंमें स्थित जिनबिम्बोंके लिए मैं पूर्णार्घ समर्पित करता हूँ।]

सभी व्रतोंमें मुख्य, सारभूत और सज्जन पुरुषोंको सब प्रकारका सुख देनेवाला यह पुष्पाञ्जलिव्रत तुम लोगोंकी अविनश्वर लक्ष्मीको पुष्ट करे।

[आशीर्वाद]

•

विजयमेरु

धातकीखण्डकी पूर्व दिशामें स्थित विजयमेरुसम्बन्धी जिनेन्द्रों की आह्वानन आदि विधानसे मैं स्थापना करता हूँ॥ १॥

[ओं ह्रीं विजयमेरुसम्बन्धी जिनप्रतिमासमूह, यहाँ आइए आइए संवौषट्।

ओं ह्रीं विजयमेरुसम्बन्धी जिनप्रतिमासमूह, यहाँ ठहरिए ठहरिए ठः ठः।

ओं ह्रीं विजय मेरुसम्बन्धी जिनप्रतिमासमूह, यहाँ मेरे निकटवर्ती हूजिए हूजिए वषट्।]

इति रचित-फलौघाः प्राप्त-सुज्ञान-पारा
हत-तम-घन-पापा नम्र-सर्वामरेन्द्राः ।
गत-निखिल-विलापाः कान्ति-दीप्ता जिनेन्द्राः
अपगत-घन-मोहाः सन्तु सिद्ध्यै जिनेन्द्राः ॥

[ॐ ह्रीं सुदर्शन-मेरुसंबंधि-भद्रशाल-नन्दन-सौमनस-पाण्डुकवन-संबंधिपूर्व-दक्षिण-पश्चिमोत्तरस्थ - जिनचैत्यालयस्थ - जिनबिम्बेभ्यः पूर्णार्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥]

सर्व-व्रताधिपं सारं सर्व-सौख्यकरं सताम् ।
पुष्पाञ्जलिव्रतं पुष्याद्युष्माकं शाश्वतीं श्रियम् ॥

[इत्याशीर्वादः]

●

विजयमेरु

जिनान्संस्थापयाम्यत्राह्वाननादि-विधानतः
धातकीखण्ड - पूर्वाशा - मेरोर्विजय - वर्तिनः ॥१॥

[ॐ ह्रीं विजयमेरुसम्बन्धिजिनप्रतिमासमूह ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् ।

ॐ ह्रीं विजयमेरुसम्बन्धिजिनप्रतिमासमूह ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः ।

ॐ ह्रीं विजयमेरुसम्बन्धिजिनप्रतिमासमूह ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् ।]

श्रेष्ठ तीर्थके दोषरहित सुन्दर जलसे तथा गङ्गाके जलसे भरी हुई निर्मल भारीसे धातकीखण्डमें स्थित द्वितीय मेरुसम्बन्धी रत्नमय सुन्दर बिम्बोंकी मैं (रत्नचन्द्र) पूजा करता हूँ।

[ओं ह्रीं विजयमेरुसम्बन्धी भद्रशाल, नन्दन, सौमनस और पाण्डुकवनके पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिशामें स्थित जिन चैत्यालयों सम्बन्धी जिनप्रतिमाओंको जन्म और मरण का नाश करनेके लिए जल समर्पित करता हूँ।]

सुगन्धसे आकर मँडराते हुए भ्रमरोंसे युक्त तथा पूर्ण चन्द्रमाके समान अभिराम ऐसे केशर और चन्दनके द्रवसे धातकीखण्डस्थ द्वितीय मेरुसम्बन्धी रत्नमयी उज्ज्वल जिन-प्रतिमाओंकी मैं पूजा करता हूँ।

[ओं ह्रीं विजयमेरु सम्बन्धी······जिनबिम्बोंके लिए मैं चन्दन अर्पित करता हूँ।]

सुगन्धसे आकर गुञ्जार करते हुए भ्रमरोंसे युक्त अखण्ड शालि धान्यके सुन्दर अक्षतोंसे धातकीखण्डस्थ द्वितीय मेरुसम्बन्धी रत्नमयी जिन-प्रतिमाओंकी मैं पूजा करता हूँ।

[ओं ह्रीं विजयमेरुसम्बन्धी······जिनबिम्बोंके लिए मैं अक्षत अर्पित करता हूँ।]

खूब महकनेवाले लौंग, मन्दारमाला और कमल आदि फूलोंसे धातकीखण्डस्थ द्वितीय मेरुसम्बन्धी रत्नमयी जिन-प्रतिमाओंकी मैं पूजा करता हूँ।

ओं ह्रीं विजयमेरुसम्बन्धी······जिनबिम्बोंके लिए मैं पुष्प अर्पित करता हूँ।]

सुतोयैः सुतीर्थोद्भवैर्वीतदोषैः सुगाङ्गेय-भृङ्गारनालास्यसङ्गैः ।
द्वितीयं सुमेरुं शुभं धातकीस्थं यजे रत्न-बिम्बोज्ज्वलं रत्नचन्द्रः।

[ॐ ह्रीं विजयमेरुसम्बन्धिभद्रशाल-नन्दन-सौमनस-पाण्डुक-वन-सम्बन्धि-पूर्वदक्षिणपश्चिमोत्तरस्थजिनचैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्यो जन्मजराविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ॥]

सुगन्धागतालि-व्रजैः कुङ्कुमादि-द्रवैश्चन्दनैश्चन्द्रपूर्णाभिरामैः ।
द्वितीयं सुमेरुं शुभं धातकीस्थं यजे रत्न-बिम्बोज्ज्वलं रत्नचन्द्रः ॥

[ॐ ह्रीं विजयमेरुसम्बन्धि······जिनबिम्बेभ्यः चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा]

सुशाल्यक्षतैरक्षतैर्दिव्य-देहैः सुगन्धाक्षतारब्ध-भृङ्गार-गानैः ।
द्वितीयं सुमेरुं शुभं धातकीस्थं यजे रत्न-बिम्बोज्ज्वलं रत्नचन्द्रः ॥

[ॐ ह्रीं विजयमेरुसम्बन्धि···जिनबिम्बेभ्यो अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा ।]

लवङ्गैः प्रसूनैस्ततामोदवद्भिः सुमन्दार-माला-पयोजादि-जातैः ।
द्वितीयं सुमेरुं शुभं धातकीस्थं यजे रत्न-बिम्बोज्ज्वलं रत्नचन्द्रः ॥

[ॐ ह्रीं विजयमेरुसम्बन्धि···जिनबिम्बेभ्यः पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ।]

गायके घी में उत्तम शालीके चावलोंसे बनाये गये लड्डू और मॉंड आदि स्वादिष्ट खाद्य पदार्थोंसे धातकीखण्डस्थ द्वितीय मेरुसम्बन्धी रत्नमय जिनबिम्बोंकी मैं पूजा करता हूँ।

ओं ह्रीं विजयमेरुसम्बन्धी……जिनबिम्बोंके लिए मैं नैवेद्य अर्पित करता हूँ।]

प्रज्वलित हुई लौसे अत्यन्त देदीप्यमान और अन्धकारको नष्ट करनेवाले रत्नमयी दीपकोंसे धातकीखण्डस्थ द्वितीय मेरु सम्बन्धी रत्नमयी जिनबिम्बोंकी मैं पूजा करता हूँ।

[ओं ह्रीं विजयमेरुसम्बन्धी……जिनबिम्बोंके लिए मैं दीप अर्पित करता हूँ।]

मँडराते हुए भौंरोंसे युक्त दसों दिशाओंको सुगन्धित करनेवाली बढ़िया चन्दनादिकी धूपसे धातकीखण्डस्थ रत्नमयी जिनबिम्बोंकी मैं पूजा करता हूँ।

[ओं ह्रीं विजयमेरुसम्बन्धी…जिनबिम्बोंके लिए मैं धूप समर्पित करता हूँ।]

मनको अत्यन्त रुचिकर केला, नारियल, आम और नीबू आदि उत्तम फलोंसे धातकीखण्डस्थ द्वितीय मेरुसम्बन्धी रत्नमयी जिनबिम्बोंकी मैं पूजा करता हूँ।

[ॐ ह्रीं विजयमेरुसम्बन्धी……जिनबिम्बोंके लिए मैं फल अर्पित करता हूँ।]

सोनेके पात्रमें रखकर विशुद्ध आठ द्रव्योंसे द्वितीय विजयमेरु सम्बन्धी जिन-प्रतिमाओंका अर्घावतरण करता हूँ।

[ॐ ह्रीं विजयमेरुसम्बन्धी……जिनबिम्बोंके लिए मैं अर्घ्य अर्पित करता हूँ।]

मनोज्ञैः सुखाद्यैर्गवीनाज्यतप्तैः सुशाल्योदनैर्मोदकैर्मण्डकाद्यैः ।
द्वितीयं सुमेरुं शुभं धातकीस्थं यजे रत्न-बिम्बोज्ज्वलं रत्नचन्द्रः ॥

[ॐ ह्रीं विजयमेरुसम्बन्धि…जिनबिम्बेभ्यो नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ।]

प्रदीपैर्हत-ध्वान्त-रत्नादिभूतैर्ज्वलत्कीलजातैर्भृशं भासुरैश्च ।
द्वितीयं सुमेरुं शुभं धातकीस्थं यजे रत्न-बिम्बोज्ज्वलं रत्नचन्द्रः ॥

[ॐ ह्रीं विजयमेरुसम्बन्धि…जिनबिम्बेभ्यो दीपं निर्वपामीति स्वाहा ।]

सुधूपैः सुगन्धीकृताशा-समूहैर्भ्रमद्भृङ्ग-यूथैः शुभैश्चन्दनाद्यैः ।
द्वितीयं सुमेरुं शुभं धातकीस्थं यजे रत्न-बिम्बोज्ज्वलं रत्नचन्द्रः ॥

[ॐ ह्रीं विजयमेरुसम्बन्धि…जिनबिम्बेभ्यो धूपं निर्वपामीति स्वाहा ।]

शुभैर्मोचि-चोचाम्र-जम्बीरकाद्यैर्मनोऽभीष्ट-दान-प्रदैः सत्फलाद्यैः ।
द्वितीयं सुमेरुं शुभं धातकीस्थं यजे रत्न-बिम्बोज्ज्वलं रत्नचन्द्रः ॥

[ॐ ह्रीं विजयमेरुसम्बन्धि…जिनबिम्बेभ्यः फलं निर्वपामीति स्वाहा ।]

विशुद्धैरष्ट-सद्द्रव्यैरर्घमुत्तारयाम्यहम् ।
हेम-पात्र-स्थितं भक्त्या जिनानां विजयौकसाम् ॥१०॥

[ॐ ह्रीं विजयमेरुसम्बन्धि…जिनबिम्बेभ्योऽर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।]

जयमाला

सब पापोंसे रहित, अन्तरङ्ग और बहिरङ्ग लक्ष्मीसे युक्त, गणधरों द्वारा सेवित, कर्मरूपी कीचड़को धोनेवाले, कामके मानको ध्वस्त करनेवाले, मिथ्यात्वके बन्धनसे रहित और सभी पदार्थों को साक्षात् करनेवाले वे अर्थात् द्वितीय मेरुसम्बन्धी जिनेन्द्र जयवन्त हों ॥११॥

हे मोहरहित, कामरूपी सर्पको नष्ट करनेवाले, विवक्षावश सदा अनेक प्रकारका उपदेश करनेवाले और कषायरूपी दावानल के लिए जलके समान उत्तम वर्णवाले मुक्तिमें स्थित जिनेन्द्र देव हमपर प्रसन्न हों ॥१२॥

हे निष्काम, नीरोग, निर्दोष, श्रेष्ठ, प्रकीर्णकोंसे शोभायमान शुद्ध, कलङ्करहित, श्रेष्ठ चारित्रके धारी और पापियोंके मानको मर्दन करनेवाले निरंश भव्य जिनेन्द्र मुझपर प्रसन्न हों ॥१३॥

हे अपने ज्ञानसे तीनों लोकोंको सजग करनेवाले, अनन्त चतुष्टयसे युक्त, संसारसमुद्रसे पारङ्गत, अन्तरङ्ग-बहिरङ्ग सब प्रकारके परिग्रहसे रहित और भव्योंको तारनेवाले जिनेन्द्र मुझपर प्रसन्न हों ॥१४॥

हे तपश्चरणके भारसे कर्मकलङ्कको नष्ट करनेवाले, नीरोग, भोगरहित, सबसे अलग, शङ्कारहित, अखंड और चैतन्यमय देहका प्रकाश करनेवाले मुक्तिमें स्थित जिनेन्द्र मुझपर प्रसन्न हों ॥१५॥

हे अठारह दोषोंसे रहित, गुणोंके पिटारे, मान रूपी अन्धकारको खण्डित करनेवाले और अपार संसार रूपी समुद्रसे तारनेके लिए नौकाके समान मुक्तिमें स्थित जिनेन्द्र मुझपर प्रसन्न हों ॥१६॥

जयमाला

सकल-कलिल-मुक्ता सर्व-सम्पत्ति-युक्ता
गणधर-गण-सेव्याः कर्म-पङ्क-प्रणष्टाः ।
प्रहत-मदन-मानास्त्यक्त-मिथ्यात्व-पाशाः
कलित-निखिल-भावास्ते जिनेन्द्रा जयन्तु ॥११॥

विमोह विमारित-काम-भुजङ्ग अनेक-सदाविधि-भाषित-भङ्ग ।
कषाय-दवानल-तत्त्व-सुरङ्ग प्रसीद जिनोत्तम मुक्ति-प्रसङ्ग॥१२॥

निरीह निरामय निर्मल हंस प्रकीर्णक-राजित शुद्ध सुवंस ।
अनिन्द्य-चरित्र विमानित-कंस प्रसीद जिनोत्तम भव्य-निरंश ॥

प्रबोध विबुद्ध-जगत्त्रयसार, अनन्त-चतुष्टय सागर-पार ।
निवारित-सर्व-परिग्रह-भार प्रसीद जिनोत्तम भव्य-सुतार॥१४॥

तपोभर-दारित-कर्म-कलङ्क विरोग विभोग वियोग निशंक ।
अखण्डित चिन्मय-देह-प्रकाश प्रसीद जिनोत्तम मुक्ति-प्रसङ्ग ॥

विवर्जित-दोष गुणौघ-करण्ड प्रसारित-मान-तमो-मद-दण्ड ।
अपार-भवोदधि-तार-तरण्ड प्रसीद जिनोत्तम मुक्ति-प्रसङ्ग ॥

क्षायिक सम्यक्त्व क्षायिक ज्ञान, और क्षायिक चारित्रके धारी, संसारसे पार होनेवाले, पूर्ण चन्द्रमाके समान मुखवाले, अनन्त सुखसे संयुक्त, अनेक भवोंको जाननेवाले और प्रकाशमान ज्ञानसे संयुक्त वे जिनेन्द्र भगवान् हमें मुक्तिरूपी साम्राज्यलक्ष्मी प्रदान करें ॥१७॥

[ओं ह्रीं विजयमेरुसम्बन्धी भद्रशाल, नन्दन, सौमनस और पाण्डुक वनकी पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिशामें स्थित जिनचैत्यालयोंके जिन बिम्बोंके लिए मैं पूर्णार्घ अर्पित करता हूँ ।]

सभी व्रतोंमें श्रेष्ठ, सारभूत और धर्मात्माओंको सुखकारी पुष्पाञ्जलि व्रत आपको शाश्वतिक लक्ष्मी प्रदान करे ॥१८॥

[आशीर्वाद]

•

अचलमेरु

धातकीखण्डके पश्चिम दिशामें स्थित अचल मेरुसम्बन्धी जिनेन्द्रोंकी आह्वानन आदि विधिसे मैं स्थापना करता हूँ ॥१॥

[ओं ह्रीं अचलमेरुसम्बन्धी जिनप्रतिमासमूह ! यहाँ आइए आइए संवौषट् ।

ओं ह्रीं अचलमेरुसम्बन्धी जिनप्रतिमासमूह ! यहाँ ठहरिए, ठहरिए, ठः ठः ।

ओं ह्रीं अचलमेरुसम्बन्धी जिनप्रतिमासमूह ! यहाँ मेरे सन्निकट होइए होइए, वषट् ।]

दृगवगम-चरित्रा प्राप्त-संसार-पारा
सकल-शशि-निभास्याः सर्व-सौख्यादि-वासाः।
विदित-भव-विशिष्टाः प्रोल्लसज्ज्ञान-शिष्टाः
ददतु जिनवरास्ते मुक्ति-साम्राज्य-लक्ष्मीम् ॥१७॥

[ॐ ह्रीं विजयमेरुसम्बन्धिभद्रशाल-नन्दन-सौमनस-पाण्डुक-वनसम्बन्धिपूर्व-दक्षिण-पश्चिमोत्तरस्थजिनचैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्यः पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।]

सर्व-व्रताधिपं सारं सर्व-सौख्य-करं सताम्।
पुष्पाञ्जलि-व्रतं पुण्याद्युष्माकं शाश्वतीं श्रियम् ॥१८॥

[इत्याशीर्वादः]

•

अचलमेरु

जिनान् संस्थापयाम्यत्राह्वाननादि-विधानतः।
धातकी-पश्चिमाशास्थाचल-मेरु-प्रवर्त्तिनः ॥१॥

[ॐ ह्रीं अचलमेरुसम्बन्धिजिनप्रतिमासमूह अत्र अवतर अवतर संवौषट्।

ॐ ह्रीं अचलमेरुसंबन्धिजिनप्रतिमासमूह अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।

ॐ ह्रीं अचलमेरुसम्बन्धिजिनप्रतिमासमूह अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।]

सुगन्धित श्रेष्ठ जलकी धारासे जरा और मरणका नाश करनेवाले अचलमेरुसम्बन्धी जिनेन्द्रोंकी मैं पूजा करता हूँ ॥२॥

[ओं ह्रीं अचलमेरुसम्बन्धी······जिनबिम्बोंके लिए मैं जल अर्पित करता हूँ।]

सुन्दर चन्दन,कपूर और केशर आदि विलेपनसे जरा और जन्मका नाश करनेवाले अचल मेरुसम्बन्धी जिनेन्द्रोंकी मैं पूजा करता हूँ ॥३॥

[ओं ह्रीं अचलमेरुसम्बन्धी······जिनबिम्बोंके लिए मैं चन्दन अर्पित करता हूँ ।]

अविनाशी आनन्द और सुख देनेवाले सुन्दर अक्षतोंसे जरा और जन्मका नाश करनेवाले अचल मेरुसम्बन्धी जिनेन्द्रोंकी मैं पूजा करता हूँ ॥४॥

[ओं ह्रीं अचलमेरुसम्बन्धी······जिनबिम्बोंके लिए मैं अक्षत अर्पित करता हूँ ।]

चमेली, कुन्द, कमल और चम्पा आदि अनेक फूलोंसे जरा और जन्मका नाश करनेवाले अचल मेरुसम्बन्धी जिनेन्द्रोंकी मैं पूजा करता हूँ ॥५॥

[ओं ह्रीं अचलमेरुसम्बन्धी······जिनबिम्बोंके लिए मैं पुष्प अर्पित करता हूँ।]

मानो सुकृत ही हों ऐसे खाद्य और स्वाद्य आदि उत्तम पक्वान्नोंसे जरा और जन्मका नाश करनेवाले अचल मेरुसम्बन्धी जिनेन्द्रोंकी मैं पूजा करता हूँ ॥६॥

[ओं ह्रीं अचलमेरुसम्बन्धी······जिनबिम्बोंके लिए मैं नैवेद्य अर्पित करता हूँ ।]

सौरभ्याहृत-सद्गन्ध-सारया जलधारया ।
अचल-मेरु-जिनेन्द्राय जरा-जन्म-विनाशिने ॥२॥

[ॐ ह्रीं अचलमेरुसम्बन्धि······जिनबिम्बेभ्यो जलं निर्वपामीति स्वाहा ।]

चारु-चन्दन-कर्पूर-काश्मीरादि-विलेपनैः ।
अचल-मेरु-जिनेन्द्राय जरा-जन्म-विनाशिने ॥३॥

[ॐ ह्रीं अचलमेरुसम्बन्धि······जिनबिम्बेभ्यः चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा ।]

अक्षतैरक्षतानन्द-सुख-दान-विधानकैः ।
अचल-मेरु-जिनेन्द्राय जरा-जन्म-विनाशिने ॥४॥

[ॐ ह्रीं अचलमेरुसम्बन्धि······जिनबिम्बेभ्यो अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा ।]

जाति-कुन्दादि-राजीव-चम्पकानेक-पल्लवैः ।
अचल-मेरु-जिनेन्द्राय जरा-जन्म-विनाशिने ॥५॥

[ॐ ह्रीं अचलमेरुसम्बन्धि······जिनबिम्बेभ्यः पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ।]

खाद्य-स्वाद्यपदैः द्रव्यैः सन्नाज्यैः सुकृतैरिव ।
अचल-मेरु-जिनेन्द्राय जरा-जन्म-विनाशिने ॥६॥

[ॐ ह्रीं अचलमेरुसम्बन्धि······जिनबिम्बेभ्यो नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ।]

मानो पुण्यजन ही हों ऐसे प्रकाशमान दीपोंसे जरा और जन्मका विनाश करनेवाले अचल मेरुसम्बन्धी जिनेन्द्रोंकी मैं पूजा करता हूँ ॥७॥

[ओं ह्रीं अचलमेरुसम्बन्धी······जिनबिम्बोंके लिए दीप अर्पित करता हूँ।]

अनेक कर्मोंको जलानेमें समर्थ धूपसे सुगन्धी देनेवाले तथा जरा और जन्मका नाश करनेवाले अचल मेरुसम्बन्धी जिनेन्द्रोंकी मैं पूजा करता हूँ ॥८॥

[ओं ह्रीं अचलमेरुसम्बन्धी······जिनबिम्बोंके लिए धूप अर्पित करता हूँ।]

मानों पुण्यजन ही हों ऐसे नारियल आदि बड़े बड़े फलोंसे जरा और जन्मका नाश करनेवाले अचल मेरुसम्बन्धी जिनेन्द्रोंकी मैं पूजा करता हूँ ॥९॥

[ओं ह्रीं अचलमेरुसम्बन्धी······जिनबिम्बोंके लिए फल अर्पित करता हूँ।]

जल, गन्ध, अक्षत, अनेक प्रकारके पुष्प, नैवेद्य और दीपकसे जरा और जन्मका नाश करनेवाले अचल मेरुसम्बन्धी जिनेन्द्रोंकी मैं पूजा करता हूँ ॥१०॥

[ओं ह्रीं अचलमेरुसम्बन्धी······जिनबिम्बोंके लिए अर्घ अर्पित करता हूँ।]

जयमाला

श्री धातकीखण्डके विदेहक्षेत्रमें स्थित जिन-प्रतिमाओंसे युक्त, सुशोभित रत्न और चन्द्ररूपी प्रदीपोंसे युक्त और उत्तम पार्थिव गुणोंसे वर्द्धमान तृतीय मेरुकी मैं स्तुति करता हूँ ॥१॥

जहाँ देव, विद्याधर और किन्नर देवोंका आगमन होता रहता है, जहां यात्रा निमित्त आये हुए मुनिवरोंके चरणोंका शब्द होता है और जहाँ विविध प्रकारकी रचनाका प्रसार हो रहा है, वैभव-सम्पन्न उस गिरिराजकी मैं वन्दना करता हूँ ॥२॥

दशाग्रैः प्रस्फुरद्दीपैर्दीपैः पुण्य-जनैरिव ।
अचल-मेरु-जिनेन्द्राय जरा-जन्म-विनाशिने ॥७॥

[ॐ ह्रीं अचलमेरुसम्बन्धि···जिनबिम्बेभ्यो दीपं निर्वपामीति स्वाहा ।]

धूपैः संधूपितानेक-कर्मभिर्धूपदायिने ।
अचल-मेरु-जिनेन्द्राय जरा-जन्म-विनाशिने ॥८॥

[ॐ ह्रीं अचलमेरुसम्बन्धि···जिनबिम्बेभ्यो धूपं निर्वपामीति स्वाहा ।]

नारिकेलादिभिः पुञ्जैर्फलैः पुण्यजनैरिव ।
अचल-मेरु-जिनेन्द्राय जरा-जन्म-विनाशिने ॥९॥

[ॐ ह्रीं अचलमेरुसम्बन्धि···जिनबिम्बेभ्यो फलं निर्वपामीति स्वाहा ।]

जलगन्धाक्षतानेक-पुष्प-नैवेद्य-दीपकैः ।
अचल-मेरु-जिनेन्द्राय जरा-जन्म-विनाशिने ॥१०॥

[ॐ ह्रीं अचलमेरुसम्बन्धि···जिनबिम्बेभ्यो अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।]

जयमाला

श्रीधातकीखण्ड-विदेह-संस्थं तृतीयमेरुं जिन-संप्रयुक्तम् ।
शुम्भत्प्रदीपोत्कर-रत्नचन्द्रं संस्तौम्यहं सद्गुण-वर्द्धमानम् ॥१॥

सुर-खेचर-किन्नर-देव-गमं । यात्रागत-चरण-मुनीन्द्र-रणं ।
नाना-रचना-रचित-प्रसरं । वन्दे गिरिराजमहं विभरं ॥२॥

जिसके दोनों पार्श्व मणियोंसे विभूषित हो रहे हैं, जो पर्यायार्थिक दृष्टिसे विनाशीक है, जो जिन-प्रतिमाओंके मन्दिरोंसे सुशोभित है और जहाँ जिनवरके गुणोंका मङ्गलगान हो रहा है, वैभवसम्पन्न उस गिरिराजकी मैं वन्दना करता हूँ ॥३॥

जो भव्योंकी भावपूर्ण भावनाओंसे सुशोभित हो रहा है, देव और मनुष्य जिसके आश्रयसे प्रचुर भोगोंका भोग करते रहते हैं और जो पृथिवीमेंसे निकले हुए जलके शुभ गुणोंसे युक्त है, वैभवसम्पन्न उस गिरिराजकी मैं वन्दना करता हूँ ॥४॥

जहाँपर भद्रशालवनकी विशाल परिधि है, जो दश प्रकारके कल्पवृक्षोंकी मालासे युक्त है, जिसका रङ्ग सोनेके समान है और जो पर्वतोंमें प्रधान है, वैभवसम्पन्न उस गिरिराजकी मैं वन्दना करता हूँ ॥५॥

जो कलशयुक्त स्फटिक मणिकी शिलाको धारण करता है, क्षीर समुद्रके जलसे विशुद्ध है, प्राणियोंके योग्य नाना प्रकारके वैभवसे युक्त है और जनताके तापको हरनेवाला है, वैभवसम्पन्न उस गिरिराजकी मैं वन्दना करता हूँ ॥६॥

जो विविध प्रकारके मणियोंसे निबद्ध है, जिसके चारों ओर पृथिवीगत भद्रशालवन फैला हुआ है, जिसके पटल स्वर्णरचित हैं, जो सोपान-पंक्तिसे युक्त है, जो निर्मल स्फटिकमणिसे सघन हो रहा है और जिसकी चारों ओरका ऊपरका भाग पाण्डुकवनसे व्याप्त है उस गिरिराजकी अमूल्य अर्घपात्रसे पूजा करो ॥७॥

[ओं ह्रीं अचलमेरुसम्बन्धी···जिनबिम्बोंके लिए मैं अर्घ अर्पित करता हूँ ।]

सभी व्रतोंमें श्रेष्ठ, सारभूत और सज्जन पुरुषोंको मुक्ति सुख देनेवाला यह पुष्पाञ्जलिव्रत आप लोगोंको शाश्वत मोक्ष-लक्ष्मी प्रदान करे ॥८॥

[आशीर्वाद]

मणि-भूषित-पार्श्व-युगं सलयं। सुविराजित-प्रतिमा-जिन-निलयं।
जिनवर-मङ्गल-गुण-गण-निचयं। वन्दे गिरिराजमहं विभरं॥

भविक-भाव-भावित-शोभङ्गं। संश्रित-सुर-नर-कृत-घन-भोगं।
सम्भव-भुव-जल-गुण-शुभ-प्रकरं। वन्दे गिरिराजमहं विभरं॥

भद्रशाल-वन-परिधि-विशालं। दशविध-कल्पवृक्ष - कर-मालं।
कनक-वर्ण-लक्षण-तनुमैन्द्रं। वन्दे गिरिराजमहं विभरं॥५॥

स्फटिक-शिला-धर-कलश-निबद्धं। क्षीरोदधि-नीरं जल-शुद्धं।
नाना-विभवं जन-ताप-हरं। वन्दे गिरिराजमहं विभरं॥

विविध-मणि-निबद्धं भूगताभद्रशालं
कनक-रचित-भक्तिं बद्धसोपान-पंक्तिम्।
स्फटिक-विमल-सान्द्रं पाण्डुकाव्याप्त-देशं
भजत गिरिवरं तं ह्यर्घपात्रैरनर्घैः॥७॥

[ॐ ह्रीं अचलमेरुसम्बन्धि… जिनबिम्बेभ्योऽर्घं निर्वपामीति स्वाहा।]

सर्व-व्रताधिपं सारं मुक्ति-सौख्य-वरं सताम्।
पुष्पाञ्जलिव्रतं पुष्याद्युष्माकं शाश्वतीं श्रियम्॥८॥

[आशीर्वादः]

मन्दिरमेरु

मैं पुष्पाञ्जलि व्रतको विशुद्धताके लिए आह्वानन आदि विधिसे मन्दिरमेरुसम्बन्धी जिनप्रतिमाओंकी स्थापना करता हूँ ॥१॥

[ओं ह्रीं मन्दिरमेरुसम्बन्धी जिनप्रतिमासमूह ! यहाँ आइए आइए संवौषट् ।

ओं ह्रीं मन्दिरमेरुसम्बन्धी जिनप्रतिमासमूह ! यहाँ ठहरिए, ठहरिए ठः ठः ।

ओं ह्रीं मन्दिरमेरुसम्बन्धी जिनप्रतिमासमूह ! यहाँ मेरे सन्निकट होइए, होइए वषट् ।]

अङ्गको पवित्र करनेवाले, संसारके आतपको हरनेवाले और अत्यन्त ठंडे गंगाके रमणीक जलसे सभी इन्द्रोंसे पूजनीय पुष्कर द्वीपमें स्थित श्रीमन्दिरमेरुकी मैं पूजा करता हूँ ॥२॥

[ओं ह्रीं मन्दिरमेरुसम्बन्धी······जिनबिम्बोंके लिए मैं जल अर्पित करता हूँ ।]

वनमें उत्पन्न हुए, अत्यन्त सुगन्धित और कपूरमिश्रित काश्मीरी केशरके रससे तथा हरिचन्दन आदिसे सभी इन्द्रोंसे पूजनीय पुष्कर द्वीपमें स्थित श्रीमन्दिरमेरुकी मैं पूजा करता हूँ ॥३॥

[ओं ह्रीं मन्दिरमेरुसम्बन्धी······जिनबिम्बोंके लिए मैं चन्दन अर्पित करता हूँ ।]

चन्द्रमाके समान स्वच्छ, घ्राण इन्द्रियके लिए प्रिय लगनेवाले, सच्चे, निर्मल और अखंड कलम धान्यके अक्षतोंसे सब इन्द्रों द्वारा पूज्य पुष्कर द्वीपके श्री मन्दिरमेरुकी मैं पूजा करता हूँ ॥४॥

[ओं ह्रीं मन्दिरमेरुसम्बन्धी······जिनबिम्बोंके लिए मैं अक्षत अर्पित करता हूँ ।]

मन्दिरमेरु

जिनान् संस्थापयाम्यत्राह्वाननादि-विधानतः ।
मेरु-मन्दिर-नामानः पुष्पाञ्जलि-विशुद्धये ॥१॥

[ॐ ह्रीं मन्दिरमेरुसम्बन्धिजिनप्रतिमासमूह ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् ।
ॐ ह्रीं मन्दिरमेरुसम्बन्धि जिनप्रतिमासमूह अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः ।
ॐ ह्रीं मन्दिरमेरुसम्बन्धिजिनप्रतिमासमूह अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् ।]

गङ्गागतैर्जल-चयैः सुपवित्रताङ्गै
रम्यैः सुशीतलतरैर्भव-ताप-हारैः ।
मेरुं यजेऽखिल-सुरेन्द्र-समर्चनीयं
श्रीमन्दिरं वितत-पुष्कर-द्वीप-संस्थम् ॥२॥

[ॐ ह्रीं मन्दिरमेरुसम्बन्धि······जिन-बिम्बेभ्यो जलं निर्वपामीति स्वाहा ।]

काश्मीर-कुङ्कुम-रसैर्हरि-चन्दनाद्यैः
गन्धोत्कटैर्वन-भवैर्घनसार-मिश्रैः ।
मेरुं यजेऽखिल-सुरेन्द्र-समर्चनीयं·········॥३॥

[ॐ ह्रीं मन्दिरमेरुसम्बन्धि······जिनबिम्बेभ्यः चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा ।]

चन्द्रांशु-गौर-विहितैः कलमाक्षतौघै-
र्घ्राणप्रियैरवितथैर्विमलैरखंडैः ।
मेरुं यजेऽखिल-सुरेन्द्र-समर्चनीयं·········॥४॥

[ॐ ह्रीं मन्दिरमेरुसम्बन्धि······जिनबिम्बेभ्यो अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा ।]

सुगन्धसे जिनपर भौंरे मँडरा रहे हैं ऐसे कल्पवृक्षके पुष्प मिश्रित चम्पक आदि सुन्दर पुष्पोंसे इन्द्रों द्वारा पूज्य पुष्कर द्वीप के श्रीमन्दिरमेरुकी मैं पूजा करता हूँ ॥५॥

[ओं ह्रीं मन्दिरमेरुसम्बन्धी······जिनबिम्बोंके लिए मैं पुष्प अर्पित करता हूँ ।]

सोनेके बर्तनमें रक्खे हुए और रसनेन्द्रियके लिए प्रिय अनेक प्रकारके घीके पकवानोंसे इन्द्रों द्वारा पूजनीय पुष्कर द्वीपके श्रीमन्दिरमेरुकी मैं पूजा करता हूँ ॥६॥

[ओं ह्रीं मन्दिरमेरुसम्बन्धी······जिनबिम्बोंके लिए मैं नैवेद्य अर्पित करता हूँ ।]

जिनकी किरणें भासमान हो रहीं हैं और मनोहर ज्योति निकल रही है उन अन्धकारको नष्ट करनेवाले अनेक दीपकोंसे इन्द्रों द्वारा पूज्य पुष्कर द्वीपके श्रीमन्दिरमेरुकी मैं पूजा करता हूँ ॥७॥

[ओं ह्रीं मन्दिरमेरुसम्बन्धी······जिनबिम्बोंके लिए मैं दीप अर्पित करता हूँ ।]

कालागुरु, देवदारु और हरिचन्दन आदि सुगन्धित वस्तुओंकी सुन्दर धूप बनाकर उसके धूँएसे इन्द्रों द्वारा पूज्य पुष्कर द्वीपके श्रीमन्दिरमेरुकी मैं पूजा करता हूँ ॥८॥

[ओं ह्रीं मन्दिरमेरुसम्बन्धी······जिनबिम्बोंके लिए मैं धूप अर्पित करता हूँ ।]

गन्धागतालि-निवहैः शुभ-चम्पकादि-
पुष्पोत्करैरमरपुष्प-युतैर्मनोज्ञैः ।
मेरुं यजेऽखिल-सुरेन्द्र-समर्चनीयं·········॥५॥
[ओं ह्रीं मन्दिरमेरुसम्बन्धि······जिनबिम्बेभ्यो पुष्पं निर्व-
पामीति स्वाहा ।]

स्वर्णादि-पात्र-निहितैर्घृत-पक्व-खण्डै-
र्नानाविधैर्घृतवरै रसनेन्द्रियेष्टैः ।
मेरुं यजेऽखिल-सुरेन्द्र-समर्चनीयं·········॥६॥
[ॐ ह्रीं मन्दिरमेरुसम्बन्धि······जिनबिम्बेभ्यो नैवेद्यं निर्व-
पामीति स्वाहा ।]

कर्पूर-दीप-निचयैर्निहितान्धकारैः
सद्भासितांशु-निकरैः शुभ-कील-जालैः ।
मेरुं यजेऽखिल-सुरेन्द्रसमर्चनीयं·········॥ ७ ॥
[ॐ ह्रीं मन्दिरमेरुसम्बन्धि······जिनबिम्बेभ्यो दीपं निर्व-
पामीति स्वाहा ।]

कालागुरु-त्रिदश-दारु-सुचन्दनादि-
द्रव्योद्भवैः सुभग-गन्ध-सधूप-धूम्रैः
मेरुं यजेऽखिल-सुरेन्द्र-समर्चनीयं·········॥८॥
[ॐ ह्रीं मन्दिरमेरुसम्बन्धि······जिनबिम्बेभ्यो धूपं निर्व-
पामीति स्वाहा ।]

नारङ्गी, सुपारी, पनस, आम, केला, नारियल और शीलाङ्गलि प्रमुख सुन्दर तथा ताजे फलोंसे इन्द्रों द्वारा पूज्य पुष्कर द्वीपके श्रीमन्दिर मेरुका मैं पूजा करता हूँ ॥९॥

[ओं ह्रीं मन्दिरमेरुसम्बन्धी······जिनबिम्बोंके लिए मैं फल अर्पित करता हूँ ।]

जल, चन्दन, अक्षत, मनोहर पुष्प, नैवेद्य, श्रेष्ठ धूप और फलोंसे यतियोंद्वारा पूजनीय श्रीमन्दिर मेरुका मैं (रत्नचन्द्र) अर्घा वतरण करता हूँ ॥१०॥

[ओं ह्रीं···श्रीमन्दिरमेरुसम्बन्धी······जिनबिम्बोंके लिए मैं अर्घ्य अर्पित करता हूँ ।]

जयमाला

सोलह लाख योजनका शोभासम्पन्न पुष्करार्द्ध द्वीप है। उसके पूर्व विदेहमें इन्द्रों द्वारा पूज्य मन्दिर नामका सुमेरु पर्वत है जो सुवर्ण और पाँच प्रकारके रत्नोंसे जड़ा हुआ है और नाना वृक्षोंसे संकीर्ण है उस पर्वतसम्बन्धी जिन मन्दिरोंके गुणोंकी मैं सदा स्तुति करता हूँ।

देव, विद्याधर और असुर जिनकी पूजा करते हैं, किन्नरियोंके गीतोंकी मधुर ध्वनिसे जो मुखरित हो रहे हैं, अनेक देवाङ्गनाएँ जहाँ सुन्दर नृत्य करती हैं उन देदीप्यमान जिन मन्दिरोंकी मैं पूजा करता हूँ।

जहाँ जिनेन्द्रके जन्म-कल्याणक महोत्सवसे देवोंकी सेना मोह ली जाती है, अनेक सुन्दर देवाङ्गनाएँ दिखाई देती हैं और जो फहराती हुई अनेक प्रकारकी ध्वजाओंसे शोभायमान हो रहे हैं उन देदीप्यमान जिन-मन्दिरोंकी मैं पूजा करता हूँ।

नारिङ्ग-पूग-पनसाम्र-सुमोच-चोचैः
शीलाञ्जलि-प्रमुख-भव्य-फलैः सुरम्यैः ।
मेरुं यजेऽखिल-सुरेन्द्र-समर्चनीयं·········॥९॥
[ॐ ह्रीं मन्दिरमेरुसम्बन्धि···जिनबिम्बेभ्यो फलं निर्वपामीति स्वाहा]

जलैः सुगन्धाक्षत-चारु-पुष्पैर्नैवेद्य-दीपैर्वर-धूप-वर्गैः ।
फलैर्महार्घं ह्यवतारयामि श्रीरत्नचन्द्रो यति-वृन्द-सेव्यः ॥

[ॐ ह्रीं मन्दिरमेरुसम्बन्धि भद्रशालवननन्दनवनसौमनसवनपाण्डुकवनसम्बन्धिपूर्वदक्षिणपश्चिमोत्तरस्थ - जिनचैत्यालयस्थ-जिनबिम्बेभ्यो फलं निर्वपामीति स्वाहा ।]

जयमाला

प्रोद्यत्षोडश-लक्ष-योजन-मित-श्री-पुष्करार्द्ध-स्थितः
श्रीमत्पूर्व-विदेह-मन्दिर-गिरिर्देवेन्द्र-वृन्दार्चितः ।
चञ्चत्पञ्च-सुवर्ण-रत्न-जडितो नाना-द्रुमौघोर्जितः
तत्सम्बन्धि-जिनौकसां गुण-गणान् संस्तौम्यहं सर्वदा ॥

देव-विद्याधरैश्चासुरैश्चर्चितं, किन्नरी-गीत-कल-गान-संजृंभितम् ।
नर्तितानेक-देवाङ्गना-सुन्दरं, श्रीजिनागारवारं भजे भासुरम् ॥

जन्मकल्याण-संमोहितामर-बलं, दर्शितानेक-देवाङ्गना-सुन्दरम् ।
प्रोल्लसत्केतु-मालालयैः सुन्दरं, श्रीजिनागारवारं भजे भासुरम् ॥

जहाँ अनेक धूपघटोंसे कोठे महँक रहे हैं, रत्नके खम्भों पर जहाँ चारों ओर भौंरे मँडरा रहे हैं और जहाँ आठ महामंगल द्रव्य रक्खे हुए हैं उन देदीप्यमान जिन-मन्दिरोंकी मैं पूजा करता हूँ ॥१४॥

जहाँ सदा ताल, वीणा, मृदङ्ग और नगाड़े आदि बजते रहते हैं, कल्पवृक्ष, उनके फल, बावड़ी और तालाब आदि मौजूद हैं और सदा जंघाचारण ऋद्धिधारी मुनियोंका आवागमन बना रहता है उन देदीप्यमान जिन-मन्दिरोंकी मैं पूजा करता हूँ ॥१५॥

जो अत्यन्त सुन्दर मणिमयी दरवाजोंसे युक्त हैं, जहाँके प्रासादोंमें मोतियोंकी मालाएँ लटक रही हैं और जो ऊँचे तोरणोंमें लटकती हुई घण्टिकाओंसे व्याप्त हैं उन देदीप्यमान जिन-मन्दिरोंकी मैं पूजा करता हूँ ॥१६॥

अनेक प्रकारकी सामग्रीसे जो सुन्दर हैं, भव्य प्राणियोंको संसारसे तारनेवाले हैं, सैकड़ों इन्द्र जिनकी पूजा करते हैं, जो सम्यग्ज्ञानके पारको प्राप्त हो चुके हैं और विषयरूपी भयंकर एवं दुष्ट सर्पके लिए जो गरुड़के समान हैं उन जिनेन्द्रदेवकी प्रतिमाओंकी मैं (रत्नचन्द्र) पूजा करता हूँ ॥१७॥

[ओं ह्रीं मन्दिरमेरुसम्बन्धी भद्रशाल, नन्दन, सौमनस और पाण्डुक वनकी पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिशामें स्थित जिनचैत्यालयोंके जिन-बिम्बोंके लिए मैं पूर्णार्घ्य समर्पित करता हूँ ।]

सभी व्रतोंमें श्रेष्ठ, सारभूत और सज्जनोंको सुख देनेवाला यह पुष्पाञ्जलिव्रत आप लोगोंको शाश्वतिक मोक्षलक्ष्मी प्रदान करे ॥१८॥

[आशीर्वाद]

●

धूप-घट-धूपितावास-शोभा-वरं, रत्न-स्तम्भोर्जितालीभिराशाकुलम्
अष्ट-मङ्गल-महाद्रव्य-चय-सुन्दरं, श्रीजिनागारवारं भजे भासुरम्॥

ताल-वीणा-मृदङ्गादि-पटह-स्वरं, कल्पतरु-पुष्प-वापी-तडागाकरम्
जंघचारण-मुनि-आगताशाकरं, श्रीजिनागारवारं भजे भासुरम्॥

रुचिर-मणि-मयैः गोपुरैः संयुतं, हर्म्यावली-लसन्मुक्त-मालावृतम्।
तुङ्ग-तोरण-लसद्घंटिका-भङ्गुरं, श्रीजिनागारवारं भजे भासुरम्॥

घत्ता

विविध-विषय-भव्यं भव्य-संसारतारं
शतमख-शत-पूज्यं प्राप्त-सज्ज्ञान-पारम्।
विषय-विषम-दुष्ट-व्याल-पक्षीशमीशं
जिनवर-निकरं तं रत्नचन्द्रो भजेऽहम्॥१७॥

[ॐ ह्रीं मन्दिरमेरुसम्बन्धिभद्रशाल-नन्दन-सौमनस-पाण्डुक-वनसम्बन्धिपूर्वदक्षिणपश्चिमोत्तरस्थजिनचैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्यो पूर्णार्घं निर्वपामीति स्वाहा।

सर्व-व्रताधिपं सारं सर्व-सौख्य-करं सताम्।
पुष्पाञ्जलि-व्रतं पुष्याद्युष्माकं शाश्वतीं श्रियम्॥

[इत्याशीर्वादः।]

●

विद्युन्मालीमेरु

पुष्कर द्वीपके पश्चिम दिशामें स्थित विद्युन्माली मेरुसम्बन्धी जिन-प्रतिमाओंकी मैं आह्वानन आदि विधिसे यहाँ पर स्थापना करता हूँ ॥१॥

[ओं ह्रीं विद्युन्मालीमेरुसम्बन्धी ··· जिनप्रतिमासमूह, यहाँ आइए आइए संवौषट् ।]

ओं ह्रीं विद्युन्मालीमेरुसम्बन्धी ··· जिनप्रतिमासमूह, यहाँ ठहरिए ठहरिए ठः ठः ।

ओं ह्रीं विद्युन्मालीमेरुसम्बन्धी ··· जिनप्रतिमासमूह, यहाँ मेरे सन्निकट हूजिए हूजिए वषट् ।]

संसारके जीवोंके शरीरके तापको हरनेवाले तथा जिनेन्द्रदेवके जन्माभिषेकके जलके प्रवाहसे पवित्र हुए महानदीके स्वर्णकुम्भमें रखे हुए शीतल जलसे मुक्तिदायक पाँचवें सुमेरुकी मैं पूजा करता हूँ ॥२॥

[ओं ह्रीं विद्युन्मालीमेरुसम्बन्धी ······ जिनबिम्बोंके लिए मैं जल अर्पित करता हूँ ।]

आक, बाँस और जड़ आदिसे रहित, अपने सुगन्ध गुणसे प्रकाशमान तथा कपूरसे मिश्रित सुगन्धित चन्दनसे जिनेन्द्रदेवके जन्माभिषेकके जलके प्रवाहसे पवित्र और मुक्तिदायक पाँचवें सुमेरु पर्वतकी मैं पूजा करता हूँ ॥३॥

[ओं ह्रीं विद्युन्मालीमेरुसम्बन्धी ······ जिनबिम्बोंके लिए मैं चन्दन अर्पित करता हूँ ।]

चन्द्रकिरण, हारलता और स्वर्ण आदिकी तरह स्वच्छ, अखण्ड और रुचिकर सुवासित अक्षतोंसे जिनेन्द्रदेवके जन्माभिषेक सम्बन्धी जलके प्रवाहसे पवित्र तथा मुक्तिदायक पाँचवें मेरुकी मैं पूजा करता हूँ ॥४॥

[ओं ह्रीं विद्युन्माली मेरुसम्बन्धी ······ जिनबिम्बोंके लिए मैं अक्षत अर्पित करता हूँ ।]

विद्युन्मालिमेरु

जिनान्संस्थापयाम्यत्राह्वाननादि-विधानतः ।
पुष्करे पश्चिमाशास्थान् विद्युन्मालि-प्रवर्तिनः ॥१॥

[ॐ ह्रीं विद्युन्मालिमेरुसम्बन्धिजिनप्रतिमासमूह ! अत्रावतर अवतर संवौषट् ।

ॐ ह्रीं विद्युन्मालिमेरुसम्बन्धिजिनप्रतिमासमूह ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः ।

ॐ ह्रीं विद्युन्मालिमेरुसम्बन्धिजिनप्रतिमासमूह ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् ।]

निर्मलैः सुशीतलैर्महापगा-भवैर्वनैः
शातकुम्भ-कुम्भगैर्जगज्जनाङ्ग-तापहैः ।
जैन-जन्म-मज्जनाम्भस-प्लवातिपावनैः
पञ्चमं सुमन्दिरं महाम्यहं शिवप्रदम् ॥ २ ॥

[ॐ ह्रीं विद्युन्मालिमेरुसम्बन्धि···जिनबिम्बेभ्यो जन्ममृत्यु-विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।]

चन्दनैः सुचन्द्रसार-मिश्रितैः सुगन्धिभि-
रर्क-वेणु-मूलभूत-वर्जितैर्गुणोज्ज्वलैः ।
जैन-जन्म-मज्जनाम्भस-प्लवातिपावनं············॥ ३ ॥

ॐ ह्रीं विद्युन्मालिमेरुसम्बधि·····जिनबिम्बेभ्यो चन्दनं निर्वपामति स्वाहा ।

इन्दु-रश्मि-हार-यष्टि-हेम-भास-भासितै-
रक्षतैरखण्डितैः सुवासितैर्मनःप्रियैः ।
जैन-जन्म-मज्जनाम्भस-प्लवातिपावनं············॥ ४ ॥

[ॐ ह्रीं विद्युन्मालिमेरुसम्बन्धि·····जिनबिम्बेभ्यो अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा ।]

सुगन्धके लोभसे जिन पर भौंरे गुँजार कर रहे हैं ऐसे पारिजात, कमल, कुन्द, लवङ्ग और मालती आदि फूलोंसे जिनेन्द्रदेवके जन्माभिषेकसम्बन्धी जलसे पवित्र और मोक्षदायक पाँचवें सुमेरुकी मैं पूजा करता हूँ ॥५॥

[ओं ह्रीं विद्युन्मालीमेरुसम्बन्धी...जिनबिम्बोंके लिए मैं पुष्प अर्पित करता हूँ ।]

रसनेन्द्रियको तृप्त करनेवाले और घीके पूरसे पूरित खाजे और लड्डू आदि सुन्दर नैवेद्यसे जिनेन्द्रदेवके जन्माभिषेक सम्बन्धी जलसे पवित्र और मोक्षदायक पाँचवें सुमेरुकी मैं पूजा करता हूँ ॥६॥

[ओं ह्रीं विद्युन्मालीमेरुसम्बन्धी···जिनबिम्बोंके लिए मैं नैवेद्य अर्पित करता हूँ ।]

अन्धकार समूहका नाश करनेवाले, मणिमयी, अपनी कान्तिसे सुशोभित तथा उज्ज्वल शिखावाले दीपकोंसे जिनेन्द्रदेवके जन्माभिषेकसम्बन्धी जलके प्रवाहसे पवित्र और मोक्षदायक पाँचवें सुमेरुकी मैं पूजा करता हूँ ॥७॥

[ओं ह्रीं विद्युन्मालीमेरुसम्बन्धी···जिनबिम्बोंके लिए मैं दीप अर्पित करता हूँ ।]

आकाशमें फैले हुए धुएँसे दशों दिशाओंको सुगन्धित करनेवाले ऐसे लोहवान और अगुरु आदिकी धूपसे जिनेन्द्रदेवके अभिषेकसम्बन्धी जलसे पवित्र और मोक्षदायक पाँचवें मेरुकी मैं पूजा करता हूँ ॥८॥

[ओं ह्रीं विद्युन्मालीमेरुसम्बन्धी······जिनबिम्बोंके लिए मैं धूप अर्पित करता हूँ ।]

गन्ध-लुब्ध-षट्पदैः सुपारिजात-पुष्पकैः
वारिजाति-कुन्द-देवपुष्प-मालती-भवैः ।
जैन-जन्म-मज्जनाम्भसः प्लवातिपावनं·········॥ ५ ॥

[ॐ ह्रीं विद्यन्मालिमेरुसम्बन्धि······जिनबिम्बेभ्यः पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ।]

प्राज्य-पूर-पूरितैः सुखज्जकैः सुमोदकैः
इन्द्रिय-प्रभूत्करैः सुचारुभिश्चरूत्करैः ।
जैन-जन्म-मज्जनाम्भस-प्लवातिपावनं·········॥ ६ ॥

[ॐ ह्रीं विद्युन्मालिमेरुसम्बन्धि······जिनबिम्बेभ्यो नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ।]

अन्धकार-भार-नाश-कारणैर्दशेन्धनैः
रत्न-सोमजैः प्रदीप्ति-भूषितैः शिखोज्ज्वलैः ।
जैन-जन्म-मज्जनाम्भस-प्लवातिपावनं·········॥ ७ ॥

[ॐ ह्रीं विद्युन्मालिमेरुसम्बन्धि······जिनबिम्बेभ्यो दीपं निर्वपामीति स्वाहा ।]

सिल्हिकागुरूद्भवैः सुधूपकैर्नभोगतै-
र्गन्धिताश-चक्र-केश-वृन्दकैः प्रशस्तकैः ।
जैन-जन्म-मज्जनाम्भस-प्लवातिपावनं·········॥ ८ ॥

[ॐ ह्रीं विद्युन्मालिमेरुसम्बन्धि······जिनबिम्बेभ्यो धूपं निर्वपामीति स्वाहा ।]

सुन्दर अनार, केला, अण्डविजौरा, नारियल, सुपारी और आम आदि श्रेष्ठ फलोंसे जिनेन्द्रदेवके जन्माभिषेकसम्बन्धी जलसे पवित्र और मोक्षदायक पाँचवें सुमेरुकी मैं पूजा करता हूँ ॥९॥

[ॐ ह्रीं विद्युन्मालीमेरुसम्बन्धी......जिनबिम्बोंके लिए मैं फल अर्पित करता हूँ ।]

जल, गन्ध, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप और फलसे विद्युन्माली मेरुसम्बन्धी जिनप्रतिमाओंको मैं अर्घ अर्पित करता हूँ ॥१०॥

[ॐ ह्रीं विद्युन्मालीमेरुसम्बन्धी......जिनबिम्बोंके लिए मैं अर्घ अर्पित करता हूँ ।]

जयमाला

जहाँ पर उत्तुङ्ग चैत्यालय बने हुए हैं, जिसकी रत्नोंकी सीढ़ियों पर विद्याधर नृप चढ़ते उतरते हैं तथा इन्द्र, धरणेन्द्र और चक्रवर्ती जिसे नमस्कार करते हैं, अनेक विशेषताओंसे परिपूर्ण उस देदीप्यमान पाँचवें सुमेरुकी मैं स्तुति करता हूँ ।

जो भद्रशाल नामक वनसे सुशोभित है और कोयलें जहाँ मधुर गान करती हैं, पुष्करार्द्ध द्वीपमें स्थित उस सुन्दर विद्युन्माली मेरुकी मैं पूजा करता हूँ ।

जो अनेक प्राणियोंको आनन्द देनेवाले हैं और अशोक वृक्षोंसे शोभायमान हैं ऐसे नन्दनवनोंसे सुशोभित पुष्करार्द्ध द्वीपस्थ सुन्दर विद्युन्माली मेरुकी मैं पूजा करता हूँ ।

कल्पवृक्ष आदिसे युक्त और देवोंके प्रासादमें लगी हुई ध्वजाओंसे युक्त सौमनस वनोंसे शोभायमान पुष्करार्ध द्वीपस्थ सुन्दर विद्युन्माली मेरुकी मैं पूजा करता हूँ ।

कम्र-दाडिमैः सुमोच-चोचकैः शुभैः फलैः
मातुलिङ्ग-नारिकेल-पूग-चूतकादिभिः ।
जैन-जन्म-मज्जनाम्भस-प्लवातिपावनं······॥९॥

[ॐ ह्रीं विद्युन्मालिमेरुसम्बन्धि······जिनबिम्बेभ्यो फलं निर्वपामीति स्वाहा ।]

जल-गन्धाक्षतैः पुष्पैश्चरु-दीप-सुधूपकैः
फलैरुत्तारयाम्यर्घं विद्युन्मालि-प्रवर्तिनाम् ॥१०॥

[ॐ ह्रीं विद्युन्मालिमेरुसम्बधि·········जिनबिम्बेभ्यो अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

जयमाला

स्तुवे मन्दिरं पञ्चमं सद्गुणौघं, समुत्तुङ्ग-चैत्यालयं भासुराङ्गम् ।
चलद्ररत्न-सोपान-विद्याधरीशं,नमो देव-नागेन्द्र-मर्त्येन्द्र-वृन्दम्॥
भद्रशालाभिधारण्य-संशोभितं,कोकिलानां कलालाप-संकूजितम् ।
पुष्कराद्धाचले संस्थितं मन्दिरं, चञ्चलामालिनं पूजये सुन्दरम् ॥
नन्दनैर्नन्दितानेकलोकाकरैर्भ्राजमानं सदाशोकवृक्षोत्करैः ।
पुष्कराद्धाचले संस्थितं मन्दिरं, चञ्चलामालिनं पूजये सुन्दरम् ॥
सोमनस्थैर्वनैः कल्पवृक्षादिभिः,भ्राजमानं बुधागारकेत्वादिभिः ।
पुष्काराद्धाचले संस्थितं मन्दिरं, चञ्चलामालिनं पूजये सुन्दरम् ॥

सबसे ऊपर पाण्डुकशिलाओंसे युक्त व पाण्डुकवनोंसे सुशोभित पुष्करार्ध द्वीपस्थ सुन्दर विद्युन्माली मेरुकी मैं पूजा करता हूँ।

दूसरोंको तिरस्कृत करनेवाले रत्नोंकी प्रभासे देदीप्यमान और चारों दिशाओंमें स्थित जिन प्रतिमाओंकी प्रभासे प्रकाशमान पुष्करार्द्ध द्वीपस्थ सुन्दर विद्युन्माली मेरुकी मैं पूजा करता हूँ।

घण्टा, तोरण, झालर, कमलोंसे सुशोभित कलश, छत्र, आठ मङ्गल द्रव्य, लक्ष्मी, भामण्डल, चमर और उत्तम प्रकारसे बनाया गया चंदोवा इन द्रव्योंको लेकर तीनों कालमें उत्तम पुण्य जाप जपनेवाले, दान देनेमें तत्पर तथा दयायुक्त भव्य जीवोंके साथ आत्मशुद्धिके लिए उत्तम पुष्पाञ्जलिव्रत करना चाहिए।

[ओं ह्रीं विद्युन्माली मेरुसम्बन्धी······जिनप्रतिमासमूहको मैं अर्घ अर्पित करता हूँ।]

सभी व्रतोंमें श्रेष्ठ, सारभूत और सज्जनोंको सुखकारी पुष्पाञ्जलिव्रत आप सबको शाश्वतिक लक्ष्मी प्रदान करे ॥१८॥

[आशीर्वाद]

ऊर्ध्वगैः पाण्डुकैः कानने राजितं
पाण्डुकाख्याशिलाभिः समालिङ्गितैः ।
पुष्करार्धाचले संस्थितं मन्दिरं
चञ्चलामालिनं पूजये सुन्दरम् ॥
निर्जितानेकरत्नप्रभाभासुरं दिक्चतुष्काश्रिताहत्प्रभाभासुरम् ।
पुष्करार्द्धाचले संस्थितं मन्दिरं चञ्चलामालिनं पूजये सुन्दरम् ॥

घत्ता

घण्टा-तोरण-तारिकाब्ज-कलशै छत्राष्ट-द्रव्यैः परैः
श्री-भामण्डल-चामरैः सुरचितैश्चन्द्रोपकरणादिभिः ।
त्रैकाल्ये वर-पुष्प-जाप्य-जपनैर्जैनः करोत्वर्चनां
भव्यैर्दान-परायणैः कृतदयैः पुष्पाञ्जलिं शुद्धये ॥

[ॐ ह्रीं विद्युन्मालिमेरुसम्बधि ···जिनबिम्बेभ्योऽर्घं निर्व-
पामीति स्वाहा ।]

सर्वव्रताधिपं सारं सर्वसौख्यकरं सताम् ।
पुष्पाञ्जलिव्रतं पुष्याद्युष्माकं शाश्वतीं श्रियम् ॥

[इत्याशीर्वादः]

दश लक्षण-पूजा

मैं जिनेन्द्रदेवके द्वारा प्रतिपादित उत्तम क्षमासे लेकर ब्रह्मचर्य पर्यंत उत्तम लक्षणवाले दशलक्षण धर्मकी स्थापना करता हूँ ॥१॥

[ओं ह्रीं उत्तम क्षमादि दशलक्षण धर्म ! आइए आइए संवौषट्।

ओं ह्रीं उत्तम क्षमादि दशलक्षण धर्म ! ठहरिए ठहरिए ठः ठः ।

ओं ह्रीं उत्तम क्षमादि दशलक्षण धर्म ! मेरे सन्निकट हूजिए हूजिए वषट्।]

हिमालयसे निकले हुए शीतल सुगन्धित और मुनिके हृदयके समान पवित्र जलसे संसारका संताप दूर करनेके लिए मैं क्षमादिरूप दशलक्षण धर्मकी पूजा करता हूँ ॥२॥

[ओं ह्रीं उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, शौच, सत्य, संयम, तप, त्याग, आकिञ्चन्य और ब्रह्मचर्यरूप दश धर्मोंको जन्म, जरा और मृत्युका नाश करनेके लिए मैं जल अर्पित करता हूँ ।]

अपनी सुगन्धसे दशों दिशाओंको सुगन्धित करनेवाले गाढ़ी केशर और कपूरसे मिश्रित चन्दनसे मैं क्षमादिरूप दशलक्षण धर्मकी संसारका ताप दूर करनेके लिए पूजन करता हूँ ॥३॥

[ओं ह्रीं उत्तम क्षमादि दश धर्मोंको संसारका ताप दूर करनेके लिए मैं चन्दन अर्पित करता हूँ ।]

सरल, स्वच्छ, सुन्दर, अखण्ड और चन्द्रमाके समान शुक्ल रूपवाले शुद्ध अक्षतोंसे मैं क्षमादि रूप दशलक्षण धर्मकी संसार का संताप दूर करनेके लिए पूजा करता हूँ ॥४॥

[ओं ह्रीं उत्तम क्षमादि दश धर्मोंको अक्षयपदकी प्राप्तिके लिए मैं अक्षत अर्पित करता हूँ ।]

दशलक्षण-पूजा ।

उत्तम-क्षातिमाद्यन्त-ब्रह्मचर्य-सुलक्षणम् ।
स्थापयेद्दशधा धर्ममुत्तमं जिनभाषितम् ॥१॥

[ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्म ! अत्रावतर अवतर संवौषट्

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्म ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः ।

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्म ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् ।]

प्रालेय-शैल-शुचि-निर्गत-चारु-तोयैः
शीतैः सुगन्धि-सहितैर्मुनि-चित्त-तुल्यैः ।
संपूजयामि दशलक्षण-धर्ममेकं
संसार-ताप-हननाय क्षमादियुक्तम् ॥

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमामार्दवार्जवशौचसत्यसंयमतपस्त्यागाकिञ्चन्य-ब्रह्मचर्यधर्मेभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।]

श्रीचन्दनैर्बहल-कुङ्कुम-चन्द्र-मिश्रैः
संवास-वासित- दिशा-मुख-दिव्य-संस्थैः ।
संपूजयामि दश-लक्षण-धर्ममेकं············॥

[ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशधर्माङ्गाय संसार-तापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा ।

शालीय-शुद्ध-सरलामल-पुण्य-पुञ्जैः
रम्यैरखण्ड-शशि-लाञ्छन-रूप-तुल्यैः ॥
संपूजयामि दश-लक्षण-धर्ममेकं·········॥

[ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशधर्माङ्गाय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं नि०]

अपनी सुगन्धसे ऊर्ध्व लोकको सुगन्धित करनेवाले मन्दार, कुन्द, बकुल, कमल और पारिजातके फूलोंसे क्षमादिरूप दश लक्षण धर्मकी मैं संसारका ताप दूर करनेके लिए पूजा करता हूँ ॥५॥

[ओं ह्रीं उत्तमक्षमादि दश धर्मोंको कामबाणका नाश करनेके लिए मैं पुष्प अर्पित करता हूँ ।]

भव्य जीवोंको तुष्ट करनेवाले और छह रसोंसे परिपूर्ण ताजे नैवेद्यसे संसारका ताप दूर करनेके लिए क्षमादि रूप दशलक्षण धर्मकी मैं पूजा करता हूँ ॥६॥

[ओं ह्रीं उत्तमक्षमादि दश धर्मोंको क्षुधारोगका नाश करनेके लिए मैं नैवेद्य अर्पित करता हूँ ।]

अन्धकारको दूर कर नेत्रोंको प्रकाशित करनेवाले और भाजनमें रखे हुए कपूरके जलते हुए दीपकसे संसारका ताप दूर करनेके लिए मैं उत्तम क्षमादिरूप दशलक्षण धर्मकी पूजा करता हूँ ॥७॥

[ओं ह्रीं उत्तमक्षमादि दश धर्मोंको मोहान्धकारका नाश करनेके लिए मैं दीप अर्पित करता हूँ ।]

अपने सुगन्धित धूएँसे दशों दिशाओंको तिरोहित करनेवाली कालागुरु आदि सम्पूर्ण गन्धद्रव्योंकी धूपसे संसारका संताप दूर करनेके लिए क्षमादिरूप दशलक्षण धर्मकी मैं पूजा करता हूँ ॥८॥

[ओं ह्रीं उत्तमक्षमादि दश धर्मोंको दुष्ट आठ कर्मोंका नाश करनेके लिए मैं धूप अर्पित करता हूँ ।]

मन्दार-कुन्द-वकुलोत्पल-पारिजातैः
पुष्पैः सुगन्ध-सुरभीकृतमूर्ध्वलोकैः ।
संपूजयामि दश-लक्षण-धर्ममेकं...... ॥

[ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशधर्माङ्गाय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ।]

अत्युत्तमैः षड्-रसादिक-सद्यजातै-
र्नैवेद्यकैश्च परितोषित-भव्य-लोकैः ।
संपूजयामि दश-लक्षण-धर्ममेकं......... ॥

[ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशधर्माङ्गाय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ।]

दीपैर्विनाशित-तमोत्कररुद्ध-नेत्रैः
कर्पूर-वर्ति-ज्वलितोज्ज्वल-भाजनस्थैः ।
संपूजयामि दश-लक्षण-धर्ममेकं...... ॥

[ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशधर्माङ्गाय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा ।]

कृष्णागुरु-प्रभृति-सर्व-सुगन्ध-द्रव्यै-
र्धूपैस्तिरोहित-दिशा-मुख-दिव्य-धूम्रैः ।
संपूजयामि दश-लक्षण-धर्ममेकं...... ॥

[ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशधर्माङ्गाय दुष्टाष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ।]

हृदय, नाक और नेत्रोंको सुख देनेवाले और मोक्ष प्राप्त करनेमें समर्थ सुपारी, लौंग, केला और नारियलोंसे संसारका सन्ताप दूर करनेके लिए क्षमादिरूप दश लक्षण धर्मकी मैं पूजा करता हूँ ॥६॥

[ओं ह्रीं उत्तमक्षमादि दश धर्मोंको मोक्ष फलकी प्राप्तिके लिए मैं फल अर्पित करता हूँ ।]

स्वच्छ जल, हरिचन्दन, उत्तम पुष्प, शालिके अक्षत, नैवेद्य, कपूरके दीपक और धूपकी तथा अपने फूलोंके अनुरूप गन्धवाले फलोंकी पुष्पाञ्जलिसे संसारका ताप दूर करनेके लिए क्षमादिरूप दशलक्षण धर्मकी मैं पूजा करता हूँ ॥१०॥

[ओं ह्रीं उत्तम क्षमादि दश धर्मोंको अनर्घ्यपदकी प्राप्तिके लिए मैं अर्घ अर्पित करता हूँ ।]

अङ्ग-पूजा

क्षमा-धर्म

कोप आदिसे रहित, सारभूत और सब सुखोंकी आकररूप क्षमाकी मैं उसकी प्राप्तिके लिए परम भक्तिपूर्वक पूजा करता हूँ ॥१॥

[ओं ह्रीं···धर्मके अङ्गरूप उत्तम क्षमाके लिए मैं जलादि-अर्घ अर्पित करता हूँ ।]

संसारका भय दूर करनेवाले उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, संयम, तप, त्याग, आकिञ्चन्य और ब्रह्मचर्य ये अविनाशी दश धर्म हैं ॥२॥

उत्तम क्षमा तीन लोकमें सार है, उत्तम क्षमा जन्म-मरणरूपी संसारसे तारनेवाली है, उत्तम क्षमा रत्नत्रयको प्राप्त कराती है और उत्तम क्षमा दुर्गतिके दुखोंको हरण करती है ॥३॥

पूगैर्लवङ्ग-कदली-फल-नारिकेलै-
हृद्-घ्राण-नेत्र-सुखदैः शिव-दान-दक्षैः।
संपूजयामि दश-लक्षण-धर्ममेकं
संसार-ताप-हननाय क्षमादि-युक्तम् ॥

[ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशधर्माङ्गाय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा ।]

पानीय-स्वच्छ-हरि-चन्दन-पुष्प-सारैः
शालीय-तन्दुल-निवेद्य-सुचन्द्र-दीपैः ।
धूपैः फलावलि-विनिर्मित-पुष्प-गन्धैः
पुष्पाञ्जलीभिः जिनधर्ममहं समर्चे ॥

[ॐ ह्रीं उत्तमक्षमामार्दवार्जवशौचसत्यसंयमतपस्त्यागाकिञ्चन्य-ब्रह्मचर्यधर्मेभ्योऽनर्घ्यपदप्राप्तयेऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।]

अङ्ग-पूजा

क्षमाधर्मः

कोपादि-रहितां सारां सर्वसौख्याकरां क्षमाम् ।
पूजया परया भक्त्या पूजयामि तदाप्तये ॥

[ॐ ह्रीं उत्तमक्षमाधर्माङ्गाय नमः जलाद्यर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।]

उत्तम-खम मद्दउ अज्जउ सच्चउ, पुणु सउच्च संजमु सुतउ ।
चाउ वि आकिंचणु भव-भय-वंचणु बंभचेरु धम्मु जि अखउ ॥
उत्तम-खम तिल्लोयहँ सारी, उत्तम-खम जम्मोदहितारी ।
उत्तम-खम रयण-त्तय-धारी, उत्तम-खम दुग्गइ-दुह-हारी ॥

उत्तम क्षमासे अनेक गुण प्राप्त होते हैं, उत्तम क्षमा मुनि-वृन्द को प्यारी है, उत्तम क्षमा ज्ञानी जनों के लिए चिन्तामणिके समान है और उत्तम क्षमा मनके स्थिर होनेपर प्राप्त होती है ॥४॥

उत्तम क्षमा सब प्राणियों के द्वारा पूज्य है और उत्तम क्षमा मिथ्यात्वरूपी तमको दूर करनेके लिए मणिके समान है। जहाँ असमर्थ पुरुषोंके दोष क्षमा किये जाते हैं, जहाँ असमर्थ व्यक्तियों पर रोष नहीं किया जाता है ॥५॥

जहाँ कठोर वचन सहन किये जाते हैं, जहाँ दूसरोंके दोष नहीं कहे जाते हैं और जहाँ चेतनके गुण चित्तमें धारण किये जाते हैं वहाँ उत्तम क्षमा होती है ऐसा जिनेन्द्रदेवने कहा है ॥६॥

इस प्रकार उत्तम क्षमासे युक्त, मनुष्य, देव और विद्याधरोंसे वन्दित तथा भवदुःखका नाश करनेवाले अगणित ऋषिपुङ्गव अविनश्वर केवलज्ञानको प्राप्त कर कर्मकलङ्कसे रहित हो सिद्ध हो गये हैं ॥७॥

[ओं ह्रीं धर्मके अङ्गरूप उत्तम क्षमाके लिए पूर्णार्घ अर्पित करता हूँ।]

मार्दवधर्म

मान रहित, सुखका आलय और कृपासे युक्त मार्दव धर्मकी, उसकी प्राप्तिके लिए, मैं बड़ी भक्तिके साथ पूजा करता हूँ ॥१॥

[ओं ह्रीं धर्मके अङ्गरूप उत्तम मार्दवके लिए मैं जलादि-अर्घ अर्पित करता हूँ।]

मार्दवधर्म संसारका नाश करनेवाला है, मानका मर्दन करनेवाला है, दया धर्मका मूल है, निर्मल है, सबका हितकारक है और गुणोंमें श्रेष्ठ है। व्रत और संयम उसीसे सफल होते हैं ॥२॥

उत्तम-खम गुण-गण-सहयारी, उत्तम-खम मुणिविंद-पियारी।
उत्तम-खम बुहयण-चिन्तामणि, उत्तम-खम संपज्जइ थिर-मणि॥
उत्तम-खम महणिज्ज सयलजणि, उत्तम-खम मिच्छत्त-तमो-मणि।
जहिं असमत्थहं दोसु खमिज्जइ, जहिं असमत्थहं ण उ रूसिज्जइ॥
जहिं आकोसण वयण सहिज्जइ, जहिं पर-दोसु ण जणि भासिज्जइ
जहिं चेयण-गुण चित्त धरिज्जइ, तहिं उत्तम-खम जिणें कहिज्जइ॥

घत्ता

इय उत्तम-खम-जुय णर-सुर-खग-णुय केवलणाणु लहेवि थिरु॥
हुय सिद्ध णिरंजणु भव-दुह-भंजणु अगणिय-रिसि-पुङ्गव जि चिरु॥

[ॐ ह्रीं उत्तमक्षमाधर्माङ्गाय पूर्णार्घं निर्वपामीति स्वाहा।]

मार्दवधर्मः

त्यक्त-मानं सुखागारं मार्दवं कृपयान्वितम्।
पूजया परय भक्त्या पूजयामि तदाप्तये॥१॥

[ॐ ह्रीं उत्तममार्दवधर्माङ्गाय नमः जलाद्यर्घं निर्वपामीति स्वाहा।]

मद्दउ भव-मद्दणु माण-णिकंदणु दय-धम्महु मूल जि विमलु।
सव्वहं हिययारउ गुण-गण-सारउ तिसहु वउ संजम सहलु॥

मार्दवधर्म मान कषायका नाश करता है और मार्दवधर्म पाँचों इन्द्रिय और मनका निग्रह करता है। मार्दवधर्म करुणारूपी नूतन लता है जो चित्तरूपी पृथ्वीपर फैलती है ॥३॥

मार्दवधर्म जिनेन्द्रदेवकी भक्ति प्रकट करता है, मार्दवधर्म कुबुद्धिका प्रसार रोकता है, मार्दवसे विनय बहुत अधिक प्रकाशमें आती है और मार्दवधर्मसे मनुष्यका वैर दूर हो जाता है ॥४॥

मार्दवधर्मसे परिणामोंमें विशुद्धि आती है, मार्दवधर्मसे उभय लोककी सिद्धि होती है, मार्दवधर्मसे दोनों प्रकारका तप सुशोभित होता है और मार्दवधर्मसे मनुष्य तीनों लोकोंके प्राणियोंको मोहित कर लेता है ॥५॥

मार्दवधर्मसे जैन शासनका ज्ञान तथा अपने और परके स्वरूपका प्रतिभास होता है। मार्दव सभी दोषोंका निवारण करता है तथा मार्दव धर्म संसार-समुद्रसे पार कर देता है ॥६॥

मार्दव परिणाम, सम्यग्दर्शनका अंग है, ऐसा जानकर अद्भुत और निर्मल मार्दवधर्मकी स्तुति करो ॥७॥

[ओं ह्रीं धर्मके अङ्गरूप उत्तम मार्दवधर्मके लिए मैं पूर्णार्घ अर्पित करता हूँ।]

आर्जवधर्म

आर्जव धर्म स्वर्गका सोपान है और कुटिलतासे रहित है। उसकी मैं भक्तिपूर्वक आर्जव धर्मकी प्राप्तिके लिए बड़ी विभूतिके साथ पूजा करता हूँ ॥ १ ॥

[ओं ह्रीं धर्मके अङ्गरूप आर्जव धर्मके लिए मैं जलादि अर्घ अर्पित करता हूँ।]

आर्जव धर्मका श्रेष्ठ लक्षण है, मनको वह स्थिर करनेवाला है, पापनाशक है और सुखको उत्पन्न करनेवाला है। वह पापोंका क्षय करनेवाला है, इसलिए उसे इस भवमें आचरणमें लाओ, उसीका पालन करो और उसीका श्रवण करो ॥२॥

मद्दउ माण-कसाय-विहंडणु, मद्दउ पंचिंदिय-मण-दंडणु ।
मद्दउ धम्मे करुणा-वल्ली, पसरइ चित्त-महीहिं णवल्ली ॥२॥

मद्दउ जिणवर-भत्ति पयासइ, मद्दउ कुमइ-पसरु णिण्णासइ ।
मद्दवेण बहुविणय पवट्टइ, मद्दवेण जणवइरु उहट्टइ ॥३॥

मद्दवेण परिणाम-विसुद्धी, मद्दवेण विहु लोयहं सिद्धी ।
मद्दवेण दो-विहु तउ सोहइ, मद्दवेण णरु तिजगु विमोहइ ॥४॥

मद्दउ जिण-सासण जाणिज्जइ; अप्पा-पर-सरूव भाविज्जइ ।
मद्दउ दोस असेस णिवारइ, मद्दउ जम्म-उअहि उत्तारइ ॥

घत्ता

सम्मद्दंसण-अंगु मद्दउ परिणामु जि मुणहु ।
इय परियाणि विचित्त मद्दउ धम्मु अमल थुणहु ॥

[ॐ ह्रीं उत्तममार्दवधर्माङ्गाय पूर्णार्घं निर्वपामीति स्वाहा ।]

आर्जवधर्मः

आर्जवं स्वर्ग-सोपानं कौटिल्यादिविवर्जितम् ।
पूजया परया भक्त्या पूजयामि तदाप्तये ॥१॥

[ॐ ह्रीं परब्रह्मणे आर्जवधर्माङ्गाय नमः जलाद्यर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।]

धम्महु वर-लक्खणु अज्जउ थिर-मणु दुरिय-विहंडणु सुह-जणणु ।
तं इत्थ जि किज्जइ तं पालिज्जइ तं णि सुणिज्जइ खय-जणणु ॥

अपने मनमें जैसा विचार करे वही दूसरोंसे कहे और उसी प्रकार कार्य करे। इसे सुखका देनेवाला निश्छल आर्जव धर्म जानो ॥३॥

मनसे मायाशल्य निकाल दो और पवित्र आर्जव धर्मका विचार करो। मायावी पुरुषके व्रत, तप सब निरर्थक हैं। आर्जव धर्म शिवपुरका प्रशस्त मार्ग है ॥४॥

जहाँ कुटिल परिणाम छोड़ दिये जाते हैं वहीं आर्जव धर्म प्राप्त होता है। यह अखण्ड दर्शन और ज्ञानरूप है तथा परम अतीन्द्रिय सुखका पिटारा है ॥५॥

स्वयं ही आत्माको भवसमुद्रसे तारनेवाला है। इस प्रकारका प्रचण्ड जो चैतन्यभाव है वह आर्जव धर्मसे ही प्राप्त होता है। आर्जव धर्मके कारण शत्रुका मन भी क्षुब्ध हो जाता है ॥६॥

आर्जव धर्म परमात्म-स्वरूप है, संकल्प रहित है, चैतन्य-स्वरूप आत्माका मित्र है, शाश्वत है और अभयरूप है। जो उसका ध्यान करता है और शंकाका त्याग करता है उसे अविनाशी मोक्ष-पदकी प्राप्ति होती है ॥७॥

[ओं ह्रीं धर्मके अङ्गरूप आर्जव धर्मके लिए मैं पूर्णार्घ्य अर्पित करता हूँ।]

शौचधर्म

लोभसे रहित और मुक्तिरूपी लक्ष्मीके चित्तको अनुरञ्जित करनेवाले शौच धर्मकी मैं उसकी प्राप्तिके लिए भक्तिपूर्वक बड़ी विभूतिके साथ पूजा करता हूँ ॥१॥

[ओं ह्रीं धर्मके अङ्गरूप शौचधर्मके लिए मैं जलादि-अर्घ्य अर्पित करता हूँ।]

जारिसु णिजय-चित्ति चिंतिज्जइ, तारिसु अण्णहं पुणु भासिज्जइ।
किज्जइ पुणु तारिसु सुह-संचणु, तं अज्जउ गुण मुणहु अवंचणु॥ २

माया-सल्लु मणहु णिस्सारहु, अज्जउ धम्मु पवित्तु वियारहु।
वउ तउ मायावियहु णिरत्थउ,अज्जउ सिव-पुर-पंथहु सत्थउ॥ ३

जत्थ कुडिल परिणामु चइज्जइ,तहिं अज्जउ धम्मु जि संपज्जइ।
दंसण-णाण सरूव अखंडउ, परम-अतिंदिय-सुक्ख-करंडउ॥४॥

अप्पिं अप्पउ भवहु तरंडउ, एरिसु चेयण-भाव पयंडउ।
सो पुणु अज्जउ धम्में लब्भइ, अज्जवेण वइरिय-मणु खुब्भइ।

घत्ता

अज्जउ परमप्पउ गय-संकप्पउ चिम्मित्तु जि सासउ अभउ
तं णिरु झाइज्जइ संसउ हिज्जइ पाविज्जइ जिहिं अचल-पउ।

[ॐ ह्रीं उत्तमार्जवधर्माङ्गाय पूर्णार्घं निर्वपामीति स्वाहा।]

शौचधर्मः

शौचं लोभ-विनिर्मुक्तं मुक्ति-श्री-चित्त-रञ्जकम्।
पूजया परया भक्त्या पूजयामि तदाप्तये॥

[ॐ ह्रीं परब्रह्मणे उत्तमशौचधर्माङ्गाय नमः जलाद्यर्घं निर्वपामीति स्वाहा।]

शौच धर्मका अङ्ग है, अभङ्ग है, शरीरसे भिन्न है, उपयोगमयी है, जरा और मरणका विनाश करनेवाला है, तीन लोकको प्रकाशित करनेवाला है और ध्रुव है। उसका दिन-रात ध्यान करो ॥२॥

शौचधर्म मनकी शुद्धिसे होता है, शौच धर्म वचन-धनकी पकड़से होता है, शौच धर्म कषायोंके अभावसे होता है और शौच धर्म पापोंसे लिप्त नहीं करता ॥३॥

शौच धर्म लोभका वर्जन करता है, शौच धर्म उत्तम तपके मार्गपर ले चलता है, शौच धर्म ब्रह्मचर्यके धारण करनेसे होता है और शौच धर्म आठ मदोंका निवारण करनेसे होता है ॥४॥

शौच धर्म जिनागमका कथन करनेसे होता है, शौच धर्म आत्मगुणोंका निरन्तर मनन करनेसे होता है, शौच धर्म तीन शल्योंका त्याग करनेसे होता है और शौच धर्म निर्मल भावोंके बनाये रखनेसे होता है ॥५॥

अथवा शौच धर्म जिनवरकी विधिपूर्वक पूजा करनेसे और निर्मल प्रासुक जलसे स्नान करनेसे होता है। किन्तु यह लोकाश्रित शौच धर्म गृहस्थोंके लिए ही कहा गया है, मुनिवरोंके लिए नहीं ॥६॥

संसारको अनित्य जानकर एकाग्र मनसे इस शौच धर्मका पालन करना चाहिए। यह सुखके मार्गका सहायक है और मोक्ष पदको देनेवाला है। इसके सिवा अन्य किसीका क्षणमात्रके लिए चिन्तवन मत करो ॥७॥

[ओं ह्रीं धर्मके अङ्गरूप उत्तम शौच धर्मके लिए मैं पूर्णार्घ अर्पित करता हूँ।]

सउच जि धम्मंगउ तं जि अभंगउ भिण्णंगउ उवओगमउ ।
जर-मरण-विणासणु तिजगपयासणु झाइज्जइ अह-णिसि जि धुउ ॥

धम्म सउच्चु होइ मण-सुद्धिऍ, धम्म सउच्चु वयण-धण-गिद्धिऍ ।
धम्म सउच्चु कसाय अहावें, धम्म सउच्चु ण लिप्पइ पावें ॥

धम्म सउच्चु लोहु वज्जंतउ, धम्म सउच्चु सुतव-पहि जंतउ ।
धम्म सउच्चु बंभ-वय-धारणि, धम्म सउच्चु मयट्ठ-णिवारणि ॥

धम्म सउच्चु जिणायम-भणणे, धम्म सउच्चु सगुण-अणुमणणे ।
धम्म सउच्चु सल्ल-कय-चाए, धम्म सउच्चु जि णिम्मलभाए॥

अहवा जिणवर-पुज्जं-विहाणें,
णिम्मल-फासुय-जल-कय-ण्हाणें ।
तं पि सउच्चु गिहत्थहं भासिउ,
ण वि मुणिविरहं कहिउ लोयासिउ ॥

घत्ता

भव मुणिवि अणिच्चउ धम्म सउच्चउ पालिज्जइ एयग्गमणि ।
सुह-मग्ग-सहायउ सिव-पय-दायउ अण्णु म चिंतह किं पि खणि॥

[ॐ ह्रीं उत्तमशौचधर्माङ्गाय पूर्णार्घं निर्वपामीति स्वाहा ।]

सत्यधर्म

असत्यसे रहित और सबका हित करनेवाले सत्य वचनकी मैं उसकी प्राप्तिके लिए भक्तिपूर्वक बड़ी विभूतिके साथ पूजा करता हूँ ॥ १ ॥

[ओं ह्रीं धर्मके अङ्गरूप उत्तम सत्यधर्मके लिए मैं जलादि-अर्घ अर्पित करता हूँ ।]

सत्य धर्म दयाधर्मका कारण है, दोषोंका निवारण करनेवाला है तथा इस लोकमें और परलोकमें सुखको देनेवाला है । विश्वमें सत्य वचन तुलनारहित है, अर्थात् इसकी कोई बराबरी नहीं कर सकता । इसे विश्वासके साथ बोलना चाहिए ॥२॥

सत्य सब धर्मोंमें प्रधान है, सत्य महीतलपर सबसे बड़ा विधान है, सत्य नियमसे संसार-समुद्रसे तारनेके लिए पुलके समान है और सत्य सब जीवोंके मनमें सुख उत्पन्न करनेका हेतु है ॥३॥

सत्यसे मनुष्य-जन्म शोभा पाता है, सत्यसे ही पुण्यकर्म प्रवृत्त होता है, सत्यसे सब गुणोंका समुदाय महानताको प्राप्त होता है और सत्यके कारण ही देव सेवाव्रत स्वीकार करते हैं ॥४॥

सत्यसे अणुव्रत और महाव्रत प्राप्त होते हैं और सत्यसे आपदाएँ नष्ट हो जाती हैं । सदा हित और मित वचन बोलना चाहिए । जिनसे दूसरोंको दुःख हो ऐसे वचन कभी नहीं बोले ॥५॥

हे भव्य ! दूसरोंको बाधा करनेवाला वचन कभी मत बोलो । यदि वह सत्य भी हो तो गर्वरहित होकर उसे त्याग दो । सत्य ही एकमात्र परमात्मा है । वह भवरूपी अन्धकारका दलन करनेके लिए सूर्यके समान है । उसका निरन्तर आराधन करो ॥६॥

सत्यधर्मः

असत्य-दूरगं सत्यं वाचा सर्व-हितावहम् ।
पूजया परया भक्त्या पूजयामि तदाप्तये ॥१॥
[ॐ ह्रीं सत्यधर्माङ्गाय नमः जलाद्यर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।]

दय-धम्महु कारणु दोस-णिवारणु इह-भवि पर-भवि सुक्खयरु ।
सच्चु जि वयणुल्लउ भुवणि अतुल्लउ बोलिज्जइ वीसासधरु॥२॥

सच्चु जि सव्वहं धम्महं पहाणु,
सच्चु जि महियलि गरुउ विहाणु ।
सच्चु जि संसार-समुद्द-सेउ,
सच्चु जि सव्वहं मण-सुक्ख-हेउ ॥

सच्चेण जि सोहइ मणुव-जम्मु, सच्चेण पवत्तउ पुण्ण-कम्मु ।
सच्चेण सयल गुण-गण महंति, सच्चेण तियस सेवा वहंति ॥

सच्चेण अणुव्वय-महवयाइं, सच्चेण विणासइ आवयाइं ।
हिय-मिय भासिज्जइ णिच्च भास, ण वि भासिज्जइ पर-दुह-पयास

पर-बाहा-यरु भासहु म भव्वु, सच्चु जि तं छंडहु विगय-गव्वु ।
सच्चु जि परमप्पउ अत्थि इक्कु, सो भावहु भव-तम-दलण-अक्कु ॥

मुनि वचन-गुप्तिका निरोध करते हैं। वह क्षणमात्रमें संसारकी पीड़ाका अन्त कर देती है ॥७॥

मनुष्य सत्य धर्मके फलस्वरूप केवलज्ञानको नियमसे प्राप्त करता है। हे भव्य! उसका पालन करो और लोकमें अलीक वचन मत बोलो ॥८॥

[ओं ह्रीं धर्मके अङ्गरूप उत्तम सत्यधर्मके लिए मैं पूर्णार्घ अर्पित करता हूँ।]

संयमधर्म

मुक्तिके दाता और स्वेच्छासे प्राप्त दयामय संयम धर्मकी मैं उसकी प्राप्तिके लिए भक्तिपूर्वक बड़ी विभूतिके साथ पूजा करता हूँ ॥१॥

[ओं ह्रीं धर्मके अङ्गरूप उत्तम संयमधर्मके लिए मैं जलादि-अर्घ अर्पित करता हूँ।

संयम धर्म लोकमें दुर्लभ है। जो मूढमति उसे प्राप्त कर छोड़ देता है वह जरा और मरणके चक्ररूप संसारमें अनेक योनियोंमें भ्रमण करता फिरता है। भला वह सुगतिको कैसे प्राप्त कर सकता है ॥२॥

संयम पाँच इन्द्रियोंका दमन करनेसे होता है, संयम कषायोंका निग्रह करनेसे होता है, संयम दुर्धर तपके धारण करनेसे होता है और संयम रसत्याग तपका बारबार चिन्तवन करनेसे होता है ॥३॥

संयम उपवासोंके बढ़ानेसे होता है, संयम मनके प्रसारको रोकनेसे होता है, संयम बहुत कायक्लेश करनेसे होता है और संयम परिग्रहरूपी ग्रहका त्याग करनेसे होता है ॥४॥

घत्ता

रुंधिज्जइ मुणिणा वयण-गुत्ति, जं खणि फिट्टइ संसार-अत्ति ॥
सच्चु जि धम्म-फलेण केवलणाणु लहेइ जणु ।
तं पालहु भो भव्व भणहु म अलियउ इह वयणु ॥८॥

[ॐ ह्रीं सत्यधर्माङ्गाय पूर्णार्घं निर्वपामीति स्वाहा ।]

संयमधर्मः

दयाढ्यं संयमं मुक्तिकर्तारं स्वेच्छयातिगम् ।
पूजया परया भक्त्या पूजयामि तदाप्तये ॥१॥

[ॐ ह्रीं परब्रह्मणे उत्तमसंयमधर्माङ्गाय नमः जलाद्यर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।]

संजमु जणि दुल्लहु तं पाविल्लहु जो छंडइ पुणु मूढमइ ।
सो भमइ भवावलि जर-मरणावलि किं पावेसइ पुणु सुगइ ॥

संजमु पंचिंदिय-दंडणेण, संजमु जि कसाय-विहंडणेण ।
संजमु दुद्धर-तव-धारणेण, संजमु रस-चाय-वियारणेण ॥

संजमु उववास-विजंभणेण, संजमु मण-पसरहं थंभणेण ।
संजमु गुरु-काय-किलेसणेण, संजमु परिगह-गह-चायणेण ॥

संयम त्रस और स्थावर जीवोंकी रक्षा करनेसे होता है, संयम सात तत्त्वोंकी परीक्षा करनेसे होता है, संयम काययोगका नियन्त्रण करनेसे होता है और संयम बहुत गमनका त्याग करनेसे होता है ॥५॥

संयम अनुकम्पा करनेसे होता है, संयम परमार्थ की बार बार भावना करनेसे होता है, संयम सम्यग्दर्शनके मार्गको पुष्ट करता है और संयम एकमात्र मोक्षका मार्ग है ॥६॥

संयमके बिना पूरा मनुष्यभव शून्यके समान है। संयमके बिना यह जीव नियमसे दुर्गतिमें जन्म लेता है। संयमके बिना एक घड़ी भी व्यर्थ मत जाओ। संयमके बिना सम्पूर्ण आयु विफल है ॥७॥

इस भवमें और परभवमें संयम ही शरण हो सकता है ऐसा जिनेन्द्रदेवने कहा है। यह दुर्गतिरूपी तालाबका शोष करनेके लिए तीक्ष्ण किरणोंके समान है। इससे ही विषम भवभ्रमणका नाश होता है ॥८॥

[ओं ह्रीं धर्मके अङ्गरूप उत्तम संयमधर्मके लिए मैं पूर्णार्घ अर्पित करता हूँ।]

तप-धर्म

कामेन्द्रियका दमन करनेवाले, सारभूत और कर्मशत्रुका नाश करनेवाले तप धर्मकी मैं उसकी प्राप्तिके लिए भक्तिपूर्वक बड़ी विभूतिके साथ पूजा करता हूँ ॥१॥

[ओं ह्रीं धर्मके अङ्गरूप उत्तम तपधर्मके लिए मैं जलादि अर्घ अर्पित करता हूँ।]

नरभवको पाकर तत्त्वोंका मनन करके, मनके साथ पाँच इन्द्रियोंका दमन करके, निर्वेदको प्राप्त होकर और परिग्रहका त्यागकर वनमें जाकर भी तप करना चाहिए ॥२॥

संजमु तस-थावर-रक्खणेण, संजमु सत्तत्थ-परिक्खणेण ।
संजमु तणु-जोय-णियंतणेण, संजमु बहु-गमणु चयंतएण ॥
संजमु अणुकंप कुणंतएण, संजमु परमत्थ-वियारणेण ।
संजमु पोसइ दंसणहं पंथु, संजमु णिच्छय णिरु मोक्ख-पंथु ॥
संजमु विणु णर-भव सयलु सुण्णु,
संजमु विणु दुग्गइ जि उववण्णु ।
संजमु विणु घडिय म इत्थ जाउ,
संयमु विणु विहलिय अत्थि आउ ॥१॥

घत्ता

इह-भवि पर-भवि संजमु सरणु हुजउ जिणणाहें भणिउ ।
दुग्गइ-सर-सोसण-खर-किरणोवम जेण भवालि विसमु हणिउ ॥

[ॐ ह्रीं संयमधर्माङ्गाय पूर्णार्घं निर्वपामीति स्वाहा ।]

तपोधर्मः

कामेन्द्रियदमं सारं तपः कर्मारिनाशनम् ।
पूजया परया भक्त्या पूजयामि तदाप्तये ॥१॥

[ॐ ह्रीं परमब्रह्मणे उत्तमतपोधर्माङ्गाय नमःजलाद्यर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।]

णर-भव पावेप्पिणु तच्च मुणेप्पिणु खंचिवि पंचिंदिय समणु ।
णिव्वेउ पमंडिवि संगइ छंडिवि तउ किज्जइ जाएवि वणु ॥

तप वह है जहाँ परिग्रहका त्याग किया जाता है, तप वह है जहाँ कामको भी नाश कर दिया जाता है, तप वह है जहाँ नग्नता दिखाई देती है और तप वह है जहाँ गिरिकन्दराओंमें निवास किया जाता है ॥३॥

तप वह है जहाँ उपसर्गोंको सहन किया जाता है, तप वह है जहाँ रागादि भावोंको जीता जाता है, तप वह है जहाँ भिक्षा-पूर्वक भोजन किया जाता है और श्रावकके घर योग्य काल तक निवास किया जाता है ॥४॥

तप वह है जहाँ समितियोंका पालन किया जाता है, तप वह है जहाँ तीन गुप्तियोंकी ओर सम्यक् ध्यान दिया जाता है, तप वह है जहाँ अपने और दूसरेके स्वरूपका विचार किया जाता है और तप वह है जहाँ पर्यायके अहङ्कारका त्याग कर दिया जाता है ॥५॥

तप वह है जहाँ अपने स्वरूपका मनन किया जाता है, तप वह है जहाँ कर्मोंका नाश किया जाता है, तप वह है जहाँ देवगण अपनी भक्ति प्रकाशित करते हैं और तप वह है जहाँ भव्य जीवोंके लिए प्रवचनार्थका कथन किया जाता है ॥६॥

तप वह है जिसके होने पर नियमसे केवलज्ञान उत्पन्न होता है और नित्य शाश्वत सुखकी प्राप्ति होती है ॥७॥

बारह प्रकारका तप उत्तम है और दुर्गतिका परिहार करने-वाला है। स्थिर मन होकर उसका आदर करना चाहिए और गौरवके साथ जीवोंको मद-मात्सर्यका त्यागकर और पाँच इन्द्रियोंका दमनकर उसे धारण करना चाहिए ॥८॥

[ओं ह्रीं धर्मके अङ्गरूप उत्तम तप धर्मके लिए मैं पूर्णार्घ अर्पित करता हूँ ।]

तं तउ जहिं परिगहु छंडिज्जइ, तं तउ जहिं मयणु जि खंडिज्जइ ।
तं तउ जहिं णग्गत्तणु दीसइ, तं तउ जहिं गिरिकंदरि णिवसइ ॥

तं तउ जहिं उवसग्ग सहिज्जइ, तं तउ जहिं रायाइं जिणिज्जइ ।
तं तउ जहिं भिक्खइ भुंजिज्जइ, सावय-गेह कालि णिवसिज्जइ ॥

तं तउ जत्थ समिदि परिपालणु, तं तउ गुत्ति-त्तयहं णिहालणु ।
तं तउ जहिं अप्पापरु बुज्झिउ, तं तउ जहिं भव-माणु जि उज्झिउ ॥

तं तउ जहिं ससरूव मुणिज्जइ, तं तउ जहिं कम्महं गणु खिज्जइ ।
तं तउ जहिं सुर भत्ति पयासइ, पवयणत्थ भवियणहं पभासइ ॥

जेण तवें केवलु उप्पज्जइ, सासय सुक्खु णिच्च संपज्जइ ।

घत्ता

बारह-विहु तउ वरु दुग्गइ परिहरु तं पूजिज्जइ थिरगणिणा ।
मच्छरु मउ छंडिवि करणइं दंडिवि तं पि धइज्जइ गउरविणा ॥

[ॐ ह्रीं उत्तमतपोधर्मांगाय पूर्णार्घं निर्वपामीति स्वाहा ।]

त्यागधर्म

जो परिग्रहके त्यागसे प्राप्त होता है और सब प्रकारके सुखोंका आकार है उस त्याग धर्मकी मैं उसकी प्राप्तिके लिए मोद और भक्तिपूर्वक बड़ी विभूतिके साथ पूजा करता हूँ ॥१॥

[ओं ह्रीं धर्मके अङ्गरूप उत्तम त्याग धर्मके लिए मैं जलादि-अर्घ अर्पित करता हूँ ।]

त्याग भी धर्मका अङ्ग है। वह नियमसे अभङ्ग है। तप गुणसे युक्त अत्यन्त पवित्र पात्रके लिए अपनी शक्तिके अनुसार भक्तिपूर्वक उस त्यागधर्मका पालन करना चाहिए। वह अन्य गतिके लिए पाथेयके समान है ॥२॥

त्यागसे अवगुणोंका समुदाय दूर हो जाता है, त्यागसे निर्मल कीर्ति फैलती है, त्यागसे वैरी पैरोंमें नमस्कार करता है और त्यागसे भोगभूमिके सुख मिलते हैं ॥३॥

विनय करके और प्रेमपूर्वक शुभ वचन बोलकर सदा नियमपूर्वक त्याग करना चाहिए। सर्व प्रथम अभयदान देना चाहिए जिससे परभवसम्बन्धी दुःखोंका नाश होता है ॥४॥

दूसरा शास्त्रदान भी करना चाहिए, जिससे निर्मल ज्ञानकी प्राप्ति होती है। रोगोंका नाश करनेवाला औषधिदान देना चाहिए, जिससे कहीं भी व्याधियोंका प्रकाशन नहीं दिखाई देता ॥५॥

आहारदानसे धन और ऋद्धियोंकी प्राप्ति होती है। नियमसे यह चार प्रकारका त्यागधर्म है जो सनातन कालसे चला आ रहा है। अथवा दुष्ट विकल्पोंका त्याग करनेसे त्यागधर्म होता है। समुच्चय रूपसे इसे भी त्यागधर्म मानो ॥६॥

त्यागधर्मः

त्यक्तसङ्गं मुदात्यन्तं त्यागं सर्वसुखाकरम् ।
पूजया परया भक्त्या पूजयामि तदाप्तये ॥१॥

[ॐ ह्रीं परमब्रह्मणे उत्तमत्यागधर्माङ्गाय नमः जलाद्यर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।]

चाउ वि धम्मंगउ तं जि अभंगउ णियसत्तिए भत्तिए जणहु ।
पत्तहं सुपवित्तहं तव-गुण-जुतहं परगइ-संबलु तं मुणहु ॥

चाए अवगुण-गणु जि उहट्टइ, चाए णिम्मल-कित्ति पवट्टइ ।
चाए वयरिय पणमइ पाए, चाए भोगभूमि सुह जाए ॥

चाए विहिज्जइ णिच्च जि विणए, सुहवयणइं भासेप्पिणु पणए ।
अभयदाणु दिज्जइ पहिलारउ, जिमि णासइ परभव दुहयारउ॥

सत्थदाणु बीजउ पुण किज्जइ, णिम्मल णाणु जेण पाविज्जइ ।
ओसहु दिज्जइ रोय-विणासणु, कह वि ण पेच्छइ वाहि-पयासणु॥

आहारें धण-रिद्धि पवट्टइ, चउविहु चाउ जि एहु पवट्टइ ।
अहवा दुट्ठ-वियप्पहं चाएं, चाउ जि एहु मुणहु समवाएं ॥

दुःखी जनोंको दान देना चाहिए, गुणी जनोंका मान करना चाहिए; एकमात्र दयाकी भावना करनी चाहिए और मनसे सम्यग्दर्शनकी प्राप्तिका चिन्तवन करना चाहिए ॥७॥

[ओं ह्रीं धर्मके अङ्गरूप उत्तम त्याग धर्मके लिए मैं पूर्णार्घ अर्पित करता हूँ ।]

आकिञ्चन्यधर्म

ममत्व आदिके त्यागसे उत्पन्न हुए और सुखके आकरभूत आकिञ्चन्यधर्मकी मैं उसकी प्राप्तिके लिए भक्तिपूर्वक बड़ी विभूतिके साथ पूजा करता हूँ ॥१॥

[ओं ह्रीं धर्मके अङ्गरूप उत्तम आकिञ्चन्य धर्मके लिए मैं जलादि-अर्घ अर्पित करता हूँ ।]

आकिञ्चन्य धर्मकी भावना इस प्रकार करो कि आत्मा देहसे भिन्न है, ज्ञानमयी है, उपमारहित है, वर्णरहित है, सुखसे परिपूर्ण है, परमोत्कृष्ट है, अतीन्द्रिय है और भयरहित है। इस प्रकार आत्माका ध्यान ही आकिञ्चन्य धर्म है ॥२॥

सब परिग्रहसे निवृत्त होना आकिञ्चन्यव्रत है, चार प्रकारके शुभ ध्यानोंको करनेकी शक्ति होना आकिञ्चन्य व्रत है, ममत्वसे रहित होना आकिञ्चन्य व्रत है और रत्नत्रयमें प्रवृत्ति होना आकिञ्चन्य व्रत है ॥३॥

आकिञ्चन्य व्रत विचित्र इन्द्रियरूपी वनमें फैलनेवाले मनको आकुञ्चित करता है। देहसे स्नेहका त्याग करना आकिञ्चन्य व्रत है और भवसुखसे विरक्त होना भी आकिञ्चन्य व्रत है ॥४॥

घत्ता

दुहियहं दिज्जइ दाणु किज्जइ माणु जि गुणियणहं।
दय भावियइ अभंग दंसणु चिंतिज्जइ मणहं॥

[ॐ ह्रीं उत्तमत्यागधर्माङ्गाय पूर्णार्घं निर्वपामीति स्वाहा।]

आकिञ्चन्यधर्मः

आकिञ्चन्यं ममत्वादि कृतदूरं सुखाकरम्।
पूजया परया भक्त्या पूजयामि तदाप्तये॥१॥

[ॐ ह्रीं परब्रह्मणे उत्तमाकिञ्चन्यधर्माङ्गाय नमः जलाद्यर्घं निर्वपामीति स्वाहा।]

आकिंचणु भावहु अप्पउ ज्झावहु, देहहु भिण्णउ णाणमउ।
णिरुवम गय-वण्णउ, सुह-संपण्णउ परम अतिंदिय विगयभउ॥

आकिंचणु वउ संगह-णिवित्ति, आकिंचणु वउ सुहझाण-सत्ति।
आकिंचणु वउ वियलिय-ममत्ति, आकिंचणु रयण-त्तय-पवित्ति॥

आकिंचणु आउंचियइ चित्तु, पसरंतउ इंदिय-वणि विचित्तु।
आकिंचणु देहहु णेह चत्तु, आकिंचणु जं भव-सुह विरत्तु॥

जहाँ पर तृणमात्र परिग्रह नहीं होता वह नियमसे आकिञ्चन्य व्रत है। जहाँपर स्व और परके विचार करनेकी शक्ति है, जहाँ पर परमेष्ठीकी भक्ति प्रकट होती है, जहाँपर दुष्ट संकल्पोंका त्याग किया जाता है और जहाँपर रुचिकर भोजनकी वाञ्छा नहीं रहती वहाँ आकिञ्चन्य धर्म होता है। मनुष्यको इस लोकमें उसका ध्यान करना चाहिए ॥५,६॥

इस आकिञ्चन्य धर्मके प्रभाव और सहायतासे तीर्थंकर मोक्षरूपी नगरीको प्राप्त हुए हैं। इसीके कारण काम-विकारसे रहित ऋषिवर सदा वन्दनीय होते हैं ॥७॥

[ओं ह्रीं धर्मके अङ्गरूप उत्तम आकिञ्चन्य धर्मके लिए मैं पूर्णार्घ अर्पित करता हूँ।]

ब्रह्मचर्यधर्म

स्त्रीका त्याग करनेसे जो प्राप्त होता है, तीनों लोकोंमें पूज्य है और गुणोंका समुद्र है उस ब्रह्मचर्य व्रतकी मैं उसकी प्राप्तिके लिए भक्तिपूर्वक बड़ी विभूतिके साथ पूजा करता हूँ ॥१॥

[ओं ह्रीं धर्मके अङ्गरूप उत्तम ब्रह्मचर्य धर्मके लिए मैं जलादि-अर्घ अर्पित करता हूँ।]

दुर्धर और उत्कृष्ट ब्रह्मचर्य व्रतको धारण करना चाहिए और विषयाशाका त्याग कर देना चाहिए। यह जीव स्त्रीसुखमें लीन मनरूपी हाथीसे मदोन्मत्त हो रहा है, इसलिए हे भव्य ! स्थिर होकर उस ब्रह्मचर्य व्रतको रक्षा करो ॥२॥

तिणमित्तु परिग्गहु जत्थ णत्थि, आकिंचणु सो णियमेण अत्थि।
अप्पापर जत्थ वियार-सत्ति, पयडिज्जइ जहिं परमेट्ठि-भत्ति ॥

छंडिज्जइ जहिं संकप्प दुट्ठ, भोयणु वंछिज्जइ जहिं अणिट्ठ।
आकिंचणु धम्मु जि एम होइ, तं ज्झाइज्जइ णिरु इत्थ लोइ ॥

एहु जि पहावें लद्धसहावें तित्थेसर सिव-णयरि गया।
गय-काम-वियारा पुण रिसि-सारा वंदणिज्ज ते तेण सया ॥

[ॐ ह्रीं उत्तमाकिञ्चन्यधर्माङ्गायार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा]

ब्रह्मचर्यधर्मः

स्त्रीत्यक्तं त्रिजगत्पूज्यं ब्रह्मचर्यं गुणार्णवम् ।
पूजया परया भक्त्या पूजयामि तदाप्तये ॥१॥

[ॐ ह्रीं परब्रह्मणे उत्तमब्रह्मचर्यधर्माङ्गाय नमः जलाद्यर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।]

बंभव्वउ दुद्धरु धारिज्जइ वरु फेडिज्जइ विसयास णिरु।
तिय-सुक्खइं रत्तउ मण-करि-मत्तउ तं जि भव्व रक्खेहु थिरु ॥

कामदेव नियमसे चित्तरूपी भूमिमें उत्पन्न होता है। उससे पीड़ित होकर यह जीव अकार्य करता है। वह स्त्रियोंके निन्द्य शरीरोंका सेवन करता है और मूढ़ हुआ अपनी और दूसरेकी स्त्रीमें भेद नहीं करता ॥३॥

जो हीन पुरुष ब्रह्मचर्यव्रतका भङ्ग करता है वह नरकमें पड़ता है और वहाँके महान् दुःखोंको भोगता है। यह जानकर मन, वचन और कायसे अनुरागपूर्वक ब्रह्मचर्य व्रतका पालन करो॥४॥

ब्रह्मचर्यसे जीव संसारसे पार होता है। उसके बिना व्रत तप सब असार हैं। ब्रह्मचर्यके बिना जितने कायक्लेश किये जाते हैं वे सब निष्फल हैं ऐसा जिनेन्द्रदेव कहते हैं ॥५॥

बाहर स्पर्शनेन्द्रियजन्य सुखसे अपने आत्माकी रक्षा करो और भीतर परम ब्रह्मचर्यको देखो। इस उपायसे मोक्षरूपी घरकी प्राप्ति होती है। इस प्रकार रइधू कवि बहुत विनयके साथ कहते हैं ॥६॥

जिसकी जिनदेवने महिमा गाई है और मुनिजन जिसे प्रणाम करते हैं उस दशलक्षण धर्मका उत्तम प्रकारसे पालन करो। हे भव्य! क्षेमसिंहके पुत्र होलूके समान अपने मनको इसमें स्थिर करो ॥७॥

[ओं ह्रीं धर्मके अङ्गरूप उत्तम ब्रह्मचर्यके लिए मैं पूर्णार्घ अर्पित करता हूँ।]

चित्तभूमि मयणु जि उप्पज्जइ, तेण जि पीडिउ करइ अकज्जइ।
तियहं सरीरइं णिंदइं सेवइ, णिय-पर-णारि ण मूढउ वेयइ ॥

णिवडइ णिरइ महादुह भुंजइ, जो हीणु जि बंभव्वउ भंजइ।
इय जाणेप्पिणु मण-वय-काएं, बंभचेरु पालहु अणुराएं ॥

तेण सहु जि लब्भइ भवपारउ, बंभय विणु वउ तउ जि असारउ।
बंभव्वय विणु कायकिलेसो, विहल सयल भासियइ जिणेसो ॥

बाहिर फरसिंदिय सुह रक्खउ, परम बंभु अभिंतरि पेक्खउ।
एण उवाएं लब्भइ सिव-हरु, इम रइधू बहु भणइ विणययरु ॥

घत्ता

जिणणाह महिज्जइ मुणि पणमिज्जइ दहलक्खणु पालियइ णिरु।
भो खेमसींह-सुय भव्व विणयजुय होलुव मण इह करहु थिरु ॥

[ॐ ह्रीं उत्तमब्रह्मचर्यधर्माङ्गाय पूर्णार्घं निर्वपामीति स्वाहा ।]

समुच्चय-जयमाला

इस प्रकार कर्मोंकी निर्जरा करके जो भवरूपी पिंजरेका नाश करते हैं वे रोगरहित अजर-अमर परम सुखको प्राप्त करते हैं ॥१॥

जिससे उस मोक्ष फलकी प्राप्ति होती है उस धर्माङ्गका सेवन करना चाहिए। वह क्षमारूपी पृथिवी तलसे युक्त उत्तुङ्ग देहवाला है। उसके मार्दवरूपी पल्लव और आर्जवरूपी शाखाएँ हैं। सत्य और शौचरूपी जड़ है। संयमरूपी पत्ते हैं। दो प्रकारके महातप रूपी नूतन पुष्पोंसे व्याप्त है। चार प्रकारका त्यागरूपी सुगन्धि-युक्त परिमल फैल रहा है। प्रीणित भव्य लोकरूपी भ्रमरदल है। भव्यरूपी पक्षि-सन्दोह कल-कल शब्द कर रहे हैं। देव, मनुष्य और विद्याधरोंके सुखरूपी सैकड़ों फल लग रहे हैं। जो दीन और अनाथ जीवोंके दीर्घ श्रमका निग्रह करनेवाले शुद्ध और सौम्य शरीर-मात्र परिग्रह (आकिञ्चन्य) से युक्त है। राजहंसोंके समूहके द्वारा आश्रय किया गया ब्रह्मचर्य इसकी छायामें फल-फूल रहा है। यह धर्मरूपी वृक्ष है। जीवदयाके द्वारा इसका अनेक प्रकारसे पालन करना चाहिए। इसे भले प्रकार ध्यानका स्थान बनाना चाहिए और मिथ्या मतोंका अपनेमें प्रवेश नहीं होने देना चाहिए। शीलरूपी जलकी धारासे इसका सिञ्चन करना चाहिए। इस प्रकार प्रयत्न-पूर्वक इसे बढ़ाना चाहिए ॥२-६॥

क्रोधानलका त्यागकर महान् बनो ऐसा ऋषिवरोंने उपदेश दिया है। शुभ करनेवाला यह धर्मरूपी महातरु संसारको मीठे फल प्रदान करता है ॥७॥

[ओं ह्रीं उत्तम क्षमा आदि दश धर्मोंके लिए मैं अर्घ अर्पित करता हूँ।]

[आशीर्वाद]

समुच्चय-जयमाला

इय काऊण णिज्जरं जे हणंति भवपिंजरं ।
णीरोयं अजरामरं ते लहंति सुक्खं परं ॥१॥

जेण मोक्ख-फलु तं पाविज्जइ। सो धम्मंगो एहहु किज्जइ ।
खयय खमायलु तुंगय देहउ, मद्दउ पल्लउ अज्जउ साहउ ॥
सच्च सउच्च मूल संजमु दलु, दुविह महातव णव-कुसुमाउलु ।
चउविह चाउ पसारिय परिमलु, पीणिय-भव्वलोय-छप्पयउलु ॥
दिय-संदोह-सद्द-कयकलयलु, सुर-णरवर-खेयर सुह सय-फलु ।
दीणाणाह-दीह-सम-णिग्गहु, सुद्ध-सोम-तणुमत्तु परिग्गहु ॥
बंभचेरु छायाइ सुहासिउ, रायहंस-णियरेहिं समासिउ ।
एहउ धम्म-रुक्खु लक्खिज्जइ, जीवदया बहुविधि पालिज्जइ ॥
झाण-ट्ठाणु भल्लारउ किज्जइ, मिच्छामयहं पवेसु ण दिज्जइ ।
सील-सलिलधारहिं सिंचिज्जइ, एम पयत्तें वड्ढारिज्जइ ॥

घत्ता

कोहाणलु चुक्कउ होउ गुरुक्कउ जाइ रिसिंदहिं सिट्ठइं ।
जगताइं सुहंकरु धम्म-महातरु देइ फलाइं सुमिट्ठइं ॥

[ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्मेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।]

[इत्याशीर्वादः]

●

रत्नत्रयपूजा

श्रीवर्द्धमान तीर्थंकर और गौतम आदि सद्गुरुओंको नमस्कार कर संसारसे मुक्त होनेके लिए आम्नायके अनुसार रत्नत्रय पूजाको करूँगा ॥१॥

जो परमपदमें स्थित हैं, उत्कृष्ट ज्ञानी हैं परमात्मा हैं, जगद्-गुरु हैं और अमूर्त होकर भी ज्ञानमूर्ति हैं वे हमारे भवताप को शांत करें ॥२॥

विकल्परहित, बाधारहित, शाश्वत और आनन्दके मन्दिर चैतन्यस्वरूप परमात्माको अपने स्वरूपकी प्राप्तिके लिए मैं नमस्कार करता हूँ ॥३॥

जिसके ज्ञानरूपी आकाशमें सम्पूर्ण तीनों लोक एक नक्षत्रके समान प्रतिभासित होते हैं उस ज्ञानस्वरूप परमात्माको मैं नमस्कार करता हूँ ॥४॥

अनन्तानन्त संसाररूपी समुद्रसे एकमात्र तारनेवाले अव्यक्त परमात्माका मैं सदा ध्यान करता हूँ ॥५॥

मैं अनन्यशरण और स्फुरायमान समरसीभावको प्राप्त होकर उनके गुणोंको प्राप्तिके लिए चैतन्य घन परमात्माकी स्तुति करता हूँ ॥६॥

विषय नरकमें पतनके कारण हैं और विषके समान हैं। उनसे मन विमुख होकर परमात्मामें लीन होवे ॥७॥

जिसके नामके मन्त्रके जापसे दुःखदायक यह संसाररूपी ज्वर शीघ्र ही नष्ट हो जाता है उस परमात्माको मेरा नमस्कार हो ॥८॥

जिसके स्मरणमात्रसे ही अनादिकालीन अज्ञान क्षणभरमें नष्ट हो जाता है उस परमात्माको मेरा नमस्कार हो ॥९॥

रत्नत्रयपूजा

श्रीवर्द्धमानमानम्य गौतमादींश्च सद्गुरुन् ।
रत्नत्रय-विधिं वक्ष्ये यथाम्नायं विमुक्तये ॥१॥
परमेष्ठी परंज्योतिः परमात्मा जगद्गुरुः ।
ज्ञानमूर्तिरमूर्तोऽपि भूयान्नो भव-शान्तये ॥२॥
निर्विकल्पं निराबाधं शाश्वतानन्द-मन्दिरम् ।
तोष्टुवीमि चिदात्मानं स्व-स्वरूपोपलब्धये ॥३॥
यस्य ज्ञानान्तरिक्षैकदेशे सर्वं जगत्त्रयम् ।
एक ऋक्ष इवाभाति तस्मै ज्ञानात्मने नमः ॥४॥
अनन्तानन्त-संसार-पारावारैक-तारकम् ।
परमात्मानमव्यक्तं ध्यायाम्यहमनारतम् ॥५॥
अनन्यशरणीभूय तद्गुण-ग्राम-लब्धये ।
स्फुरत्समरसीभाव-मितोऽहं चिद्घनं स्तुवे ॥६॥
विषयेषु विषाभेषु श्वभ्र-पातैक-हेतुषु ।
मनः पराङ्मुखीभूय लीयतां परमात्मनि ॥७॥
यन्नाम-मन्त्र-जापेन दुखदोऽयं भव-ज्वरः ।
सद्यः संक्षीयते तस्मै नमोऽस्तु परमात्मने ॥८॥
अविद्यानादि-संभूता यस्य स्मरण-मात्रतः ।
क्षणाद् विलीयते तस्मै नमोऽस्तु परमात्मने ॥९॥

अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त वीर्य और अनन्त सुखके धारी समयसाररूप परमात्माको मैं नमस्कार करता हूँ ॥१०॥

जो अनुभव स्वरूप है, अव्यक्त है, तत्त्वरूप है और प्राणियों को शान्तिदायक है उस निर्मल चैतन्यस्वरूप परमात्माको मेरा नमस्कार हो ॥११॥

जो सनातन होकर भी स्थिति, उत्पत्ति और व्ययरूप है उस विशुद्ध चिद्रूप परमात्माको मेरा नमस्कार हो ॥१२॥

महर्षिगण जिसे रत्नत्रयस्वभाव बतलाते हैं उस विशुद्ध चिद्रूप परमात्माको मेरा नमस्कार हो ॥१३॥

जो अपने अनुभवगम्य होने पर भी वचन और मनके अगोचर है उस विशुद्ध चिद्रूप परमात्माको मेरा नमस्कार हो ॥१४॥

जिसका अनन्त शाश्वतिक सुख वचनोंके अगोचर है उस चिद्रूप विशुद्ध परमात्माको मेरा नमस्कार हो ॥१५॥

अपनी आत्मामें रहकर भी जिसे विद्वान् सर्वगत कहते हैं उस विशुद्ध चिद्रूप परमात्माको मेरा नमस्कार हो ॥१६॥

जिसके उदय होने पर कोई भी अज्ञानरूपी रात्रिको बलपूर्वक नष्ट कर देता है उस विशुद्ध चिद्रूप परमात्माको मेरा नमस्कार हो ॥ १७ ॥

जिसकी सेवा करनेसे मुक्तिकी सखी समीचीन विद्या प्रकट होती है उस विशुद्ध चिद्रूप परमात्माको मेरा नमस्कार हो ॥ १८ ॥

जो स्वयं आनन्द स्वरूप है और तीन लोकका परमात्मा है उस विशुद्ध चिद्रूप परमात्माको मेरा नमस्कार हो ॥ १९ ॥

[यह पढ़कर साष्टाङ्ग नमस्कार करे ।]

अनन्त-दर्शन-ज्ञान-वीर्यानन्दैक-मूर्तये ।
सदा समयसाराय नमोऽस्तु परमात्मने ॥१०॥
स्वसंवेदनमव्यक्तं यत्तत्त्वं सत्त्वशान्तिदम् ।
नमस्तस्मै विशुद्धाय चिद्रूपाय परमात्मने ॥११॥
सनातनोऽपि यः स्वामी स्थित्युत्पत्ति-व्ययात्मकः ।
नमस्तस्मै विशुद्धाय चिद्रूपाय परात्मने ॥१२॥
रत्नत्रय-स्वभावोऽयं निगदन्ति महर्षयः ।
नमस्तस्मै विशुद्धाय चिद्रूपाय परात्मने ॥१३॥
यः स्वानुभव-संगम्योऽप्यवाङ्-मनस-गोचरः ।
नमस्तस्मै विशुद्धाय चिद्रूपाय परात्मने ॥१४॥
अनन्तं सर्वदा यस्य सौख्यं वाचामगोचरम् ।
नमस्तस्मै विशुद्धाय चिद्रूपाय परात्मने ॥
स्वात्म-स्थितोऽपि यः सर्व-गतः संगीयते बुधैः ।
नमस्तस्मै विशुद्धाय चिद्रूपाय परात्मने ॥१६॥
यस्योदये निहन्त्येनामविद्या-रजनीं बलात् ।
नमस्तस्मै विशुद्धाय चिद्रूपाय परात्मने ॥१७॥
सती मुक्ति-सखी विद्या यस्योन्मीलति सेवया ।
नमस्तस्मै विशुद्धाय चिद्रूपाय परात्मने ॥१८॥
स्वयमानन्द-रूपोऽयं त्रिजगत्परमेश्वरः ।
नमस्तस्मै विशुद्धाय चिद्रूपाय परात्मने ॥१९॥

[इदं पठित्वा साष्टाङ्गनमस्कारं कुर्यात्]

मुक्तिका प्रकाशक होनेसे जिसने स्व और परका भेद-विज्ञान कर इस लोकमें लोकोत्तर महिमा प्राप्त कर ली है, मोहरूपी अन्धकारको दूर करनेवाले उस परम तेजरूप रत्नत्रयको मेरा निरन्तर नमस्कार हो ॥ २० ॥

चेतन-अचेतन पदार्थोंमें श्रद्धा करना सम्यग्दर्शन है, जीवादि तत्त्वोंका यथार्थ ज्ञान करना सम्यग्ज्ञान है और पाप क्रियाओंसे निवृत्त होना सम्यक्चारित्र है उस व्यवहार-रत्नत्रयको मैं हृदयमें धारण करता हूँ ॥२१॥

आत्माका निश्चय करना सम्यग्दर्शन है, आत्माका विशेष ज्ञान सम्यग्ज्ञान है और आत्मामें ही स्थिति करना सम्यक्चारित्र है इस निश्चय रत्नत्रयको मैं नमस्कार करता हूँ ॥२२॥

जो मुनि अव्यय मोक्ष पदको प्राप्त हुए, हो रहे हैं और होंगे वे सब नियमसे अखण्ड-रत्नत्रयका आराधन कर ही प्राप्त हुए हैं ॥२३॥

जन्म, पीड़ा और मरणरूपी सर्पत्रयीके दर्पको हरनेवाले रत्नत्रयको मैं नमस्कार करता हूँ। आभूषण स्वरूप जिसे प्राप्तकर विरूप आकृतिवाले शिष्ट भी मुक्तिरूपी स्त्रीके प्यारे बन जाते हैं ॥२४॥

[ओं ह्रीं सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रस्वरूप रत्नत्रय ! यहाँ अवतरित हूजिए हूजिए संवौषट् ।

ओं ह्रीं सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रस्वरूप रत्नत्रय ! यहाँ स्थित हूजिए हूजिए ठः ठः ।

ओं ह्रीं सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रस्वरूप रत्नत्रय ! यहाँ मेरे सन्निकटवर्ती हूजिए हूजिए वषट् ।]

मुक्तेः प्रकाशकतया समवापि येन
लोकोत्तरोऽत्र महिमा स्व-परानवाप्य ॥
विध्वस्त-मोह-तमसे परमाय तस्मै
रत्नत्रयाय महसे सततं नमोऽस्तु ॥२०॥

सन्निश्चयश्चिदचिदादिषु दर्शनं तद्
जीवादि-तत्त्व-परमावगमः प्रबोधः ॥
पाप-क्रिया-विरमणं चरणं किलेति ।
रत्नत्रयं हृदि दधे व्यवहारतोऽहम् ॥२१॥

दर्शनमात्मविनिश्चितिरात्मपरिज्ञानमिष्यते बोधः ।
स्थितिरात्मनि चारित्रं निश्चय-रत्नत्रयं वन्दे ॥२२॥

ये याता यान्ति यास्यन्ति यमिनः पदमव्ययम् ।
समाराध्यैव ते नूनं रत्न-त्रयमखण्डितम् ॥२३॥

रत्नत्रयं तज्जननार्ति-मृत्यु-सर्पत्रयी-दर्पहरं नमामि ।
यद्भूषणं प्राप्य भवन्ति शिष्टा मुक्तेर्विरूपाकृतयोऽप्यभीष्टाः ॥

[ॐ ह्रीं श्रीसम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रस्वरूप रत्नत्रय ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् ।]

ॐ ह्रीं श्रीसम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रस्वरूप रत्नत्रय ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः ।

ॐ ह्रीं श्रीसम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रस्वरूप रत्नत्रय ! अत्र मम सन्निहितं भव भव वषट् ।]

गंगाके जलकी सुगन्धित धाराओंसे व्यवहार और निश्चय स्वरूप सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रकी मैं पूजा करता हूँ ॥२५॥

[ओं ह्रीं आठ प्रकारके सम्यग्दर्शन, आठ प्रकारके सम्यग्ज्ञान और तेरह प्रकारके सम्यक्चारित्रके लिए मैं जल समर्पित करता हूँ ।]

दिशाओंको सुगन्धित करनेवाले और काशके फूलको लजानेवाले हरिचन्दनके जलकी धाराओंसे व्यवहार और निश्चय सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रकी मैं पूजा करता हूँ ॥२६॥

[ओं ह्रीं सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रके लिए मैं चन्दन अर्पित करता हूँ ।]

गूँजते हुए भौंरोंसे युक्त, स्वच्छ और अखण्ड पुञ्जरूप चावलों से व्यवहार तथा निश्चय सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्रकी मैं पूजा करता हूँ ॥२७॥

[ओं ह्रीं सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रके लिए मैं अक्षत अर्पित करता हूँ ।]

परिपूर्ण सुगन्धि और अन्यासाधारण दुर्लभ गुणोंसे युक्त पुष्पोंसे व्यवहार और निश्चय सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र की मैं पूजा करता हूँ ॥२८॥

[ओं ह्रीं सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रके लिए मैं पुष्प अर्पित करता हूँ ।]

इतर नैवेद्योंको तिरस्कृत करनेवाले ऐसे घीसे बने हुए अनेक गुणयुक्त नैवेद्योंसे व्यवहार तथा निश्चय सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रकी मैं पूजा करता हूँ ॥२९॥

[ओं ह्रीं सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रके लिए मैं नैवेद्य अर्पित करता हूँ ।]

स्वर्धुनी-नीर-धाराभिः गन्ध-साराभिरादरात् ।
द्वेधा सद्दर्शन-ज्ञान-चरित्राण्यर्चयाम्यहम् ॥२५॥

[ॐ ह्रीं अष्टविधसम्यग्दर्शनाय अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय त्रयोदश-विधसम्यक्चारित्राय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।]

हरिचन्दन-निर्यासैः दिग्वासैः काश-हासिभिः ।
द्वेधा सद्दर्शन-ज्ञान-चारित्राण्यर्चयाम्यहम् ॥२६॥

[ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रेभ्यः चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा ।]

तन्दुलैः पाण्डुराखण्डैः पुञ्जितैरलि-गुञ्जितैः ।
द्वेधा सद्दर्शन-ज्ञान-चारित्राण्यर्चयाम्यहम् ॥२७॥

[ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रेभ्यो अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा ।]

प्रसूनैः सौरभानूनैरनूनैर्गुण-दुर्लभैः ।
द्वेधा सद्दर्शन-ज्ञान-चारित्राण्यर्चयाम्यहम् ॥२८॥

[ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रेभ्यः पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ।]

सन्नाज्यैस्तर्जितानाज्यैर्निकायैर्गुण-सम्पदाम् ।
द्वेधा सद्दर्शन-ज्ञान-चारित्राण्यर्चयाम्यहम् ॥२९॥

[ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रेभ्यो नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ।]

सभी दिशाओंको प्रकाशित करनेवाले और नेत्रोंको प्रिय लगनेवाले दीपकोंसे व्यवहार तथा निश्चय सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रकी मैं पूजा करता हूँ ॥३०॥

[ओं ह्रीं सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रके लिए मैं दीप अर्पित करता हूँ ।]

धूपके धुएँके पटलरूप और नासिकाको तृप्त करनेवाली जलती हुई धूपसे व्यवहार तथा निश्चय सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रकी मैं पूजा करता हूँ ॥३१॥

[ओं ह्रीं सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रके लिए मैं धूप अर्पित करता हूँ ।]

उत्तम रस, स्पर्श गन्ध और रूपवाले अनेक फलोंसे निश्चय तथा व्यवहार सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रकी मैं पूजा करता हूँ ॥३२॥

[ओं ह्रीं सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रके लिए मैं फल अर्पित करता हूँ ।]

योग्य जल और दूर्वा आदि मनोहारी सभी द्रव्योंके अर्घसे निश्चय तथा व्यवहार सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रको मैं पूजा करता हूँ ॥३३॥

[ओं ह्रीं सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रके लिए मैं अर्घ अर्पित करता हूँ ।]

इस प्रकार जो भक्तिपूर्वक भेद और अभेद रूप रत्नत्रयकी सदा पूजा करते हैं, मोक्षकी आशा रखनेवाले वे अविनश्वर लक्ष्मी (मोक्ष) प्राप्त करते हैं ॥३४॥

[ओं ह्रीं सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रके लिए मैं पूर्णार्घ अर्पित करता हूँ ।]

प्रदीपैर्दीपिताशेष-दिक्चक्रैर्नयनप्रियैः ।
द्वेधा सद्दर्शन-ज्ञान-चारित्राण्यर्चयाम्यहम् ॥३०॥
[ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रेभ्यो दीपं निर्वपामीति स्वाहा ।]

धूपनैर्धूप-धूमाभ्रं बिभ्राणैर्घ्राण-तर्पणैः ।
द्वेधा सद्दर्शन-ज्ञान-चारित्राण्यर्चयाम्यहम् ॥३१॥
[ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रेभ्यो धूपं निर्वपामीति स्वाहा ।]

फलभेदै रस-स्पर्श-गन्ध-वर्णानुशोभितैः ।
द्वेधा सद्दर्शन-ज्ञान-चारित्राण्यर्चयाम्यहम् ॥३२॥
[ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रेभ्यः फलं निर्वपामीति स्वाहा ।]

अर्घेणार्घ्याम्बु-दूर्वादि-द्रव्य-सर्वस्व-हारिणा ।
द्वेधा सद्दर्शन-ज्ञान-चारित्राण्यर्चयाम्यहम् ॥३३॥
[ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रेभ्यो अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।]

इत्यर्चयन्ति ये भेदाभेद-रत्न-त्रयं सदा ।
ते शिवाशा-धरा भक्त्या श्रियं गच्छन्ति शाश्वतीम् ॥
[ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रेभ्यः पूर्णार्घं निर्वपामीति स्वाहा ।]

सम्यग्दर्शन

स्थिति, उत्पत्ति और व्ययस्वरूप सात तत्त्वोंके श्रद्धानको विद्वान् पुरुष व्यवहार सम्यक्त्व कहते हैं ॥३५॥

प्रगाढ़ आनन्दमय और शुद्ध चैतन्यस्वरूप परमात्मामें समीचीन श्रद्धा होना निश्चय सम्यग्दर्शन है। वह हमें मुक्ति प्रदान करे ॥३६॥

जिसके होनेपर अल्पमात्रामें तपा गया तपश्चरण भी बहुत फलको देनेवाला होता है उस महान् और निर्मल सम्यग्दर्शनके लिए नमस्कार हो ॥३७॥

जैसे जलके विना खेती व्यर्थ है वैसे ही सम्यक्त्वके बिना सब दानादि शुभ क्रियाएँ भी व्यर्थ हैं, इसलिए मुझे सम्यक्त्वकी ही शरण है ॥३८॥

जिस धर्मके प्रभावसे इस संसारमें सज्जन पुरुषोंको अर्थ और कामकी प्राप्ति होती है और जिससे बोध और चारित्रकी प्राप्ति होती है, अतः इनकी प्राप्तिके पूर्व मुझे सम्यक्त्व ही शरण है।३९।

जो प्राणी पहले सिद्ध हो चुके हैं, जो आगे सिद्ध होंगे और जो सिद्ध हो रहे है, इस सबको मैं सम्यक्त्वकी ही महिमा मानता हूँ ॥४०॥

शेषनागके समान जिसके मुखमें दुगुणी दो हजार जिह्वाएँ हों वह भी सम्यक्त्वकी महिमाका व्याख्यान करनेमें समर्थ नहीं है ॥४१॥

जिसकी सामर्थ्यसे प्राणियोंको शुद्ध चैतन्य स्वरूपकी उपलब्धि होती है उस गरिमायुक्त महात्मास्वरूप सम्यग्दर्शनको मेरा नमस्कार हो ॥४२॥

[मैं पुष्पाञ्जलि क्षेपण करता हूँ]

सम्यग्दर्शन

श्रद्धानं सप्त-तत्त्वानां स्थित्युत्पत्ति-व्ययात्मनाम् ।
व्यवहारेण सम्यक्त्वमामनन्ति मनीषिणः ॥३५॥

सान्द्रानन्दमये शुद्धे चिद्रूपे परमात्मनि ।
निश्चयो निश्चयात् सम्यक् सम्यक्त्वं मुक्तयेऽस्तु नः ॥

सति यस्मिन् तपस्तप्तमपि स्वल्पं बहु-प्रदम् ।
नमस्तस्मै गरिष्ठाय सम्यक्त्वायामलत्विषे ॥३७॥

अम्बुनेव कृषिर्येन विना दानादि-सत्क्रिया ।
सर्वापि विफला तस्मात् सम्यक्त्वं शरणं मम ॥३८॥

धर्मेणैवार्थ-कामौ द्वौ येनात्र भवतः सताम् ।
बोध-वृत्तेस्ततः तत्प्राक् सम्यक्त्वं शरणं मम ॥३९॥

यत्सिद्धाः प्राणिनः पूर्वमग्रे सेत्स्यन्ति ये पुनः ।
ये च सिद्ध्यन्ति तन्मन्ये सर्वं सम्यक्त्व-वैभवम् ॥४०॥

शेषाहेरिव जिह्वानां सहस्र-द्वितयं मुखे ।
यस्य सोऽपि न सम्यक्त्व-माहात्म्यं गदितुं क्षमः ॥४१॥

जन्मिनां यस्य सामर्थ्यादुपलब्धिश्चिदात्मनः ।
नमस्तस्मै गरिष्ठाय सम्यक्त्वाय महात्मने ॥४२॥

[पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि]

शुद्ध, बुद्ध और चैतन्यरूप अपने स्वरूपसे भिन्न अन्य पदार्थोंके अभिमुख श्रद्धानको व्यवहार-सम्यक्त्व कहते हैं और आत्माके श्रद्धानको निश्चय सम्यक्त्व कहते हैं ॥४३॥

मोक्षसम्पदा जिसमें प्रतिदिन प्रमोदके साथ विकसित होती है, समयसारके रससे परिपूर्ण वह सम्यग्दर्शनरूपी कमल मेरे मन रूपी मानससरोवरमें अवतरित होओ ॥४४॥

[ओं ह्रां ह्रीं ह्रौं ह्रः आठ अङ्ग सहित सम्यग्दर्शन यहाँ अवतरित हूजिए हूजिए संवौषट् ।]

संसारजन्य दुर्निवार दुःखरूपी अग्निके शमन करनेके लिए जो जलके समान है उस अष्टाङ्ग सम्यग्दर्शनकी उसकी विशुद्धिके लिए मैं स्थापना करता हूँ ॥४५॥

[ओं ह्रां ह्रीं ह्रौं ह्रः आठ अङ्ग सहित सम्यग्दर्शन यहाँ स्थित हूजिए हूजिए ठः ठः ।]

जिसके प्रभावसे मनुष्य संसारजन्य विपत्तिको दूरकर मोक्ष-रूपी लक्ष्मीका अधिपति बनता है वह पापोंको नष्ट करनेवाला उत्तम सम्यग्दर्शन मेरे निकटवर्ती होओ ॥४६॥

[ओं ह्रां ह्रीं ह्रौं ह्रः आठ अङ्गसहित सम्यग्दर्शन यहाँ मेरे सन्निकट-वर्ती हूजिए हूजिए वषट् ।]

जिसके प्रभावसे भव्यात्माओंको अपने अभीष्ट स्वात्मोपलब्धि की शीघ्र प्राप्ति होती है उस अष्टांग सम्यक्त्वरत्नकी गंगाके जलसे मैं पूजा करता हूँ ॥४७॥

[ओं ह्रीं अष्टाङ्ग सम्यग्दर्शनको जन्म, जरा और मृत्युका विनाश करनेके लिए मैं जल अर्पित करता हूँ ।]

शुद्ध-बुद्ध-स्वचिद्रूपादन्यस्याभिमुखी रुचिः ।
व्यवहारेण सम्यक्त्वं निश्चयेन तथात्मनः ॥४३॥

प्रतिदिनं खलु यत्र वितन्वते कृत-मुदा वसतिं शिव-सम्पदा ।
समयसार-रसे मम मानसे तदवतारमुपैतु दृगम्बुजम् ॥४४॥

[ॐ ह्रां ह्रीं ह्रौं ह्रः अष्टाङ्गसम्यग्दर्शन ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् ।]

भव-प्रभव-दुर्वार-दुःखाग्नि-शमनाम्बुदम् ।
अष्टाङ्गं स्थापयाम्यत्र दर्शनं तद्विशुद्धये ॥४५॥

[ॐ ह्रां ह्रीं ह्रौं ह्रः अष्टाङ्गसम्यग्दर्शन ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः ।]

भव-विपत्तिमतीत्य शिव-श्रियामधिपतिर्यदनुग्रहतो नरः ।
दलित-निर्दलनं मम दर्शनं तदिह सन्निहितं भवतूत्तमम् ॥४६॥

[ॐ ह्रां ह्रीं ह्रौं ह्रः अष्टाङ्गसम्यग्दर्शन ! अत्र मम सन्निहितं भव भव वषट् ।]

स्वात्मोपलब्धिर्यदनुग्रहेण भव्यात्मनां स्यादचिरादभीष्टा ।
साष्टाङ्गमर्चामि सुदर्शनं तत् सुरेन्द्र-सिन्धोरमृतेन रत्नम् ॥

[ॐ ह्रीं अष्टाङ्गसम्यग्दर्शनाय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।]

जिसने भव्य जीवोंको बारह मिथ्या मतोंको प्रमाण माननेसे रोका है उस अष्टाङ्ग सम्यक्त्व रत्नकी मनको आनन्द देनेवाले चन्दनसे मैं पूजा करता हूँ ॥४८॥

[ओं ह्रीं अष्टाङ्ग सम्यग्दर्शनको संसार-तापका नाश करनेके लिए मैं चन्दन अर्पित करता हूँ ।]

जिसके होने पर स्वप्नमें भी दुःखोंके स्थानरूप नरकोंमें प्राणियोंका पतन नहीं होता उस अष्टांग सम्यग्दर्शनकी मनोहर अक्षतोंसे मैं पूजा करता हूँ ॥४९॥

[ओं ह्रीं अष्टाङ्ग सम्यग्दर्शनको अक्षयपदकी प्राप्तिके लिए मैं अक्षत अर्पित करता हूँ ।]

जो ज्ञानरूपी लक्ष्मीका मूल है, निर्दोष है और जो चारित्र-रूपी लताके वनके लिए जलके समान है उस अष्टाङ्ग सम्यग्दर्शन रूपी रत्नकी कमल-प्रमुख फूलोंसे मैं पूजा करता हूँ ॥५०॥

[ओं ह्रीं अष्टाङ्ग सम्यग्दर्शनको कामबाणका नाश करनेके लिए मैं पुष्प अर्पित करता हूँ ।]

जो जीवादि सात तत्त्वोंके श्रद्धानरूप है और मोहका नाश करनेवाला है उस अष्टाङ्ग सम्यग्दर्शनकी स्वादिष्ट व्यञ्जनोंसे मुक्ति-प्राप्तिके लिए मैं पूजा करता हूँ ॥५१॥

[ओं ह्रीं अष्टाङ्ग सम्यग्दर्शनको क्षुधारोगका नाश करनेके लिए मैं नैवेद्य अर्पित करता हूँ ।]

जो काल-लब्धिके अनुसार प्राणियोंके स्वभावतः या परोपदेशसे उत्पन्न होता है उस अष्टाङ्ग सम्यक्त्व-रत्नकी प्रसन्नतापूर्वक रत्नमयी दीपकोंसे मैं पूजा करता हूँ ॥५२॥

[ओं ह्रीं अष्टाङ्ग सम्यग्दर्शनको मोहान्धकारका नाश करनेके लिए मैं दीप अर्पित करता हूँ ।]

भव्यात्मनां द्वादशसु प्रमाणं मिथ्यानिवासेषु यकेन रुद्धम् ।
साष्टाङ्गमर्चामि सुदर्शनं तद् रत्नं मनो-नन्दन-चन्दनेन ॥

[ॐ ह्रीं अष्टाङ्गसम्यग्दर्शनाय संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा ।]

स्वभ्रेषु दुःखावनिषु प्रपातः स्वप्नेऽपि यस्मिन् सति नाङ्गभाजाम् ।
साष्टाङ्गमर्चामि सुदर्शनं तद् रत्नं विशुद्धं ललिताक्षतौघैः ॥

[ॐ ह्रीं अष्टाङ्गसम्यग्दर्शनाय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा ।]

ज्ञान-श्रियो मूलमपास्त-दोषं चारित्र-वल्ली-वन-जीवनं यत् ।
साष्टाङ्गमर्चामि सुदर्शनं तद् रत्नं सरोज-प्रमुखैः प्रसूनैः ॥

[ॐ ह्रीं अष्टाङ्गसम्यग्दर्शनाय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ।]

श्रद्धान-रूपं किल चेतनादि-तत्त्वोत्तमानां निगृहीत-मोहम् ।
साष्टाङ्गमर्चामि सुदर्शनं तद् रत्नं रसान्यैश्चरुभिर्विमुक्त्यै ॥

[ॐ ह्रीं अष्टाङ्गसम्यग्दर्शनाय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ।]

निसर्गतो वाधिगमात्प्रजानामुत्पद्यते यत्किल काल-लब्ध्या ।
साष्टाङ्गमर्चामि सुदर्शनं तद् रत्नं मुदा रत्न-भव-प्रदीपैः ॥

[ॐ ह्रीं अष्टाङ्गसम्यग्दर्शनाय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा ।]

संवेग प्रमुख गुणोंसे जो सुशोभित है और समस्त पापोंसे रहित है उस अष्टाङ्ग सम्यग्दर्शनको समस्त दिशाओंको सुगन्धित करनेवाली धूपसे मैं पूजा करता हूँ ॥५३॥

[ओं ह्रीं अष्टाङ्ग सम्यग्दर्शनको दुष्ट आठ कर्मोंका नाश करनेके लिए मैं धूप अर्पित करता हूँ ।]

जिसका मुख्य फल मोक्ष-सुखका मिलना है और गौण फल चक्रवर्ती आदि अद्भुत राज-विभूतिका प्राप्त होना है उस अष्टाङ्ग सम्यग्दर्शनकी बीजपूर प्रमुख फलोंसे मैं पूजा करता हूँ ॥५४॥

[ओं ह्रीं अष्टाङ्ग सम्यग्दर्शनको मोक्षफलकी प्राप्तिके लिए मैं फल अर्पित करता हूँ ।]

जो पापरूपी दावानलको शमन करनेके लिए मेघके समान है और जो संसारके कारणोंको दूर करनेमें सदा तत्पर है, अद्भुत मोक्ष सुखकी प्राप्तिके लिए दोषरहित उस सम्यग्दर्शनको मैं जल, चन्दन, फल और फूल आदिकी अंजलि अर्पित करता हूँ ॥५५॥

[ओं ह्रीं अष्टाङ्ग सम्यग्दर्शनको अनर्घ्यपदकी प्राप्तिके लिए मैं अर्घ अर्पित करता हूँ ।]

अष्टाङ्ग-पूजा

जिसके होने पर भव्य प्राणियोंको जिन-प्रतिपादित तत्त्वोंमें कभी संशय नहीं होता वह मोक्ष सुखका शरण सम्यक्त्वका निःशंकित अंग मेरे हृदयमें वास करो ॥५६॥

[ओं ह्रीं निःशङ्कित अङ्गके लिए नमस्कारपूर्वक मैं अर्घ अर्पित करता हूँ ।]

संवेग-मुख्यैः परमैः गुणौघैरलंकृतं ध्वस्त-समस्त-पापम् ।
साष्टाङ्गमर्चामि सुदर्शनं तद् रूपैः सुगन्धीकृत-दिग्विभागैः ॥ धूपैः

[ॐ ह्रीं अष्टाङ्गसम्यग्दर्शनाय दुष्टाष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ।]

मुख्यं फलं यस्य विमुक्ति-सौख्यममुख्यमत्यद्भुत-राज-लक्ष्मीः ।
साष्टाङ्गमर्चामि सुदर्शनं तद् सन्मातुलिङ्ग-प्रमुखैः फलौघैः ॥

[ॐ ह्रीं अष्टाङ्गसम्यग्दर्शनाय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा ।]

दुष्कर्म-दाव-हुतभुक्-शमने पयोदं
संसार-कारण-निवारण-बद्ध-कक्षम् ।
निःश्रेयसाद्भुत-सुखाय निरस्त-दोषं
सद्दर्शनं सुकुसुमाञ्जलिमातनोमि ॥५५॥

[ॐ ह्रीं अष्टाङ्गसम्यग्दर्शनाय अनर्घपदप्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।]

अष्टाङ्गपूजा

येनान्वितो भव्य-जनो जिनोक्ते न संशयी जातु पदार्थ-जाते ।
तद्दर्शनाङ्गं शिव-सौख्य-बीजं निःशङ्कितत्वं हृदये ममास्ताम् ॥

[ॐ ह्रीं निःशङ्किताङ्गाय नमः अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।]

जिसके प्रभावसे चक्रवर्ती और इन्द्र की लक्ष्मी 'पहले मैं पहले मैं' इस भावसे प्राणियोंके पास आती है वह सम्यग्दर्शनका निःकांक्षित अंग मेरे हृदयमें वास करो ॥५७॥

[ओं ह्रीं निःकांक्षित अङ्गके लिए नमस्कारपूर्वक मैं अर्घ अर्पित करता हूँ ।]

स्फुरायमान अभ्यासवश विद्याविलासजन्य विवेकसे मनुष्योंमें जो उदित होता है, सम्यग्दर्शनका वह श्रेष्ठ निर्विचिकित्सित अंग मेरे हृदयमें निवास करो ॥५८॥

[ओं ह्रीं निर्विचिकित्सित अङ्गके लिए नमस्कारपूर्वक मैं अर्घ अर्पित करता हूँ ।]

जिसका वशवर्ती होकर यह आत्मा पर पदार्थोंमें मोह नहीं करता वह सम्यग्दर्शनका निर्दोष अमूढ़दृष्टि अङ्ग मेरे हृदयमें वास करो ॥५९॥

[ओं ह्रीं अमूढ़दृष्टि अङ्गके लिए नमस्कारपूर्वक मैं अर्घ अर्पित करता हूँ ।]

जिस प्रकार सूर्यके उदित होने पर अन्धकार नहीं रहता उसी प्रकार जिसके होने पर प्राणियोंको थोड़ा भी दुःख नहीं होता वह उपगूहन अंग मेरे हृदयमें वास करो ॥६०॥

[ओं ह्रीं उपगूहन अङ्गके लिए नमस्कार पूर्वक मैं अर्घ अर्पित करता हूँ ।]

न्याय मार्गसे डिगते हुए किसी अन्य प्राणीको या स्वयंको पुनः उसपर लगा देना यह सम्यग्दर्शनका श्रेष्ठ स्थितीकरण अङ्ग है । वह सदा मेरे हृदयमें वास करो ॥६१॥

[ओं ह्रीं सुस्थितीकरण अङ्गके लिए नमस्कारपूर्वक मैं अर्घ अर्पित करता हूँ ।]

चक्रश्रिया शक्र-पद-श्रिया च हर्षादहंपूर्वकया शरीरी ।
यस्य प्रभावाद् ध्रियते तदुच्चैर्निःकांक्षितत्वं हृदये ममास्ताम् ॥
[ॐ ह्रीं निःकांक्षिताङ्गाय नमः अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।]

उदेति विद्या-विलसद्-विवेकात् प्रस्फूर्यदभ्यास-वशान्नरेषु ।
तदुत्तमं निर्विचिकित्सितत्वं सुदर्शनाङ्गं हृदये ममास्ताम् ॥
[ॐ ह्रीं निर्विचिकित्सिताङ्गाय नमः अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।]

अनारतं यद्वशगोऽयमात्मा न मोहमन्वेति परात्म-तत्त्वे ।
अमूढदृष्टित्वमकल्पनं तत् सुदर्शनाङ्गं हृदये ममास्ताम् ॥
[ॐ ह्रीं अमूढताङ्गाय नमः अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।]

न दुःखलेशोऽपि सतीह यस्मिन् शरीरिणां ध्वान्तमिव द्युरत्ने ।
निगूहनाख्यं सुख-कारणं तत् सुदर्शनाङ्गं हृदये ममास्ताम् ॥
[ॐ ह्रीं उपगूहनाङ्गाय नमः अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।]

न्यायात् पथः सञ्चलतः परस्य यत्प्रत्यवस्थापनमात्मनो वा ।
तत्सुस्थितीसंस्करणं वरेण्यं सद्दर्शनाङ्गं हृदये ममास्ताम् ॥
[ॐ ह्रीं स्थितीकरणाङ्गाय नमः अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।]

जो तीन लोकके सभी प्राणियोंको शीघ्र ही अपने वशमें कर लेता है वह आत्माके अभ्युदयका कारण सम्यक्त्वका वात्सल्य अंग मेरे हृदयमें वास करो ॥६२॥

[ओं ह्रीं वात्सल्य अङ्गके लिए नमस्कार पूर्वक मैं अर्घ अर्पित करता हूँ।]

जिससे इस लोकमें चन्द्रमाके समान उज्ज्वल यश फैलता है और परलोकमें स्वर्गमें निवास होता है वह अत्यधिक प्रभावशाली सम्यग्दर्शनका प्रभावनाङ्ग मेरे हृदयमें वास करो ॥६३॥

[ओं ह्रीं प्रभावना अङ्गके लिए नमस्कारपूर्वक मैं अर्घ अर्पित करता हूँ।]

अष्टक

अपने स्वरूपकी प्राप्तिके लिए चित्तको हरण करनेवाले जलसे भक्ति पूर्वक निःशङ्कित आदि अंगोंकी मैं पूजा करता हूँ ॥६४॥

[ओं ह्रीं निःशंकित आदि आठ अङ्गोंके लिए मैं जल अर्पित करता हूँ।]

अपने स्वरूपकी प्राप्तिके लिए मनोहर शीतल चन्दनसे निःशंकित आदि अंगोंकी मैं पूजा करता हूँ ॥६५॥

[ओं ह्रीं निःशंकित आदि आठ अङ्गोंके लिए मैं चन्दन अर्पित करता हूँ।]

अपने स्वरूपकी प्राप्तिके लिए स्वच्छ अक्षतोंसे निःशंकित आदि अंगोंकी मैं पूजा करता हूँ ॥६६॥

[ओं ह्रीं निःशंकित आदि आठ अङ्गोंके लिए मैं अक्षत अर्पित करता हूँ।]

अपने स्वरूपकी प्राप्तिके लिए अनुपम फूलोंसे निःशंकित आदि आठ अगोंकी मैं पूजा करता हूँ ॥६७॥

[ओं ह्रीं निःशंकित आदि आठ अङ्गोंके लिए मैं पुष्प अर्पित करता हूँ।]

यत्सत्त्व-सन्तान-विचित्रमेतत् त्रैलोक्यमप्याशु वशीकरोति ।
वात्सल्यमात्मोदय-कारणं तत्सुदर्शनाङ्गं हृदये ममास्ताम्॥६२॥
[ॐ ह्रीं वात्सल्याङ्गाय नमः अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।]
यशः-शशाङ्कोज्ज्वलमत्र येन नृणाममुत्र त्रिदिवे निवासः ।
प्रभावनाख्यं प्रथित-प्रभावं सुदर्शनाङ्गं हृदये ममास्ताम् ॥६३॥
[ॐ ह्रीं प्रभावनाङ्गाय नमः अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।]

अष्टकम्

रचयाम्यर्चनं भक्त्या वारिभिश्चित्त-हारिभिः ।
निःशङ्कितादिकाङ्गानां स्व-स्वरूपोपलब्धये ॥६४॥
[ॐ ह्रीं निःशङ्किताद्यष्टाङ्गेभ्यो जलं निर्वपामीति स्वाहा ।]
रचयाम्यर्चनं भक्त्या चन्दनैश्चित्त-नन्दनैः ।
निःशङ्कितादिकाङ्गानां स्व-स्वरूपोपलब्धये ॥६५॥
[ॐ ह्रीं निःशङ्किताद्यष्टाङ्गेभ्यः चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा ।]
रचयाम्यर्चनं भक्त्या तण्डुलैरतिनिर्मलैः ।
निःशङ्कितादिकाङ्गानां स्व-स्वरूपोपलब्धये ॥६६॥
[ॐ ह्रीं निःशङ्किताद्यष्टाङ्गेभ्यः अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा ।]
रचयाम्यर्चनं भक्त्या कुसुमैर्विगतोपमैः ।
निःशङ्कितादिकाङ्गानां स्व-स्वरूपोपलब्धये ॥६७॥
[ॐ ह्रीं निःशङ्किताद्यष्टाङ्गेभ्यः पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ।]

अपने स्वरूपकी प्राप्तिके लिए सरस और ताजे पक्वान्नोंसे निःशंकितादि आठ अङ्गोंकी मैं पूजा करता हूँ ॥६८॥

[ओं ह्रीं निःशंकित आदि आठ अङ्गोंके लिए मैं नैवेद्य अर्पित करता हूँ।]

अपने स्वरूपकी प्राप्तिके लिए प्रभासे प्रकाशमान दीप-समूहोंसे निःशंकितादि आठ अङ्गोंकी मैं पूजा करता हूँ ॥६९॥

[ओं ह्रीं निःशंकित आदि आठ अङ्गोंके लिए मैं दीप अर्पित करता हूँ।]

अपने स्वरूपकी प्राप्तिके लिए धूपके उठते हुए सुन्दर धूँएसे निःशंकितादि आठ अङ्गोंकी मैं पूजा करता हूँ ॥७०॥

[ओं ह्रीं निःशंकित आदि आठ अङ्गोंके लिए मैं धूप अर्पित करता हूँ।]

अपने स्वरूपकी प्राप्तिके लिए सुपारी आदि श्रेष्ठ फलोंसे निःशंकितादि आठ अंगोंकी मैं पूजा करता हूँ ॥७१॥

[ओं ह्रीं निःशंकित आदि आठ अङ्गोंके लिए मैं फल अर्पित करता हूँ।]

मोक्ष सुखकी प्राप्तिके लिए जल, चन्दन और सुन्दर अक्षतादिसे सुशोभित पुष्पोंकी अंजलीसे सम्यग्दर्शनके आठ अंगोंकी मैं सदा भक्तिपूर्वक पूजा करता हूँ ॥७२॥

[ओं ह्रीं निःशंकित आदि आठ अङ्गोंके लिए मैं अर्घ अर्पित करता हूँ।]

जयमाला

संसारका भय दूर करनेवाले, मोहरूपी महान् अन्धकारको नष्ट करनेवाले, समतारूपी कमलको खिलानेके लिए सूर्यके समान, सम्पूर्ण गुणोंके निधि और उत्कृष्ट मुक्ति-सुखके कारण हे सम्यग्दर्शन, तुम जयवन्त होओ ॥७३॥

रचयाम्यर्चनं भक्त्या पक्वान्नैः सरसैर्नवैः ।
निःशङ्कितादिकाङ्गानां स्व-स्वरूपोपलब्धये ॥६८॥
[ॐ ह्रीं निशङ्कितादयष्टाङ्गेभ्यः नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ।]
रचयाम्यर्चनं भक्त्या दीप-व्रातैः प्रभार्चितैः ।
निःशङ्कितादिकाङ्गानां स्व-स्वरूपोपलब्धये ॥६९॥
[ॐ ह्रीं निःशङ्कितादयष्टाङ्गेभ्यो दीपं निर्वपामीति स्वाहा ।]
रचयाम्यर्चनं भक्त्या धूप-धूम्रैर्मनोरमैः ।
निशङ्कितादिकाङ्गानां स्व-स्वरूपोपलब्धये ॥७०॥
[ॐ ह्रीं निःशङ्कितादयष्टाङ्गेभ्यो धूपं निर्वपामीति स्वाहा ।]
रचयाम्यर्चनं भक्त्या फलैः पूजादि-सत्फलैः ।
निःशङ्कितादिकाङ्गानां स्व-स्वरूपोपलब्धये ॥७१॥
[ॐ ह्रीं निःशङ्कितादयष्टाङ्गेभ्यः फलं निर्वपामीति स्वाहा ।]

आर्या

जल-चन्दन-विशदाक्षत-सुशोभिना मोक्ष-सौख्य-संलब्धये ।
कुसुमाञ्जलिना नित्यं दृष्टाङ्गान्यादरात् प्रयजे ॥७२॥
[ॐ ह्रीं निःशङ्कितादयष्टाङ्गेभ्यो अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।]

जयमाला

घत्ता

जय जय सद्दर्शन भव-भय-निरसन मोह-महातम-वारण ।
उपशम-कमल-दिवाकर सकल-गुणाकर परम-मुक्ति-सुख-कारण ॥

मिथ्यामतरूपी अन्धकारके पूरको नष्ट करनेवाले त्रैलोक्यके भव्य कमलोंको सूर्यके समान हे सम्यग्दर्शन तुम जयवन्त होओ। विषम आठ मदरूपी वृक्षोंके लिए हाथीके समान तथा इच्छित पदार्थ देनेके लिए कल्पवृक्षके समान हे सम्यग्दर्शन तुम जयवन्त होओ ॥७४॥

आठ अंग सहित, पापनिवारक, संसारसे भयभीत साधुओंके लिए शरणभूत, दुर्वार नरकरूपी वृक्षोंके लिए कुठार के समान और मुक्तिरूपी स्त्रीके कंठके हारके समान हे सम्यग्दर्शन तुम जयवन्त होओ ॥७५॥

मिथ्यात्वके बहुविध आयतनोंको उद्भासित करनेवाले, जिनेन्द्र देव द्वारा प्रतिपादित सात तत्त्वोंका अवभास करनेवाले, अपनी सेवा करनेवालेको राजाके समान पुरस्कार देनेवाले और मोक्षमार्ग दिखानेके लिए दीपकके समान हे सम्यग्दर्शन तुम जयवन्त होओ ॥७६॥

दुष्ट कर्मरूपी वनोंके लिए अग्निके समान, बलवान मोहरूपी जालको नष्ट करनेवाले, आनन्दसे परिपूर्ण परमात्मस्वरूप तथा प्रगाढ़ संसाररूपी अन्धकूपसे उद्धार करनेवाले हे सम्यग्दर्शन तुम जयवन्त होओ ॥७७॥

रागरूपी सर्पके मदको दमन करनेके लिए मन्त्रके समान, मुनियोंके भूषण, मोक्ष सुख देनेवाले, द्वेषरूपी समुद्रके लिए बड़वानलके समान और समस्त लोककी आशाको सफल करनेवाले हे सम्यग्दर्शन तुम जयवन्त होओ ॥७८॥

चिन्तामणिके समान सबको शरण देनेवाले, दुर्गतिका वारण करनेवाले, पापका हरण करनेवाले, सम्यग्ज्ञानकी उत्पत्तिके कारण तथा मोक्षके इच्छुक प्राणियोंके चित्तको आनन्दित करनेवाले हे सम्यग्दर्शन तुम जयवन्त होओ ॥७९॥

जय दर्शन भुवन-सरोज-सूर दूरीकृत-दुर्नय-तिमिर-पूर ।
जय विषम-मदाष्टक-विटपि-नाग जय वाञ्छितार्थ-वितरण-सुराग॥

अष्टाङ्ग-समन्वित दुरित-हरण भव-भीत-यतीश-समूह-शरण ।
दुर्वार-नरक-भूरुह-कुठार जय मुक्ति-कामिनी-कण्ठ-हार ॥७५॥

उद्वासित-बहु-मिथ्या-निवास जिन-गदित-सप्त-तत्त्वावभास ।
सेवा-भर-निर्भर-सदवनीप निर्वाण-मार्ग-भासन-सुदीप ॥७६॥

जय दुष्ट-कर्म-कानन-हुताश संछिन्न-मदोद्धत-मोह-पाश ।
आनन्द-सान्द्र-परमात्मरूप उद्धारित-घन-जननान्धकूप ॥७७॥

जय-राग-भुजङ्ग-मद-दमन-मन्त्र मुनि-गण-भूषण शिव सौख्य-सत्र
विद्वेष-सिन्धु-वडवा-निवास निःशेष-लोक-सफली-कृताश ॥७८॥

चिन्तामणि-सन्निभ-लोक-शरण
वारित-दुर्गति-कर पाप-हरण ।
जय विमल-बोध-सम्भव-निमित्त
आनन्दित-निखिल-मुमुक्षु-चित्त ॥७९॥

इस प्रकार अतिशय विवेकवान् जो भक्तिपूर्वक सम्यग्दर्शन की स्तुति करता है वह महान् तेजस्वी और अखिल धराका अधिपति होकर अन्तमें मुक्तिको अपने हाथमें कर लेता है ॥८०॥

जो किसीसे डरता नहीं है, कुछ चाह नहीं करता है, किसी पर क्रोध नहीं करता है और न किसीसे मोह करता है। केवल निरन्तर अपनी आत्मशक्तियोंको पुष्ट करता है। कभी मार्गसे च्युत नहीं होता, मात्र मोक्षमार्ग स्वरूप अपनी आत्माको देखता है और अपने माहात्म्यको प्रकाशमें लाता है उसके उस समय अष्टाङ्ग सम्यग्दर्शन होता है ॥८१॥

शङ्कारूप दृष्टि, मूढ़ दृष्टि और कांक्षणविधिकी व्यावृत्तिमें तत्पता, वात्सल्य, निर्विचिकित्सता, धर्मकी वृद्धि करना, शक्तिपूर्वक जिन शासनकी प्रभावना करना और हितरूपी मार्गसे च्युत हुए प्राणियोंको पुनः उसमें स्थापित करना ये सम्यग्दर्शनके विषयभूत आठ अङ्ग हैं। इन्हें मैं मस्तक झुकाकर नमस्कार करता हूँ ॥८२॥

[ओं ह्रीं धर्मके अङ्गरूप आर्जव धर्मके लिए मैं पूर्णार्घ अर्पित करता हूँ।]

जो रागादि शत्रुओंको शीघ्रतासे दूर कर निर्दोष भावको प्राप्त हुआ है, जो संवेगभावसे युक्त है, जिसने सब ओर कृपारूपी कमलिनीको विकसित किया है, जो आस्तिक्य मार्गको व्यक्त करनेमें समर्थ है, तीन लोकके प्राणी जिसकी पूजा करते हैं और मोक्ष लक्ष्मीका प्रेमपूर्वक सेवन करनेवालोंके लिए जो मार्गरूप है, आपका वह सम्यक्त्वरूपी सूर्य रक्षा करे ॥८३॥

[आशीर्वाद]

घत्ता

इति दर्शन-संस्तुतिमतिशय-चित्त-मतिरिह रचयति बहु-भक्त्या ।
स स्यादसमद्युतिरखिल-धरापतिरात्म-हस्त-गत-कृत-मुक्तिः ॥

यत्कस्मादपि नो बिभेति न किमप्याशंसति क्वाप्युप-
क्रोशं नाश्रयते न मुह्यति निजाः पुष्णाति शक्तीः सदा ।
मार्गान्न च्यवतेऽञ्जसा शिव-पथं स्वात्मानमालोकते
माहात्म्यं स्वमभिव्यनक्ति च तदा साष्टाङ्ग-सद्दर्शनम् ॥८१॥

शङ्काद्दष्टि-विमोह-कांक्षणविधि-व्यावृत्ति-सन्नद्धतां
वात्सल्यं विचिकित्सितादुपरतिं धर्मोपबृंह-क्रियाम् ।
शक्त्या शासन-दीपनं हित-पथाद् भ्रष्टस्य संस्थापनं
वन्दे दर्शन-गोचरं सुचरितं मूर्ध्ना नमन्नादरात् ॥८२॥

[ॐ ह्रीं अष्टाङ्गसम्यग्दर्शनाय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।]

यो रागादि-रिपून्निरस्य रभसा निर्दोषभावं गतः
संवेगच्छलमास्थितो विकचयन् विष्वक् कृपाम्भोजिनीम् ।
व्यक्तास्तिक्य-पथस्त्रिलोक-महितः पन्थाः शिवश्रीजुषा-
माराद्धुं प्रणतीच्छितैः स भवतः सम्यक्त्वसूर्योऽवतात् ॥८३॥

[इत्याशीर्वादः]

अनुपम सुखके खजाने, सम्पूर्ण सुखोंके बीज, संसार-समुद्रके लिए जहाजके समान, मात्र भव्य जीवोंके आश्रयसे होनेवाला पापरूपी वृक्षके लिए कुठारके समान, पुण्य तीर्थोंमें प्रधान और विपक्षको जीतनेमें समर्थ सम्यक्त्वरूपी अमृतका सब लोग पान करें ॥८४॥

[आशीर्वाद]

•

सम्यग्ज्ञान

जो सम्पूर्ण द्रव्योंको उनकी अनन्तानन्त पर्यायोंके साथ जानता है और उनके गुणोंको भी जानता है उस केवलज्ञानकी मैं स्तुति करता हूँ ॥१॥

मोहके क्षयसे तथा ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तरायके क्षयसे जो ज्ञान उत्पन्न होता है उसकी मैं शरण लेता हूँ ॥२॥

वह ज्ञान मोह, संशय और विभ्रमको इस प्रकार नष्ट कर देता है जैसे उदयको प्राप्त हुआ सूर्य रात और रातमें विचरनेवाले जीवोंको भगा देता है ॥३॥

तीन लोकके नाथ परमात्माका जो स्वरूप है, सब प्रकारके अभ्युदयका साधक वह ज्ञान भला किसके द्वारा स्तुति करने योग्य नहीं है ॥४॥

सम्यक्त्वके आलम्बनसे स्वयं उत्पन्न होकर जो क्रमसे चारित्रको पैदा करता है उस ज्ञानकी मैं शरण लेता हूँ ॥५॥

संसारके सम्पूर्ण तत्त्वोंको देखनेमें समर्थ जिसका ज्ञानरूपी नेत्र नहीं है वह सुलोचन होकर भी नियमसे अन्धा है ॥६॥

अतुल-सुख-निधानं सर्व-कल्याण-बीजं
जनन-जलधि-पोतं भव्य-सत्त्वैक-पात्रम् ।
दुरित-तरु-कुठारं पुण्य-तीर्थ-प्रधानं
पिबतु जित-विपक्षं दर्शनाख्यं सुधाम्बु ॥८४॥

[इत्याशीर्वादः]

•

सम्यग्ज्ञान

द्रव्याणि यदशेषाणि सपर्यायानि सर्वतः ।
तद्गुणानपि जानाति तज्ज्ञानं केवलं स्तुवे ॥१॥
क्षयान्मोहस्य यज्ज्ञान-दर्शनावरणस्य च ।
उत्पद्यतेऽन्तरायस्य तदहं ज्ञानमाश्रये ॥२॥
तज्ज्ञानं यन्नुदत्याशु मोह-संशय-विभ्रमान् ।
नक्तं नक्तंचराख्यानि रवि-बिम्बमिवोद्गतम् ॥३॥
जगत्त्रय-गुरोः सम्यक् यद्रूपं परमात्मनः ।
स्तोतव्यं तन्न कस्येह सर्वाभ्युदय-साधकम् ॥४॥
सम्यक्त्वस्यावलम्बेन स्वयमुत्पद्य यत्क्रमात् ।
उत्पादयति चारित्रं तदहं ज्ञानमाश्रये ॥५॥
न ज्ञानं लोचनं यस्य विश्व-तत्त्वावलोकने ।
सुलोचनोऽपि सोऽवश्यं नरो विगत-लोचनः ॥६॥

ज्ञानके बिना किये गये बहुत तपश्चरण भी मुक्तिके कारण नहीं होते, अतएव केवल सम्यग्ज्ञानही मोक्षका कारण है ॥७॥

यदि सुख चाहते हो तो इस लोकमें अपार महिमावाले और परलोकमें मुक्ति देनेवाले केवलज्ञान की उपासना करो ॥८॥

[पुष्पाञ्जलि अर्पण करता हूँ]

जिसमें पदार्थोंके ग्रहणकी मुख्यता नहीं है ऐसा निर्विकल्पक सम्यग्ज्ञान निश्चय सम्यग्ज्ञान कहलाता है और जो इससे भिन्न है वह व्यवहारसम्यग्ज्ञान कहलाता है ॥१॥

जिस सम्यग्ज्ञानसे तीन लोकके गुरु परमात्मा भी पूर्णतया प्रकाशमान होते हैं, प्राणियोंके लोचन रूप वह भव्य ज्ञान हमें प्राप्त हो ॥२॥

[ओं ह्रां ह्रीं ह्रं, ह्रः अष्टाङ्ग सम्यग्ज्ञान यहाँ अवतरित हूजिए हूजिए संवौषट्।]

परम आनन्दसे विभूपित जिसकी प्राप्ति शुक्लध्यानसे होती है, कर्मोंके मर्मका नाश करनेवाले उस सम्यग्ज्ञानको मैं स्थापना करता हूँ ॥३॥

[ओं ह्रां ह्रीं ह्रुं ह्रः सम्यग्ज्ञान यहाँ ठहरिए ठहरिए ठः ठः।]

अत्यन्त शुद्ध त्रैकालिक दर्पणके समान जिसमें सम्पूर्ण पदार्थ एकसाथ झलकते हैं वह अद्भुत वैभववाला सम्यग्ज्ञान मेरे निकटवर्ती होओ ॥४॥

[ओं ह्रां ह्रीं ह्रुं ह्रः अष्टाङ्ग सम्यग्ज्ञान यहाँ मेरे सन्निकटवर्ती हूजिए हूजिए वषट्।]

तपांसि क्रियमाणानि बहून्यपि न मुक्तये ।
विना ज्ञानेन तस्मात्तत् केवलं मुक्ति-साधनम् ॥७॥
अमेयमत्र माहात्म्यं यद्यमुत्र न मुक्तिजम् ।
सुखं वाञ्छथ तज्ज्ञानमुपाध्वं शुद्धमादरात् ॥८॥

[पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि]

निर्विकल्प-सुसंवित्तिरनर्पित-परिग्रहम् ।
सज्ज्ञानं निश्चयादुक्तं व्यवहारेण यत्परम् ॥१॥
परमात्मापि येनोच्चैर्दीप्यते त्रिजगद् गुरुः ।
अभ्युपैतु तु तज्ज्ञानं भव्यं लोकैक-लोचनम् ॥२॥

[ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रः अष्टाङ्गसम्यग्ज्ञान अत्र अवतर अवतर संवौषट् ।]

शुक्ल-ध्यानेन यस्याप्तिः परमानन्द-शालिनी ।
स्थापयामीह तज्ज्ञानं कर्म-मर्म-निषूदनम् ॥३॥

[ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रः अष्टाङ्गसम्यग्ज्ञान अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः ।]

त्रैकालिकादर्शमिवातिशुद्धे
यस्मिन् समं सर्व-पदार्थ-माला ।
परिस्फुरत्यद्भुतवैभवं तत्
ज्ञानं परं सन्निहितं ममास्तु ॥४॥

[ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रः अष्टाङ्गसम्यग्ज्ञान अत्र मम सन्निहितं भव भव वषट् ।]

इस लोकके सम्पूर्ण पदार्थोंको देखनेमें जो स्वच्छ तीसरे नेत्रके समान है और जो स्वभावसे निर्मल है उस ज्ञानकी अनन्त सुखरूप परमात्म-पदकी प्राप्तिके लिए मैं जलसे पूजा करता हूँ ॥५॥

[ओं ह्रीं अष्टाङ्ग सम्यग्ज्ञानको जन्म, जरा और मृत्युका नाश करनेके लिए मैं जल अर्पित करता हूँ ।]

मुनिगण जिस ज्ञानकी प्राप्तिके लिए विधिपूर्वक इन्द्रियोंका नियमन करके अनेक प्रकारका तपश्चरण करते हैं उस अनुपम सम्यज्ञानरूपी रत्नकी अनन्त सुख स्वरूप परमात्मपदकी प्राप्तिके लिए मैं चन्दनसे पूजा करता हूँ ॥६॥

[ओं ह्रीं अष्टाङ्ग सम्यग्ज्ञानको संसारका आतप दूर करनेके लिए मैं चन्दन अर्पित करता हूँ ।]

योगी पुरुष जिस ज्ञानसे चैतन्यस्वरूप जीवको देहसे भिन्न अनुभव करते हैं उस अनुपम ज्ञानरत्नकी अनन्त सुखरूप परमात्मपदकी प्राप्तिके लिए मैं अक्षतोंसे पूजा करता हूँ ॥७॥

[ओं ह्रीं अष्टाङ्ग सम्यग्ज्ञानको अक्षयपदकी प्राप्तिके लिए मैं अक्षत अर्पित करता हूँ ।]

लोकमें जिसकी आराधना करनेसे महान् तीर्थंकर पदका प्राप्त होना कठिन नहीं होता उस अनुरूप सम्यग्ज्ञान रत्नकी अनन्त सुख स्वरूप परमात्मपदकी प्राप्तिके लिए मैं फूलोंसे पूजा करता हूँ ॥८॥

[ओं ह्रीं अष्टांग सम्यग्ज्ञानको कामवाणका नाश करनेके लिए मैं पुष्प अर्पित करता हूँ ।]

नेत्रं तृतीयमखिलार्थ-विलोकनेऽस्मिं-
ल्लोके यदस्य जगतो विमलं स्वभावात् ।
आनन्द-सान्द्र-परमात्म-पदाप्तयेऽहं
तज्ज्ञान-रत्नमसमं पयसा यजामि ॥५॥

[ॐ ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।]

यल्लब्धये विधिवदक्षगणं नियम्य
कुर्वन्त्यनेकविधमत्र तपो मुनीन्द्राः ।
आनन्द-सान्द्र-परमात्म-पदाप्तयेऽहं
तज्ज्ञान-रत्नमसमं घुसृणैर्महामि ॥६॥

[ॐ ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय संसारतापविनाशनाय चन्दनं नि०।]

चैतन्य-चिह्नमचलं किल जीवमस्माद्
देहादिभिन्नमिह विन्दति येन योगी ।
आनन्द-सान्द्र-परमात्म-पदाप्तयेऽहं
तज्ज्ञानरत्नमसमं सदकैर्नमामि ॥७॥

[ॐ ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं नि० ।]

तीर्थङ्करोरु-पदवी न दवीयसी स्याद्-
आराधितेन भुवि येन शरीरभाजाम् ।
आनन्द-सान्द्र-परमात्म-पदाप्तयेऽहं
तज्ज्ञान-रत्नमसमं कुसुमैर्महामि ॥८॥

[ॐ ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं नि० ।]

जिस ज्ञानसे युक्त साधु पुरुषको मोक्षलक्ष्मी समर्थ होकर भी स्वयमेव वरमाला डालकर पूजती है उस अनुपम सम्यग्ज्ञान रूपी रत्नको अनन्तसुखस्वरूप परमात्मपदकी प्राप्तिके लिए मैं नैवेद्यसे पूँजता हूँ ॥९॥

[ओं ह्रीं अष्टांग सम्यग्ज्ञानको क्षुधारोगका नाश करनेके लिए मैं नैवेद्य अर्पित करता हूँ ।]

जिस ज्ञानके प्रभावसे मुनिगण उद्धत मोहरूपी लक्ष्मीके लूटने की शीघ्र सामर्थ्य प्राप्त कर लेते हैं उस सम्यग्ज्ञानरत्नकी अनन्त सुखरूप परमात्मपदकी प्राप्तिके लिए बहुतसे दीपकोंसे मैं पूजा करता हूँ ॥१०॥

[ओं ह्रीं अष्टांग सम्यग्ज्ञानको मोहान्धकारका नाश करनेके लिए मैं दीप अर्पित करता हूँ ।]

सूर्य जिसे दूर नहीं कर सकता ऐसे अन्धकार-समूहको मनोहर सम्यग्दर्शनरूपी आँखोंके द्वारा क्षणभरमें दूर करनेवाले उस अनुपम सम्यग्ज्ञानरूपी रत्नकी अनन्त सुखरूप परमात्मपदकी प्राप्ति के लिए मैं धूपसे पूजा करता हूँ ॥११॥

[ओं ह्रीं अष्टांग सम्यग्ज्ञानको दुष्ट आठ कर्मोंका नाश करनेके लिए मैं धूप अर्पित करता हूँ ।]

मुनि जिसके द्वारा अद्भुत आत्मतत्त्वको जानकर कर्मबन्ध को नष्ट करते हैं और समस्त आस्रवोंसे विरत होते हैं उस अनुपम सम्यग्ज्ञान रूपी रत्नकी परमात्मपदकी प्राप्तिके लिए मैं फलोंसे पूजा करता हूँ ॥१२॥

[ओं ह्रीं अष्टांग सम्यग्ज्ञानको मोक्षफलकी प्राप्तिके लिए मैं फल अर्पित करता हूँ ।]

येनान्वितं वरण-मालिकया धिनोति
साधुं विमुक्ति-वनिता स्वयमेव शक्ता ।
आनन्द-सान्द्र-परमात्म-पदाप्तयेऽहं
तज्ज्ञान-रत्नमसमं चरुभिर्धिनोमि ॥९॥

[ॐ ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ।]

सामर्थ्यमत्र मुनिरुद्धत-मोह-लक्ष्मी-
लुण्टाकमाशु लभते यदनुग्रहेण ।
आनन्द-सान्द्र-परमात्म-पदाप्तयेऽहं
तज्ज्ञान-रत्नमुरुदीपगणैर्महामि ॥१०॥

[ॐ ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा ।]

अह्नां प्रभोरविषयोऽपि तमःसमूहो
येनास्यते दलित-दृक्-प्रसरैः क्षणेन ।
आनन्द-सान्द्र-परमात्मपदाप्तयेऽहं
तज्ज्ञान-रत्नमसमं प्रयजे सुधूपैः ॥११॥

[ॐ ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय दुष्टाष्टकर्मदहनाय धूपं नि० ।]

बन्धं छिनत्ति विरमत्यखिलाश्रयेभ्यो
विज्ञाय येन यतिरद्भुतमात्म-तत्त्वम् ।
आनन्द-सान्द्र-परमात्म-पदाप्तयेऽहं
तज्ज्ञान-रत्नमसमं सुफलैर्यजामि ॥१२॥

[ॐ ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय मोक्षफलप्राप्तये फलं नि० ।]

देवताओंने जिनके चरणोंकी सेवा की उन ऋषभनाथ भगवान् ने जिस ज्ञानके द्वारा स्वयंभू पद प्राप्त किया उस अष्टविध सम्यग्ज्ञान को मैं विभिन्न प्रकारके फूलोंकी अंजलि आदर सहित समर्पण करता हूँ ॥१३॥

[ओं ह्रीं अष्टाग सम्यग्ज्ञानकी अनर्घ्य पदकी प्राप्तिके लिए मैं अर्घ अर्पित करता हूँ ।]

अष्टाङ्ग-पूजा

जिस श्रुत देवताके शरीरने आठ स्थानोंमें जन्म लिया है उस सम्यग्ज्ञानके शुभसूचक व्यञ्जन नामके प्रथम अङ्गको मैं नमस्कार करता हूँ ॥१४॥

[ओं ह्रीं व्यञ्जनाचारसम्पन्न सम्यग्ज्ञानके लिए मैं अर्घ अर्पित करता हूँ ।]

जिससे युक्त होकर वाणी कामधेनु गायकी तरह संसारमें सबका कल्याण करनेमें समर्थ होती है, वह भव्य समूहको आनन्दित करनेवाला अर्थ नामका सम्यग्ज्ञानका अंग मेरे हृदयमें हो ॥१५॥

[ओं ह्रीं अर्थाचारसम्पन्न सम्यग्ज्ञानके लिए मैं अर्घ अर्पित करता हूँ ।]

जिसके कारण मनुष्य शीघ्र ही लोकमें अजेय माहात्म्यका स्थान हो जाता है, विश्वके समस्त तत्त्वोंको बतलानेवाले उस व्यञ्जन और अर्थ उभय रूप ज्ञानाङ्गकी मैं स्तुति करता हूँ ॥१६॥

[ओं ह्रीं उभयाचारसम्पन्न सम्यग्ज्ञानके लिए मैं अर्घ अर्पित करता हूँ ।]

हेवाकि-नाकि-निवहैः कृत-पाद-सेवः
स्वायम्भुवं पदमवाप्य युगादिदेवः ।
येनात्र चित्र-कुसुमाञ्जलिमादरेण
ज्ञानाय साङ्ग-रचनाय ददामि तस्मै ॥१३॥

[ॐ ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय अनर्घपदप्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।]

अष्टाङ्ग-पूजा

श्रीमच्छरीरं श्रुत-देवतायाः स्थानेषु चाष्टासु यदाप्त-जन्म ।
ज्ञानाङ्गमादौ शुभ-शंसि सम्यक् तद् व्यञ्जनाख्यं सततं नमामि ॥

[ॐ ह्रीं व्यञ्जनोर्जिताय सम्यग्ज्ञानाय नमः अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।]

येनान्वितो कामदुहेव सम्यक् गौः सर्व-कल्याणकरी जगत्याम् ।
ज्ञानाङ्गमानन्दित-भव्य-लोकं तदर्थ-संज्ञं हृदये ममास्ताम् ॥

[ॐ ह्रीं अर्थसमग्राय सम्यग्ज्ञानाय नमः अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।]

सञ्जायते येन जगत्यजय्य-माहात्म्य-भूमिर्मनुजोऽचिरेण ।
ज्ञानाङ्गमाविश्रुत-विश्वतत्त्वं तद् व्यञ्जनार्थोभयसंज्ञमीडे ॥१६॥

[ॐ ह्रीं तदुभयसमग्राय सम्यग्ज्ञानाय नमः अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।]

जिसके कारण यह स्व और परका प्रमाता होकर भव्योंका विषय होता है उस इष्टार्थका विधान करनेवाले कालाध्ययन नामके अङ्गकी मैं नित्य पूजा करता हूँ ॥१७॥

[ओं ह्रीं कालाचारसम्पन्न सम्यग्ज्ञानके लिए मैं अर्घ अर्पित करता हूँ ।]

जिसके प्रभावसे प्राणी प्रारम्भ किये गये ग्रन्थको निर्विघ्न शीघ्र समाप्त कर लेता है, आचार पथका प्रकाश करनेवाले उस उपधान नामके ज्ञानाङ्गका मैं आश्रय लेता हूँ ॥१८॥

[ओं ह्रीं उपधानाचारसम्पन्न सम्यग्ज्ञानके लिए मैं अर्घ अर्पित करता हूँ ।]

जिसके कारण कुपित हुई चित्तवृत्ति प्राणीका आश्रय नहीं करती है, ज्ञान प्रदान करनेवाले उस विनय नामके ज्ञानाङ्गकी मैं हर्षपूर्वक स्तुति करता हूँ ॥१९॥

[ओं ह्रीं विनयाचारसम्पन्न सम्यग्ज्ञानके लिए मैं अर्घ अर्पित करता हूँ ।]

जिसके कारण योगी द्रव्य श्रुतको प्राप्तकर मोक्षके कारणभूत भावश्रुतको जानता है, उपाध्याय, आचार्य या गुरुका निह्नव न करनेवाला वह अपह्नव नामका ज्ञानाङ्ग मेरे हृदयमें वास करो॥२०॥

[ओं ह्रीं अनिह्नवाचारसम्पन्न सम्यग्ज्ञानके लिए मैं अर्घ अर्पित करता हूँ ।]

जिसके धारण करनेसे मनुष्यको मुनि भी मानने लगते हैं और जिसकी सेवासे अद्भुत फल प्राप्त होता है उस बहुमान नामक अङ्गकी नय और प्रमाणज्ञानकी प्राप्तिके लिए मैं पूजा करता हूँ ॥२१॥

[ओं ह्रीं बहुमानाचारसम्पन्न सम्यग्ज्ञानके लिए मैं अर्घ अर्पित करता हूँ ।]

येनायमात्मा स्व-पर-प्रमाता भव्यात्मनां गोचरतामुपैति ।
ज्ञानाङ्गमिष्टार्थ-विधायि नित्यं तदत्र कालाध्ययनं महामि ॥
[ॐ ह्रीं कालाध्ययनोद्बुद्धप्रभावाय सम्यग्ज्ञानाय नमः अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।]

प्रारीप्सितस्याशु बुधोऽत्र येन ग्रन्थस्य निर्विघ्नमुपैति पारम् ।
ज्ञानाङ्गमाचार-पथः प्रकाशि तत्तूपधानाख्यमहं श्रयामि ॥
[ॐ ह्रीं उपधानसमृद्धाय सम्यग्ज्ञानाय नमः अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।]

सामीप्यमाप्यत्कुपितेव जन्तोर्नाभ्येति येनाश्रित-चित्तवृत्तिः ।
ज्ञानाङ्गमानन्दभरेण सम्यक् ज्ञान-प्रदं तद्विनयाख्यमीडे ॥
[ॐ ह्रीं विनयोन्मुद्रितमाहात्म्याय सम्यग्ज्ञानाय नमः अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।]

द्रव्य-श्रुतं प्राप्य विमुक्ति-हेतुं भाव-श्रुतं विन्दति येन योगी ।
ज्ञानाङ्गमध्यापक-सूरि-गुर्वनपह्नवाख्यं हृदये ममास्ताम् ॥
[ॐ ह्रीं गुर्वाद्यनपह्नवाय सम्यग्ज्ञानाय नमः अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।]

नरं मुनीनामपि माननीयं सुसेवितं चाद्भुतमातनोति ।
ज्ञानाङ्गमीडे बहुमानसंज्ञं नय-प्रमाणप्रतिपत्तये तत् ॥
[ॐ ह्रीं बहुमानसमृद्धाय सम्यग्ज्ञानाय नमः अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।]

अष्टक

पवित्र तीर्थोंके जलसे आत्मस्वरूपकी प्राप्तिके लिए ज्ञानाचारके व्यञ्जनादि अङ्गोंकी मैं पूजा करता हूँ ॥२२॥

[ओं ह्रीं व्यञ्जनाचार आदिके लिए मैं जल समर्पित करता हूँ ।]

मलयगिरि चन्दनके जलसे जरा और जन्मकी शान्तिके लिए ज्ञानाचारके व्यञ्जनादि अङ्गोंकी मैं पूजा करता हूँ ॥२३॥

[ओं ह्रीं व्यञ्जनाचार आदिके लिए मैं चन्दन समर्पित करता हूँ ।]

अविनाशी और अनन्त सुख-सम्पत्तिके लिए अक्षतोंसे ज्ञानाचारके व्यञ्जनादि अङ्गोंकी मैं पूजा करता हूँ ॥२४॥

[ओं ह्रीं व्यञ्जनाचार आदिके लिए मैं अक्षत समर्पित करता हूँ ।]

मनके अनेक संकल्प-विकल्पोंकी शान्तिके लिए फूलोंसे ज्ञानाचारके व्यञ्जनादि अङ्गोंकी मैं पूजा करता हूँ ॥२५॥

[ओं ह्रीं व्यञ्जनाचार आदिके लिए मैं पुष्प समर्पित करता हूँ ।]

चिद्रूप अमृतकी प्राप्तिके लिए बहुतसे नैवेद्योंके द्वारा ज्ञानाचारके व्यञ्जनादि अङ्गोंकी मैं पूजा करता हूँ ॥२६॥

[ओं ह्रीं व्यञ्जनाचार आदिके लिए मैं नैवेद्य समर्पित करता हूँ ।]

केवलज्ञानरूप उत्कृष्ट ज्योतिके देखने की इच्छासे भक्तिपूर्वक दीपकोंसे ज्ञानाचारके व्यञ्जनादि अङ्गोंकी मैं पूजा करता हूँ ॥२७॥

[ओं ह्रीं व्यञ्जनाचार आदिके लिए मैं दीप समर्पित करता हूँ ।]

संसारका अन्त करनेके लिए अगुरुकी बहुतसी धूप जलाकर ज्ञानाचारके व्यञ्जनादि अङ्गोंकी मैं पूजा करता हूँ ॥२८॥

[ओं ह्रीं व्यञ्जनाचार आदिके लिए मैं धूप समर्पित करता हूँ ।]

अष्टकम्

शुचि-तीर्थोद्भवैः नीरैः चिद्रूपस्योपलब्धये ।
अङ्गानि व्यञ्जनादीनि ज्ञानाचारस्य संयजे ॥२२॥
[ॐ ह्रीं व्यञ्जनोर्जितादिकेभ्यो जलं निर्वपामीति स्वाहा ।]

रसैर्मलयजोद्भूतैर्जरा-जन्मादि-शान्तये ।
अङ्गानि व्यञ्जनादीनि ज्ञानाचारस्य संयजे ॥२३॥
[ॐ ह्रीं व्यञ्जनोर्जितादिकेभ्यः चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा ।]

अक्षतैरक्षतानन्त-सुख-सम्पत्ति-हेतवे ।
अङ्गानि व्यञ्जनादीनि ज्ञानाचारस्य संयजे ॥२४॥
[ॐ ह्रीं व्यञ्जनोर्जितादिकेभ्यो अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा ।]

सुमनोभिर्मनोऽनल्प-सङ्कल्प-भ्रान्ति-शान्तये ।
अङ्गानि व्यञ्जनादीनि ज्ञानाचारस्य संयजे ॥२५॥
[ॐ ह्रीं व्यञ्जनोर्जितादिकेभ्यः पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ।]

उरुभिश्चरुभिश्चारु-चिद्रूपामृत-लब्धये ।
अङ्गानि व्यञ्जनादीनि ज्ञानाचारस्य संयजे ॥२६॥
[ॐ ह्रीं व्यञ्जनोर्जितादिकेभ्यः नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ।]

प्रदीपैर्ज्योतिषा भक्त्या परंज्योतिर्दिदृक्षया ।
अङ्गानि व्यञ्जनादीनि ज्ञानाचारस्य संयजे ॥२७॥
[ॐ ह्रीं व्यञ्जनोर्जितादिकेभ्यो दीपं निर्वपामीति स्वाहा ।]

धूपैर्दग्धागुरु-स्तोम-सम्भवैर्भव-हानये ।
अङ्गानि व्यञ्जनादीनि ज्ञानाचारस्य संयजे ॥२८॥
[ॐ ह्रीं व्यञ्जनोर्जितादिकेभ्यो धूपं निर्वपामीति स्वाहा ।]

मुक्तिके संसर्गमें एक रस मानस की लालसावश नारङ्गी आदि फलोंसे ज्ञानाचारके व्यञ्जनादि अङ्गोंकी मैं पूजा करता हूँ ॥२६॥

[ओं ह्रीं व्यञ्जनाचार आदिके लिए मैं फल समर्पित करता हूँ ।]

जल, चन्दन, उत्तम अक्षत, पुष्प, सुन्दर नैवेद्य, दीपचय, धूप और फलके समुच्चयरूप अर्घों की पुष्पाञ्जलि बनाकर क्रीड़ा के पवित्र आवासरूप ज्ञानाङ्गकी मैं आरती उतारता हूँ ॥३०॥

[ओं ह्रीं व्यञ्जनाचार आदिके लिए मैं अर्घ समर्पित करता हूँ ।]

जयमाला

हे जिनवरके लोचन, समस्त द्रव्योंको प्रकाशित करनेवाले और अनुपम सुखरूपी अमृतके कुण्ड, आत्माके उत्तम गुणरूप केवलज्ञान ! तुम जयवन्त होओ ॥३१॥

जिनेन्द्रदेवका ज्ञानरूपी उत्तम लोचन आत्माका हित करनेवाला है, उपाधि रहित सुखरूपी अमृतके पूरसे परिपूर्ण है, दृढ़ मोहरूपी वृक्षके लिए अग्निके समान है और संसारजन्य दुःख और विपदाओंसे रहित है ॥३२॥

मतिज्ञान और परम शान्त महान् अवधिज्ञानके भेदोंसे युक्त है, उत्तम मनकी अद्भुत पर्यायरूप मनःपर्ययज्ञानसे विस्तृत है, अत्यन्त योग्य कालमें द्रव्यश्रुतका पाठ करनेसे श्रेष्ठताको प्राप्त है और गुरुभक्तिके फलस्वरूप पुराकृत पापोंको हरण करनेवाला है ॥३३॥

उपधानाचारके कारण जो विघ्नोंको दूर करनेवाला है, बहुमानाचारके कारण जो आत्माको कर्मोंकी रणस्थली नहीं बनने देता, अपने पाठकका निह्नव न करनेके कारण जो अनिह्नवाचारसे युक्त है और विशद अक्षरपूर अर्थात् अक्षराचारके कारण जो परिपूर्णताको प्राप्त है ॥३४॥

नारङ्गैर्मुक्ति-सङ्गैक-रस-मानस-लालसैः ।
अङ्गानि व्यञ्जनादीनि ज्ञानाचारस्य संयजे ॥२६॥
[ॐ ह्रीं व्यञ्जनोर्जितादिकेभ्यः फलं निर्वपामीति स्वाहा ।]

श्रीनीर-चन्दन-वराक्षत-पुष्प-चारु-
नैवेद्य-दीपचय-धूप-फलार्घकैश्च ।
ज्ञानाङ्गमेव भुवने शुचि-केलि-वासं
पुष्पाञ्जलिं सुविमलं ह्यवतारयामि ॥३०॥
[ॐ ह्रीं व्यञ्जनोर्जितादिकेभ्यः अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।]

जयमाला

जय जय जिनवर-लोचन चेतन-गुण-परम-केवलज्ञान ।
निखिल-द्रव्य-प्रदर्शक विगतोपम-सुख-सुधारस-कुण्ड ॥३१॥

जिननाथ-सुलोचनमात्महितं निरुपाधि-सुखामृत-पूर-चितम् ।
दृढ-मोह-महातरु-वायु-सखं भव-सम्भव-दुःख-विपद्-विमुखम् ॥

मति-शान्त-महावधि-भेद-युतं सुमनोऽद्भुत-पर्यय-संविततम् ।
उचितोचित-काल-सुपाठ-वरं गुरुभक्ति-पुराकृत-पापहरम् ॥

उपधान-विदूरित-विघ्न-घनं बहु-मान-निराकृत-कर्म-रणम् ।
निज-पाठक-निह्नव-मुक्ति-भरं विशदाक्षर-पूर-समग्रतरम् ॥

अभिधेयकी परम्परा अर्थात् अर्थाचारसे युक्त है, शब्द और अर्थरूप उभयाचारके कारण शुद्धतर और पूज्य है, दुर्धर कामका नाश करनेके लिए उत्कृष्ट अग्निके समान है और भव्य यतिजनों को प्रतिबोधित करनेवाला है ॥३५॥

बहुत लोभरूपी वृक्षके लिए उत्तम हाथीके समान है, रागरूपी रोगके प्रसारको रोकनेवाला है, सम्पूर्ण प्राणियोंकी दयाका उपदेश करनेवाला है, विशद है और कठिनतासे जीते जानेवाले मान और मदका खंडन करनेवाला है ॥ ३६ ॥

विवेकरूपी कमलको विकसित करनेके लिए सूर्यकी किरणोंके समान है, जिससे परमात्माका प्रकाश होता है ऐसी अनेक युक्तियोंसे सम्पन्न है, जड़ ज्ञानावरणादि कर्मोंको नाश करनेवाला है और अनन्त मोक्षरूपी लक्ष्मीका जनक है उस पवित्र ज्ञानको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ३७ ॥

इस प्रकार जो भक्तिपूर्वक अष्टांग ज्ञानकी स्तुति करता है वह संसारसे रहित अद्भुत सुखको प्राप्त करता है ॥ ३८ ॥

जो दोषोंका उच्छेद कर वृद्धिको प्राप्त हुआ है, अज्ञानान्धकारका हर्ता है, मोक्ष लक्ष्मीका मार्ग है, जीवोंके विवेकरूपी कमलका विकास करनेसे जिसका वैभव स्फुरायमान हो रहा है, जो लोकालोकको प्रकाशित करनेरूप वैभवसे सम्पन्न है, जगत्-पावनी कीर्तिका विस्तार करनेवाला है, ऐसा ज्ञानरूपी सूर्य किसी पुण्यात्मारूपी आकाशमें सुशोभित होता है ॥ ३९ ॥

ज्ञातवंशके चन्द्रमा भगवान् तीर्थंकर महावीरने जिस ज्ञानके व्यंजनाचार, अर्थाचार, उभयाचार, कालाचार, विनयाचार, उपधानाचार, बहुमानाचार, अनिह्नवाचार इस प्रकार आठ भेद बतलाये हैं उस ज्ञानको कर्मोंका नाश करनेके लिए मैं प्रणाम करता हूँ ॥४०॥

[ओं ह्रीं अष्टविधाचार सम्यग्ज्ञानके लिए पूर्णार्घ्य समर्पित करता हूँ ।]

अभिधेय-परंपरया सहितं शुचि तद्द्वय-शुद्धतरं महितम् ।
कुसुमायुध-दुर्धर-वह्नि-वनं प्रतिबोधित-भव्य-यतीश-जनम् ॥

बहु-लोभ-महीधर-सद्द्विरदं अपहस्तित-राग-रुजा-प्रसरम् ।
अखिलात्म-दया-कथकं विशदं परिखण्डित-दुर्जय-मान-मदम् ॥

सुविवेक-सरोरुह-तिग्मकरं परमात्म-विकाशक-युक्ति-करम् ।
प्रणमामि जडत्व-रजः-शमकं शुचि-बोधमनन्त-रमा-जनकम् ॥

इत्थं ज्ञानस्य साङ्गस्य स्तुतिं यो भक्ति-तत्परः ।
विधत्ते सोऽद्भुतं सौख्यं लभते भव-विच्युतिम् ॥३८॥

दोषोच्छेद-विजृम्भितः कृत-तमश्छेदः शिव-श्री-पथः
सत्त्वोद्बोध-प्रकर-प्रक्लृप्त-कमलोल्लास-स्फुरद्वैभवः ।
लोकालोक-कृत-प्रकाश-विभवः कीर्तिं जगत्पावनीं
तन्वन् क्वापि चकास्ति बोध-तपनः पुण्यात्मनि व्योमनि॥

अर्थ-व्यञ्जन-तद्द्वयाविकलता कालोपध-प्रश्रयः
स्वाचार्याद्यनपह्नवो बहुमतिश्चेत्यष्टधा व्याहृतम्
श्रीमद्ज्ञाति-कुलेन्दुना भगवता तीर्थस्य कर्त्राञ्जसा
ज्ञानाचारमहं त्रिधा प्रणयितामुद्भूतये कर्मणाम् ॥४०॥

[ॐ ह्रीं अष्टविधाचाराय सम्यग्ज्ञानाय पूर्णार्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

जो सम्यक् नयरूपी किरणोंसे सर्वथा एकान्तरूपी नयान्धकारके प्रचारको दूर करता हुआ सदा विश्वको प्रकाशित करता है वह अनेकान्त सूर्य आपकी रक्षा करे ॥ ४१ ॥

[आशीर्वाद]

पापरूपी अन्धकारको नष्ट करनेके लिए जो सूर्यके समान है, मोक्ष लक्ष्मीके लिए जो कमलके समान है, कामरूपी सर्पके लिए मन्त्रके समान है, मनरूपी हाथीको सिंहके समान है, व्यसनरूपी बादलोंको हवाके समान है, विश्व तत्त्वके प्रकाशनके लिए दीपकके समान है और विषयरूपी मछलियोंके लिए जालके समान है उस ज्ञानकी तुम आराधना करो ॥ ४२ ॥

[आशीर्वाद]

●

सम्यक्चारित्र

जो आनन्दरूप है, सम्पूर्ण कर्मोंसे रहित है, अविनाशी है, ज्ञानमय है, उत्तम भावरूप है, वाणीके अगोचर है, मनसे भी अचिन्त्य है वह पुराण पुरुष हमें हर्ष प्रदान करे ॥ १ ॥

जो दुर्गतिका निवारक है, स्वर्ग और मोक्षके सुखका कारण है और पापक्रियासे निवृत्ति स्वरूप है उस चारित्रकी मैं स्तुति करता हूँ ॥ २ ॥

जिसके सामायिकादि पाँच भेद कहे गये हैं, मोक्षके कारणरूप उस चारित्रकी मैं शरण लेता हूँ ॥ ३ ॥

पाँच व्रत, पाँच समिति और तीन गुप्ति इस प्रकार आप्त पुरुषोंने तेरह प्रकारका चारित्र कहा है ॥ ४ ॥

यः सर्वथैकान्तनयान्धकार-प्राचारमस्यन्नय-रश्मिजालैः ।
विश्व-प्रकाशं विदधाति नित्यं पायादनेकान्त-रविः स युष्मान् ॥

[इत्याशीर्वादः ।]

दुरित-तिमिर-हंसं मोक्ष-लक्ष्मी-सरोजं
मदन-भुजग-मन्त्रं चित्त-मातङ्ग-सिंहम् ।
व्यसन-घन-समीरं विश्व-तत्त्वैक-दीपं
विषय-सफर-जालं ज्ञानमाराधय त्वम् ॥४२॥

[इत्याशीर्वादः ।]

•

सम्यक्चारित्र

आनन्द-रूपोऽखिलकर्म-मुक्तो निरत्ययः ज्ञानमयः सुभावः ।
गिरामगम्यो मनसोऽप्यचिन्त्यो भूयान् मुदे वः पुरुषः पुराणः॥१

वारणं दुर्गतेः स्वर्गापवर्ग-सुख-कारणम् ।
निवृत्ति-लक्षणं पाप-क्रियायाश्चरणं स्तुवे ॥२॥

सामायिकादयो भेदा यस्य पञ्च प्रपञ्चिताः ।
चरणं शरणं यामि तन्निर्वाणैक-कारणम् ॥३॥

व्रतानि पञ्च पञ्चैव प्रोक्ताः समितयस्त्रयः ।
गुप्तयो व्रतमित्याप्तैस्त्रयोदशविधं स्मृतम् ॥४॥

संसाररूप पल्लवसे उत्पन्न हुए कर्मरूपी कीचड़से लिप्त यह आत्मा नियमसे चारित्ररूपी जलसे शुद्ध होता है ॥ ५ ॥

जो मुनीश्वर पाँच प्रकारके ज्ञानरूपी विभूतिके पात्र हैं, वह केवल चारित्रका ही विस्तार है ऐसा मैं मानता हूँ ॥ ६ ॥

अधिक कहनेसे क्या, इस लोकमें जो मनसे अचिन्त्य है और जो वचनोंके अगोचर है वह एक मात्र चारित्रके द्वारा ही साधा जा सकता है ॥७॥

मनुष्य होकर भी जो इन्द्रोंसे पूज्य हो जाता है वह सब इस त्रिलोक-पूज्य चारित्रका ही वैभव है ॥८॥

चारित्र देवगतिका मूल कारण है, चारित्र मुक्तिका साधन है, चारित्र धर्मका सर्वस्व है और चारित्र उत्कृष्ट मंगल है ॥९॥

जिसके प्रभावसे यह आत्मा क्षणभरमें अनन्त सुखसे सम्पन्न हो जाता है उस पवित्र चारित्रको पुनः पुनः नमस्कार होओ ॥१०॥

[प्रणाम करके पुष्पाञ्जलि क्षेपण करता हूँ ।]

सम्पूर्ण पापरूप अशुभ क्रियाओंसे अपने आपको हटा लेना सघन कर्मोंको नष्ट करनेवाला व्यवहार सम्यक्चारित्र है ॥११॥

जिस चारित्रको पाकर आत्मज्ञानी पुरुष न कहीं मोहित होता है, न कहीं राग करता है और न किसीसे द्वेष करता है उस चारित्रका सब लोग आह्वानन करो ॥१२॥

[ओं ह्रीं तेरह प्रकारका सम्यक्चारित्र यहाँ अवतरित हूजिए हूजिए संवौषट् ।]

अनादि कर्मरूपी कालिमासे मलिन हुए इस जीवको जो विशुद्ध और उच्च पद तक पहुँचा देता है वह समस्त पापोंको नष्ट करनेवाला सम्यक्चारित्र यहाँ स्थित होओ ॥१३॥

[ओं ह्रीं तेरह प्रकारका सम्यक्चारित्र यहाँ स्थित हूजिए हूजिए ठः ठः ।]

संसार-पल्वलोद्भूतैर्विलिप्तः कर्म-कर्दमैः ।
विशुद्ध्यति किलात्मायमञ्जसा चरणाम्भसा ॥५॥
ज्ञानपञ्चकभूतीनां भाजनं यो मुनीश्वरः ।
तत्केवलमहं मन्ये चारित्रस्य विजृंभितम् ॥६॥
यदत्र मनसोऽचिन्त्यं यच्च वाचामगोचरम् ।
एकेन चरणेनैव तत्साध्यं किं बहूच्यते ॥७॥
नरोऽपि यत्सुराधीश-शिरोरत्नत्वमश्नुते ।
जगत्त्रयैक-पूज्यस्य तच्चारित्रस्य वैभवम् ॥८॥
चरणं स्वर्गतेर्मूलं चरणं मुक्तिसाधनम् ।
चरणं धर्म-सर्वस्वं चरणं मङ्गलं परम् ॥६॥
अनन्त-सुख-सम्पन्नो येनात्माऽयं क्षणादपि ।
नमस्तस्मै पवित्राय चारित्राय पुनः पुनः ॥१०॥

[प्रणामं कृत्वा पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि ।]

सद्वृत्तं सर्व-सावद्य-योग-व्यावृत्तिरात्मनः ।
गौणं स्याद्वृत्तिरानन्द-सान्द्रकर्मच्छिदाञ्जसा ॥११॥
न मुह्यति न च क्वापि रज्यते द्वेष्टि नात्मवित् ।
येनान्वितोऽपि चारित्रमवतारं करोतु तत् ॥१२॥

[ओं ह्रीं त्रयोदशप्रकार सम्यक्चारित्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट्]

अनादि-कर्मोत्कर-कालिमाभिः कलङ्कितं जीवममुं विशुद्धम् ।
यत्प्रापयत्यत्र चरित्रमुच्चैस्तात्तिष्ठतु ध्वस्त-समस्त-दोषम् ॥१३॥

[ओं ह्रीं त्रयोदशप्रकार सम्यक्चारित्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः ।]

अनन्त केवलज्ञान और अनन्त सुखरूप लक्ष्मीको जिलानेके लिए जो औषधिके समान है वह अपार महिमावाला चारित्र मेरे निकटवर्ती होओ ॥१४॥

[ओं ह्रीं तेरह प्रकारका सम्यक्चारित्र ! यहाँ मेरे सन्निकटवर्ती हूजिए हूजिए वषट् ।]

केवलज्ञानरूपी आँखोंसे विश्वके समस्त तत्त्वोंको देखनेवाले जिनेन्द्रदेवने जिसका अमित प्रभाव बतलाया है, समस्त पापोंसे रहित उस तेरह प्रकारके चारित्र की मैं यहाँ पर पवित्र जलसे पूजा करता हूँ ॥१५॥

[ओं ह्रीं तेरह प्रकारके चारित्रको जन्म, जरा और मरणका नाश करनेके लिए मैं जल अर्पित करता हूँ ।]

दैववश अगाध संसाररूपी इस निर्दय समुद्रमें गिरनेवाले इन प्राणियोंके लिए जो आलम्बन है, उस समस्त पापोंसे रहित तेरह प्रकारके चारित्रकी मैं उत्तम चन्दनसे पूजा करता हूँ ॥१६॥

[ओं ह्रीं तेरह प्रकारके चारित्रको संसारका ताप दूर करनेके लिए मैं चन्दन अर्पित करता हूँ ।]

उदार भव्य जीव जिस चारित्रका निरतिचार पालन कर सम्पूर्ण लोकके भूषण बन जाते हैं, समस्त पापसे रहित तेरह प्रकारके उस चारित्रकी सुन्दर अक्षतोंसे मैं पूजा करता हूँ ॥१७॥

[ओं ह्रीं तेरह प्रकारके चारित्रको अक्षयपदकी प्राप्तिके लिए मैं अक्षत अर्पित करता हूँ ।]

अनन्त-केवलज्ञान-सुखश्री-जीवनौषधम् ।
लसन्महिमसानिध्यमध्यास्तां चरणं मम ॥१४॥

[ओं ह्रीं त्रयोदशप्रकार सम्यक्चारित्र ! अत्र मम सन्निहितं भव भव वषट् ।]

श्रीकेवलेक्षण-विलोकित-विश्व-तत्त्वै-
र्यस्य प्रभावममितं गदितं जिनेशैः ।
चारित्रमत्र तदपास्त-समस्त-पापं
चाये त्रयोदशतयं शुचिभिर्जलौघैः ॥१५॥

[ओं ह्रीं त्रयोदशप्रकारचारित्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।]

आलम्बनं तनुभृतां पतताममीषां
दैवादगाध-जननाम्भसि निर्दयेऽस्मिन् ।
चारित्रमत्र तदपास्त-समस्त-पापं
चाये त्रयोदशतयं वर-चन्दनौघैः ॥१६॥

[ओं ह्रीं त्रयोदशप्रकारचारित्राय संसारतापविध्वंसनाय चन्दनं निर्वपामिति स्वाहा ।]

यत्पालयन्निरतिचारमुदारसत्त्वो
भव्यो भवत्यखिल-लोक-ललाम-भूतः ।
चारित्रमत्र तदपास्त-समस्त-पापं
चाये त्रयोदशतयं ललिताक्षतौघैः ॥१७॥

[ओं ह्रीं त्रयोदशप्रकारचारित्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं नि० ।]

संसाररूपी मरुभूमिमें स्वच्छ जलसे परिपूर्ण सरोवरके समान आश्रय करनेवालोंका जो बड़े भारी सन्तापको दूर कर देता है, समस्त पापोंसे रहित तेरह प्रकारके उस चारित्रकी मैं उदार कमल पुष्पोंसे पूजा करता हूँ ॥१८॥

[ओं ह्रीं तेरह प्रकारके चारित्रको कामबाणका नाश करनेके लिए मैं पुष्प अर्पित करता हूँ ।]

दुर्निवार दुर्गतिके कारण आठ कर्मरूपी काठको जो अग्निके समान क्षण भरमें जला देता है, समस्त पापोंसे रहित तेरह प्रकारके उस चारित्रकी मैं शुद्ध नैवेद्यसे पूजा करता हूँ ॥१९॥

[ओं ह्रीं तेरह प्रकारके चारित्रको क्षुधा रोगका नाश करनेके लिए मैं नैवेद्य अर्पित करता हूँ ।]

जिसके कारण पूर्व पुरुषोंने केवलज्ञान प्राप्त किया, वर्तमानमें कर रहे हैं और आगे होनेवाले करेंगे, समस्त पापोंसे रहित तेरह प्रकारके उस चारित्रकी मैं विशद दीपोंसे पूजा करता हूँ ॥२०॥

[ओं ह्रीं तेरह प्रकारके चारित्रको मोहान्धकारका नाश करनेके लिए मैं दीप अर्पित करता हूँ ।]

जिस प्रकार नूतन मेघोंसे सदा काल अङ्कुरोंकी उत्पत्ति होती है उसी प्रकार जिसके प्रभावसे साधुओंके अनेक ऋद्धियाँ उत्पन्न होती हैं, समस्त पापोंसे रहित तेरह प्रकारके उस चारित्रकी मैं उत्तम धूपके धुएँसे पूजा करता हूँ ॥२१॥

[ओं ह्रीं तेरह प्रकारके चारित्रको आठ कर्मोंका नाश करनेके लिए मैं धूप अर्पित करता हूँ ।]

संसार-मारव-महीषु यदच्छ-वारि-
पूर्णं सरः श्रितवतां गुरु-ताप-हारि ।
चारित्रमत्र तदपास्त-समस्त-पापं
चाये त्रयोदशतयं कमलैरुदारैः ॥१८॥

[ॐ ह्रीं त्रयोदशप्रकारचारित्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ।]

दुर्वार-दुर्गति-निबन्धनमष्टकर्म-
काष्ठं यदग्निरिव निर्दहति क्षणेन ।
चारित्रमत्र तदपास्त-समस्त-पापं
चाये त्रयोदशतयं चरुभिर्विशुद्धैः ॥१९॥

[ॐ ह्रीं त्रयोदशप्रकारचारित्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ।]

पूर्वैरवाप्यवगमः खलु वर्तमानैः
येनाप्यते जगति भाविभिराप्स्यते च ।
चारित्रमत्र तदपास्त-समस्त-पापं
चाये त्रयोदशतयं विशद-प्रदीपैः ॥२०॥

[ॐ ह्रीं त्रयोदशप्रकारचारित्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा ।]

आविर्भवन्ति यमिनां विविधर्द्धयस्ताः
येनाङ्कुरा इव नवाम्बु-धरेण सम्यक् ।
चारित्रमत्र तदपास्त-समस्त-पापं
चाये त्रयोदशतयं वर-धूप-धूम्रैः ॥२१॥

[ॐ ह्रीं त्रयोदशप्रकारचारित्राय दुष्टाष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ।]

आत्मनिष्ठ पुरुष संसार-परंपराको नष्ट करनेके लिए अनन्त सुख के देनेवाले जिस उत्कृष्ट चारित्रकी उपासना करते हैं, समस्त पापोंसे रहित तेरह प्रकारके उस चारित्रकी मैं बहुत फलोंसे पूजा करता हूँ ॥२२॥

[ओं ह्रीं तेरह प्रकारके चारित्रको मोक्ष-फलकी प्राप्तिके लिए मैं फल अर्पित करता हूँ ।]

जिसके कारण आत्म-ज्ञानियोंको आदरपूर्वक शुद्धोपयोग और अनन्त सुखकी प्राप्ति हुई, धर्मका मर्म स्वीकृत हुआ और अन्तमें समीचीन मुक्तिका लाभ हुआ उस सम्यक्चारित्रकी मैं कुसुमाञ्जलिसे पूजा करता हूँ ॥२३॥

[ओं ह्रीं तेरह प्रकारके चारित्रको अनर्घ्यपदकी प्राप्तिके लिए मैं अर्घ अर्पित करता हूँ ।]

त्रयोदशाङ्ग-पूजा

जिसका फल निराकुल, जन्म, जरा और पीड़ासे रहित, निरामय तथा निर्भय आत्मसुखकी प्राप्ति है, करुणामय उस अहिंसा महाव्रतका मैं सदा आश्रय करता हूँ ॥ २४ ॥

[ओं ह्रीं अहिंसा महाव्रतको नमस्कार पूर्वक मैं अर्घ अर्पित करता हूँ ।]

जिसका फल गम्भीर वक्तृत्व, सरस कवित्व और श्रुतका अवगाहन करना है, अद्भुत वचनरूप उस महाव्रतका मैं सदा आश्रय लेता हूँ ॥२५॥

[ओं ह्रीं सत्यमहाव्रतको नमस्कारपूर्वक मैं अर्घ अर्पित करता हूँ ।]

इस लोकमें अनर्थकी जड़ अदत्तादानका मन, वचन और काय से त्याग कर देना अचौर्य है । उस अद्भुत अचौर्य महाव्रतका मैं नित्य आश्रय लेता हूँ ॥२६॥

[ओं ह्रीं अचौर्यमहाव्रतको नमस्कारपूर्वक मैं अर्घ अर्पित करता हूँ ।]

जन्म-प्रबन्ध-शमनाय परात्म-निष्ठैः
यत्सेव्यते परमनन्त-सुख-प्रदायि ।
चारित्रमत्र तदपास्त-समस्त-पापं
चाये त्रयोदशतयं विपुलैः फलौघैः ॥२२॥

[ॐ ह्रीं त्रयोदशप्रकारचारित्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा ।]

शुद्धोपयोग उपलब्धमनन्त-सौख्यं
सिद्धान्तसारमुररीकृतमात्मविद्भिः ।
सन्मुक्तिसंवरणमद्भुतमादरेण
तद्वृत्तमत्र कुसुमाञ्जलिना धिनोमि ॥२३॥

[ॐ ह्रीं त्रयोदशप्रकारचारित्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।]

त्रयोदशाङ्ग-पूजा

निराकुलं जन्म-जरार्ति-हीनं निरामयं निर्भयमात्म-सौख्यम् ।
फलं यदीयं करुणामयं तन्महाव्रतं सन्ततमाश्रयामि ॥२४॥

[ॐ ह्रीं अहिंसामहाव्रताय नमः अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।]

वक्तृत्वमुच्चैः सरसं कवित्वं श्रुतावगाहश्च फलं यदीयम् ।
तत्सत्यवाक्याद्भुतरूपमेतन्महाव्रतं सन्ततमाश्रयामि ॥२५॥

[ॐ ह्रीं सत्यमहाव्रताय नमः अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।]

अनर्थ-मूलस्य जगत्यदत्तादानस्य यत्संत्यजनं त्रिधाऽत्र ।
तदद्भुतं स्तेय-निवृत्तिरूपं महाव्रतं सन्ततमाश्रयामि ॥२६॥

[ॐ ह्रीं अचौर्यमहाव्रताय नमः अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।]

जैसे सम्पूर्ण ग्रहोंमें प्रधान सूर्य होता है वैसे ही जो सब व्रतोंमें प्रधान है उस अद्भुत ब्रह्मचर्यरूप महाव्रतका मैं आश्रय लेता हूँ ॥२७॥

[ओं ह्रीं ब्रह्मचर्यमहाव्रतको नमस्कारपूर्वक मैं अर्घ अर्पित करता हूँ ।]

जो बलवान् कर्मके आश्रवको रोकता है और जो दुर्जय निर्जराका साधक है उस मूर्छाके त्यागरूप महाव्रतका मैं सदा आश्रय लेता हूँ ॥२८॥

[ओं ह्रीं आकिञ्चन्य महाव्रतको नमस्कारपूर्वक मैं अर्घ अर्पित करता हूँ ।]

जिसके बिना पाले गये व्रत और शीलादि सभी सर्वथा निष्फल हैं, परमात्मपदकी प्राप्तिके लिए उस मनोगुप्तिका मैं आश्रय लेता हूँ ॥२९॥

[ओं ह्रीं मनोगुप्तिको नमस्कारपूर्वक मैं अर्घ अर्पित करता हूँ ।]

जिसके होने पर असत्य आदि की निवृत्तिसे उत्पन्न होनेवाले अगणित गुण प्राप्त होते हैं, संसारकी आपदाओंका शीघ्र ही अन्त चाहनेवाले मेरे मनमें वह वचनगुप्ति उदित हो ॥३०॥

[ओं ह्रीं वचनगुप्तिको नमस्कारपूर्वक मैं अर्घ अर्पित करता हूँ ।]

जिसके प्रसादसे जितेन्द्रिय पुरुष अतीन्द्रिय ज्ञानको प्राप्त करते हैं, करुणारसके समुद्र मेरे दुर्वार तमका हरण करनेवाली वह कायगुप्ति हो ॥३१॥

[ओं ह्रीं कायगुप्तिको नमस्कारपूर्वक मैं अर्घ अर्पित करता हूँ ।]

अरं नभो-रत्नमिव ग्रहेषु व्रतेषु सर्वेष्वपि यद्विभाति।
तद्ब्रह्मचर्याद्भुत-रूपमेतन्महाव्रतं सन्ततमाश्रयामि ॥२७॥
[ॐ ह्रीं ब्रह्मचर्यमहाव्रताय नमः अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।]

दुर्वार-कर्मास्रव-वारणं यत् संसाधनं दुर्जय-निर्जरायाः।
तदत्र मूर्च्छा-विलयैकरूपं महाव्रतं सन्ततमाश्रयामि ॥२८॥
[ॐ ह्रीं आकिञ्चन्यमहाव्रताय नमः अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।]

व्रतानि शीलान्यखिलानि यां विना
विधीयमानान्यफलानि सर्वतः।
अतः परं ब्रह्मपदोपलब्धये
हि तां मनोगुप्तिमुपाश्रयामि ॥२९॥
[ॐ ह्रीं मनोगुप्तये नमः अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।]

भवन्ति यस्यां गणनातिगा गुणाः
सत्यामसत्यादि-निवृत्ति-सम्भवाः।
भवापदामन्तमरं विधित्सतः
सा मे वचोगुप्तिरुदेति मानसे ॥३०॥
[ॐ ह्रीं वचोगुप्तये नमः अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।]

अतीन्द्रियज्ञानमिमे जितेन्द्रियाः
समाद्रियन्ते खलु यत्प्रसादात्।
सकायगुप्तिः करुणारसाम्बुधेः
ममास्तु दुर्वार-तमोऽपहारिणी ॥३१॥
[ॐ ह्रीं कायगुप्तये नमः अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।]

सूर्यकी किरणोंसे मार्गके स्पष्ट होनेपर प्रमादरहित होकर चार हाथ आगे जमीन देखते हुए जो गति होती है, मुनियों द्वारा मान्य वह ईर्यासमिति मेरे हो ॥३२॥

[ओं ह्रीं ईर्यासमितिको नमस्कारपूर्वक मैं अर्घ्य अर्पित करता हूँ ।]

जो तीर्थंकर जिनेन्द्रके स्तवनसे पवित्र है, दस दोषोंसे रहित है और निश्चित पदार्थोंका प्ररूपण करती है, मोक्ष प्राप्तिमें प्रयोजक वह उत्कृष्ट भाषा-समिति मेरे हृदयमें वास करो ॥३३॥

[ओं ह्रीं भाषासमितिको नमस्कारपूर्वक मैं अर्घ्य अर्पित करता हूँ ।]

हजारों दोषोंसे रहित विना माँगे आहारमात्रको ग्रहण करनेवाले मुमुक्षु पुरुषके नवकोटि शुद्ध जो उत्पन्न होती है वह शुद्ध एषणा समिति मेरे हृदयमें वास करो ॥३४॥

[ओं ह्रीं एषणासमितिको नमस्कारपूर्वक मैं अर्घ्य अर्पित करता हूँ ।]

पहले पदार्थोंका शोधन करके बादमें उनको रखना और ग्रहण करना इस प्रकार जो आदान-निक्षेपण इस नामसे प्रसिद्ध है वह समिति सदा मेरे हृदयमें वास करो ॥३५॥

[ओं ह्रीं आदाननिक्षेपण समितिको नमस्कारपूर्वक मैं अर्घ्य अर्पित करता हूँ ।]

जीवरहित प्रासुक स्थानमें प्रमादरहित होकर श्लेष आदिके उत्सर्ग करनेरूप उत्सर्ग समितिका भव्य पुरुषोंको अहिंसा व्रतकी सिद्धिके लिए सदा पालन करना चाहिए ॥३६॥

[ओं ह्रीं व्युत्सर्गसमितिको नमस्कारपूर्वक मैं अर्घ्य अर्पित करता हूँ ।]

प्रमादमुक्त्या युगमात्रदृष्ट्या
स्पष्टे करैरुष्णकरस्य मार्गे ।
या वै गतिः सा समितिः किलेर्या
मान्या मुनीनां हृदये ममास्ताम् ॥३२॥
[ॐ ह्रीं ईर्यासमितये नमः अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।]

संकीर्तनैस्तीर्थकृतां जिनानां
पवित्रतोच्चैर्दश-दोष-मुक्ता ।
विनिश्चितार्था समितिर्गरिष्ठा
मोक्षाय भाषा हृदये ममास्ताम् ॥३३॥
[ॐ ह्रीं भाषासमितये नमः अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।]

अप्रार्थितं दोष-सहस्र-मुक्तमाहारमात्रं गृह्णतो मुमुक्षोः ।
उत्पद्यते या नव-कोटि-शुद्ध्या शुद्धैषणा सा हृदये ममास्ताम्॥
[ॐ ह्रीं एषणासमितये नमः अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।]

पूर्वं पदार्थान् प्रतिलिख्य पश्चान्निक्षेपणं यद् गृहणं च तेषाम् ।
आदाननिक्षेपण-नामतः सा ख्याता विशुद्धा हृदये ममास्ताम्॥
[ॐ ह्रीं आदाननिक्षेपणसमितये नमः अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।]

देशे शुचौ प्राणिगणोज्झिते यत् श्लेष्मादिकोत्सर्जनमप्रमादम् ।
भव्यैरहिंसाव्रतसिद्धये सा व्युत्सर्गसंज्ञा प्रतिपालनीया ॥३६॥
[ॐ ह्रीं प्रतिष्ठापनसमितये नमः अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।]

अष्टकम्

जड़त्व (अज्ञान) को दूर करनेकी इच्छासे ही मानों तीन वार जल चढ़ाकर सत्य आदि पाँच महाव्रत, तीन गुप्ति और पाँच समितियोंकी हम पूजा करते हैं ॥३७॥

[ओं ह्रीं अहिंसा महाव्रत आदिके लिए मैं जल अर्पित करता हूँ ।]

समस्त दिशाओंको चारों ओरसे सुगन्धित करनेवाले चन्द्रमा के समान श्वेत श्रेष्ठ चन्दनसे सत्य आदि पाँच महाव्रत, तीन गुप्ति और पाँच समितियोंकी हम पूजा करते हैं ॥३८॥

[ओं ह्रीं अहिंसा महाव्रत आदिके लिए मैं चन्दन अर्पित करता हूँ ।]

मानों पुण्यके शरत्कालीन पुञ्ज ही हों ऐसे चन्द्रकिरणके समान स्वच्छ चावलोंके पुञ्जसे सत्यादि पाँच महाव्रत, तीन गुप्ति और पाँच समितियों की हम पूजा करते हैं ॥३९॥

[ओं ह्रीं अहिंसा महाव्रत आदिके लिए मैं अक्षत अर्पित करता हूँ ।]

चमेली और मालती आदि सुन्दर तथा श्रेष्ठ फूलोंसे संसार तापको दूर करनेके लिए हम सत्यादि पाँच महाव्रत, तीन गुप्ति और पाँच समितियोंकी पूजा करते हैं ॥४०॥

[ओं ह्रीं अहिंसा महाव्रत आदिके लिए मैं पुष्प अर्पित करता हूँ ।]

अमृतके समान सभी प्राणियोंके प्राणोंके प्रति उदार ऐसे ग्रहण किये गये नैवेद्यसे सत्य आदि पाँच महाव्रत, तीन गुप्ति और पाँच समितियोंकी हम पूजा करते हैं ॥४१॥

[ओं ह्रीं अहिंसा महाव्रत आदिके लिए मैं नैवेद्य अर्पित करता हूँ ।]

अष्टकम्

वारत्रयं तत्पुरतो लुठद्भिर्जलैर्जडत्वापनिनीषयेव ।
व्रतानि सत्य-प्रभृतीनि हर्षाद् गुप्तीर्यजामः समितीश्च पञ्च ॥
[ॐ ह्रीं अहिंसामहाव्रतादिकाङ्क्षेभ्यो जलं निर्वपामीति स्वाहा ।]

सच्चन्दनैश्चन्द्र-सितैः सुगन्धीकुर्वद्भिराशाः परितः समस्ताः ।
व्रतानि सत्य-प्रभृतीनि हर्षाद् गुप्तीर्यजामः समितीश्च पञ्च ॥
[ॐ ह्रीं अहिंसामहाव्रतादिकाङ्क्षेभ्यः चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा ।]

पुण्यानुपुञ्जैरिव तण्डुलौघैः पुञ्जैः शरच्चन्द्र-करावदातैः ।
व्रतानि सत्य-प्रभृतीनि हर्षाद् गुप्तीर्यजामः समितीश्च पञ्च ॥
[ॐ ह्रीं अहिंसामहाव्रतादिकाङ्क्षेभ्यो अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा ।]

जात्यादि-सत्पुष्प-मतल्लिकाभिः श्रीमल्लिकाभिर्भव-ताप-नुत्यै ।
व्रतानि सत्य-प्रभृतीनि हर्षाद् गुप्तीर्यजामः समितीश्च पञ्च ॥
[ॐ ह्रीं अहिंसामहाव्रतादिकाङ्क्षेभ्यः पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ।]

प्राणानुदारैरमृतैरिवान्नैरभ्युद्धरद्भिर्निखिलाङ्गभाजाम् ।
व्रतानि सत्य-प्रभृतीनि हर्षाद् गुप्तीर्यजामः समितीश्च पञ्च ॥
[ॐ ह्रीं अहिंसामहाव्रतादिकाङ्क्षेभ्यो नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ।]

वाद्यनाद होते समय और लोगोंके द्वारा-जय जय शब्दोंका उच्चारण करते समय मणियोंके दीपकोंसे सत्य आदि पाँच महाव्रत, तीन गुप्ति और पाँच समितियोंकी हम पूजा करते हैं ॥४२॥

[ओं ह्रीं अहिंसा महाव्रत आदिके लिए मैं दीप अर्पित करता हूँ ।]

एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न न होनेकी इच्छासे ही मानो अग्निमें क्षेपण की गई अगुरु आदिकी धूपसे सत्य आदि पाँच महाव्रत, तीन गुप्ति और पाँच समितियोंकी हम पूजा करते हैं ॥४३॥

[ओं ह्रीं अहिंसा महाव्रत आदिके लिए मैं धूप अर्पित करता हूँ ।]

नीबू, नारंगी और पके हुए जामुन आदि रसीले उत्तम फलोंसे सत्य आदि पाँच महाव्रत, तीन गुप्ति और पाँच समितियोंकी हम पूजा करते हैं ॥ ४४ ॥

[ओं ह्रीं अहिंसा महाव्रत आदिके लिए मैं फल अर्पित करता हूँ ।]

जल, चन्दन और निर्मल अक्षत आदिसे सुशोभित कुसुमाञ्जलिसे मोक्षसुखकी प्राप्तिके लिए हम भक्तिपूर्वक चारित्रके अवान्तर भेदोंकी पूजा करते हैं ॥४५॥

[ओं ह्रीं अहिंसा महाव्रत आदिके लिए मैं अर्घ अर्पित करता हूँ]

जयमाला

जो मोक्षसुखका कारण है, दुर्गतिका वारण करता है, समस्त जीवोंके परिणामोंका सूचन करनेवाला है, मिथ्या नयोंका खण्डन करता है, मुनि-संघका भूषण है और भव्य जीव जिसकी स्तुति करते हैं ऐसा हे सम्यक्चारित्र ! तुम जयवन्त होओ ॥४६॥

करुणारससे परिपूर्ण, आत्माके हितकारी, भक्तिपूर्वक इन्द्रोंसे स्तुत, मोक्षमें पहुँचानेवाले उत्कृष्ट और विशुद्ध चारित्रको मैं प्रणाम करता हूँ ॥४७॥

नदत्सु वाद्येषु जयेति शब्दान् वदत्सु लोकेषु मणि-प्रदीपैः ।
व्रतानि सत्य-प्रभृतीनि हर्षाद् गुप्तीर्यजामः समितीश्च पञ्च ॥

[ॐ ह्रीं अहिंसामहाव्रतादिकाङ्गेभ्यो दीपं निर्वपामीति स्वाहा ।]

एकेन्द्रियोत्पत्ति-जिहासयेव क्षिपद्भिरग्नौ स्वमिहागुरौघैः ।
व्रतानि सत्य-प्रभृतीनि हर्षाद् गुप्तीर्यजामः समितीश्च पञ्च ॥

[ॐ ह्रीं अहिंसामहाव्रतादिकाङ्गेभ्यो धूपं निर्वपामीति स्वाहा ।]

जम्बीर-नारङ्ग-सुपक्व-जम्बू-फलोत्तमाद्यै रसमुद्गिरद्भिः ।
व्रतानि सत्य-प्रभृतीनि हर्षात् गुप्तीर्यजामः समितीश्च पञ्च ॥

[ॐ ह्रीं अहिंसामहाव्रतादिकाङ्गेभ्यः फलं निर्वपामीति स्वाहा ।]

जल-चन्दन-विशदाक्षत-सुशोभिना मोक्ष-सौख्य-संलब्ध्यै ।
कुसुमाञ्जलिना नित्यं वृत्ताङ्गान्यादरात्प्रयजे ॥

[ॐ ह्रीं अहिंसामहाव्रतादिकाङ्गेभ्यो अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।]

जयमाला

जय जय शिव-सुखकारण दुर्गति-वारण सकल-सत्त्व-सूचित-करण
पर-नय-कृत-दूषण मुनि-गण-भूषण भव्य-निवह-संस्तुत-चरण ॥
करुणा-रस-पूरितयात्महितं बहु-भक्ति-परामरनाथ-नुतम् ।
परमं शिव-सौध-निवासकरं चरणं प्रणमामि विशुद्धतरम् ॥

पवित्र केवलज्ञानकी क्रीड़ाके घर, दुखहारी, कामजेता, मोक्ष-रूपी महलमें पहुँचानेवाले उत्कृष्ट और विशुद्ध चारित्रको मैं प्रणाम करता हूँ ॥४८॥

निर्दोष शास्त्रोंके ज्ञाता मुनिराजोंके धनरूप, पापरूपी बादलोंके लिए प्रचण्ड पवनरूप तथा मोक्षरूपी महलमें पहुँचानेवाले उत्कृष्ट और विशुद्ध चारित्रको मैं प्रणाम करता हूँ ॥४६॥

सुन्दर मोक्ष-लक्ष्मीके लिए कमलके समान, उत्तम विवेकके जनक, दुखरूपी मलके नाशक, मोक्षरूपी महलमें पहुँचानेवाले उत्कृष्ट और विशुद्ध चारित्रको मैं प्रणाम करता हूँ ॥५०॥

मोहरूपी रातके लिए सूर्य के समान, सत्यको प्रकाशित करने-वाले, दूसरेका और अपना हित करनेवाले तथा उत्कृष्ट मोक्षरूपी महलमें पहुँचानेवाले, उत्कृष्ट और विशुद्ध चारित्रको मैं प्रणाम करता हूँ ॥५१॥

सघन कर्मरूपी बादलोंके लिए वायुके समान, शोकरूपी समुद्र के जलसे पार करनेमें समर्थ, मोक्षरूपी महलमें पहुँचानेवाले, उत्कृष्ट तथा विशुद्ध चारित्रको मैं नमस्कार करता हूँ ॥५२॥

जीवोंके अभीष्ट पदार्थके देनेवाले, सुखदाता, संसार भयके हर्ता, सिद्ध-पद-प्रदाता, मोक्षरूपी महलमें पहुँचानेवाले, उत्कृष्ट और विशुद्ध चारित्रको मैं प्रणाम करता हूँ ॥५३॥

मद और राग कषायरूपी रजको शमन करनेवाले, दुर्जय भव रूपी दानवको पछाड़नेवाले, मोक्षरूपी महलमें पहुँचानेवाले, उत्कृष्ट तथा विशुद्ध चारित्रको मैं प्रणाम करता हूँ ॥५४॥

इस प्रकार जो निर्मल बुद्धिका धारक पुरुष चारित्ररत्नकी स्तुति करता है वह शीघ्र ही अभीष्ट अर्थकी सिद्धिको प्राप्त होता है ॥५५॥

शुचि-केवल-केलि-कला-सदनं जित-सूचित-विश्व-विपन्मदनम् ।
परमं शिव-सौध-निवास-करं चरणं प्रणमामि विशुद्धतरम् ॥

विशदागमवित्मुनिनाथ-धनं दुरितौघ-धनञ्जय-चण्डघनम् ।
परमं शिव-सौध-निवास-करं चरणं प्रणमामि विशुद्धतरम् ॥

रमणीय-विमुक्ति-रमा-कमलं सुविवेककरं हत-दुःख-मलम् ।
परमं शिव-सौध-निवास-करं चरणं प्रणमामि विशुद्धतरम् ॥

ममता-रजनी-दिवसाधिपतिं प्रकटीकृत-सत्य परात्म-हितम् ।
परमं शिव-सौध-निवासकरं चरणं प्रणमामि विशुद्धतरम् ॥

घन-कर्म-पयोद-समीरमलं सुतरीकृत-शोक-पयोधि-जलम् ।
परमं शिव-सौध-निवास-करं चरणं प्रणमामि विशुद्धतरम् ॥

जनताभिमतार्थकरं सुखदं भव-भीति-हरं कृत-सिद्ध-पदम् ।
परमं शिव-सौध-निवास-करं चरणं प्रणमामि विशुद्धतरम् ॥

मद-राग-कषाय-रजः-शमनं भव-दुर्जय-दानव-संदमनम् ।
परमं शिव-सौध-निवास-करं चरणं प्रणमामि विशुद्धतरम् ॥

इत्थं चारित्र-रत्नं यः संस्तवीति पवित्रधीः ।
अभिप्रेतार्थ-संसिद्धिं संप्राप्नोत्यचिरान्नरः ॥५५॥

जिन्होंने तीन, पाँच अथवा चार चारित्रोंका सम्पादन किया है, जो मुक्तिरूपी लक्ष्मीके शुभ आलिङ्गनसे प्राप्त दश स्थानोंमें से भावरूप किसी एक द्वारा विपत्तियोंका अन्त करनेमें समर्थ हुए और जो आत्मपदमें स्थित हैं, किसी भी चारित्रके द्वारा संसारका अन्त करनेवाले वे सिद्ध परमेष्ठी तुम लोगोंकी रक्षा करें ॥५६॥

शरीर, मन और भाषाके निमित्तसे उत्पन्न हुई तीन समीचीन गुप्तियाँ, ईर्या आदि पाँच समितियाँ और पाँच महाव्रत इस प्रकार जिस तेरह प्रकारके चारित्रको जिनवर महावीर परमेष्ठीके पूर्व अन्य कोई नहीं जानता था उस चारित्रको हम नमस्कार करते हैं ॥५७॥

[ओं ह्रीं तेरह प्रकारके सम्यक्चारित्रके लिए मैं महार्घ अर्पित करता हूँ ।]

आनन्दरूप शुद्ध आत्मा ही उपादेय है ऐसी श्रद्धा निश्चय सम्यग्दर्शन है, उसी शुद्ध आत्माको स्वानुभवके द्वारा शरीरादिकसे प्रथक् अनुभव करना निश्चय सम्यग्ज्ञान है और चिन्ताका निरोध कर अत्यन्त तृप्तिके साथ उसी शुद्ध आत्मामें अवस्थित होना निश्चय सम्यक्चारित्र है । भेदरत्नत्रयमें तत्पर तुम अपने स्वरूपको परम शुद्ध तन्मय समझो ॥५८॥

अनन्त मोक्ष सुखकी प्राप्तिके लिए परिग्रहसे विरत हो विरत हो, प्रपञ्चका त्याग कर त्याग कर, मोहको छोड़ छोड़, आत्मतत्त्वको जान जान, चारित्रको धारण कर धारण कर, अपने स्वरूपको देख-देख और पुनः पुनः पुरुषार्थ कर ॥५॥

[ओं ह्रीं व्यवहाररत्नत्रयके साधकरूप निश्चय रत्नत्रयके लिए मैं अर्घ अर्पित करता हूँ ।]

ते केनापि कृताजवंजवजया सिद्धाः सदा पान्तु वः
सम्पाद्यानि पुरा त्रि पञ्च यदि वा चत्वारि वृत्तानि यैः ।
मुक्ति-श्री-परिरम्भ-शुम्भ-दशकस्थानेषु भावात्मना
केनाप्येकतमेन वीत-विपदः स्वात्माभिषिक्ताः पदे ॥५६॥

तिस्रः सत्तम-गुप्तयस्तनु-मनो-भाषा-निमित्तोदयाः
पञ्चेर्यादि-समाश्रयाः समितयः पञ्च व्रतानीत्यपि ।
चारित्रोपहितं त्रयोदशतयं पूर्वं न दृष्टं परै-
राचारं परमेष्ठिनो जिनपतेः वीरान्नमामो वयम् ॥५७॥

[ॐ ह्रीं त्रयोदशप्रकाराय सम्यक्चारित्राय महार्घं निर्वापामीति स्वाहा ।]

श्रद्धा स्वात्मैव शुद्धः प्रमदवपुरुषादेय इत्यांजसी दृक्
तस्यैव स्वानुभूत्या पृथगनुभवनं विग्रहादेश्च संवित् ।
तत्रैवात्यन्त-तृप्त्या मनसि लयमितेव स्थितिः स्वस्य चर्या
स्वात्मानं भेद-रत्नत्रय-परमपरं तन्मयं विद्धि शुद्धम् ॥५८॥

विरम विरम सङ्गान् मुञ्च मुञ्च प्रपञ्चं
विसृज विसृज मोहं विद्धि विद्धि स्वतत्त्वम् ।
कलय कलय वृत्तं पश्य पश्य स्वरूपं
कुरु कुरु पुरुषार्थं निर्वृतानन्तहेतोः ॥५९॥

[ॐ ह्रीं व्यवहाररत्नत्रयैकसाध्याय निश्चयरत्नत्रयाय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।]

जिस चारित्रके प्रभावमें जाति-विरोधी जीव भी वैर-विरोध छोड़ देते हैं, इन्द्र पूजा करते हैं, बादमें जिस चारित्रके प्रसादसे सौधर्मादि स्वर्गोंमें इन्द्रपद प्राप्तकर वहाँसे च्युत हो यह जीव चक्रवर्तीकी विभूति प्राप्त करता है वहाँसे फिर तपश्चरण कर मुक्ति-सुखरूपी अमृतका पान करते हुए अविनाशी और अचल सुन्दर मोक्ष-लक्ष्मीको प्राप्त करता है वह चारित्र रूपी रत्न सदा आप लोगोंके चित्तमें प्रकाश करे ॥६०॥

जो काललब्धि पाकर व्यवहारसे सात तत्त्वोंका श्रद्धान, उनका ज्ञान और तपश्चरणरूप एकदेश आत्माकी शुद्धिको प्राप्त करता है तथा जो निश्चयसे आत्मश्रद्धान, आत्मज्ञान और आत्मलीनतारूप सम्पूर्ण आत्मशुद्धिको प्राप्त करता है वह भव्यसिंहको प्यारा व्यवहार-निश्चयस्वरूप रत्नत्रय तुम्हारे कल्याणके लिए होवे ॥६१॥

सिंह जिस प्रकार हाथीको जीत लेता है उसी प्रकार जिन्होंने मोहरूपी सुभटको बड़ी आसानीसे जीत लिया वे मल्लिनाथ अर्हन्त आपके दुःखोंका विनाश करें ॥६२॥

[आशीर्वाद]

स्वयंभू-स्तोत्र

जिन्होंने स्वयं उत्पन्न हुए अपने ज्ञानसे किन्हींको आजीविकामें लगाकर आश्वस्त किया और किन्हींको मोक्षमार्गमें प्रबुद्ध किया उन आदिनाथ जिनको मैं सदा नमस्कार करता हूँ ॥१॥

कामको जीतनेवाले और प्राणीमात्रको सुख प्रदान करनेवाले जिन इन्द्रादिकोंने क्षीरसमुद्रके जलसे मेरु पर्वतपर जिनेन्द्रदेवका अभिषेक किया उन अजितनाथ जिनको शुद्ध भावोंसे मैं नमस्कार करता हूँ ॥२॥

जिन्होंने सतत ध्यानके प्रभावसे सम्पूर्ण कर्म-प्रकृतियोंको नष्ट कर मोक्षपद प्राप्त किया उन सम्भवनाथ जिनको मैं बड़े अनुरागसे नमस्कार करता हूँ ॥३॥

येनान्योन्य-विरोध-वैरि-विसृजा शक्रादि-पूजा कृता
सौधर्माधिप-चक्र-पूर्वक-पदं श्रीमुक्ति-शर्मामृतम् ।
पायं पायमपापदूरमचलं भव्याश्रियं प्राप्यते
तद्वचारु-चरित्र-रत्नमनिशं प्रद्योततां चेतसि ॥६०॥

तत्त्वार्थाभिनिवेश-निर्णयतपश्चेष्टामयीमात्मनः
शुद्धिं लब्धिवशाद् भजन्ति विकलां यद्यच्च पूर्णामपि ।
स्वात्माप्रत्ययवृत्ति तल्लयमयीं तद्भव्य-सिंह-प्रियं
भूयाद्वो व्यवहार-निश्चयमयं रत्न-त्रयं श्रेयसे ॥६१॥

मोहमल्लममल्लं यो व्यजेष्ट निश्चय-कारणम् ।
करीन्द्रं वा हरिः सोऽर्हन् मल्लिः शल्यहरोऽस्तु वः॥६२॥

[इत्याशीर्वादः]

•

स्वयम्भू-स्तोत्रम्

येन स्वयंबोधमयेन लोका आश्वासिताः केचन चित्तकार्ये ।
प्रबोधिताः केचन मोक्षमार्गे तमादिनाथं प्रणमामि नित्यम् ॥
इन्द्रादिभिः क्षीरसमुद्र-तोयैः संस्नापितो मेरुगिरौ जिनेन्द्रः ।
यः कामजेता जन-सौख्यकारी तं शुद्ध-भावादजितं नमामि ॥
ध्यान-प्रबन्ध-प्रभवेन येन निहत्य कर्म-प्रकृतीः समस्ताः ।
मुक्ति-स्वरूपां पदवीं प्रपेदे तं सम्भवं नौमि महानुरागात् ॥

जिनकी माताने रात्रिमें हाथीसे लेकर अग्नि तक सोलह स्वप्न देखे और जिनके पिताने जिन्हें उत्कृष्ट गुरु बतलाया उन अभिनन्दन जिनको मैं प्रमोदपूर्वक नमस्कार करता हूँ ॥४॥

जिन्होंने नय और प्रमाणसंगत वचनोंसे कुवादियोंके बड़े-बड़े वादों पर विजय प्राप्तकर तीनों लोकोंमें जैनधर्मका विस्तार किया उन देवोंके देव सुमति जिनको मैं नमस्कार करता हूँ ॥५॥

जिनके जन्मसे पूर्व पन्द्रह महीने तक पिताके प्राङ्गणमें इन्द्रकी आज्ञासे कुबेरने रत्नोंकी वर्षा की उन पद्मप्रभ जिनको मैं नमस्कार करता हूँ ॥६॥

जिनकी दिव्यध्वनिको नरेन्द्र, धरणेन्द्र और देवेन्द्रोंने अपने चित्तमें धारण किया और जिनका आत्मबोध सभामें प्रसिद्धिको प्राप्त हुआ उन सुपार्श्व जिनको मैं नमस्कार करता हूँ ॥७॥

जो सुन्दर आठ प्रातिहार्य रूप अतिशयोंको प्राप्त हुए, जो गुणोंमें प्रवीण हैं, जो अठारह दोषोंसे रहित हैं और जो जीवोंके मोहरूपी अन्धकारको दूर करनेके लिए दीपकके समान हैं उन चन्द्रप्रभ जिनको भावपूर्वक मैं नमस्कार करता हूँ ॥८॥

जिन्होंने तीन गुप्ति, पाँच महाव्रत, पाँच समिति और बारह तपोंका उपदेश दिया उन पुष्पदन्त जिनको मैं नमस्कार करता हूँ ॥९॥

जिन जिन-नायकने व्रतपरम्पराकी बुद्धिसे उत्तम क्षमासे लेकर उत्तम ब्रह्मचर्यपर्यन्त दश धर्मोंका उपदेश दिया उन शीतलनाथ तीर्थंकरको मैं नमस्कार करता हूँ ॥१०॥

जिन्होंने क्षमाशील, शान्तचित्त और संसारके प्राणियोंको आनन्द देनेवाले गणधरोंको द्वादशाङ्ग श्रुतका उपदेश दिया उन श्रेयांसनाथ जिनेशको मैं नमस्कार करता हूँ ॥११॥

स्वप्ने यदीया जननी क्षपायां गजादि-वह्न्यन्तमिदं ददर्श ।
यत्तात इत्याह गुरुः परोऽयं नौमि प्रमोदादभिनन्दनं तम् ॥

कुवादि-वादं जयता महान्तं नय-प्रमाणैर्वचनैर्जगत्सु ।
जैनं मतं विस्तरितं च येन तं देव-देवं सुमतिं नमामि ॥

यस्यावतारे सति पितृधिष्ण्ये ववर्ष रत्नानि हरेर्निदेशात् ।
धनाधिपः षण्णव-मासपूर्वं पद्मप्रभं तं प्रणमामि साधुम् ॥

नरेन्द्र-सर्पेश्वर-नाकनाथैर्वाणी भवन्ती जगृहे स्वचित्ते ।
यस्यात्मबोधः प्रथितः सभायामहं सुपार्श्वं ननु तं नमामि ॥

सत्प्रातिहार्यातिशय-प्रपन्नो गुण-प्रवीणो हत-दोष-संगः ।
यो लोक-मोहान्ध-तमः-प्रदीपश्चन्द्रप्रभं तं प्रणमामि भावात् ॥

गुप्तित्रयं पंच महाव्रतानि पंचोपदिष्टाः समितिश्च येन ।
बभाण यो द्वादशधा तपांसि तं पुष्पदन्तं प्रणमामि देवम् ॥

ब्रह्म-व्रतान्तो जिननायकेनोत्तम-क्षमादिर्दशधापि धर्मः ।
येन प्रयुक्तो व्रत-बन्ध-बुद्ध्या तं शीतलं तीर्थकरं नमामि ॥

गणे जनानन्दकरे धरान्ते विध्वस्त-कोपे प्रशमैकचित्ते ।
यो द्वादशाङ्गं श्रुतमादिदेश श्रेयांसमानौमि जिनं तमीशम् ॥

जिन्होंने मुक्तिरूपी वधूके लिए विशाल रत्नत्रयरूपी मुकुटका निर्माण किया और मुक्तिरूपी वधू जिनके कण्ठसे लगकर श्रेष्ठ हो गई उन वासपूज्य जिनको मैं ससंभ्रमके साथ नमस्कार करता हूँ ॥१२॥

जो ज्ञानी, विवेकवान्, उत्कृष्ट आत्मस्वरूपके धारी, ध्यानी, व्रती, प्राणियोंके हितोपदेशक, मिथ्यात्वको नष्ट करनेवाले और मोक्षसुखके भागी हुए उन विमल जिनको मैं नमस्कार करता हूँ ॥१३॥

जिन्होंने सब जीवोंके हितके मार्गको लक्ष्यकर आभ्यन्तर और बाह्य अनेक प्रकारके सब परिग्रहका त्याग किया उन अनन्तनाथ जिनको मैं भक्तिपूर्वक प्रणाम करता हूँ ॥१४॥

जिन्होंने नौ पदार्थोंके साथ सात तत्त्व, पाँच अस्तिकाय, कायरहित काल द्रव्य इस प्रकार सब मिलाकर छह द्रव्य और अलोकाकाशकी युक्तिका कथन किया उन धर्मजिनको मैं प्रणाम करता हूँ ॥१५॥

जो लोकमें अनेक गुणों और निधियोंके स्वामी पाँचवें चक्रवर्ती हुए, बारहवें कामदेव हुए और सोलहवें तीर्थंकर हुए उन शान्तिनाथ जिनको मैं पदके अनुसार पृथक्-पृथक् नमस्कार करता हूँ ॥१६॥

प्रशंसा करनेपर जिन्हें हर्ष नहीं होता, निन्दा करनेपर जो रोष नहीं करते और जो शीलव्रतोंका पालनकर ब्रह्म-(मोक्ष) पदको प्राप्त हुए हैं उन कुंथुनाथ जिनको मैं बड़े हर्षके साथ प्रणाम करता हूँ ॥१७॥

मुक्त्यङ्गनाया रचिता विशाला रत्नत्रयी-शेखरता च येन ।
यत्कण्ठमासाद्य बभूव श्रेष्ठा तं वासुपूज्यं प्रणमामि वेगात् ॥

ज्ञानी विवेकी परमस्वरूपी ध्यानी व्रती प्राणिहितोपदेशी ।
मिथ्यात्वघाती शिवसौख्यभोजी बभूव यस्तं विमलं नमामि ॥

आभ्यन्तरं बाह्यमनेकधा यः परिग्रहं सर्वमपाचकार ।
यो मार्गमुद्दिश्य हितं जनानां वन्दे जिनं तं प्रणमाम्यनन्तम् ॥

सार्द्धं पदार्था नव सप्त तत्त्वैः पंचास्तिकायाश्च न कालकायाः ।
षड्द्रव्यनिर्णीतिरलोकयुक्तिर्येनोदिता तं प्रणमामि धर्मम् ॥

यश्चक्रवर्ती भुवि पञ्चमोऽभूच्छ्रीनन्दनो द्वादशको गुणानाम् ।
निधि-प्रभुः षोडशको जिनेन्द्रस्तं शान्तिनाथं प्रणमामि भेदात् ॥

प्रशंसितो यो न बिभर्ति हर्षं विराधितो यो न करोति रोषम् ।
शील-व्रताद् ब्रह्मपदं गतो यस्तं कुन्थुनाथं प्रणमामि हर्षात् ॥

जिन जिनदेवकी सभामें अविनाशी पद प्राप्त केवली जिन्हें न नमस्कार करते थे और न जिनकी स्तुति करते थे किन्तु अन्तर्गणकी पूर्तिके लिए जो उनके द्वारा आदर प्राप्त करते थे उन देवाधिदेव अरनाथ जिनको मैं नमस्कार करता हूँ ॥१८॥

जिन्होंने पूर्व भवमें विशुद्ध मन, वचन और कायसे पवित्र रत्नत्रय व्रतका पूरी तरह पालन किया उन मल्लिनाथ जिनको मैं भक्तिपूर्वक प्रणाम करता हूँ ॥१६॥

जिन्होंने लौकान्तिक देवोंके द्वारा की गई स्तुतिको सुनकर 'नमः सिद्धेभ्यः' कह कर स्वयं ही केश-लोंच किया उन मुनिसुव्रत जिनको मैं नमस्कार करता हूँ ॥२०॥

चार ज्ञानधारी जिन तीर्थंकर देवको दान देते हुए राजा के घरमें रत्नवृष्टि हुई उन नमि जिनकी समग्ररूपसे और पृथक रूपसे मैं स्तुति करता हूँ ॥२१॥

सब जीवोंपर दया करनेवाले जो जिनदेव अपुनर्भव रूप-प्रयोजनकी सिद्धिके लिए राजमतीका त्यागकर मोक्षमें स्थित हुए उन नेमिनाथ जिनको मैं भक्तिपूर्वक प्रणाम करता हूँ ॥२२॥

ध्यानमें बैठे हुए जिनके ऊपर पूर्व जन्मके वैरी कमठके द्वारा किये गये उपसर्गको धरणेन्द्रने ऊपर फण फैलाकर दूर किया उन पार्श्व जिनको बड़े आदरके साथ मैं प्रणाम करता हूँ ॥२३॥

पापके कारण संसार समुद्रमें डूबते हुए प्राणिसमूहको जिन्होंने धर्मरूपी पोतके सहारे बाहर निकाल लिया उन वर्द्धमान जिनको मैं नमस्कार करता हूँ ॥२४॥

जो पुरुष या स्त्री भव्य पुरुषोंके द्वारा किये गये विमल गुणानुवादके साथ पुष्पाञ्जलि समर्पण करता हुआ शुद्ध मन, वचन और कायसे प्रतिदिन सर्वज्ञ भाषित दश प्रकारके धर्मका आदरपूर्वक पालन करता है वह सदा स्वर्ग और अपवर्ग रूप लक्ष्मीका विस्तार करता है ॥२५॥

न संस्तुतो न प्रणतः सभायां यः सेवितोऽन्तर्गण-पूरणाय ।
पद-च्युतैः केवलिभिर्जिनस्य देवाधिदेवं प्रणमाम्यरं तम् ॥
रत्न-त्रयं पूर्व-भवान्तरे यो व्रतं पवित्रं कृतवानशेषम् ।
कायेन वाचा मनसा विशुद्ध्या तं मल्लिनाथं प्रणमामि भक्त्या ॥
ब्रुवन्नमः सिद्ध-पदाय वाक्यमित्यग्रहीद्यः स्वयमेव लोचम् ।
लौकान्तिकेभ्यः स्तवनं निशम्य वन्दे जिनेशं मुनिसुव्रतं तम् ॥
विद्यावते तीर्थंकराय तस्मायाहारदानं ददतो विशेषात् ।
गृहे नृपस्याजनि रत्नवृष्टिः स्तौमि प्रणामान्नयतो नमिं तम् ॥
राजीमतीं यः प्रविहाय मोक्षे स्थितिं चकारापुनरागमाय ।
सर्वेषु जीवेषु दयां दधानस्तं नेमिनाथं प्रणमामि भक्त्या ॥
सर्पाधिराजः कमठारितो यैर्ध्यान-स्थितस्यैव फणावितानैः ।
यस्योपसर्गं निरवर्तयत्तं नमामि पार्श्वं महतादरेण ॥
भवार्णवे जन्तुसमूहमेनमाकर्षयामास हि धर्म-पोतात् ।
मज्जन्तमुद्वीक्ष्य य एनसापि, श्रीवर्द्धमानं प्रणमाम्यहं तम् ॥
यो धर्मं दशधा करोति पुरुषः स्त्री वा कृतोपस्कृतं
सर्वज्ञ-ध्वनि-सम्भवं त्रिकरण-व्यापार-शुद्ध्यानिशम् ।
भव्यानां जयमालया विमलया पुष्पाञ्जलिं दापयन्-
नित्यं स श्रियमातनोति सकलं स्वर्गापवर्ग-स्थितिम् ॥

पर्व-पूजादि [हिन्दी]

सोलहकारणपूजा

[कविवर द्यानतरायजी]

सोलह कारण भाय तीर्थंकर जे भये।
हरषे इन्द्र अपार मेरुपै ले गये॥
पूजा करि निज धन्य लख्यो बहु चावसौं।
हमहू षोडश कारन भावैं भावसौं॥

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणानि ! अत्र अवतरत अवतरत संवौषट्।

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणानि ! अत्र तिष्ठत तिष्ठत ठः ठः।

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणानि ! अत्र मम सन्निहितानि भवत भवत वषट्।

कंचन-झारी निरमल नीर पूजों जिनवर गुन-गंभीर।
परम गुरु हो जय जय नाथ परम गुरु हो॥
दरशविशुद्धि भावना भाय सोलह तीर्थंकर-पद-दाय।
परम गुरु हो जय जय नाथ परम गुरु हो॥

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्धि-विनयसम्पन्नता-शीलव्रतेष्वनतिचाराभीक्ष्णज्ञानोपयोग-संवेग-शक्तितस्त्याग-तपः-साधुसमाधि - वैयावृत्त्यकरणार्हद्भक्ति-आचार्यभक्ति-बहुश्रुतभक्ति-प्रवचनभक्ति - आवश्यकापरिहाणि -- मार्गप्रभावना-प्रवचनवात्सल्येतितीर्थंकरत्वकारणेभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

चंदन घसौं कपूर मिलाय पूजौं श्रीजिनवरके पाय ।
परम गुरु हो जय जय नाथ परम गुरु हो ॥ दरश०॥

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्यः संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा ।

तंदुल धवल सुगंध अनूप पूजौं जिनवर तिहुं जग-भूप ।
परम गुरु हो जय जय नाथ परम गुरु हो ॥दरश०॥

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्योऽक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ।

फूल सुगंध मधुप-गुंजार पूजौं जिनवर जग-आधार ।
परम गुरु हो जय जय नाथ परम गुरु हो ॥दरश०॥

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्यः कामवाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ।

सद् नेवज बहुविधि पकवान पूजौं श्रीजिनवर गुणखान ।
परम गुरु हो जय जय नाथ परम गुरु हो ॥दरश०॥

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

दीपक-ज्योति तिमिर छयकार पूजूं श्रीजिन केवलधार ।
परम गुरु हो जय जय नाथ परम गुरु हो ॥दरश०॥

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्यो मोहान्धकारविनाशाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा ।

अगर कपूर गंध शुभ खेय श्रीजिनवर आगे महकेय।
परम गुरु हो जय जय नाथ परम गुरु हो॥
दरशविशुद्ध भावना भाय सोलह तीर्थंकर-पद-दाय।
परम गुरु हो जय जय नाथ परम गुरु हो॥

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्धयादिषोडशकारणेभ्योऽष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

श्रीफल आदि बहुत फलसार पूजौं जिन वांछित-दातार।
परम गुरु हो जय जय नाथ परम गुरु हो॥दरश०॥

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्धयादिषोडशकारणेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल फल आठों दरव चढाय 'द्यानत' वरत करों मनलाय।
परम गुरु हो जय जय नाथ परम गुरु हो॥दरश०॥

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्धयादिषोडशकारणेभ्योऽनर्घपदप्राप्तये अर्घं निर्वपामिति स्वाहा।

षोडश कारण गुण करै, हरै चतुरगति-वास।
पाप पुण्य सब नाशके, ज्ञान-भान परकाश॥

चौपाई १६ मात्रा

दरशविशुद्धि धरे जो कोई, ताको आवागमन न होई।
विनय महाधारै जो प्राणी, शिव-वनिताकी सखी बखानी॥
शील सदा दिढ जो नर पालै, सो औरनकी आपद टालै।
ज्ञानाभ्यास करै मनमाहीं, ताके मोह-महातम नाहीं॥

जो संवेग-भाव विसतारै, सुरग-मुकति-पद आप निहारै ।
दान देय मन हरष विशेखै, इह भव जस परभव सुख देखै ॥
जो तप तपै खपे अभिलाषा, चूरे करम-शिखर गुरु भाषा ।
साधु-समाधि सदा मन लावै, तिहुँ जग भोग भोगि शिव जावै ॥
निश-दिन वैयावृत्य करैया, सो निहचै भव-नीर तिरैया ।
जो अरहंत-भगति मन आनै, सो जन विषय कषाय न जानै ॥
जो आचारज-भगति करै है, सो निर्मल आचार धरै है ।
बहुश्रुतवंत-भगति जो करई, सो नर संपूरन श्रुत धरई ॥
प्रवचन-भगति करै जो ज्ञाता, लहै ज्ञान परमानंद-दाता ।
षट् आवश्य काल जो साधै, सो ही रत्न-त्रय आराधै ॥
धरम-प्रभाव करैं जे ज्ञानी, तिन शिव-मारग रीति पिछानी ।
वत्सल अंग सदा जो ध्यावै, सो तीर्थंकर पदवी पावै ॥

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्यः पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

दोहा

एही सोलह भावना, सहित धरै व्रत जोय ।
देव-इन्द्र-नर-वंद्य-पद, 'द्यानत' शिव-पद होय ॥

[आशीर्वाद]

पंचमेरु पूजा

[कविवर द्यानतरायजी]

गीता छन्द

तीर्थंकरोंके न्हवन-जलतैं भये तीरथ शर्मदा,
तातैं प्रदच्छन देत सुर-गन पंच मेरुनकी सदा।
दो जलधि ढाई द्वीपमें सब गनत-मूल विराजहीं,
पूजौं असी जिनधाम-प्रतिमा होहि सुख दुख भाजहीं ॥

ॐ ह्रीं पञ्चमेरुसम्बन्धिजिनचैत्यालयस्थजिनप्रतिमासमूह ! अत्रावतरावतर संवौषट्।

ॐ ह्रीं पञ्चमेरुसम्बन्धिजिनचत्यालयस्थजिनप्रतिमासमूह ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।

ॐ ह्रीं पञ्चमेरुसम्बन्धिजिनचैत्यालयस्थजिनप्रतिमासमूह ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

चौपाई आंचलीबद्ध

सीतल-मिष्ट-सुवास मिलाय, जलसौं पूजौं श्रीजिनराय।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय ॥
पाँचों मेरु असी जिनधाम, सब प्रतिमाको करों प्रनाम।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय ॥

ॐ ह्रीं सुदर्शन-विजय-अचल-मन्दिर-विद्युन्मालिपंचमेरु-सम्बन्धिजिनचैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्यो जलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल केशर करपूर मिलाय, गंधसौं पूजौं श्रीजिनराय।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय ॥ पाँचों० ॥

ॐ ह्रीं पंचमेरुसम्बन्धिजिनचैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्यः चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

अमल अखंड सुगंध सुहाय, अच्छतसौं पूजौं जिनराय।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय ॥ पाँचों० ॥

ॐ ह्रीं पंचमेरुसम्बन्धिजिनचैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्यो अक्षतान् निर्वपामिति स्वाहा।

बरन अनेक रहे महकाय, फूलसौं पूजौं श्रीजिनराय।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय ॥ पाँचों० ॥

ॐ ह्रीं पञ्चमेरुसम्बन्धिजिनचैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्यः पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

मन-वांछित बहु तुरत बनाय, चरुसौं पूजौं श्रीजिनराय।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय ॥ पाँचों० ॥

ॐ ह्रीं पञ्चमेरुसम्बन्धिजिनचैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्यो नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तम-हर उज्ज्वल ज्योति जगाय, दीपसों पूजौं श्रीजिनराय।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय ॥ पाँचों० ॥

ॐ ह्रीं पञ्चमेरुसम्बन्धिजिनचैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्यो दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

खेऊँ अगर अमल अधिकाय, धूपसों पूजौं श्रीजिनराय।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय॥
पाँचों मेरु असी जिन धाम, सब प्रतिमाको करो प्रनाम।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय॥

ॐ ह्रीं पञ्चमेरुसम्बन्धिजिनचैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्यो धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

सुरस सुवर्ण सुगंध सुभाय, फलसों पूजौं श्रीजिनराय।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय॥ पाँचों०॥

ॐ ह्रीं पञ्चमेरुसम्बन्धिजिनचैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्यः फलं निर्वपामीति स्वाहा।

आठ दरबमय अरघ बनाय, 'द्यानत' पूजौं श्रीजिनराय।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय॥ पाँचों०॥

ॐ ह्रीं पञ्चमेरुसम्बन्धिजिनचैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

प्रथम सुदर्शन-स्वामि, विजय अचल मंदर कहा।
विद्युन्माली नाम, पंच मेरु जगमें प्रगट॥

बेसरी छन्द

प्रथम सुदर्शन मेरु विराजै, भद्रशाल वन भूपर छाजै।
चैत्यालय चारों सुखकारी, मन वच तन बंदना हमारी॥
ऊपर पंच-शतकपर सोहै, नंदन-वन देखत मन मोहै।
चैत्यालय चारों सुखकारी, मन वच तन बंदना हमारी॥

साढ़े बासठ सहस ऊँचाई, वन सुमनस शोभै अधिकाई।
चैत्यालय चारों सुखकारी, मन वच तन बंदना हमारी ॥
ऊँचा जोजन सहस-छत्तीसं, पाण्डुक-वन सोहै गिरि-सीसं
चैत्यालय चारों सुखकारी, मन वच तन बंदना हमारी ॥
चारों मेरु समान बखाने, भूपर भद्रसाल चहुँ जाने।
चैत्यालय सोलह सुखकारी, मन वच तन बंदना हमारी ॥
ऊँचे पाँच शतक पर भाखे, चारों नंदनवन अभिलाखे।
चैत्यालय सोलह सुखकारी, मन वच तन बंदना हमारी ॥
साढ़े पचपन सहस उतंगा, वन सौमनस चार बहुरंगा।
चैत्यालय सोलह सुखकारी, मन वच तन बंदना हमारी ॥
उच्च अठाइस सहस बताये, पांडुक चारों वन शुभ गाये।
चैत्यालय सोलह सुखकारी, मन वच तन बंदना हमारी ॥
सुर नर चारन बंदन आवैं, सो शोभा हम किह मुख गावैं।
चैत्यालय अस्सी सुखकारी, मन वच तन बंदना हमारी ॥

दोहा

पंच मेरुकी आरती, पढ़ै सुनै जो कोय।
'द्यानत' फल जानै प्रभू, तुरत महासुख होय ॥

ॐ ह्रीं पंचमेरुसम्बन्धिजिनचैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दशलक्षणधर्म-पूजा

[कविवर द्यानतरायजी]

अडिल्ल

उत्तम छिमा मारदव आरजव भाव हैं,
सत्य सौच संयम तप त्याग उपाव हैं।
आकिंचन ब्रह्मचरज धरम दश सार हैं,
चहुंगति-दुखतैं काढ़ि मुकति करतार हैं॥

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्म ! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्म ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्म ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

सोरठा

हेमाचलकी धार, मुनि-चित सम शीतल सुरभि।
भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा॥

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमामार्दवार्जवसत्यशौचसंयमतपस्त्यागाकिञ्चन्य-ब्रह्मचर्येति दशलक्षणधर्माय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

चन्दन केशर गार, होय सुवास दशों दिशा।
भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा॥

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

अमल अखंडित सार, तंदुल चन्द्र समान शुभ।
भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा॥
ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।
फूल अनेक प्रकार, महकें ऊरध-लोकलों।
भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा॥
ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।
नेवज विविध निहार, उत्तम षट-रस-संजुगत।
भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा॥
ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।
बाति कपूर सुधार, दीपक-जोति सुहावनी।
भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा॥
ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।
अगर धूप विस्तार, फैले सर्व सुगंधता।
भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा॥
ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।
फलकी जाति अपार, घ्रान-नयन-मन-मोहने।
भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा॥
ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय फलं निर्वपामीति स्वाहा।
आठों दरब संवार, 'द्यानत' अधिक उछाहसों।
भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा॥
ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्मायार्घं निर्वपामीति स्वाहा।

अङ्गपूजा

सोरठा

पीडैं दुष्ट अनेक, बाँध मार बहुविधि करैं ।
धरिये छिमा विवेक, कोप न कीजे पीतमा ॥

उत्तम छिमा गहो रे भाई, इह भव जस पर-भव सुखदाई ।
गाली सुनि मन खेद न आनो, गुनको औगुन कहै अयानो ॥
कहि है अयानो वस्तु छीनै, बाँध मार बहुविधि करै ।
घरतैं निकारै तन विदारै, वैर जो न तहाँ धरै ॥
तैं करम पूरव किये खोटे, सहै क्यों नहिं जीयरा ।
अति क्रोध-अगनि बुझाय प्रानी, साम्य जल ले सीयरा ॥

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमाधर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

मान महाविषरूप, करहि नीच-गति जगतमें ।
कोमल सुधा अनूप, सुख पावै प्रानी सदा ॥

उत्तम मार्दव-गुन मन माना, मान करनकौ कौन ठिकाना ।
वस्यो निगोद माहितैं आया, दमरी रूकन भाग बिकाया ॥
रूकन विकाया भाग-वशतैं, देव इकइंद्री भया ।
उत्तम मुआ चांडाल हूवा, भूप कीड़ोंमें गया ॥
जीतव्य जोवन धन गुमान, कहा करैं जल-बुदबुदा ।
करि विनय बहु-गुन बड़े जनकी, ज्ञानका पावै उदा ॥

ॐ ह्रीं उत्तममार्दवधर्माङ्गाय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

कपट न कीजै कोय, चोरनके पुर ना बसै ।
सरल सुभावी होय, ताके घर बहु संपदा ॥
उत्तम आर्जव-रीति बखानी, रंचक दगा बहुत दुखदानी ।
मनमें हो सो बचन उचरिये, बचन होय सो तनसौं करिये ॥
करिये सरल तिहुँ जोग अपने, देख निरमल आरसी ।
मुख करै जैसा लखै तैसा, कपट-प्रीति अंगारसी ॥
नहिं लहै लछमी अधिक छल करि, करम-बंध-विशेषता ।
भय त्यागि दूध बिलाव पीवै, आपदा नहिं देखता ॥
[ॐ ह्रीं उत्तमार्जवधर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।]

कठिन वचन मति बोल, पर-निंदा अरु झूठ तज ।
सांच जवाहर खोल, सतवादी जगमें सुखी ॥
उत्तम सत्य-बरत पालीजै, पर-विश्वासघात नहिं कीजै ।
साँचे झूठे मानुष देखो, आपन पूत स्वपास न पेखो ॥
पेखो तिहायत पुरुष साँचेको दरब सब दीजिये ।
मुनिराज-श्रावककी प्रतिष्ठा साँच गुण लख लीजिये ॥
ऊँचे सिंहासन बैठि वसु नृप, धरमका भूपति भया ।
बच झूठसेती नरक पहुँचा, सुरगमें नारद गया ॥
[ॐ ह्रीं उत्तमसत्यधर्माङ्गाय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।]

धरि हिरदै संतोष, करहु तपस्या देहसों ।
शौच सदा निरदोष, धरम बड़ो संसारमें ॥

उत्तम शौच सर्व जग जाना, लोभ पापको बाप बखाना।
आशा-पास महा दुखदानी, सुख पावै संतोषी प्रानी॥
प्रानी सदा शुचि शील जप तप, ज्ञान ध्यान प्रभावतैं।
नित गंग जमुन समुद्र न्हाये, अशुचि-दोष सुभावतैं॥
ऊपर अमल मल भरयो भीतर, कौन विधि घट शुचि कहै।
बहु देह मैली सुगुन-थैली, शौच-गुन साधू लहै॥
[ॐ ह्रीं उत्तमशौचधर्माङ्गाय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।]

काय छहों प्रतिपाल, पंचेंद्री मन वश करो।
संजम-रतन संभाल, विषय चोर बहु फिरत हैं॥

उत्तम संजम गहु मन मेरे, भव-भवके भाजैं अघ तेरे।
सुरग-नरक-पशुगतिमें नाहीं, आलस-हरन करन सुख ठाहीं॥
ठाहीं पृथी जल आग मारुत, रूख त्रस करुना धरो।
सपरसन रसना घ्रान नैना, कान मन सब वश करो॥
जिस विना नहिं जिनराज सीझे, तू रुल्यो जग-कीचमें।
इक घरी मत विसरो करो नित, आव जम-मुख बीचमें॥
[ॐ ह्रीं उत्तमसंयमधर्माङ्गाय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।]

तप चाहैं सुरराय, करम-सिखरको वज्र है।
द्वादशविधि सुखदाय, क्यों न करै निज सकति सम॥

उत्तम तप सबमाहिं बखाना, करम-शैलको वज्र-समाना।
वस्यो अनादि-निगोद-मँझारा, भू-विकलत्रय-पशु-तन धारा॥

धारा मनुष तन महादुर्लभ, सुकुल आव निरोगता।
श्रीजैनवानी तत्त्वज्ञानी, भई विषय-पयोगता॥
अति महा दुरलभ त्याग विषय, कषाय जो तप आदरैं।
नर-भव अनूपम कनक घरपर, मणिमयी कलसा धरैं॥
[ॐ ह्रीं उत्तमतपोधर्माङ्गाय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।]

दान चार परकार, चार संघको दीजिए।
धन विजुली उनहार, नर-भव लाहो लीजिए॥

उत्तम त्याग कह्यो जग सारा, औषध शास्त्र अभय आहारा।
निहचै राग-द्वेष निरवारै, ज्ञाता दोनों दान संभारै॥
दोनों सँभारे कूप-जलसम, दरब घरमें परिनया।
निज हाथ दीजे साथ लीजे, खाय खोया बह गया॥
धनि साध शास्त्र अभय-दिवैया, त्याग राग विरोधको॥
विन दान श्रावक साध दोनों, लहैं नाहीं बोधको॥
[ॐ ह्रीं उत्तमत्यागधर्माङ्गाय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।]

परिग्रह चौविस भेद, त्याग करैं मुनिराज जी।
तिसना भाव उछेद, घटती जान घटाइए॥

उत्तम आकिंचन गुण जानो, परिग्रह-चिंता दुख ही मानो।
फाँस तनकसी तनमें सालै, चाह लंगोटीकी दुख भालै॥

भाले न समता सुख कभी नर, विना मुनि-मुद्रा धरैं।
धनि नगन पर तन-नगन ठाड़े, सुर असुर पायनि परैं।
घरमाहिं तिसना जो घटावै, रुचि नहीं संसारसौं।
बहु धन बुरा हू भला कहिये, लीन पर-उपगारसौं॥
[ॐ ह्रीं उत्तमाकिञ्चन्यधर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा]

शील-बाढ़ नौ राख, ब्रह्म-भाव अंतर लखो।
करि दोनों अभिलाख, करहु सफल नर-भव सदा॥
उत्तम ब्रह्मचर्य मन आनौ, माता बहिन सुता पहिचानौ।
सहैं वान-वरषा बहु सूरे, टिकै न नैन-वान लखि क्रूरे॥
क्रूरे तियाके अशुचि तनमें, काम-रोगी रति करैं।
बहु मृतक सड़हिं मसान माहीं, काग ज्यों चोंचैं भरैं॥
संसारमें विष-वेल नारी, तजि गये जोगीश्वरा।
'द्यानत' धरम दश पैंडि चढ़िकैं, शिव-महलमें पग धरा॥
[ॐ ह्रीं उत्तमब्रह्मचर्यधर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।]

समुच्चय-जयमाला

दोहा

दश लच्छन वंदौं सदा, मन-वांछित फलदाय।
कहौं आरती भारती, हमपर होहु सहाय॥

वेसरीछन्द

उत्तम छिमा जहाँ मन होई, अंतर-बाहिर शत्रु न कोई।
उत्तम मार्दव विनय प्रकासै, नानाभेद ज्ञान सब भासै॥

उत्तम आर्जव कपट मिटावै, दुरगति त्यागि सुगति उपजावै।
उत्तम सत्य-वचन मुख बोलै, सो प्रानी संसार न डोलै॥
उत्तम शौच लोभ-परिहारी, संतोषी गुण-रतन-भंडारी।
उत्तम संयम पालै ज्ञाता, नर-भव सफल करै ले साता॥
उत्तम तप निरवांछित पालै, सो नर करम-शत्रुको टालै।
उत्तम त्याग करै जो कोई, भोगभूमि-सुर-शिवसुख होई॥
उत्तम आकिंचन व्रत धारै, परम समाधि दशा विसतारै।
उत्तम ब्रह्मचर्य मन लावै, नर-सुर सहित मुकति-फल पावै॥

दोहा

करै करमकी निरजरा, भव पींजरा विनाश।
अजर अमर पदकों लहै, 'द्यानत' सुखकी राश॥

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमामार्दवार्जवशौचसत्यसंयमतपस्त्यागाकिंचन्य-ब्रह्मचर्यदशलक्षणधर्मेभ्यः पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

•

रत्नत्रय-पूजा

चहुँगति-फनि-विष-हरन-मणि, दुख-पावक-जल-धार।
शिव-सुख-सुधा-सरोवरी, सम्यक-त्रयी निहार॥

ॐ ह्रीं सम्यक्रत्नत्रयधर्म ! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं सम्यक्रत्नत्रयधर्म ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं सम्यक्रत्नत्रयधर्म ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्

अष्टक सोरठा

क्षीरोदधि उनहार, उज्ज्वल जल अति सोहनो ।
जनम-रोग निरवार, सम्यक रत्न-त्रय भजूँ ॥१॥

ॐ ह्रीं सम्यक्रत्नत्रयाय जन्मरोगविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।

चंदन-केसर गारि, परिमल-महा-सुरंग-मय ।
जनम-रोग निरवार, सम्यक रत्न-त्रय भजूँ ॥२॥

ॐ ह्रीं सम्यक्रत्नत्रयाय भवतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा ।

तंदुल अमल चितार, वासमती-सुखदासके ।
जनम-रोग निरवार, सम्यक रत्न-त्रय भजूँ ॥३॥

ॐ ह्रीं सम्यक्रत्नत्रयाय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ।

महकैं फूल अपार, अलि गुंजैं ज्यों थुति करैं ।
जनम-रोग निरवार, सम्यक रत्न-त्रय भजूँ ॥४॥

ॐ ह्रीं सम्यग्रत्नत्रयाय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ।

लाडू बहु विस्तार, चीकन मिष्ट सुगंधयुत ।
जनम-रोग निरवार, सम्यक रत्न-त्रय भजूँ ॥५॥

ॐ ह्रीं सम्यक्रत्नत्रयाय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

दीप रतनमय सार, जोत प्रकाशै जगतमैं।
जनम-रोग निरवार, सम्यक रत्नत्रय भजूँ ॥६॥

ॐ ह्रीं सम्यक्रत्नत्रयाय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

धूप सुवास विथार, चंदन अगर कपूरकी।
जनम-रोग निरवार, सम्यक रत्न-त्रय भजूँ ॥७॥

ॐ ह्रीं सम्यक्रत्नत्रयाय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

फल शोभा अधिकार, लौंग छुहारे जायफल।
जनम-रोग निरवार, सम्यक रत्न-त्रय भजूँ ॥८॥

ॐ ह्रीं सम्यक्रत्नत्रयाय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

आठ दरब निरधार, उत्तम सों उत्तम लिये।
जनम-रोग निरवार, सम्यक रत्न-त्रय भजूँ ॥९॥

ॐ ह्रीं सम्यक्रत्नत्रयाय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सम्यक दरशन ज्ञान, व्रत शिव-मग-तीनों मयी।
पार उतारन यान, 'द्यानत' पूजों व्रतसहित ॥१०॥

ॐ ह्रीं सम्यक्रत्नत्रयाय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सम्यग्दर्शन

दोहा

सिद्ध अष्ट-गुनमय प्रगट, मुक्त-जीव-सोपान ।
ज्ञान चरित जिहँ विन अफल, सम्यकदर्श प्रधान ।।

ॐ ह्रीं अष्टांगसम्यग्दर्शन ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् ।
ॐ ह्रीं अष्टांगसम्यग्दर्शन ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः ।
ॐ ह्रीं अष्टांगसम्यग्दर्शन ! अत्र मम सन्निहितं भव भव वषट् ।

सोरठा

नीर सुगंध अपार, त्रिषा हरै मल छय करै ।
सम्यकदर्शन सार, आठ अंग पूजौं सदा ।।१।।

ॐ ह्रीं अष्टांगसम्यग्दर्शनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।

जल केसर घनसार, ताप हरै सीतल करै ।
सम्यकदर्शन सार, आठ अंग पूजौं सदा ।।२।।

ॐ ह्रीं अष्टांगसम्यग्दर्शनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा ।

अछत अनूप निहार, दारिद नाशै सुख भरै ।
सम्यकदर्शन सार, आठ अंग पूजौं सदा ।।३।।

ॐ ह्रीं अष्टांगसम्यग्दर्शनाय अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ।

पहुप सुवास उदार, खेद हरै मन शुचि करै ।
सम्यकदर्शन सार, आठ अंग पूजौं सदा ।।४।।

ॐ ह्रीं अष्टांगसम्यग्दर्शनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ।

नेवज विविधि प्रकार, छुधा हरै थिरता करै।
सम्यकदर्शन सार, आठ अंग पूजौं सदा ॥५॥
ॐ ह्रीं अष्टांगसम्यग्दर्शनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दीप-ज्योति तम-हार, घट पट परकाशै महा।
सम्यकदर्शन सार, आठ अंग पूजौं सदा ॥६॥
ॐ ह्रीं अष्टांगसम्यग्दर्शनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

धूप घ्रान-सुखकार, रोग विघन जडता हरै।
सम्यकदर्शन सार, आठ अंग पूजौं सदा ॥८॥
ॐ ह्रीं अष्टांगसम्यग्दर्शनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

श्रीफल आदि विथार, निहचै सुर-शिव-फल करै।
सम्यकदर्शन सार, आठ अंग पूजौं सदा ॥८॥
ॐ ह्रीं अष्टांगसम्यग्दर्शनाय फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल गंधाक्षत चारु, दीप धूप फल फूल चरु।
सम्यकदर्शन सार, आठ अंग पूजौं सदा ॥ ९ ॥
ॐ ह्रीं अष्टांगसम्यग्दर्शनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

दोहा

आप आप निहचै लखै, तत्त्व-प्रीति व्योहार।
रहित दोष पच्चीस हैं, सहित अष्ट गुन सार ॥१॥

सम्यक्‌दरशन-रतन गहीजे, जिन-वचमैं संदेह न कीजे।
इह भव विभव-चाह दुखदानी, पर-भव भोग चहै मत प्रानी ॥
प्रानी गिलान न करि अशुचि लखि, धरम गुरु प्रभु परखिये।
पर-दोष ढकिये धरम डिगतेको सुथिर कर हरखिये।
चहुँ संघको वात्सल्य कीजै, धरमकी परभावना।
गुन आठसौं गुन आठ लहिकैं, इहां फेर न आवना।

ॐ ह्रीं अष्टांगसहितपंचविंशतिदोषरहितसम्यग्दर्शनाय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सम्यग्ज्ञान

दोहा

पंच भेद जाके प्रगट, ज्ञेय-प्रकाशन-भान।
मोह-तपन-हर-चंद्रमा, सोई सम्यकज्ञान ॥ १ ॥

ॐ ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञान ! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञान ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञान ! अत्र मम सन्निहितं भव भव वषट्।

सोरठा

नीर सुगंध अपार, तृषा हरै मल छय करै।
सम्यकज्ञान विचार, आठ भेद पूजौं सदा ॥१॥

ओं ह्रीं अष्टविधसम्यकज्ञानाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल केसर घनसार, ताप हरै शीतल करै।
सम्यकज्ञान विचार, आठ-भेद पूजौं सदा ॥२॥

ॐ ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

अछत अनूप निहार, दारिद नाशै सुख भरे ।
सम्यकज्ञान विचार, आठ भेद पूजौं सदा ॥३॥
ओं ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ।

पहुप सुवास उदार, खेद हरै मन शुचि करै ।
सम्यकज्ञान विचार, आठ भेद पूजौं सदा ॥४॥
ॐ ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ।

नेवज विविध प्रकार, छुधा हरै थिरता करै ।
सम्यकज्ञान विचार, आठ भेद पूजौं सदा ॥५॥
ॐ ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

दीप-जोति तम-हार, घट पट परकाशै महा ।
सम्यकज्ञान विचार, आठ भेद पूजौं सदा ॥६॥
ॐ ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा ।

धूप घ्रान-सुखकार, रोग विघन जडता हरै ।
सम्यकज्ञान विचार, आठ भेद पूजौं सदा ॥७॥
ॐ ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ।

श्रीफल आदि विथार, निहचै सुर-शिव-फल करै ।
सम्यकज्ञान विचार, आठ भेद पूजौं सदा ॥८॥
ॐ ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय फलं निर्वपामीति स्वाहा ।

जल गंधाक्षत चारु, दीप धूप फल फूल चरु ।
सम्यकज्ञान विचार, आठ भेद पूजौं सदा ॥९॥
ॐ ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

जयमाला

दोहा

आप आप जानै नियत, ग्रंथ पठन व्योहार ।
संसय विभ्रम मोह विन, अष्ट अंग गुनकार ॥
सम्यकज्ञान-रतन मन भाया, आगम तीजा नैन बताया ।
अच्छर शुद्ध अर्थ पहिचानो, अच्छर अरथ उभय सँग जानो॥
जानो सुकाल-पठन जिनागम, नाम गुरु न छिपाइये ।
तप रीति गहि बहु मौन देकैं, विनय गुन चित लाइये ॥
ये आठ भेद करम उछेदक, ज्ञान-दर्पन देखना ।
इस ज्ञानहीसों भरत सीझा, और सब पट पेखना ॥
ॐ ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय पूर्णार्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

सम्यक्-चारित्र

दोहा

विषय-रोग औषध महा, दव-कषाय-जल-धार ।
तीर्थंकर जाको धरैं, सम्यकचारित सार ॥

ॐ ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् ।
ॐ ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः ।
ॐ ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्र ! अत्र मम सन्निहितं भव भव वषट् ।

सोरठा

नीर सुगन्ध अपार, तृषा हरै मल छय करै।
सम्यकचारित सार, तेरहविध पूजौं सदा ॥

ॐ ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल केशर घनसार, ताप हरै शीतल करै।
सम्यकचारित सार, तेरहविध पूजौं सदा ॥

ॐ ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

अछत अनूप निहार, दारिद नाशै सुख भरै।
सम्यकचारित सार, तेरहविध पूजौं सदा ॥

ॐ ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

पहुप सुवास उदार, खेद हरै मन शुचि करै।
सम्यकचारित सार, तेरहविध पूजौं सदा ॥

ॐ ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

नेवज विविध प्रकार, छुधा हरै थिरता करै।
सम्यकचारित सार, तेरहविध पूजौं सदा ॥

ॐ ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दीप-जोति तम-हार, घट पट परकाशै महां।
सम्यकचारित सार, तेरहविध पूजौं सदा ॥

ॐ ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

धूप घ्रान-सुखकार, रोग विघन जडता हरै।
सम्यकचारित सार, तेरहविध पूजौं सदा ॥

ॐ ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

श्रीफल आदि विथार, निहचै सुर-शिव-फल करै ।
सम्यकचारित सार, तेरहविध पूजौं सदा ॥
ॐ ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय फलं निर्वपामीति स्वाहा ।

जल गंधाक्षत चारु, दीप धूप फल फूल चरु।
सम्यकचारित सार, तेरहविध पूजौं सदा ॥
ॐ ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

जयमाला

दोहा

आप आप थिर नियत नय, तप संजम व्योहार ।
स्व-पर-दया दोनों लिये, तेरहविध दुखहार ॥

चौपाई मिश्रित गीताछंद

सम्यकचारित रतन सँभालौ, पाँच पाप तजिके व्रत पालौ ।
पंच समिति त्रय गुपति गहीजे, नर-भव सफल करहु तन छीजे ॥
छीजे सदा तनको जतन यह एक संजम पालिये ।
बहु रुल्यो नरक-निगोदमाहीं, विष-कषायनि टालिये ॥
शुभ-करम-जोग सुघाट आयो, पार हो दिन जात है ।
'द्यानत' धरमकी नाव बैठो, शिव-पुरी कुशलात है ॥२॥
ॐ ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय महार्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

समुच्चय-जयमाला

दोहा

सम्यकदरशन-ज्ञान-व्रत, इन विन मुकति न होय ।
अन्ध पङ्गु अरु आलसी, जुदे जलैं दव-लोय ॥१॥

चौपाई १६ मात्रा

जापै ध्यान सुथिर बन आवै, ताके करम-बंध कट जावै ।
तासों शिव-तिय प्रीति बढ़ावै, जो सम्यक रतन-त्रय ध्यावै ॥
ताको चहुँ गतिके दुख नाहीं, सो न परै भव-सागर माहीं ।
जनम-जरा-मृत दोष मिटावै, जो सम्यक रतन-त्रय ध्यावै ॥
सोई दश लच्छनको साधै, सो सोलह कारण आराधै ।
सो परमातमपद उपजावै, जो सम्यक रतन-त्रय ध्यावै ॥
सोई शक्र-चक्रिपद लेई, तीन लोकके सुख विलसेई ।
सो रागादिक भाव बहावै, जो सम्यक रतन-त्रय ध्यावै ॥
सोई लोकालोक निहारै, परमानंददशा विसतारै ।
आप तिरै औरन तिरवावै, जो सम्यक रतन-त्रय ध्यावै ॥
एक स्वरूप-प्रकाश निज, वचन कह्यो नहिं जाय ।
तीन भेद व्योहार सब, 'द्यानत'को सुखदाय ॥७॥

ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनसम्यग्ज्ञानसम्यक्चारित्राय महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

स्वयम्भू-स्तोत्र

राजविषै जुगलनि सुख कियो, राज त्याग भुवि शिवपद लियो।
स्वयंबोध स्वंभू भगवान, बंदौ आदिनाथ गुणखान ॥
इंद्र छीर-सागर-जल लाय, मेरु न्हवाये गाय बजाय।
मदन-विनाशक सुख करतार, बंदौं अजित अजित-पदकार ॥
शुकल ध्यानकरि करम विनाशि, घाति अघाति सकल दुखराशि
लह्यो मुकतिपद सुख अधिकार, बंदौं सम्भव भव-दुख टार ॥
माता पच्छिम रयन मँझार, सुपने सोलह देखे सार।
भूप पूछि फल सुनि हरषाय, बंदौं अभिनन्दन मन लाय ॥
सब कुवादवादी सरदार, जीते स्यादवाद-धुनि धार।
जैन-धरम-परकाशक स्वाम, सुमतिदेव-पद करहुँ प्रनाम ॥
गर्भ अगाऊ धनपति आय, करी नगर-शोभा अधिकाय।
बरसे रतन पंचदश मास, नमौं पदमप्रभु सुखकी रास ॥
इंद फनिंद नरिंद त्रिकाल, बानी सुनि सुनि होहिं खुस्याल।
द्वादश सभा ज्ञान-दातार, नमौं सुपारसनाथ निहार ॥
सुगुन छियालिस हैं तुम माहिं, दोष अठारह कोऊ नाहिं।
मोह-महातम-नाशक दीप, नमौं चन्द्रप्रभ राख समीप ॥
द्वादशविध तप करम विनाश, तेरह भेद चरित परकाश।
निज अनिच्छ भवि इच्छक दान, बंदौं पहुपदंत मन आन ॥

भवि-सुखदाय सुरगतैं आय, दशविध धरम कह्यो जिनराय ।
आप समान सबनि सुख देह, वंदौं शीतल धर्म-सनेह ॥
समता-सुधा कोप-विष-नाश, द्वादशांग वानी परकाश ।
चार संघ-आनँद-दातार, नमौं श्रियांस जिनेश्वर सार ॥
रतनत्रय चिर मुकुट विशाल, सोभै कंठ सुगुन मनि-माल ।
मुक्ति-नार-भरता भगवान, वासुपूज्य वंदौं धर ध्यान ॥
परम समाधि-स्वरूप जिनेश, ज्ञानी ध्यानी हित-उपदेश ।
कर्म नाशि शिव-सुख-विलसंत, वंदौ विमलनाथ भगवंत ॥
अंतर बाहिर परिगह डारि, परम दिगंबर-व्रतको धारि ।
सर्व जीव-हित-राह दिखाय, नमों अनंत वचन मन लाय ॥
सात तत्त्व पंचासतिकाय, अरथ नवों छ दरब बहु भाय ।
लोक अलोक सकल परकास, वंदौं धर्मनाथ अविनाश ॥
पंचम चक्रवरति निधि भोग, कामदेव द्वादशम मनोग ।
शांतिकरन सोलम जिनराय, शांतिनाथ वंदौं हरखाय ॥
बहु थुति करे हरष नहिं होय, निंदे दोष गहैं नहिं कोय ।
शीलवान परब्रह्मस्वरूप, वंदौं कुन्थुनाथ शिव-भूप ॥
द्वादश गण पूजैं सुखदाय, थुति वंदना करैं अधिकाय ।
जाकी निज-थुति कबहुँ न होय, वंदौं अर-जिनवर-पद दोय ॥
पर-भव रतनत्रय-अनुराग, इह भव व्याह-समय वैराग ।
बाल-ब्रह्म-पूरन-व्रत धार, वंदौं मल्लिनाथ जिनसार ॥

विन उपदेश स्वयं वैराग, थुति लोकांत करै पग लाग ।
नमः सिद्ध कहि सब व्रत लेहिं, वंदौं मुनिसुव्रत व्रत देहिं ॥
श्रावक विद्यावंत निहार, भगति-भाव सों दियो अहार ।
बरसी रतन-राशि ततकाल, वंदौं नमिप्रभु दीन-दयाल ॥
सब जीवनकी बंदी छोर, राग-रोष द्वै बंधन तोर ।
रजमति तजि शिव-तियसों मिले, नेमिनाथ वंदौं सुखनिले ॥
दैत्य कियो उपसर्ग अपार, ध्यान देखि आयो फनिधार ।
गयो कमठ शठ मुख कर श्याम, नमों मेरुसम पारसस्वाम ॥
भव-सागरतैं जीव अपार, धरम-पोतमैं धरे निहार ।
डूबत काढ़े दया विचार, वर्द्धमान वंदौं बहुवार ॥

दोहा

चौबीसौं पद-कमल-जुग, बन्दौं मन वच काय ।
'द्यानत' पढ़ै सुनै सदा, सो प्रभु क्यों न सहाय ॥

[खण्ड ३]

तीर्थङ्कर-पूजा [हिन्दी]

श्रीआदिनाथजिन-पूजा

अडिल्ल

परम पूज्य वृषभेष स्वयंभूदेव जू,
पिता नाभि मरुदेवि करैं सुर सेव जू।
कनक-वरण तन तुङ्ग धनुष पन-शत तनों,
कृपा-सिंधु इत आइ तिष्ठ ममदुख हनो॥

ॐ ह्रीं श्रीआदिनाथजिन अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्रीआदिनाथजिन अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं श्रीआदिनाथजिन अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

अष्टक

छंद द्रुतविलंबित तथा सुन्दरी

हिमवनोद्भव-वारि सुधारिकैं, जजत हों गुन-बोध उचारिकैं।
परम-भाव सुखोदधि दीजिए, जनम मृत्यु जरा छय कीजिए॥

ॐ ह्रीं श्रीवृषभदेवजिनेन्द्राय जन्ममृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

मलय-चन्दन दाह-निकंदनं, घसि उभै करमें करि वंदनं।
जजत हों प्रशमाश्रम दीजिए, तपत ताप त्रिधा छै कीजिए॥

ॐ ह्रीं श्रीवृषभदेवजिनेन्द्राय भवतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

अमल तंदुल खण्ड-विवर्जितं, सित निशेश-हिमामिय-तर्जितं।
जजत हों तसु पुंज धरायजी, अखय संपति द्यो जिनरायजी॥

ॐ ह्रीं श्रीवृषभजिनेन्द्रायाऽक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

कमल चम्पक केतकि लीजिए, मदन-भंजन भेंट धरीजिए।
परम शील महा सुखदाय हैं, समर-सूल निमूल नशाय हैं॥

ॐ ह्रीं श्रीवृषभदेवजिनेन्द्राय कामविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

सरस मोदन मोदक लीजिए, हरन भूख जिनेश जजीजिए।
सकल आकुल-अन्तक-हेतु हैं, अतुल शांत-सुधारस देतु हैं॥

ॐ ह्रीं श्रीवृषभदेवजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

निविड मोह-महातम छाइयो, स्व-पर-भेद न मोहि लखाइयो।
हरन-कारन दीपक तासके, जजत हों पद केवल भासके॥

ॐ ह्रीं श्रीवृषभदेवजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

अगर-चन्दन आदिक लेयकें, परम पावन गंध सुखेयकें।
अगनि-संग जरै मिस धूमके, सकल कर्म उड़े यह घूमके॥

ॐ ह्रीं श्रीवृषभदेवजिनेन्द्रायाऽष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

सुरस पक्क मनोहर पावने, विविध लै फल पूज रचावने ।
त्रिजगनाथ कृपा अब कीजिए, हमहि मोच्च महाफल दीजिए।।

ॐ ह्रीं श्रीवृषभदेवजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा ।

जल-फलादि समस्त मिलायकैं, जजत हों पद मंगल गायके।
भगत-वत्सल दीन-दयालजी, करहु मोहि सुखी लखि हालजी।।

ॐ ह्रीं श्रीवृषभदेवजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

पञ्चकल्याणक

द्रुतविलम्बित तथा सुन्दरी

असित दोज अषाढ़ सुहावनी, गरभ-मंगलको दिन पावनी ।
हरि-सची पितु-मातहिं सेवही, जजत हैं हम श्रीजिनदेव ही ।।

ॐ ह्रीं आषाढकृष्णद्वितीयादिने गर्भमङ्गलप्राप्ताय श्रीवृषभदेवाय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

असित चैत सुनौमि सुहाइयो, जनम-मंगल ता दिन पाइयो।
हरि महागिरिपै जजियो तबै, हम जजैं पद-पंकजको अबै ।।

ॐ ह्रीं चैत्रकृष्णनवमीदिने जन्ममङ्गलप्राप्ताय श्रीवृषभनाथाय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

असित नौमि सुचैत धरे सही, तप विशुद्ध सबै समता गही ।
निज सुधारससों भर लाइयो, हम जजैं पद अर्घ चढ़ाइयो ।।

ॐ ह्रीं चैत्रकृष्णनवमीदिने दीक्षामङ्गलप्राप्ताय श्रीवृषभनाथाय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

असित फागुन ग्यारसि सोहनों, परम केवलज्ञान जग्यो भनो।
हरि-समूह जजैं तहँ आइकैं, हम जजैं इत मंगल गाइकैं ॥

ॐ ह्रीं फाल्गुनकृष्णैकादश्यां ज्ञानसाम्राज्यमङ्गलप्राप्ताय श्री-वृषभनाथाय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

असित चौदसि माघ विराजई, परम मोक्ष सुमंगल साजई।
हरि-समूह जजे कैलासजी, हम जजैं अति धार हुलासजी ॥

ॐ ह्रीं माघकृष्णचतुर्दश्यां मोक्षमङ्गलप्राप्ताय श्रीवृषभनाथाय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

घत्तानन्द

जय जय जिन-चंदा आदि-जिनंदा, हनि भव-फंदा-कंदा जू।
वासव-शत-वंदा धरि आनंदा, ज्ञान अमंदा नंदा जू ॥

छन्द मोतियदाम

त्रिलोक-हितंकर पूरन पर्म, प्रजापति विष्णु चिदातम धर्म।
जतीसुर ब्रह्म-विदांवर बुद्ध, वृषंक अशंक क्रियांबुधि शुद्ध ॥
जबै गर्भागम-मंगल जान, तबै हरि हर्ष हिये अति आन।
पिता-जननीपद सेव करेय, अनेक प्रकार उमंग भरेय ॥
जये जब ही तब ही हरि आय, गिरींद्रविषै किय न्हौंन सुजाय।
नियोग समस्त किये तित सार, सुलाय प्रभू पुनि राज-अगार ॥
पिता-कर सौंपि कियो तित नाट, अमंद अनंद समेत विराट।
सुथान पयान कियो फिर इंद, इहां सुर-सेव करैं जिन-चंद ॥

किये चिरकाल सुखास्रित राज, प्रजा सब आनंदको तित साज ।
सुलिप्त सुभोगनिमें लखि जोग, कियो हरिने यह उत्तम योग ॥
निलंजन नाच रच्यो तुम पास, नवों रस-पूरित भाव विलास ।
बजै मिरदंग द्रमं द्रम जोर, चलै पग झारि झनांझन झोर ॥
घनाघन घंट करै धुनि मिष्ट, बजै मुहचंग सुरान्वित पुष्ट ।
खड़ी छिन पास छिनहि आकाश, लघू छिन दीरघ आदि विलास ॥
ततच्छन ताहि विलै अविलोय, भये भवतैं भय-भीत बहोय ।
सुभावत भावन बारह भाय, तहाँ दिव-ब्रह्म-ऋषीश्वर आय ॥
प्रबोध प्रभू सुगये निज धाम, तबै हरि आय रचो शिवकाम ।
कियो कचलोंच पिराग-अरन्य, चतुर्थम ज्ञान लह्यो जग-धन्य ॥
धरौ तब योग छ मास प्रमान, दियो शिरियंस तिन्हैं इख दान ।
भयो जब केवलज्ञान जिनेंद्र, समौसृत-ठाठ रच्यो सु धनेंद्र ॥
तहाँ वृषतत्त्व प्रकाशि अशेष, कियो फिर निर्भय-थान प्रवेश ।
अनंत गुनातम श्रीसुख-राश, तुम्हें नित भव्य नमैं शिव-आश ॥

घत्तानन्द

यह अरज हमारी, सुनि त्रिपुरारी, जनम जरा मृति दूर करो ।
शिव-संपति दीजे, ढील न कीजे, निज लख लीजे कृपा धरो ॥

ॐ ह्रीं वृषभदेवजिनेन्द्राय महार्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

छन्द आर्या

जो ऋषभेश्वर पूजै, मन-वच तन भाव शुद्ध कर प्रानी ।
सो पावै निश्चैसौं, भुक्ती औ मुक्ति सार सुख-थानी ॥

इत्याशीर्वादः, पुष्पांजलिं क्षिपामि ।

श्री चन्द्रप्रभजिन-पूजा

[कविवर वृन्दावनजी]

छप्पय

चारु चरन आचरन, चरन चित-हरन चिहनचर ।
चंद चंद-तन चरित, चंद-थल चहत चतुर नर ॥
चतुक चंड चकचूरि, चारि चिद्‌चक्र गुनाकर ।
चंचल चलित सुरेश, चूल-नुत चक्र धनुरहर ॥
चर-अचर-हितू तारन-तरन, सुनत चहकि चिरनंद शुचि ।
जिन-चंद-चरन चरच्यो चहत, चित-चकोर नचि रचि रुचि ॥

दोहा

धनुष डेढसौ तुंग तन, महासेन-नृप-नंद ।
मातु लच्मन-उर जये, थापों चंद-जिनंद ॥

ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् ।
ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः ।
ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् ।

अष्टक

गंगा-हृद-निरमल-नीर, हाटक-भृंग भरा ।
तुम चरन जजों वरवीर, मेटो जनम-जरा ॥
श्रीचंदनाथ दुति चंद, चरनन चंद लगे ।
मन वच तन जजत अमंद, आतम-जोति जगे ॥१॥

ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।

श्रीखंड कपूर सुचंग, केशर-रंग भरी।
घसि प्रासुक-जलके संग, भव-आताप हरी॥
श्रीचंदनाथ दुति चंद, चरनन चंद लगे।
मन वच तन जजत अमंद, आतम-जोति जगे॥

ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय भवतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

तंदुल सित सोम-समान, सम लय अनियारे।
दिय पुंज मनोहर आन, तुम पदतर प्यारे॥श्रीचंदनाथ०॥

ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

सुर-द्रुमके सुमन सुरंग, गंधित अलि आवै।
तासों पद पूजत चंग, काम-विथा जावै॥श्रीचंदनाथ०॥

ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय कामवाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

नेवज नाना-परकार, इंद्रिय-बलकारी।
सो लै पद पूजों सार, आकुलता हारी॥श्रीचंदनाथ०॥

ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तम-भंजन दीप सँवार, तुम ढिंग धारतु हों।
मम तिमिर-मोह निरवार, यह गुन धारतु हों॥श्रीचंदनाथ०॥

ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

दश गंध हुताशनमाहिं, हे प्रभु खेवतु हों।
मम करम दुष्ट जरि जाँहि, यातें सेवतु हों ।।श्रीचंदनाथ०।।

ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

अति उत्तम फल सुमंगाय, तुम गुन गावतु हों।
पूजों तन मन हरषाय, विघन नशावतु हों ।।श्रीचंदनाथ०।।

ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

सजि आठों दरब पुनीत, आठों अंग नमों।
पूजों अष्टम जिन मीत, अष्टम अवनि गमों ।।श्रीचंदनाथ०।।

ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंचकल्याणक

तोटक वर्ण १२

कलि पंचम चैत सुहात अली, गरभागम-मंगल मोद भली।
हरि हर्षित पूजत मातु पिता, हम ध्यावत पावत शर्म सिता।।

ॐ ह्रीं चैत्रकृष्णपञ्चम्यां गर्भमङ्गलप्राप्ताय श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

कलि पौष इकादशि जन्म लयो, तब लोकविषै सुख-थोक भयो।
सुर-ईश जजें गिर-शीश तबै, हम पूजत हैं नुत शीश अबै।।

ॐ ह्रीं पौषकृष्णैकादश्यां जन्ममङ्गलप्राप्ताय श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

तप दुद्धर श्रीधर आप धरा, कलि-पौष इग्यारसि पर्व वरा।
निज-ध्यानविषै लवलीन भये, धनि सो दिन पूजत विघ्न गये ॥

ॐ ह्रीं पौषकृष्णैकादश्यां निःक्रमणमहोत्सवमण्डिताय श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

वर केवल-भानु उद्योत कियो, तिहुँ लोकतणों भ्रम मेट दियो ।
कलि फाल्गुन-सप्तमि इन्द्र जजे, हम पूजहिं सर्व कलंक भजे ॥

ॐ ह्रीं फाल्गुनकृष्णसप्तम्यां केवलज्ञानमण्डिताय श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

सित फाल्गुण सप्तमि मुक्ति गये, गुणवंत अनंत अबाध भये ।
हरि आय जजें तित मोद धरे, हम पूजत ही सब पाप हरे ॥

ॐ ह्रीं फाल्गुनशुक्लसप्तम्यां मोक्षमङ्गलमण्डिताय श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

जयमाला

दोहा

हे मृगांक-अंकित-चरण, तुम गुण अगम अपार ।
गणधरसे नहिं पार लहिं, तौ को वरनत सार ॥१॥
पै तुम भगति हिये मम, प्रेरै अति उमगाय ।
तातै गाऊं सुगुण तुम, तुम ही होउ सहाय ॥२॥

छन्द पद्धरी १६ मात्रा

जयचंद्र जिनेंद्र दया-निधान, भव-कानन-हानन-दव-प्रमान ।
जय गरभ-जनम-मंगल दिनन्द, भवि जीव-विकाशन शर्म-कंद ॥

दश लक्ष पूर्वकी आयु पाय, मन-वांछित सुख भोगे जिनाय।
लखि कारण ह्वै जगतैं उदास, चिंत्यो अनुप्रेक्षा सुख-निवास॥

तित लौकांतिक बोध्यो नियोग, हरि शिविका सजि धरियो अभोग
तापै तुम चढ़ि जिनचंदराय, ता छिनकी शोभा को कहाय॥

जिन अंग सेत सित चमर ढार, सित छत्र शीस गल-गुलकहार।
सित रतन-जड़ित भूषण विचित्र, सित चंद्र-चरण चरचैं पवित्र।

सित तन-द्युति नाकाधीश आप, सित शिविका कांधे धरि सुचाप
सित सुजस सुरेश नरेश सर्व, सित चितमें चिंतत जात पर्व॥

सित चंद-नगरतैं निकसि नाथ, सित वनमें पहुँचे सकल साथ।
सित शिला-शिरोमणि स्वच्छ छांह, सित तप तित धारौ तुम जिनाह

सित पयको पारण परम सार, सित चंद्रदत्त दीनों उदार।
सित करमें सो पय-धार देत, मानो बाँधत भव-सिंधु-सेत॥

मानो सुपुण्य-धारा प्रतच्छ, तित अचरज पन सुर किय ततच्छ।
फिर जाय गहन सित तप करंत, सित केवल-ज्योति जग्यो अनंत॥

लहि समवसरण-रचना महान, जाके देखत सब पाप-हान।
जहँ तरु अशोक शोभै उतंग, सब शोकतनो चूरै प्रसंग॥

सुर सुमन-वृष्टि नभतैं सुहात, मनु मन्मथ तज हथियार जात।
वानी जिन-मुखसौं खिरत सार, मनु तत्त्व-प्रकाशन मुकर धार॥

जहँ चौंसठ चमर अमर ढुरंत, मनु सुजस मेघ झरि लगिय तंत ।
सिंहासन है जहँ कमलजुक्त, मनु शिव-सरवरको कमल शुक्त ॥
दुंदुभि जित बाजत मधुर सार, मनु करम-जीतको है नगार ।
सिर छत्र फिरै त्रय श्वेत-वर्ण, मनु रतन तीन त्रय-ताप-हर्ण ॥
तन-प्रभातनों मंडल सुहात, भवि देखत निज-भव सात सात ।
मनु दर्पण-द्युति यह जगमगाय, भवि-जन भव-मुख देखत सुआय ।
इत्यादि विभूति अनेक जान, बाहिज दीसत महिमा महान ।
ताको वरणत नहिं लहत पार, तौ अंतरंग को कहै सार ॥
अनअंत गुणनि-जुत करि विहार, धरमोपदेश दे भव्य तार ।
फिर जोग-निरोधि अघाति हान, सम्मेदथकी लिय मुकति-थान ॥
वृन्दावन वंदत शीश नाय, तुम जानत हो मम उर जु भाय ।
ताते का कहौं सु बार बार, मन-वांछित कारज सार सार ॥

छंद घत्तानंद

जय चंद-जिनंदा आनँद-कंदा, भव-भय-भंजन राजै है ।
रागादिक-द्वंदा हरि सब फंदा, मुकतिमांहि थिति साजै है ॥

ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय पूर्णार्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

छंद चौबोला

आठौं दरब मिलाय गाय गुण, जो भवि-जन जिन चंद जजैं ।
ताके भव भवके अघ भाजैं, मुक्तिसार सुख ताहि सजैं ॥
जमके त्रास मिटैं सब ताके, सकल अमंगल दूर भजैं ।
वृन्दावन ऐसो लखि पूजत, जातैं शिवपुरि राज रजैं ॥

[इत्याशीर्वादः । परिपुष्पाञ्जलिं क्षिपामि ।]

श्रीशीतलनाथजिनपूजा

[कविवर मनरंगलालजी]

स्थापना—गीताछंद

है नगर भद्दिल भूप द्रढ़रथ सुष्टु नंदा ता त्रिया,
तजि अचुत-दिवि अभिराम शीतलनाथ सुत ताके प्रिया।
इच्वाकुवंशी अंक श्रीतरु हेम-वरण शरीर है,
धनु नवे उन्नत पूर्व लख इक आयु सुभग परी रहे ॥

सोरठा

सो शीतल सुख-कंद, तजि परिग्रह शिव-लोक गे।
छूट गयो जग-धंद, करियत तौ आह्वान अब ॥

ॐ ह्रीं श्रीशीतलनाथजिनेन्द्र ! अत्रावतरावतर संवौषट्।

ॐ ह्रीं श्रीशीतलनाथजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः ।

ॐ ह्रीं श्रीशीतलनाथजिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

नित तृषा-पीड़ा करत अधिकी दाव अबके पाइयो,
शुभ कुंभ कंचन-जड़ित गंगा-नीर भरि ले आइयो।
तुम नाथ शीतल करो शीतल मोहि भवकी तापसों,
मैं जजौं युग पद जोरि करि मो काज सरसी आप सों ॥

ॐ ह्रीं श्रीशीतलनाथजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युरोगविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

जाकी महकसों नीम आदिक होत चन्दन जानिये,
सो सूक्ष्म घिसके मिला केसर भरि कटोरा आनिये।

तुम नाम शीतल करो शीतल मोहि भवकी तापसों,
मैं जजौं युग पद जोरि करि मो काज सरसी आप सों ॥

ॐ ह्रीं श्रीशीतलनाथजिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा ।

मैं जीव संसारी भयो अरु मरयो ताको पार ना,
प्रभु पास अक्षत ल्याय धारे अखय-पदके कारना ।
तुम नाथ शीतल करो शीतल मोहि भवकी तापसों,
मैं जजौं युग पद जोरि करि मो काज सरसी आप सों ॥

ॐ ह्रीं श्रीशीतलनाथजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा ।

इन मदन मोरी सकति थोरी रह्यो सब जग छायके,
ता नाश कारन सुमन ल्यायो महाशुद्ध चुनायके ।
तुम नाथ शीतल करो शीतल मोहि भवकी तापसों,
मैं जजौं युग पद जोरि करि मो काज सरसी आप सों ॥

ॐ ह्रीं श्रीशीतलनाथजिनेन्द्राय कामवाणविनाशनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ।

क्षुध-रोग मेरे पिंड लागो देत मांगे ना घरी,
ताके नसावन काज स्वामी ले चरू आगे धरी ।
तुम नाथ शीतल करो शीतल मोहि भवकी तापसों,
मैं जजौं युग पद जोरि करि मो काज सरसी आप सों ॥

ॐ ह्रीं श्रीशीतलनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

अज्ञान तिमिर महान अन्धकार करि राखो सबै,
निज पर सुभेद पिछान कारण दीप ल्यायो हूँ अबै।
तुम नाथ शीतल करो शीतल मोहि भवकी तापसों,
मैं जजौं युग पद जोरि करि मो काज सरसी आप सों॥

ॐ ह्रीं श्रीशीतलनाथजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

जे अष्ट कर्म महान अतिबल घेरि मो चेरा कियो,
तिन केर नाश विचारि के ले धूप प्रभु ढिंग खेपियो।
तुम नाथ शीतल करो शीतल मोहि भवकी तापसों,
मैं जजौं युग पद जोरि करि मो काज सरसी आप सों॥

ॐ ह्रीं श्रीशीतलनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

शुभ मोक्ष मिलन अभिलाष मेरे रहत कबकी नाथजू,
फल मिष्ट नाना भाँति सुथरे ल्याइयौ निज हाथ जू।
तुम नाथ शीतल करो शीतल मोहि भवकी तापसों,
मैं जजौं युग पद जोरि करि मो काज सरसी आप सों॥

ॐ ह्रीं श्रीशीतलनाथजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल गंध अक्षत फूल चरु दीपक सुधूप कही महा,
फल ल्याय सुन्दर अरघ कीन्हो दोष सो वर्जित कहा।
तुम नाथ शीतल करो शीतल मोहि भवकी तापसों,
मैं जजौं युग पद जोरि करि मो काज सरसी आप सों॥

ॐ ह्रीं श्रीशीतलनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंचकल्याणक

चैत वदी दिन आठ, गर्भावतार लेत भये स्वामी।
सुर नर असुरन जानी, जजहूँ शीतल प्रभू नामी॥

ॐ ह्रीं चैत्रकृष्णाष्टम्यां गर्भकल्याणकप्राप्ताय श्रीशीतलनाथजिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

माघ वदी द्वादशि को, जन्मे भगवान् सकल सुखकारी।
मति श्रुति अवधि विराजे, पूजों जिन-चरण हितकारी॥

ॐ ह्रीं माघकृष्णद्वादश्यां जन्मकल्याणकप्राप्ताय श्रीशीतलनाथजिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

द्वादशि माघ वदीमें, परिग्रह तजि वन बसे जाई।
पूजत तहाँ सुरासुर, हम यहाँ पूजत गुण गाई॥

ॐ ह्रीं माघकृष्णद्वादश्यां तपःकल्याणकप्राप्ताय श्रीशीतलनाथजिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

चौदशि पूस वदीमें, जग-गुरु केवल पाय भये ज्ञानी।
सो मूरति मनमानी, मैं पूजों जिन-चरण सुख-खानी॥

ॐ ह्रीं पौषकृष्णचतुर्दश्यां ज्ञानकल्याणकप्राप्ताय श्रीशीतलनाथजिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

आश्विन सुदी अष्टमि दिन, मुक्ति पधारे समेदगिरिसेती।
पूजा करत तिहारी, नसत उपाधि जगतकी जेती॥

ॐ ह्रीं आश्विनशुक्लाष्टम्यां मोक्षकल्याणकप्राप्ताय श्रीशीतलनाथजिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

जय शीतल जिनवर, परम धरमधर,
छविके मन्दिर, शिव-भरता ।
जय पुत्र सुनंदा, के गुण वृंदा,
सुखके कंदा, दुख-हरता ॥
जय नासादृष्टी, हो परमेष्टी,
तुम पदनेष्टी, अलख भये ।
जय तपो चरनमा, रहत चरनमा,
सुआचरणमा, कलुष गये ॥

स्रग्विणीछंद

जय सुनंदाके नंदा तिहारी कथा,
भाषि को पार पावे कहावे यथा ।
नाथ तेरे कभी होत भव-रोग ना,
इष्ट-वियोग अनिष्ट-संयोग ना ॥
अग्निके कुंडमें वल्लभा रामकी,
नाम तेरे बची सो सती कामकी ॥ नाथ०॥
द्रोपदी चीर बाढ़ो तिहारो सही,
देव जानी सबोंमें सुलज्जा रही ॥ नाथ०॥
कुष्ठ राखो न श्रीपालको जो महा,
अब्धिसे काढ़ लीनो सितावी तहां ॥नाथ०॥

अंजना कोटि फांसी गिरो जो हतो,
औ सहाई तहां तो बिना को हतो ॥
नाथ तेरे कभी होत भव-रोग ना,
इष्ट-वियोग अनिष्ट-संयोग ना ॥
शैल फूटो गिरो अंजनीपूतके,
चोट जाके लगी ना तिहारै तके ॥ नाथ०॥
कूदियो शीघ्र ही नाम तो गायके,
कृष्ण काली नथो कुंडमें जायके ॥ नाथ०॥
पांडवा जे घिरे थे लखागारमें,
राह दीन्ही तिन्हें तू महाप्यार में ॥ नाथ०॥
सेठको शूलिकापै धरो देखके,
कीन्ह सिंहासन आपनो लेखके ॥ नाथ०॥
जो गनाये इन्हें आदि देके सबै,
पाद परसादते भे सुखारी सबै ॥ नाथ०॥
वार मेरी प्रभू देर कीन्हीं कहा,
कीजिये दृष्टि दायाकी मोपै अहा ॥ नाथ०॥
धन्य तू धन्य तू धन्य तू मैनहा,
जो महा पंचमो ज्ञान नीके लहा ॥ नाथ०॥
कोटि तीरथ हैं तेरे पदोंके तले,
रोज ध्यावें मुनी सो बतावें भले ॥ नाथ०॥
जानिके यों भली भांति ध्याऊं तुझे,
भक्ति पाऊं यही देव दीजे मुझे ॥ नाथ०॥

गाथा

आपद सब दीजे भार झोंकि यह पढ़त सुनत जयमाल,
हे पुनीत ! करण अरु जिह्वा वरते आनंद जाल।
पहुँचे जहँ कबहूँ पहुँच नहीं नहिं पाई सो पावे हाल,
नहीं भयो कभी सो होय सबेरे भाषत मनरंगलाल ॥
ॐ ह्रीं श्रीशीतलनाथजिनेन्द्राय महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सोरठा

भो शीतल भगवान, तो पद पच्ची जगत में।
हैं जेते परवान, पच्च रहे तिन पर बनी ॥
[इत्याशीर्वादः]

श्रीवासुपूज्यजिन-पूजा

छन्द रूपकवित्त

श्रीमत वासुपूज्य जिनवर-पद, पूजन हेत हिये उमगाय।
थापों मन-वच-तन शुचि करिकै, जिनकी पाटल-देव्या माय ॥
महिष-चिह्न पद लसै मनोहर, लाल-वरन-तन समता-दाय।
सो करुना-निधि कृपा-दृष्टि करि तिष्ठहु सुपरितिष्ठ यहँ आय ॥
ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

अष्टक

छन्द जोगीरासा

गंगा-जल भरि कनक-कुंभमें, प्रासुक गंध मिलाई,
करम-कलंक विनाशन कारन, धार देत हरषाई।
वासुपूज्य वसु-पूज-तनुज-पद, वासव सेवत आई,
बाल ब्रह्मचारी लखि जिनको, शिव-तिय सनमुख धाई।

ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

कृष्णागरु मलयागिरि चंदन, केशरसंग घसाई,
भव-आताप विनाशन कारन, पूजों पद चितलाई ॥वासु०॥

ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय भवतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

देवजीर सुखदास शुद्ध वर, सुवरन-थार भराई,
पुंज धरत तुम चरनन आगैं, तुरित अखय-पद पाई ॥वासु०॥

ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

पारिजात संतान कल्पतरु, जनित सुमन बहु लाई,
मीनकेतु-मन-भंजन-कारन तुम पद-पद्म चढ़ाई ॥वासु०॥

ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय कामवाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

नव्य गव्य आदिक रस-पूरित, नेवज तुरित उपाई,
छुधा-रोग-निरवारन-कारन, तुम्हें जजों शिर-नाई।
वासुपूज्य वसु-पूज-तनुज-पद, वासव सेवत आई,
बाल ब्रह्मचारी लखि जिनको, शिव-तिय सनमुख धाई ॥

ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

दीपक-जोत उदोत होत वर, दश दिशमें छवि छाई ।
तिमिर-मोह-नाशक तुमको लखि, जजों चरन हरषाई ॥वासु०॥

ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा ।

दशविध गंध मनोहर लेकर, वातहोत्रमें डाई ।
अष्ट करम ये दुष्ट जरतु हैं, धूम सु धूम उड़ाई ॥वासु०॥

ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ।

सुरस सुपक्व सुपावन फल लै, कंचन-थार भराई ।
मोक्ष-महाफल-दायक लखि प्रभु, भेंट धरों गुन गाई ॥वासु०॥

ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा ।

जल-फल दरब मिलाय गाय गुन, आठों अंग नमाई ।
शिव-पद-राज हेत हे श्रीपति ! निकट धरों यह लाई ॥वासु०॥

ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

पंचकल्याणक

छंद पाईता मात्रा १४

कलि छट्ठ असाढ़ सुहायौ, गरभागम मंगल पायौ।
दशमें दिवितें इत आये, शत इंद्र जजे सिर नाये ॥

ॐ ह्रीं आषाढ़कृष्णषष्ठ्यां गर्भमङ्गलमण्डिताय श्रीवासुपूज्य-जिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

कलि चौदश फागुन जानों, जनमें जगदीश महानों।
हरि मेर जजे तब जाई, हम पूजत हैं चित लाई ॥

ॐ ह्रीं श्रीफाल्गुनकृष्णचतुर्दश्यां जन्ममङ्गलप्राप्ताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तिथि चौदस फागुन श्यामा, धरियो तप श्रीअभिरामा।
नृप सुंदरके पय पायो, हम पूजत अतिसुख थायो ॥

ॐ ह्रीं फाल्गुनकृष्णचतुर्दश्यां तपोमङ्गलप्राप्ताय श्रीवासुपूज्य-जिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

वदि भादव दोइज सोहै, लहि केवल आतम जो है।
अनअंत गुनाकर स्वामी, नित बंदो त्रिभुवन नामी ॥

ॐ ह्रीं भाद्रपदकृष्णद्वितीयायां केवलज्ञानमण्डिताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

सित भादव चौदशि लीनों, निरवान सुथान प्रवीनों।
पुर चंपा थानकसेती, हम पूजत निज-हित हेती ॥

ॐ ह्रीं भाद्रपदशुक्लचतुर्दश्यां मोक्षमङ्गलप्राप्ताय श्रीवासुपूज्य-जिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

दोहा

चंपापुरमें पंचवर, कल्याणक तुम पाय।
सत्तर धनु तन शोभनो, जै जै जै जिनराय ॥१॥

छंद मोतियदाम वर्ण १२

महासुख-सागर आगर ज्ञान, अनंत-सुखामृत-भुक्त महान्।
महाबल-मंडित खंडित-काम, रमा-शिव-संग सदा विसराम ॥
सुरिंद फनिंद खगिंद नरिंद, मुनिंद जजैं नित पादरविंद।
प्रभू तुव अन्तर-भाव विराग, सुबालहितें व्रत-शीलसों राग ॥
कियो नहिं राज उदास-सरूप, सुभावन भावत आतम-रूप।
अनित्य शरीर प्रपंच समस्त, चिदातम नित्य सुखाश्रित वस्त ॥
अशर्न नहीं कोउ शर्न सहाय, जहाँ जिय भोगत कर्म-विपाय।
निजातमकै परमेसुर शर्न, नहीं इनके विन आपद-हर्न ॥
जगत्त जथा जलबुद्‌बुद येव, सदा जिय एक लहै फलमेव।
अनेक-प्रकार धरी यह देह, भमें भव-कानन आन न नेह ॥
अपावन सात कुधात भरीय, चिदातम शुद्ध-सुभाव धरीय।
धरै इनसों जब नेह तबेव, सुआवत कर्म तबे वसुभेव ॥
जबै तन-भोग-जगत्त-उदास, धरै तब संवर-निर्जर-आस।
करै जब कर्म कलंक विनाश, लहै तब मोक्ष महासुखराश ॥

तथा यह लोक नराकृत नित्त, विलोकिय ते षट द्रव्य-विचित्त ।
सुआतम-जानन-बोध-विहीन, धरै किन तत्त्व-प्रतीत प्रवीन ॥
जिनागम-ज्ञानरु संजम-भाव, सबै निज-ज्ञान बिना विसराव ।
सुदुर्लभ द्रव्य सुक्षेत्र सुकाल, सुभाव सबै जिहतें शिव हाल ॥
लयो सब जोग सुपुन्य वशाय, कहो किमि दीजिय ताहि गँवाय ।
विचारत यों लवकांतिक आय, नमें पद-पंकज पुष्प चढ़ाय ॥
कह्यो प्रभु धन्य कियो सुविचार, प्रबोधि सु येम कियो जु विहार ।
तबै सब धर्मतनों हरि आय, रच्यौ शिविका चढ़ि आप जिनाय ॥
धरे तप पाय सुकेवल-बोध, दियो उपदेश सुभव्य सँबोध ।
लियो फिर मोक्ष महासुख-राश, नमैं नित भक्त सोई सुख आश ॥

घत्तानन्द

नित वासव-वंदत, पाप-निकंदत, वासुपूज्य व्रत-ब्रह्म-पती ।
भव-संकल-खंदित, आनँद-मंडित, जै जै जै जैवंत जती ॥

ॐ ह्रीं श्रीवासपूज्यजिनेन्द्राय पूर्णार्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

वासुपूज-पद सार, जजौ दरबविधि भावसों ।
सो पावै सुखसार, भुक्ति मुक्तिको जो परम ॥

[इत्याशीर्वादः । परिपुष्पांजलिं क्षिपामि ।]

श्रीअनन्तनाथजिनपूजा

[कविवर मनरंगलालजी]

स्थापना—गीताछन्द

अवध नगरी बसत सुन्दर धराधिप हरिसेन हैं,
ता त्रिया सुरजा सुत सु जाके नन्त प्रभु सुख देन हैं।
तजि पुष्प उत्तर धनुष अधशत वपु उँचाई स्वर्ण में,
इक्ष्वाकुवंशी अङ्क सेही आउ तिस लख वर्ण में ॥

सोरठा

सो अनन्त भगवन्त, तजि सब जग शिव-तिय लई।
भजत सदा सब संत, आय यहाँ तिष्ठो प्रभो ॥

ॐ ह्रीं श्रीअनन्तनाथजिनेन्द्र ! अत्रावतरावतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्रीअनन्तनाथजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं श्रीअनन्तनाथजिनेन्द्र अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

अष्टक

हिमवन-द्रहको नीर ल्याय मन मोहनो,
पय समान अतिनिर्मल दीसत सोहनो।
प्रभु अनन्त युग पाद-सरोज निहारिके,
जजहुँ अटल पद हेत हर्ष उर धारिके ॥

ॐ ह्रीं श्रीअनन्तनाथजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युरोगविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

मलयज घसों मिलाय शुद्ध कपूर ही,
गंध जासु प्रति प्रसरित दश दिश पूरही।
प्रभु अनंत युग पाद-सरोज निहारिके,
जजहुँ अटल पद हेत हर्ष उर धारि के।

ॐ ह्रीं श्रीअनन्तनाथजिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

तंदुल धवल विशाल बड़े मन भावने,
उठत छटा छवि तिन अति दीखत पावने ॥प्रभु०॥

ॐ ह्रीं श्रीअनन्तनाथजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

सुमन मनोहर चंप चमेली देखिये,
प्रफुलित कमल गुलाब मालतीके लिये ॥प्रभु०॥

ॐ ह्रीं श्रीअनन्तनाथजिनेन्द्राय कामवाणविनाशनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

हरत क्षुधा अति करत पुष्टता मिष्ट ते,
व्यञ्जन नाना भांति थार भर इष्ट ते ॥प्रभु०॥

ॐ ह्रीं श्रीअनन्तनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दीपक ज्योति जगाय गाय गुण नाथके,
निज पर देखन काज ल्याय निज हाथके ॥प्रभु०॥

ॐ ह्रीं श्रीअनन्तनाथजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

खेऊँ धूप मंगाय धूपदहमें भली,
जासु गंधकरि होत सु मतवारे अली ॥प्रभु०॥

ॐ ह्रीं श्रीअनन्तनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ।

मधुर वर्ण शुभ नाना फल भरि थारमें,
ल्याय चरण ढिग धरहुं बड़े सतकारमें ॥प्रभु०॥

ॐ ह्रीं श्रीअनन्तनाथजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा ।

पय चंदन वर तंदुल सुमना चरू ले,
दीप धूप फल अर्घ महा सुख-कूप ले ॥प्रभु०॥

ॐ ह्रीं श्रीअनन्तनाथजिनेन्द्राय सर्वसुखप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

पंचकल्याणक

नृप सौध ऊपर हरषि चित अति गाय गुण अमलान,
षट् मास आगे रतन वरषा करत देव महान ।
कातिक बदी एकम कहावत गर्भ आये नाथ,
हम चरण पूजत अरघ ले मन वचन नाऊं माथ ।

ॐ ह्रीं श्रीअनन्तनाथजिनेन्द्राय कार्तिककृष्णप्रतिपदायां गर्भकल्याणकसंयुक्ताय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

शुभ जेठ महिना वदी द्वादशिके दिना जिनराज,
जन्मत भयो सुख जगतके चढ़ि नाग सहित समाज।
शचिनाथ आय सुभाव पूजा जनम दिनकी कीन,
मैं जजत युगपद अरघसों प्रभु करहु संकट छीन।

ॐ ह्रीं श्रीअनन्तनाथजिनेन्द्राय ज्येष्ठकृष्णद्वादश्यां जन्मकल्याणकमण्डिताय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

वदि जेठ द्वादश जाय वनमें केश लुंचत धीर,
तजि बाह्याभ्यंतर सकल परिग्रह ध्यान धरत गंभीर।
मैं दास तुम पद ईह पूजत शुद्ध अरघ बनाय,
तहँ जजत इंद्रादिक सकल गुण गाय चित हरषाय।

ॐ ह्रीं श्रीअनन्तनाथजिनेन्द्राय ज्येष्ठकृष्णद्वादश्यां तपःकल्याणकप्राप्ताय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अम्मावसी वदि चैतकी लहि ज्ञान केवल सार,
करि नाम सार्थक प्रभु अनंत चतुष्ट लहत अपार।
करुणा-निधान निधान सुख के भव-उदधिके पोत,
मैं जजत तुम पद-कमल निरमल बढ़त आनंद सोत।

ॐ ह्रीं श्रीअनन्तनाथजिनेन्द्राय चैत्रकृष्णामावास्यायां ज्ञानकल्याणकप्राप्ताय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

वदि पंचदश कहि चैत की करुणा निधान महान,
सम्मेद पर्वत ते जगत गुरु होत भये निर्वान।

तहँ देव चतुरनिकाय विधि करि चरण पूजे सार,
मैं यहाँ पूजत अर्घ लीन्हे पद-सरोज निहार ॥

ॐ ह्रीं श्रीअनन्तनाथजिनेन्द्राय चैत्रकृष्णामावास्यायां मोक्ष-कल्याणकमण्डिताय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

जयमाला

जय जिन अनंत वर गुण महंत,
तर परम-शान्तिकर दुख न दरे ।
निज काॅरजकारी जन-हितकारी,
अधम-उधारी शर्म धरे ॥
जय जय परमेश्वर कहत वचन फुर,
रहत सदा सुर पग पकरे ।
प्रभु करहु निवेरा पातक घेरा,
'मनरंग' चेरा नमत खरे ॥

पद्धड़ीछंद

जय जय अनंत भगवंत संत,
जग गावत पद-महिमा महंत ।
ते पावत जावत सिद्धराज,
जाके मारगमें दिवि-समाज ॥
प्रभु मूरत भय-भंजन विशेष,
भवि-जन सुख पावत देखि देखि ।

रंजन भवि-नीरज-वन-दिनेश,
निरअंजन अंजन बिनु विशेष ॥
घट आवत जाके तुम दयाल,
सो घट घटकी जानत त्रिकाल ।
भटकत नहिं जो संसार माहिं,
नहिं अटकत कोई काज ताहिं ॥
फटकत नहिं जाकी ओर मोह,
पटकत सो चौपट मांझ द्रोह ।
लटकत नित जाकी कृत पताक,
झटकत माया-बेली झटाक ॥
सटकत लखि जाको रूप मान,
बच ताके गटकत सिग जहान ।
छटकत चहुँ गिरदा सुजस जासु,
खटकत नहिं दृग मधि छवि सु तासु ॥
तुम धन्य धन्य किरपा-निधान,
जो करत जानि जन-निज-समान ।
इह खूबी का पर कहिय जाय,
जय जय जग-जीवनके सहाय ॥
जय जय अपार पारा न बार,
गुण कथि हारे जिह्वा हजार ।

मथि डारो तुम वैरी मनोज,
बलिहारी जैयत रोज-रोज ॥
जय अशरणको तुम शरण एक,
सब लायक दायक शुभ विवेक ।
जग-नायक मन-भायक सरूप,
जय नमो नमो आनंद-कूप ॥
जय सुख-वारिध वेला निशेष,
नहिं राखत आरति जानि लेश ।
दुति ऊपर वारो कोटि भानु,
प्रभु नासत मिथ्या-तम महानु ॥
तुम नाम लेत करुणा-निधान,
टूटत गाढ़े बन्धन महान ।
पवनाशन पग तल चापि लेत,
विषम स्थल जाको नित सुखेत ॥
ऐरावत सम अति क्रोधवान,
सनमुख आवत दंती महान ।
वश होय तिहारे नाम लेत,
जय जय शुभ अतिशयके निकेत ॥
तुम नाम लच्च जाके निधान,
नहिं अग्नि करै दग्धायमान ।

पावे ठग बटमारी न कोय,
इह प्रभुता जानत सकल-लोय ॥
करुणा-कटाक्ष तनि करौ हाल,
जासों हूँ होऊँ अति निहाल ।
वसु कर्म विगोऊँ निमिषमात्र,
जाऊँ निज-पद तजि सकल-गात्र ॥

इह अनंत भगवंत तनी सुंदर जयमाला ।
पढ़ि जाने जो कोय होय गुण-गणकी माला ॥
सुनत धुनत अति क्रोध बोध पावे सुखकारी ।
जाय पढ़े ते मिलत सिद्धि-तिय जो अति प्यारी ॥

ॐ ह्रीं श्रीअनन्तनाथजिनेन्द्राय सर्वसुखप्राप्तये पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

सोरठा

हे अनन्त जिनराज, कलुष काट करिये जलद ।
पूरण पुण्य समाज, जो सुख पावे जगत-जन ॥

[इत्याशीर्वादः । पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि]

श्रीशान्तिनाथजिन-पूजा

[कविवर वृन्दावनजी]

मत्तगयंद छंद । (यमकालंकार)

या भव-काननमें चतुरानन, पाप-पनानन घेरि हमेरी ।
आतम-जान न मान न ठान न, वान न होन दई सठ मेरी ॥
ता मद-भानन आपहि हो यह, छान न आन न आनन टेरी ॥
आन गही शरनागतको, अब श्रीपतजी पत राखहु मेरी ॥१॥

ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् ।

ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः ।

ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् ।

छंद त्रिभंगी । अनुप्रयासक । (मात्रा ३२ जगणवर्जित) ।

हिमगिरि-गत-गंगा धार अभंगा, प्रासुक संगा भरि भृंगा ।
जर-मरन-मृतंगा नाशि अघंगा, पूजि पदंगा मृदुहिंगा ॥
श्रीशान्ति-जिनेशं, नुत-शक्रेशं वृषचक्रेशं, चक्रेशं ।
हनि अरि-चक्रेशं, हे गुनधेशं, दयामृतेशं, मक्रेशं ॥१॥

ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।

वर बावन-चंदन, कदली-नंदन, घन-आनंदन, सहित घसों ।
भव-ताप-निकंदन, ऐरा-नंदन, वंदि अमंदन, चरन वसों ॥

श्रीशान्ति-जिनेशं, नुत-शक्रेशं, वृष-चक्रेशं, चक्रेशं ।
हनि अरि-चक्रेशं, हे गुनधेशं, दयामृतेशं, मक्रेशं ॥२॥

ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्राय भवतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा ।

हिमकर करि लज्जत, मलय सुसज्जत, अच्छत जज्जत, भरि थारी ।
दुख-दारिद-गज्जत, सद-पद-सज्जत, भव-भय-भज्जत, अतिभारी ।
श्रीशान्ति-जिनेशं, नुत-शक्रेशं, वृषचक्रेशं, चक्रेशं ।
हनि अरि-चक्रेशं, हे गुनधेशं, दयामृतेशं, मक्रेशं ॥३॥

ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा ।

मंदार सरोजं, कदली जोजं, पुञ्ज भरोजं, मलयभरं ।
भरि कंचन-थारी, तुम ढिंग धारी, मदन-विदारी, धीर-धरं ॥
श्रीशान्ति-जिनेशं, नुत-शक्रेशं, वृष-चक्रेशं, चक्रेशं ।
हनि अरि-चक्रेशं, हे गुनधेशं, दयामृतेशं, मक्रेशं ॥४॥

ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्राय कामवाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ।

पकवान नवीने, पावन कीने, षट रस भीने, सुखदाई ।
मन-मोदन-हारे, छुधा विदारे, आगे धारे, गुन गाई ॥
श्रीशान्ति-जिनेशं, नुत-शक्रेशं, वृष-चक्रेशं, चक्रेशं ।
हनि अरि-चक्रेशं, हे गुनधेशं, दयामृतेशं, मक्रेशं ॥५॥

ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

तुम ज्ञान प्रकाशे, भ्रम-तम नाशे, ज्ञेय विकाशे, सुखरासे।
दीपक उजियारा, यातैं धारा, मोह निवारा, निज भासे॥
श्रीशान्ति-जिनेशं, नुत-शक्रेशं, वृष-चक्रेशं, चक्रेशं।
हनि अरि-चक्रेशं, हे गुनधेशं, दयामृतेशं, मक्रेशं॥६॥

ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

चन्दन करपूरं, करि वर चूरं, पावक भूरं, माहि जुरं।
तसु धूम उड़ावै, नाचत आवै, अलि गुंजावै, मधुर-सुरं॥
श्रीशान्ति-जिनेशं, नुत-शक्रेशं, वृष-चक्रेशं चक्रेशं।
हनि अरि-चक्रेशं, हे गुनधेशं दयामृतेशं, मक्रेशं॥७॥

ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

बादाम खजूरं, दाड़िम पूरं, निंबुक भूरं, लै आयो।
तासों पद जज्जों, शिवफल सज्जों, निज-रस-रज्जों, उमगायो॥
श्रीशान्ति-जिनेशं, नुत-शक्रेशं, वृष-चक्रेशं चक्रेशं।
हनि अरि-चक्रेशं, हे गुनधेशं, दयामृतेशं, मक्रेशं॥८॥

ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

वसु द्रव्य सँवारी, तुम ढिग धारी, आनंदकारी, दृग-प्यारी।
तुम हो भवतारी, करुना-धारी, यातैं थारी, शरनारी॥
श्रीशान्ति-जिनेशं, नुत-शक्रेशं वृष-चक्रेशं, चक्रेशं।
हनि अरि-चक्रेशं, हे गुनधेशं, दयामृतेशं, मक्रेशं॥९॥

ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

पंचकल्याणक

सुंदरी तथा द्रुतविलम्बित छंद

असित सातय भादव जानिये, गरभ-मंगल ता दिन मानिये।
सचि कियो जननी-पद चर्चनं, हम करैं इत ये पद अर्चनं ॥

ॐ ह्रीं भाद्रपदकृष्णसप्तम्यां गर्भमङ्गलमण्डिताय श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

जनम जेठ चतुर्दशि श्याम है, सकल इन्द्र सु आगत धाम है।
गजपुरै गजसाजि सबै तबै, गिरि जजे इत मैं जजि हों अबै ॥

ॐ ह्रीं ज्येष्ठकृष्णचतुर्दश्यां जन्ममङ्गलप्राप्ताय श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

भव शरीर सुभोग असार हैं, इमि विचार तबै तप धार हैं।
भ्रमर चौदश जेठ सुहावनी, धरम-हेत जजों गुन-पावनी ॥

ॐ ह्रीं ज्येष्ठकृष्णचतुर्दश्यां निष्क्रमणमहोत्सवमण्डिताय श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

शुकल पौष दशैं सुख-राश है, परम केवल-ज्ञान प्रकाश है।
भव-समुद्र-उधारन देवकी, हम करैं नित मंगल सेवकी ॥४॥

ॐ ह्रीं पौषशुक्लदशम्यां केवलज्ञानप्राप्ताय श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

असित चौदश जेठ हने अरी, गिरि समेदथकी शिव-ती वरी।
सकल-इन्द्र जजैं तित आइकैं, हम जजैं इत मस्तक नाइकैं ॥

ॐ ह्रीं ज्येष्ठकृष्णचतुर्दश्यां मोक्षमङ्गलप्राप्ताय श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

छंद रथोद्धता, चन्द्रवर्त्म वर्ण ११—लाटानुप्रास

शान्ति शान्ति-गुन-मंडिते सदा, जाहि ध्यावत सुपंडिते सदा ।
मैं तिन्हें भगत-मंडिते सदा, पूजि हों कलुष-हंडिते सदा ॥
मोक्ष-हेत तुम ही दयाल हो, हे जिनेश गुन-रत्न-माल हो ।
मैं अबै सुगुन-दाम ही धरों, ध्यावतें तुरित मुक्ति-ती वरों ॥

छंद पद्धरी

जय शान्तिनाथ चिद्रूपराज, भव-सागरमें अद्भुत जहाज ।
तुम तजि सरवारथसिद्ध थान, सरवारथ-जुत गजपुर महान ॥
तित जनम लियौ आनंद धार, हरि ततछिन आयो राज-द्वार ।
इंद्रानी जाय प्रसूत-थान, तुमको करमें लै हरष मान ॥
हरि गोद देय सो मोद धार, सिर चमर अमर ढारत अपार ।
गिरिराज जाय तित शिला पांड, तापै थाप्यौ अभिषेक मांड ॥
तित पंचम उदधितनों सु वार, सुरकर कर करि ल्याये उदार ।
तब इंद्र सहस-कर करि अनंद, तुम सिर-धारा ढारी सुनंद ॥
अघ घघ घघघघ धुनि होत घोर, भभभभभभ धधधध कलश शोर
दम दम दम दम बाजत मृदंग, झन नन नन नन नन नूपुरंग ॥
तन नन नन नन नन तनन तान, घन नन नन घंटा करत ध्वान ।
ताथेइ थेइ थेइ थेइ थेइ सुचाल, जुत नाचत नावत तुमहिं भाल ॥

चट चट चट अटपट नटत नाट, झट झट झट हट नट शट विराट।
इमि नाचत राचत भगत रंग, सुर लेत तहाँ आनंद संग ॥
इत्यादि अतुल मंगल सुठाट, तित बन्यो जहाँ सुरगिरि विराट।
पुनि करि नियोग पितु, सदन आय, हरि सौंप्यौ तुम तित वृद्ध थाय
पुनि राजमाहिं लहि चक्र-रत्न, भोग्यौ छ खंड करि धरम जत्न
पुनि तप धरि केवल-ऋद्धि पाय, भवि जीवनकों शिव-मग बताय
शिव-पुर पहुँचे तुम हे जिनेश, गुन-मंडित अतुल अनंत भेष।
मैं ध्यावतु हों नित शीश नाय, हमरी भव-बाधा हरि जिनाय ॥
सेवक अपनों निज जान जान, करुना करि भौ-भय भान भान।
यह विघन-मूल-तरु खंड खंड, चित-चिन्तित-आनँद मंड मंड ॥

घत्ता छंद

श्रीशान्ति महंता, शिव-तिय-कंता, सुगुन अनंता, भगवंता।
भव-भ्रमन हनंता, सौख्य अनंता, दातारं, तारन-वंता ॥१॥

छंद रूपक सवैया

शांतिनाथ-जिनके पद-पंकज, जो भवि पूजै मन वच काय,
जनम जनमके पातक ताके, ततछिन तजिकैं जाय पलाय ॥
मनवंछित सुख पावै सो नर, वांचैं भगति-भाव अति लाय।
तातैं 'वृन्दावन' नित बंदै, जातैं शिवपुर-राज कराय ॥१॥

[इत्याशीर्वादः पुष्पांजलिं क्षिपामि।]

श्रीनेमिनाथजिन-पूजा

[कविवर मनरंगलालजी]

शुभ नगर द्वारावती राजत समुदविजय प्रजापती,
तसु गेह देवी शिवा ताके नेमिचंद भये जती।
तन श्याम वर्ष हजार आवल धनुष दशके शोभितं,
यदुवंश-कुलमणि शंख-लक्षण धरयो तजि अपराजितम्।

समुदविजयकै लाड़ले, पशुव छुड़ावनहार।
रजमति रानी त्यागिके, जाय चढ़े गिरनार॥
तहँ शुभ आतम-ध्यान धरि, पायो केवलज्ञान।
शिवदेवीके नंदवर, इहाँ विराजौ आन॥

ॐ ह्रीं श्रीनेमिनाथजिनेन्द्र! अत्रावतरावतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्रीनेमिनाथजिनेन्द्र! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं श्रीनेमिनाथजिनेन्द्र! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

शुभ कुंभ कंचनके जड़ित सुख कलश आकृतिको किये,
भरवाय तिन मधि अमल पय पय-सम मधुर शुचिता लिये।
श्री नेमिचंद जिनेंद्रके चरणारविंद निहारिके,
करि चित्त-चातक चतुर चर्चित जजत हूँ हित धारिकै।

ॐ ह्रीं श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युरोगविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

ले श्वेत चन्दन कृष्ण अगर कपूर वासित शीतलं,
तसु गंध वस मधुपावली मदमत्त नृत्यत कैकलं।
श्री नेमिचंद जिनेंद्रके चरणारविंद निहारिके,
करि चित-चातक चतुर चर्चित जजत हूँ हित धारिकै।

ॐ ह्रीं श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

नहिं खंड एको सब अखंडित ल्याय अक्षत पावने,
दिशिविदिशि जिनकी महक करि महकै लगै मनभावने।श्रीनेमि०

ॐ ह्रीं श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

मनहरन वर्ण विशाल फूले कमल कुन्द गुलाबके,
केतकी चम्पा चारु मरुवा पुष्प आव सुताव के। श्रीनेमि०

ॐ ह्रीं श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय कामवाणविनाशनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

पक्कान्न पूरित गाय घृत सौं मधुर मेवा वासितं,
गोक्षीर मिश्रित थार भरि भरि क्षुधा पीर विनाशितं। श्रीनेमि०

ॐ ह्रीं श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कंचन कटोरी माँहिं बाती बारि के घनसार की,
प्रभु पास धारत मिलत मग भव उदधिके उस पारकी। श्रीनेमि०

ॐ ह्रीं श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

अति ज्वलत ज्वाला मांहिं खेवत धूप धूम्र-सुहावनी,
वश गंध भौंरा पुंज तापर करत रव सुख वासिनी। श्रीनेमि०

ॐ ह्रीं श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

फल आम्र दाडिम वर कपित्था लांगली अरु गोस्तनी,
खरबूज पिस्ता देवकुसुमा नवल पुंगी पावनी। श्रीनेमि०

ॐ ह्रीं श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल गंध अक्षत चारु पुष्प नैवेद्य दीप प्रभाकरं,
वर धूप फल करि अर्घ सुन्दर नाथ आगे ले धरं। श्रीनेमि०

ॐ ह्रीं श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय सर्वसुखप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंचकल्याणक

छन्द मालिनी

कातिक मास सुदी छठिके दिन श्रीजिन नेमिप्रभू सुखकारी।
गर्भ रहे यदुवंश प्रकाशक भासत भानु समान सम्हारी।
मात शिवा हरषी मनमें जनु आज प्रसूति जनी महतारी।
सो दिन आज विचार यहां हम पूजत अर्घ संजोयके भारी।

ॐ ह्रीं कार्तिकशुक्लाषष्ठ्यां गर्भमङ्गलमण्डिताय श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्रावणकी शुक्ला छठिके दिन जन्मत पातक दूर पलाने।
जानि सुरेश गयो विधि पूर्वक मात घरैं जहँ आनंद ठाने।
जाय शची धरि बालक दूसर लेय जिनेश्वर होत रवाने।
जन्माभिषेक कियो उनने हम अर्घ चढ़ावत आनंद माने।

ॐ ह्रीं श्रावणशुक्लाषष्ठ्यां जन्ममहोत्सवप्राप्ताय श्रीनेमिनाथ-जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

साजि चले यदुवंश शिरोमणि व्याहन काज निशान बजाये।
देखि पशू दुखिया विललात कहो प्रभु ये किंहि काज घिराये।
सारथिके मुखतें सुनि बात उदास भये पशुआन छुड़ाये।
योग धरयो छठि श्रावणकी शुकला दिन जानिके अर्घ चढ़ाये।

ॐ ह्रीं श्रावणशुक्लाषष्ठ्यां तपोमङ्गलभूषिताय श्रीनेमिनाथ-जिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

लेकर योग रहे दिन छप्पनलौं छद्मस्थ प्रभू शिव-गामी।
क्वार सुदी परिवा के दिना चव घातिय घातत अन्तर्यामी।
केवलज्ञान लहो भगवान दिवाकर मान भये जिन स्वामी।
सो दिन आप चितारि यहां हम अर्घ चढ़ावत हैं जिननामी।

ॐ ह्रीं आश्विनशुक्लाप्रतिपदायां ज्ञानकल्याणकप्राप्ताय श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मास अषाढ़ सुदी सतमी गिरिनार पहारतें कीन्ह पयाना।
जाय वसे शिव मंदिर मॉंझ अनन्त जहाँ सुखको नहिं माना।
जानत मोक्ष-कल्यान तबै शचिनाथ समेत सबै गिरवाना।
पूजि यथा विधि गे घर सो हम पूजत अर्घ लिये तजि माना।

ॐ ह्रीं आषाढशुक्लासप्तम्यां मोक्षमङ्गलप्राप्ताय श्रीनेमिनाथ-जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

छन्द काव्य

जय यादव वर वंशतने भृङ्गार विश्वपति ।
जय पुरुषोत्तम कमल-नयन प्रभु देत सुगति गति ।
जय अनमित-वर-ज्ञान धरत वैकुण्ठ-विहारी ।
जय मिथ्या-तम-तिमिर-हरन-सूरज हितकारी ।

त्रोटक छन्द

जय नेमि सदा गुण-वास नमो,
जय पूरहु मो मन आश नमो ।
जय दीन-हितो मम दीनपनो,
करि दूरि प्रभू पद दे अपनो ॥
जय कालिम लोकतनी सगरी ।
तसु नाशनको तुम मेघ-झरी ॥ जय दीन०
जय काल-वृकोदर-नाशक हो ।
मत जैन महान प्रकाशक हो ॥ जय दीन०
घन श्याम जिसा तन श्याम लहो ।
घन-नाद बरोबरि नाद लहो ॥ जय दीन०
जय लोक-पितामह लोक दही ।
पितु मात धरै कुल-चन्द सही ॥ जय दीन०

तुम सोचत सोच न होत कदा।
जय पूरित आनंद-जाल सदा॥
जय दीन-हिंतो मम दीनपनो,
करि दूरि प्रभू पद दे अपनो॥
जय ज्ञान रतन्न तनी छिति हो।
तुम राखत दासनकी मिति हो॥ जय दीन०
जय नाशत हो भव-भ्रामरिका।
तुम खोलि दई शिवपामरिका॥ जय दीन०
तुम देखत पाप-पहार बिले।
तुम देखत सज्जन-कंज खिले॥ जय दीन०
तुम लोकतने शुभ-भूषण हो।
जिनराज सदा गत-दूषण हो॥जय दीन०
तुम नाम-जहाज चढ़े नर जे।
तिनि पार भये सुख-भाजन जे॥ जय दीन०
कुसुमायुध मारन हार भले।
वसु कर्म महान कठोर दले॥ जय दीन०
तुमसे तुम ही नहिं दूसर को।
सब छांड़ि ममत्त दयापर को॥ जय दीन०
तुम पादतनी रज शीस धरै।
जन सो शिव-कामिनी जाय वरै॥ जय दीन०

प्रभु नेमि-निशाप निसाप करो।
'मनरंग'तनी भव पीर हरो॥
जय दीन-हितो मम दीनपनो।
करि दूर प्रभू पद दे अपनो॥

यह शिवानन्द प्रभु नेमिचन्द्रकी गुण-गर्भित जयमाल।
जो पढ़ै पढ़ावै मन वच तनसों निज दर से दर हाल।
पातक सब चूरे आनंद पूरे नासे यमकी चाल।
पूरन पद होई लखे न कोई भाषत 'मनरंगलाल'।

ओं ह्रीं श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

समुदविजयके नंद, नेमिचंद करुणायतन।
तोरि देउ जग फंद, जो स्वच्छन्द वरतै भविक॥

[इत्याशीर्वादः। पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि]

श्रीपार्श्वनाथजिन-पूजा

[कविवर बख्तावरजी]

वर स्वर्ग प्राणतको विहाय सुमात वामा-सुत भये।
अश्वसेनके पार्श्व जिनेश्वर चरण तिनके सुर नये॥
नौ हाथ उन्नत तन विराजै उरग-लच्छण अति लसै।
थापूं तुम्हें जिन आय तिष्ठो कर्म मेरे सब नसैं॥

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्र अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्र अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्र अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

चामर छन्द

क्षीर सोमके समान अंबु-सार लाइये,
हेम-पात्र धारके सु आपको चढ़ाइये।
पार्श्वनाथदेव सेव आपकी करूं सदा,
दीजिये निवास मोक्ष भूलिये नहीं कदा ॥

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय गर्भजन्मतपोज्ञाननिर्वाणपंचकल्याणकप्राप्ताय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

चंदनादि केसरादि स्वच्छ गंध लीजिये,
आप चर्न चर्च मोह-तापको हनीजिये। पार्श्व० ॥

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय गर्भजन्मतपोज्ञाननिर्वाणपंचकल्याणकप्राप्ताय चदनं निर्वपामीति स्वाहा।

फेन चंदके समान अक्षतं मँगायके,
पादके समीप सार पूजको रचायके। पार्श्व० ॥

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय गर्भजन्मतपोज्ञाननिर्वाणपंचकल्याणकप्राप्ताय अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

केवडा गुलाब और केतकी चुनाइये,
धार चर्णके समीप कामको नशाइये। पार्श्व०॥

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय गर्भजन्मतपोज्ञाननिर्वाणपंचकल्याणकप्राप्ताय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

घेवरादि बावरादि मिष्ट सर्पिमें सनें,
आप चर्ण अर्च ते क्षुधादि-रोगको हनें। पार्श्व०॥

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय गर्भजन्मतपोज्ञाननिर्वाणपंच-कल्याणकप्राप्ताय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

लाय रत्न-दीपको सनेह-पूरके भरूं,
वातिका कपूर वार मोह-ध्वांतको हरूं। पार्श्व०॥

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय गर्भजन्मतपोज्ञाननिर्वाणपंच-कल्याणकप्राप्ताय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

धूप गंध लेयके सु अग्नि संग जारिये,
तास धूपके सु संग कर्म अष्ट वारिये। पार्श्व०॥

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय गर्भजन्मतपोज्ञाननिर्वाणपंच-कल्याणकप्राप्ताय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

खारकादि चिर्भटादि रत्न-थारमें भरूं,
हर्ष धारके जजूं सुमोक्ष सौख्यको वरूं। पार्श्व०॥

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय गर्भजन्मतपोज्ञाननिर्वाणपंच-कल्याणकप्राप्ताय फलं निर्वपामीति स्वाहा।

नीर गंध अक्षतं सुपुष्प चारु लीजिये,
दीप धूप श्रीफलादि अर्घ तें जजीजिये। पार्श्व० ॥

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय गर्भजन्मतपोज्ञाननिर्वाणपंच-कल्याणकप्राप्ताय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

पंच-कल्याणक

शुभ प्राणत स्वर्ग विहाये, वामा माता उर आये।
वैशाखतनी दुत कारी, हम पूजें विघ्न-निवारी॥

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय वैशाखकृष्णद्वितीयायां गर्भ-कल्याणकप्राप्ताय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

जन्मे त्रिभुवन-सुखदाता, कलिकादशि पौष विख्याता।
स्यामा-तन अद्भुत राजे, रवि-कोटिक-तेज सु लाजे॥

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय पौषकृष्णैकादश्यां जन्मकल्याणक-प्राप्ताय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

कलि पौष इकादशि आई, तब बारह भावना भाई।
अपने कर लौंच सुकीना, हम पूजें चर्न जजीना॥

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय पौषकृष्णैकादश्यां तपःकल्याणक-प्राप्ताय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

वह कमठ जीव दुखकारी, उपसर्ग कियो अतिभारी।
प्रभु केवलज्ञान उपाया, अलि चैत चौथ दिन गाया॥

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय चैत्रकृष्णचतुर्थ्यां ज्ञानकल्याणक-प्राप्ताय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

सित सावन सातैं आई, शिव-नार तबै जिन पाई।
सम्मेदाचल हरि माना, हम पूजें मोक्ष-कल्याना॥

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय श्रावणशुक्लसप्तम्यां मोक्षकल्याणक-प्राप्ताय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

पारसनाथ जिनंदतने वच पानभखी जरते सुन पायें,
करो सरधान लहो पद आन भये पद्मावति-शेष कहाये।
नाम प्रताप टरे संताप सुभव्यनको शिव-शर्म दिखाये,
हो विश्वसेनके नंद भले गुण गावत हैं तुमरे हरषाये॥

केकी-कंठ समान छवि, वपु उतंग नव हाथ।
लक्षण उरग निहार पग, बंदूँ पारसनाथ॥

मोतियदाम छन्द

रची नगरी षट् मास अगार, बने बहु गोपुर शोभ अपार।
सु कोटतनी रचना छवि देत, कगूंरनपै लहकैं बहु केत॥१॥
बनारसकी रचना जु अपार, करी या भांत धनेश तैयार,
तहां विश्वसेन नरेंद्र उदार, करैं सुख वाम सु दे पटनार॥
तजो तुम प्राणत नाम विमान, भये तिनके घर नंदन आन।
तबै पुर इन्द्र नियोगनि आय, गिरींद्र करी विध न्होन सु जाय।
पिता घर सौंप गये निज धाम, कुबेर करे वसु जाम जु काम।
बधें जिन दूज मयंक समान, रमैं बहु बालक निर्जर आन॥
भये जब अष्टम वर्ष कुमार, धरे अणुव्रत महा सुखकार।
पिता जब आन करी अरदास, करो तुम व्याह वरो मम आस॥
करो तब नाहिं रहे जगचंद, किए तुम काम कषायक मंद।
चढ़े गजराज कुमारन संग, सु देखत गंगतनी सुतरंग॥

लख्यो इक रंक करे तप घोर, चहूँ दिस अग्नि बले अतिजोर।
कहे जिननाथ अरे सुन भ्रात, करे बहु जीवतनी मत घात॥
भयो तब कोप कहै कित जीव, जले तब नाग दिखाय सजीव।
लख्यो यह कारण भावन भाय, नये दिव-ब्रह्म-ऋषी सब आय॥
तबै सुर चार प्रकार नियोग, धरी शिविका निज-कंध मनोग।
करो वन माँहिं निवास जिनंद, धरे व्रत चारित आनंद-कंद॥
गहे तहाँ अष्टमके उपवास, गये धनदत्ततनें जु अवास।
दियो पयदान महा सुखकार, भई पण वृष्टि तहाँ तिह बार॥
गये फिर काननमाँहिं दयाल, धरो तुम योग सबै अघ टाल।
तबै वह धूम सुकेत अयान, भयो कमठाचरको सुर आन॥
करै नभ गौन लखे तुम धीर, जू पूरव वैर विचार गहीर।
करो उपसर्ग भयानक घोर, चली बहु तीक्षण पवन झकोर॥
रहो दशहूँ दिशमें तम छाय, लगी बहु अग्नि लखी नहिं जाय।
सु रुंडनके बिन मुण्ड दिखाय, पड़े जल मूसल धार अथाय॥
तबै पद्मावति कंत धनंद, नये युग आय तहाँ जिनचंद।
भगौ तब रंक सु देखत हाल, लहो तब केवल ज्ञानविशाल॥
दियो उपदेश महाहितकार, सुभव्यन बोधि सम्मेद पधार।
सु सुवर्णभद्र जू कूट प्रसिद्ध, वरी शिवनारि लही वसु ऋद्ध॥
जजूं तुम चर्ण दोऊ कर जोर, प्रभू लखिये अब ही मम ओर।
कहैं 'बखतावर रत्न' बनाय, जिनेश हमें भव-पार लगाय॥

घत्ता

जय पारस-देवं, सुर-कृत सेवं, वंदित चरण सुनागपती।
करुणाके धारी, पर-उपकारी, शिव-सुखकारी कर्म हती।

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय गर्भजन्मतपोज्ञाननिर्वाणपंच-कल्याणकप्राप्ताय महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जो पूजै मन लाय, भव्य पारस प्रभु नित ही।
ताके दुख सब जाँय, भीति व्यापै नहिं कित ही॥
सुख-सम्पति अधिकाय, पुत्र-मित्रादिक सारे।
अनुक्रम सों शिव लहे, 'रतन' इम कहें पुकारे॥

[इति आशीर्वादः। पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि]

श्रीवर्द्धमानजिन-पूजा

[कविवर वृन्दावनजी]

मत्तगयंद

श्रीमत वीर हरें भव-पीर, भरें सुख-सीर अनाकुलताई,
केहरि-अंक अरीकरदंक, नये हरि-पंकति-मौलि सुआई।
मैं तुमको इत थापतु हौं प्रभु, भक्ति-समेत हिये हरषाई,
हे करुणा-धन-धारक देव, इहां अब तिष्ठहु शीघ्रहि आई॥

ॐ ह्रीं श्रीवर्द्धमानजिनेन्द्र! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्रीवर्द्धमानजिनेन्द्र! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं श्रीवर्द्धमानजिनेन्द्र! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

छंद अष्टपदी

क्षीरोदधिसम शुचि नीर, कंचन-भृंग भरों,
प्रभु वेग हरो भव-पीर, यातैं धार करों।
श्रीवीर महा अतिवीर सन्मति नायक हो,
जय वर्द्धमान गुण-धीर सन्मति-दायक हो ॥१॥

ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

मलयागिर-चंदन सार, केशर-संग घसों।
प्रभु भव-आताप निवार, पूजत हिय हुलसों ॥श्रीवीर०॥

ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय भवतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

तंदुल सित शशि-सम, शुद्ध, लीनों थार भरी।
तसु पुञ्ज धरों अविरुद्ध, पावों शिव-नगरी ॥श्रीवीर०॥

ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

सुरतरुके सुमन समेत, सुमन सुमन प्यारे।
सो मनमथ-भंजन-हेत, पूजों पद थारे ॥श्रीवीर०॥

ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय कामवाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

रस-रज्जत सज्जत सद्य, मज्जत थार भरी।
पद जज्जत रज्जत अद्य, भज्जत भूख-अरी ॥श्रीवीर०॥

ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तम-खंडित मंडित-नेह, दीपक जोवत हों।
तुम पदतर हे सुख-गेह, भ्रम-तम खोवत हों ॥श्रीवीर०॥

ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

हरिचन्दन अगर कपूर, चूर सुगन्ध करा।
तुम पदतर खेवत भूरि, आठों कर्म जरा ॥श्रीवीर०॥

ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

ऋतु-फल कल-वर्जित लाय, कंचन-थार भरा।
शिव-फल-हित हे जिनराय, तुम ढिग भेट धरा ॥श्रीवीर०॥

ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल-फल वसु सजि हिम-थार, तन-मन-मोद धरों।
गुण गाऊं भव-दधि तार, पूजत पाप हरों ॥श्रीवीर०॥

ॐ ह्रीं श्रीवर्द्धमानजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंचकल्याणक

राग टप्पाचालमें

मोहि राखो हो सरना, श्रीवर्द्धमान जिनरायजी, मोहि राखो
गरभ साढ़ सित छट्ठ लियो थिति, त्रिशला उर अघ-हरना।
सुर सुरपति तित सेव करौ नित, मैं पूजों भव-तरना। मोहि रा०॥

ॐ ह्रीं आषाढशुक्लषष्ठ्यां गर्भमंगलमंडिताय श्रीमहावीर-जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जनम चैत सित तेरसके दिन, कुंडलपुर कन-वरना।
सुरगिरि सुरगुरु पूज रचायो, मैं पूजों भव-हरना ॥मोहि रा०॥

ॐ ह्रीं चैत्रशुक्लत्रयोदश्यां जन्ममंगलप्राप्ताय श्रीमहावीर-जिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

मंगसिर असित मनोहर दशमी, ता दिन तप आचरना।
नृप-कुमार घर पारन कीनो, मैं पूजों तुम चरना ॥मोहि रा०॥

ॐ ह्रीं मार्गशीर्षकृष्णदशम्यां तपोमंगलमंडिताय श्रीमहावीर-जिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

शुकल दशैं वैशाख दिवस अरि, घाति-चतुक छय करना।
केवल लहि भवि भव-सर तारे, जजों चरन सुख भरना॥मोहि रा०॥

ॐ ह्रीं वैशाखशुक्लदशम्यां ज्ञानकल्याणकप्राप्ताय श्रीमहावीर-जिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

कातिक श्याम अमावस शिव-तिय, पावापुरतें परना।
गन-फनि-वृंद जजै तित बहुविधि, मैं पूजों भय-हरना ॥मोहि रा०

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णामावास्यायां मोक्षमङ्गलमण्डिताय श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

छंद हरिगीता

गनधर असनिधर, चक्रधर, हलधर गदाधर वरवदा,
अरु चापधर विद्यासुधर, तिरसूलधर सेवहिं सदा।
दुख-हरन आनंद-भरन तारन, तरन चरन रसाल हैं,
सुकुमाल गुन-मनिमाल उन्नत, भालकी जयमाल हैं ॥१॥

घत्तानंद

जय त्रिशला-नंदन, हरिकृत-वंदन, जगदानंदन, चंदवरं।
भव-ताप-निकंदन तन कन-मंदन, रहित-सपंदन नयन-धरं॥२॥

छन्द तोटक

जय केवल-भानु कला-सदनं, भवि-कोक-विकाशन-कंज-वनं।
जग-जीत-महारिपु-मोह-हरं, रज ज्ञान-दृगावर चूर-करं ॥
गर्भादिक-मंगल-मंडित हो, दुख-दारिद्को नित खंडित हो।
जगमाहिं तुम्हीं सत-पंडित हो, तुम ही भव-भाव-विहंडित हो ॥
हरिवंश-सरोजनकों रवि हो, बलवंत महंत तुम्हीं कवि हो।
लहि केवल धर्म-प्रकाश कियौ, अबलों सोई मारग राजति यौ ॥

पुनि आपतने गुनिमाहिं सही, सुर मग्न रहैं जितने सब ही।
तिनकी वनिता गुन गावत हैं, लय माननि सों मन-भावत हैं॥
पुनि नाचत रंग उमंग भरी, तुअ भक्तिविषैं पग येम धरी।
झननं झननं झननं झननं, सुर लेत तहाँ तननं तननं॥
घननं घननं घन घंट बजै, दमदं दमदं मिरदंग सजै।
गगनांगन-गर्भगता सुगता, ततता ततता अतता वितता॥
धृगतां धृगतां गति बाजत है, सुरताल रसाल जु छाजत है।
सननं सननं सननं नभमें, इक रूप अनेक जु धारि भमें॥
कइ नारि सुवीन बजावति हैं, तुमरो जस उज्जल गावति हैं।
कर-तालविषै करताल धरें, सुर ताल विशाल जु नाद करें॥
इन आदि अनेक उछाह भरी, सुर भक्ति करें प्रभुजी तुमरी।
तुम ही जग-जीवनिके पितु हो, तुम ही विन कारनतें हितु हो।
तुम ही सब विघ्न-विनाशन हो, तुम ही निज आनंद-भासन हो।
तुम ही चित-चिंतित-दायक हो, जगमाहिं तुम्हीं सब लायक हो॥
तुमरे पन मंगलमाहिं सही, जिय उत्तम पुन्न लिया सब ही।
हमको तुमरी सरनागत है, तुमरे गुनमें मन पागत है॥
प्रभु मो हिय आप सदा बसिये, जब लों वसु कर्म नहीं नसिये।
तब लों तुम ध्यान हिये वरतो, तब लों श्रुत चिंतन चित्त रतो॥
तब लों व्रत चारित चाहतु हों, तब लों शुभ भाव सु गाहतु हों।
तब लों सत-संगति नित्त रहो, तब लों मम संजम चित्त गहो॥

जब लों नहिं नाश करो अरिको, शिव-नारि वरों समता धरि को।
यह द्यो तब लों हमको जिनजी, हम जाचतु हैं इतनी सुन जी ॥

घत्तानंद

श्रीवीर-जिनेशा नमित-सुरेशा, नाग-नरेशा भगति भरा।
'वृन्दावन' ध्यावै विघन नशावै, वांछित पावै शर्म-वरा ॥

ॐ ह्रीं श्रीवर्द्धमानजिनेन्द्राय महार्घं निर्वपामीति स्वाहा।

श्रीसनमतिके जुगल पद, जो पूजै धरि प्रीति।
'वृन्दावन' सो चतुर नर, लहै मुक्ति-नवनीत ॥

[इत्याशीर्वादः। पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि]

समुच्चयचौबीसी-पूजा

वृषभ अजित संभव अभिनंदन, सुमति पदम सुपास जिनराय।
चंद पुहुप शीतल श्रियांस नमि, वासुपूज्य पूजित सुरराय ॥
विमल अनंत धर्म जस-उज्वल, शांति कुंथु अर मल्लि मनाय।
मुनिसुव्रत नमि नेमि पासप्रभु, वर्द्धमान पद पुष्प चढ़ाय ॥

ॐ ह्रीं श्रीवृषभादिमहावीरान्तचतुर्विंशतिजिनसमूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।

ॐ ह्रीं श्रीवृषभादिवीरान्तचतुर्विंशतिजिनसमूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।

ॐ ह्रीं श्रीवृषभादिवीरान्तचतुर्विंशतिजिनसमूह! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

मुनि-मन-सम उज्वल नीर, प्रासुक गंध भरा।
भरि कनक-कटोरी धीर, दीनी धार धरा॥
चौवीसों श्रीजिनचंद, आनँद-कंद सही।
पद जजत हरत भव-फंद, पावत मोक्ष-मही॥१॥

ॐ ह्रीं श्रीवृषभादिवीरान्तेभ्यो जन्ममृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

गोशीर कपूर मिलाय, केशर-रंग भरी।
जिन-चरनन देत चढ़ाय, भव-आताप हरी॥चौवीसों०॥

ॐ ह्रीं श्रीवृषभादिवीरान्तेभ्यो भवतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

तंदुल सित सोम-समान, सुंदर अनियारे।
मुकताफलकी उनमान, पुंज धरों प्यारे॥चौवीसों०॥

ॐ ह्रीं श्रीवृषभादिवीरान्तेभ्योऽक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

वर-कंज कदंब कुरंड, सुमन सुगंध भरे।
जिन अग्र धरौं गुन-मंड, काम-कलंक हरे॥चौवीसों०॥

ॐ ह्रीं श्रीवृषभादिवीरान्तेभ्यः कामवाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

मन-मोहन-मोदक आदि, सुंदर सद्य बने।
रस-पूरित प्रासुक स्वाद, जजत छुधादि हने॥चौवीसों०॥

ॐ ह्रीं श्रीवृषभादिवीरान्तेभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तम-खंडन दीप जगाय, धारों तुम आगै ।
सब तिमिर मोह क्षय जाय, ज्ञान-कला जागै ॥चौवीसों०

ॐ ह्रीं श्रीवृषभादिवीरान्तेभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा ।

दश गंध हुताशनमांहि, हे प्रभु खेवत हों ।
मिस धूम करम जरि जांहि, तुमपद सेवत हों ॥चौवीसों०

ॐ ह्रीं श्रीवृषभादिवीरान्तेभ्योऽष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ।

शुचि पक्क सुरस फल सार, सब ऋतुके ल्यायो।
देखत दृग-मनको प्यार, पूजत सुख पायो ॥चौवीसों०

ॐ ह्रीं श्रीवृषभादिवीरान्तेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा ।

जल फल आठों शुचिसार, ताको अर्घ करों ।
तुमको अरपों भवतार, भव तरि मोच्छ वरों ॥ चौवीसों०

ॐ ह्रीं श्रीवृषभादिवीरान्तेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

जयमाला

श्रीमत तीरथनाथ-पद, माथ नाय हित हेत ।
गाऊं गुणमाला अबै, अजर अमर पद देत ॥१॥

जय भवतमभंजन जनमनकंजन, रंजन दिनमनि स्वच्छ करा ।
शिवमगपरकाशक अरिगननाशक, चौवीसों जिनराज वरा ॥

पद्धरि छन्द

जय ऋषभदेव रिषिगन नमंत, जय अजित जीत वसु अरि तुरंत।
जय संभव भव-भय करत चूर, जय अभिनंदन आनंद-पूर ॥
जय सुमति सुमति-दायक दयाल, जय पद्म पद्मदुतितनरसाल ।
जय जय सुपास भवपासनाश, जय चंद चंदतनदुतिप्रकाश ॥
जय पुष्पदंत दुतिदंत-सेत, जय शीतल शीतल-गुन-निकेत ।
जय श्रेयनाथ नुत-सहसभुज्ज, जय वासव-पूजित वासुपुज्ज ॥
जय विमल विमल-पद-देनहार, जय जय अनंत गुनगन अपार ।
जय धर्म धर्म शिव-शर्म देत, जय शांति शांति-पुष्टी करेत ॥
जय कुंथु कुंथु-आदिक रखेय, जय अर जिन वसु अरि छय करेय ।
जय मल्लि मल्ल हत मोह-मल्ल, जय मुनिसुव्रत व्रत-शल्ल-दल्ल ॥
जय नमि नित वासव-नुत सपेम, जय नेमनाथ वृष-चक्र-नेम ।
जय पारसनाथ अनाथ-नाथ, जय वर्द्धमान शिव-नगर साथ ॥
चौवीस जिनंदा आनँद-कंदा, पाप-निकंदा सुखकारी ।
तिन पद-जुग-चंदा उदय अमंदा, वासव-वंदा हितकारी ॥

ॐ ह्रीं श्रीवृषभादिचतुर्विंशतिजिनेभ्यो महार्घं निर्वपामीति स्वाहा।

भुक्ति-मुक्ति-दातार, चौवीसों जिनराजवर ।
तिन पद मन वच धार, जो पूजै सो शिव लहै ॥

[इत्याशीर्वादः । पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि]

[खण्ड ४]

नैमित्तिक पूजा-पाठ

नन्दीश्वरद्वीप-पूजा

[कविवर द्यानतरायजी]

सरब पर्वमैं बड़ो अठाई परव है।
नंदीश्वर सुर जांहिं लेय वसु दरव है ॥
हमैं सकति सो नाहिं इहां करि थापना।
पूजैं जिनग्रह-प्रतिमा है हित आपना ॥

ॐ ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे द्विपञ्चाशज्जिनालयस्थजिनप्रतिमासमूह ! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।

ॐ ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे द्विपञ्चाशज्जिनालयस्थजिनप्रतिमा-समूह ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।

ॐ ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे द्विपञ्चाशज्जिनालयस्थजिनप्रतिमासमूह ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

कंचन-मणि-मय-भृंगार, तीरथ-नीर भरा।
तिहुं धार दयी निरवार, जामन मरन जरा ॥
नंदीश्वर-श्रीजिन-धाम, बावन पुंज करों।
वसु दिन प्रतिमा अभिराम, आनँद-भाव धरों ॥

ॐ ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे पूर्वपश्चिमोत्तरदक्षिणदिक्षु द्विपञ्चा-शज्जिनालयस्थजिनप्रतिमाभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्व-पामीति स्वाहा।

भव-तप-हर शीतल वास, सो चंदन नाहीं ।
प्रभु यह गुन कीजै सांच, आयो तुम ठांही ॥ नंदी० ॥

ॐ ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे द्विपञ्चाशज्जिनालयस्थजिनप्रतिमाभ्यो भवतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा ।

उत्तम अक्षत जिनराज, पुंज धरे सोहै ।
सब जीते अक्ष-समाज, तुमसम अरु को है ॥ नंदी० ॥

ॐ ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे द्विपञ्चाशज्जिनालयस्थजिनप्रतिमाभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा ।

तुम काम विनाशक देव, ध्याऊं फूलनसौं ।
लहुँ शील-लच्छमी एव, छूटों सूलनसौं ॥ नंदी० ॥

ॐ ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे द्विपञ्चाशज्जिनालयस्थजिनप्रतिमाभ्यः कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ।

नेवज इंद्रिय-बलकार, सो तुमने चूरा ।
चरु तुम ढिग सोहै सार, अचरज है पूरा ॥ नंदी० ॥

ॐ ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे द्विपञ्चाशज्जिनालयस्थजिनप्रतिमाभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

दीपककी ज्योति-प्रकाश, तुम तन मांहिं लसै ।
टूटै करमनकी राश, ज्ञान-कणी दरसै ॥ नंदी० ॥

ॐ ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे द्विपञ्चाशज्जिनालयस्थजिनप्रतिमाभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा ।

कृष्णागरु-धूप-सुवास, दश-दिशि नारि वरै ।
अति हरष-भाव परकाश, मानों नृत्य करै ।। नंदी० ।।

ॐ ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे द्विपञ्चाशज्जिनालयस्थजिनप्रतिमाभ्यो अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ।

बहुविधि फल ले तिहुं काल, आनँद राचत हैं ।
तुम शिव-फल देहु दयाल, तुहि हम जाचत हैं ।। नंदी० ।।

ॐ ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे द्विपञ्चाशज्जिनालयस्थजिनप्रतिमाभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा ।

यह अरघ कियो निज-हेत, तुमको अरपतु हों ।
'द्यानत' कीज्यो शिव-खेत, भूमि समरपतु हों ।। नंदी० ।।

ॐ ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे द्विपञ्चाशज्जिनालयस्थजिनप्रतिमाभ्यो अनर्घपदप्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

जयमाला

दोहा

कार्तिक फागुन साढके अंत आठ दिन माहिं ।
नंदीश्वर सुर जात हैं, हम पूजैं इह ठाहिं ।।१।।

एकसौ त्रेसठ कोडि सु जोजन महा ।
लाख चौरासिया एक दिशमैं लहा ।।
आठमों दीप नंदीश्वरं भास्वरं ।
भौन बावन्न प्रतिमा नमों सुखकरं ।।२।।

चार दिशि चार अंजनगिरी राजहीं।
सहस चौरासिया एक दिश छाजहीं॥
ढोलसम गोल ऊपर तले सुंदरं ॥ भौन० ॥३॥

एक इक चार दिशि चार शुभ बावरी।
एक इक लाख जोजन अमल-जल भरी॥
चहुँ दिशा चार वन लाख जोजन वरं ॥ भौन०॥४॥

सोल वापीन मधि सोल गिरि दधिमुखं।
सहस दश महाजोजन लखत ही सुखं।
बावरी कौन दो माहि दो रति करं ॥ भौन० ॥५॥

शैल बत्तीस इक सहस जोजन कहे।
चार सोलै मिलैं सर्व बावन लहे॥
एक इक सीसपर एक जिनमंदिरं ॥ भौन० ॥६॥

बिंब अठ एकसौ रतनमयि सोहही।
देव देवी सरव नयन मन मोहही॥
पांचसै धनुष तन पद्म-आसन परं ॥ भौन० ॥७॥

लाल नख-मुख नयन स्याम अरु स्वेत हैं।
स्याम-रंग भौंह सिर-केश छवि देत हैं॥
वचन बोलत मनों हँसत कालुष हरं ॥भौन०॥८॥

कोटि-शशि-भान-दुति-तेज छिप जात है।
महा-वैराग-परिणाम ठहरात है॥
वयन नहिं कहैं लखि होत सम्यकधरं॥
भौन बावन्न प्रतिमा नमों सुखकरं॥६॥

सोरठा

नंदीश्वर-जिन-धाम, प्रतिमा-महिमा को कहै।
'द्यानत' लीनो नाम, यही भगति शिव-सुख करै॥

ॐ ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे पूर्वपश्चिमोत्तरदक्षिणदिक्षु द्विपञ्चाश-जिनालयस्थजिनप्रतिमाभ्यो पूर्णार्घं निर्वपामीति स्वाहा।

[इत्याशीर्वादः। पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि]

सप्तर्षि-पूजा

[कविवर मनरंगलालजी]

छप्पय

प्रथम नाथ श्रीमन्व दुतिय स्वरमन्व ऋषीश्वर।
तीसर मुनि श्रीनिचय सर्वसुंदर चौथो वर॥
पंचम श्रीजयवान विनयलालस षष्ठम भनि।
सप्तम जयमित्राख्य सर्व चारित्र-धाम गनि॥

ये सातों चारण-ऋद्धि-धर, करूं तास पद थापना।
मैं पूजूं मन वचन काय करि, जो सुख चाहूं आपना॥

ॐ ह्रीं चारणर्द्धिधरश्रीसप्तर्षीश्वराः ! अत्र अवतरत अवतरत संवौषट्।

ॐ ह्रीं चारणर्द्धिधरश्रीसप्तर्षीश्वराः ! अत्र तिष्ठत तिष्ठत ठः ठः।

ॐ ह्रीं चारणर्द्धिधरश्रीसप्तर्षीश्वराः ! अत्र मम सन्निहिता भवत भवत वषट्।

शुभ-तीर्थ-उद्‌भव-जल अनूपम, मिष्ट शीतल लायकैं।
भव-तृषा-कंद-निकंद-कारण, शुद्ध-घट भरवायकै॥
मन्वादि चारण-ऋद्धि-धारक, मुनिनकी पूजा करूं।
ता करें पातक हरें सारे, सकल आनँद विस्तरूं॥

ॐ ह्रीं श्रीचारणर्द्धिधरमन्व-स्वरमन्व-निचय-सर्वसुन्दर-जयवान-विनयलालस-जयमित्रर्षिभ्यो जलं निर्वपामीति स्वाहा।

श्रीखंड कदलीनंद केशर, मंद मंद घिसायकैं।
तस गंध प्रसरित दिग-दिगंतर, भर कटोरी लायकैं॥मन्वादि०

ॐ ह्रीं श्रीमन्वादिसप्तर्षिभ्यः चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

अति धवल अक्षत खंड-वर्जित, मिष्ट राजन-भोगके।
कलधौत-थारा भरत सुंदर, चुनित शुभ उपयोगके॥मन्वादि०

ॐ ह्रीं श्रीमन्वादिसप्तर्षिभ्यो अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

बहु-वर्ण सुवरण-सुमन आछे, अमल कमल गुलाबके।
केतकी चंपा चारु मरुआ, चुने निज-कर चावके॥
मन्वादि चारण-ऋद्धि-धारक, मुनिनकी पूजा करूं।
ता करें पातक हरें सारे, सकल आनंद विस्तरूं॥

ॐ ह्रीं श्रीमन्वादिसप्तर्षिभ्यः पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

पकवान नानाभांति चातुर, रचित शुद्ध नये नये।
सदमिष्ट लाडू आदि भर बहु, पुरटके थारा लये॥ मन्वादि०

ॐ ह्रीं श्रीमन्वादिसप्तर्षिभ्यो नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कलधौत-दीपक जडित नाना, भरित गोघृत-सारसों।
अति ज्वलितजगमग-ज्योति जाकी, तिमिरनाशनहारसों॥म०

ॐ ह्रीं श्रीमन्वादिसप्तर्षिभ्यो दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

दिक्-चक्र गंधित होत जाकर, धूप दश-अंगी कही।
सो लाय मन-वच-कायशुद्ध, लगाय कर खेऊं सही॥मन्वादि०

ॐ ह्रीं श्रीमन्वादिसप्तर्षिभ्यो धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

वर दाख खारक अमित प्यारे, मिष्ट चुष्ट चुनायकैं।
द्रावडी दाडिम चारु पुंगी, थाल भर भर लायकैं॥ मन्वादि०

ॐ ह्रीं श्रीमन्वादिसप्तर्षिभ्यः फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल गंध अक्षत पुष्प चरुवर, दीप धूप सु लावना।
फल ललित आठौं द्रव्य-मिश्रित, अर्घ कीजे पावना॥

ॐ ह्रीं श्रीमन्वादिसप्तर्षिभ्यो अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

वंदूं ऋषिराजा धर्म-जहाजा निज-पर-काजा करत भले ।
करुणाके धारी गगन-विहारी दुख-अपहारी भरम दले ॥
काटत जम-फंदा भवि-जन-वृंदा करत अनंदा चरणनमें ।
जो पूजैं ध्यावैं मंगल गावैं फेर न आवैं भव-वनमें ॥१॥

छंद पद्धरी

जय श्रीमनु मुनिराजा महंत, त्रस-थावरकी रच्छा करंत ।
जय मिथ्या-तम-नाशक पतंग, करुणा-रस-पूरित अंग अंग ।
जय श्रीस्वरमनु अकलंकरूप, पद-सेव करत नित अमर-भूप ।
जय पंच अच्छ जीते महान, तप तपत देह कंचन-समान ।
जय निचय सप्त तत्त्वार्थ भास, तप-रमातनों तनमें प्रकाश ।
जय विषय-रोध संबोध भान, परणतिके नाशन अचल ध्यान ।
जय जयहिं सर्वसुंदर दयाल, लखि इंद्रजालवत जगत-जाल ।
जय तृष्णाहारी रमण राम, निज परणतिमें पायो विराम ।
जय आनँदघन कल्याणरूप, कल्याण करत सबकौ अनूप ।
जय मद-नाशन जयवान देव, निरमद विरचित सब करत सेव ।
जय जयहिं विनयलालस अमान, सब शत्रु मित्र जानत समान ।
जय कृशित-काय तपके प्रभाव, छवि-छटा उड़ति आनंद-दाय ।
जयमित्र सकल जगके सुमित्र, अनगिनत अधम कीने पवित्र ।

जय चंद्र-वदन राजीव-नैन, कबहूं विकथा बोलत न बैन।
जय सातौं मुनिवर एक संग, नित गमन-गमन करते अभंग।
जय आये मथुरापुर मँझार, तँह मरी रोगको अति प्रचार।
जय जय तिन चरणनि प्रसाद, सब मरी देवकृत भई बाद।
जय लोक करे निर्भय समस्त, हम नमत सदा नित जोड़ हस्त।
जय ग्रीषम-ऋतु परवत मँझार, नित करत अतापन योग सार।
जय तृषा-परीषह करत जेर, कहुं रंच चलत नहिं मन-सुमेर।
जय मूल अठाइस गुणन धार, तप उग्र तपत आनंदकार।
जय वर्षा-ऋतुमें वृक्ष-तीर, तहँ अति शीतल झेलत समीर।
जय शीत-काल चौपट मँझार, कै नदी-सरोवर-तट विचार।
जय निवसत ध्यानारूढ़ होय, रंचक नहिं मटकत रोम कोय।
जय मृतकासन वज्रासनीय, गोदूहन इत्यादिक गनीय।
जय आसन नानाभांति धार, उपसर्ग सहत ममता निवार।
जय जपत तिहारो नाम कोय, लख पुत्र पौत्र कुल-वृद्धि होय।
जय भरे लक्ष अतिशय भँडार, दारिद्रतनो दुख होय छार।
जय चोर अग्नि डाकिन पिशाच, अरु ईति भीति सब नसत सांच।
जय तुम सुमरत सुख लहत लोक, सुर असुर नवत पद देत धोक।

छन्द रोला

ये सातों मुनिराज, महातप लछमी धारी।
परम पूज्य पद धरैं, सकल जगके हितकारी॥

जो मन वच तन शुद्ध, होय सेवै औ ध्यावै ।
सो जन 'मनरँगलाल', अष्ट ऋद्धिनकौं पावै ॥

दोहा

नमन करत चरनन परत, अहो गरीबनिवाज ।
पंच परावर्तननितैं, निरवारो ऋषिराज ॥

ॐ ह्रीं श्रीमन्वादिसप्तर्षिभ्यो पूर्णार्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥

निर्वाणक्षेत्र-पूजा

[कविवर द्यानतरायजी]

सोरठा

परम पूज्य चौवीस, जिहँ जिहँ थानक शिव गये ।
सिद्धभूमि निश-दीस, मन वच तन पूजा करौं ॥१॥

ॐ ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्राणि ! अत्र अवतरत अवतरत संवौषट् ।

ॐ ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्राणि ! अत्र तिष्ठत तिष्ठत ठः ठः ।

ॐ ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्राणि ! अत्र मम सन्निहितानि भवत भवत वषट् ।

गीता छंद

शुचि छीर-दधि-सम नीर निरमल, कनक-झारीमें भरौं ।
संसार पार उतार स्वामी, जोर कर विनती करौं ॥
संमेदगढ़ गिरनार चंपा, पावापुरि कैलासकों ।
पूजों सदा चौवीस जिन, निर्वाणभूमि-निवासकों ॥१॥

ॐ ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्यो जलं निर्वपामीति स्वाहा ।

केशर कपूर सुगंध चंदन, सलिल शीतल विस्तरौ ।
भव-तापकौ संताप मेटो, जोर कर विनती करौं ॥ संमेद० ॥

ॐ ह्रीं श्रीचतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्यः चंदनं निर्वपामीति स्वाहा ।

मोती-समान अखंड तंदुल, अमल आनँद धरि तरौं ।
औगुन हरौ गुन करौ हमको, जोर कर विनती करौं ॥संमेद०॥

ॐ ह्रीं श्रीचतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्यो अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा ।

शुभ फूल-रास सुवास-वासित, खेद सब मनकी हरौं ।
दुख-धाम-काम विनाश मेरो, जोर कर विनती करौं ॥संमेद०॥

ॐ ह्रीं श्रीचतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्यः पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ।

नेवज अनेकप्रकार जोग मनोग धरि भय परिहरौं ।
यह भूख-दूखन टार प्रभुजी, जोर कर विनती करौं ॥समेद०।

ॐ ह्रीं श्रीचतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्यो नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

दीपक-प्रकाश उजास उज्ज्वल, तिमिरसेती नहिं डरौं।
संशय-विमोह-विभरम-तम-हर, जोर कर विनती करौं ॥संमेद०

ॐ ह्रीं श्रीचतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्यो दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

शुभ-धूप परम-अनूप पावन, भान पावन आचरौं।
सब करम-पुंज जलाय दीज्यौ, जोर कर विनती करौं ॥संमेद०

ॐ ह्रीं श्रीचतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्यो धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

बहु फल मँगाय चढ़ाय उत्तम, चार गतिसों निरवरौं।
निहचै मुकति-फल देहु मोको, जोर कर विनती करौं ॥संमेद०

ॐ ह्रीं श्रीचतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्यः फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल गंध अच्छत फूल चरु फल, दीप धूपायन धरौं।
'द्यानत' करो निरभय जगतसों, जोर कर विनती करौं ॥संमेद०

ॐ ह्रीं श्रीचतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

सोरठा

श्रीचौवीस जिनेश, गिरि कैलाशादिक नमौं।
तीरथ महाप्रदेश, महापुरुष निरवाणतैं ॥

चौपाई १६ मात्रा

नमों ऋषभ कैलासपहारं।
नेमिनाथ गिरनार निहारं॥
वासुपूज्य चंपापुर वंदौं।
सनमति पावापुर अभिनंदौं॥२॥

वंदौं अजित अजित-पद-दाता।
वंदौं संभव भव-दुख-घाता॥
वंदौं अभिनंदन गण-नायक।
वंदौं सुमति सुमतिके दायक॥३॥

वंदौं पदम मुकति-पदमाकर।
वंदौं सुपास आश-पासाहर।
वंदौं चंद्रप्रभ प्रभु चंदा।
वंदौं सुविधि सुविधि-निधि-कंदा॥४॥

वंदौं शीतल अघ-तप-शीतल।
वंदौं श्रियांस श्रियांस महीतल॥
वंदौं विमल विमल उपयोगी।
वंदौं अनंत अनंत-सुखभोगी॥५॥

वंदौं धर्म धर्म-विस्तारा ।
वंदौं शांति शांति-मन-धारा ॥
वंदौं कुंथु कुंथु-रखवालं ।
वंदौं अर अरि-हर गुणमालं ॥६॥
वंदौं मल्लि काम-मल-चूरन ।
वंदौं मुनिसुव्रत व्रत-पूरन ॥
वंदौं नमि जिन नमित-सुरासुर ।
वंदौं पास पास-भ्रम-जग-हर ॥७॥
बीसों सिद्धभूमि जा ऊपर ।
शिखरसम्मेद-महागिरि भूपर ॥
एकबार वंदै जो कोई ।
ताहि नरक-पशु-गति नहिं होई ॥८॥
नरपति नृप सुर शक्र कहावै ।
तिहुं जग-भोग भोगि शिव पावै ॥
विघन-विनाशन मंगलकारी ।
गुण-विलास वंदौं भव-तारी ॥९॥

जो तीरथ जावै पाप मिटावै, ध्यावै गावै भगति करै ।
ताको जस कहिये संपति लहिये, गिरिके गुण को बुध उचरै ॥

ॐ ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्यो पूर्णार्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

क्षमावणी-पूजा

[कवि मल्लजी]

छप्पय

अंग क्षमा जिन-धर्मतनो दृढ़-मूल वखानो।
सम्यक रतन सँभाल हृदयमें निश्चय जानो॥
तज मिथ्या विष-मूल और चित निर्मल ठानो।
जिनधर्मींसों प्रीत करो सब पातक भानो॥
रत्नत्रय गह भविक-जन जिन-आज्ञा सम चालिये।
निश्चय कर आराधना करम-रासको जालिये॥

ॐ ह्रीं सम्यक्रत्नत्रय ! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं सम्यक्रत्नत्रय ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं सम्यक्रत्नत्रय ! अत्र मम सन्निहितं भव भव वषट्।

नीर सुगंध सुहावनो, पदम-द्रहको लाय।
जन्म-रोग निरवारिये, सम्यक्रतन लहाय॥
क्षमा गहो उर जीवड़ा, जिनवर-वचन गहाय।

ॐ ह्रीं निःशंकितांगाय निःकांक्षितांगाय निर्विचिकित्सतांगाय निर्मूढतांगाय उपगूहनांगाय सुस्थितीकरणाङ्गाय वात्सल्यांगाय प्रभावनाङ्गाय जन्ममृत्युविनाशनाय सम्यग्दर्शनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

ॐ ह्रीं व्यंजनव्यंजिताय अर्थसमग्राय तदुभयसमग्राय कालाध्ययनाय उपाध्यानोपहिताय विनयलब्धिप्रभावनाय गुरुबाधाह्नवाय बहुमानोन्मानाय अष्टाङ्गसम्यग्ज्ञानाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

ॐ ह्रीं अहिंसामहाव्रताय सत्यमहाव्रताय अचौर्यमहाव्रताय ब्रह्मचर्यमहाव्रताय अपरिग्रहमहाव्रताय मनोगुप्तये वचनगुप्तये कायगुप्तये ईर्य्यासमितये भाषासमितये ऐषणासमितये आदान-निक्षेपणसमितये प्रतिष्ठापनसमितये त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ॥१॥

केसर चंदन लीजिये, संग कपूर घसाय।
अलि पंकति आवत घनी, वास सुगंध सुहाय ॥
छमा गहो उर जीवड़ा, जिनवर-वचन गहाय ॥

ॐ ह्रीं अष्टाङ्गसम्यग्दर्शनाय अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय त्रयोदश-विधसम्यक्चारित्राय रत्नत्रयाय भवतापविनाशनाय चन्दनं निर्व-पामीति स्वाहा।

शालि अखंडित लीजिये, कंचन-थाल भराय।
जिनपद पूजों भावसौं, अछत पदको पाय ॥
छमा गहो उर जीवड़ा, जिनवर-वचन गहाय ॥

ॐ ह्रीं अष्टाङ्गसम्यग्दर्शनाय अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय त्रयोदश-विधसम्यक्चारित्राय रत्नत्रयाय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्व-पामीति स्वाहा।

पारिजात अरु केतकी, पहुप सुगंध गुलाब।
श्रीजिन-चरण-सरोजकूं, पूज हर्ष चित-चाव ॥
छमा गहो उर जीवड़ा, जिनवर-वचन गहाय ॥

ॐ ह्रीं अष्टाङ्गसम्यग्दर्शनाय अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय त्रयोदश-विधसम्यक्चारित्राय रत्नत्रयाय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्व-पामीति स्वाहा।

शक्कर घृत सुरभीतना, व्यंजन षट्रस स्वाद ।
जिनके निकट बढ़ायकर, हिरदे धरि आह्लाद ॥
क्षमा गहो उर जीवड़ा, जिनवर-वचन गहाय ॥

ॐ ह्रीं अष्टांगसम्यग्दर्शनाय अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय रत्नत्रयाय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

हाटकमय दीपक रचो, वाति कपूर सुधार ।
शोधित घृत कर पूजिये, मोह-तिमिर निरवार ॥
क्षमा गहो उर जीवड़ा, जिनवर-वचन गहाय ॥

ॐ ह्रीं अष्टांगसम्यग्दर्शनाय अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय रत्नत्रयाय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा ।

कृष्णागर करपूर हो, अथवा दशविधि जान ।
जिन-चरणन ढिग खेइये, अष्ट-कर्मकी हान ॥
क्षमा गहो उर जीवड़ा, जिनवर-वचन गहाय ॥

ॐ ह्रीं अष्टांगसम्यग्दर्शनाय अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय रत्नत्रयाय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ।

केला अंब अनार ही, नारिकेल ले दाख ।
अग्र धरो जिनपदतने, मोक्ष होय जिन भाख ॥
क्षमा गहो उर जीवड़ा, जिनवर-वचन गहाय ॥

ॐ ह्रीं अष्टांगसम्यग्दर्शनाय अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय रत्नत्रयाय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा ।

जल फल आदि मिलायके, अरघ करो हरषाय ।
दुःख-जलांजलि दीजिये, श्रीजिन होय सहाय ॥
छमा गहो उर जीवड़ा, जिनवर-वचन गहाय ॥

ॐ ह्रीं अष्टांगसम्यग्दर्शनाय, अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय, त्रयोदश-विधसम्यक्चारित्राय रत्नत्रयाय अनर्घपदप्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

जयमाला

दोहा

उनतिस अंगकी आरती, सुनो भविक चित लाय ।
मन वच तन सरधा करो, उत्तम नर-भव पाय ॥

चौपाई

जैनधर्ममें शंक न आनै, सो निःशंकित गुण चित ठानै ।
जप तप कर फल वांछै नाहीं, निःकांक्षित गुण हो जिस माहीं ॥
पर को देख गिलानि न आने, सो तीजा सम्यक् गुण ठानै ।
आन देवको रंच न मानै, सो निर्मूढ़ता गुण पहिचानै ॥
परको औगुण देख जु ढाकै, सो उपगूहन श्रीजिन भाखै ।
जैनधर्मतैं डिगता देखै, थोपे बहुरि स्थिति कर लेखै ॥
जिन-धरमीसों प्रीति निवहिये, गउ-वच्छवत वच्छल कहिये ।
ज्यों त्यों करि उद्योत बढ़ावै, सो प्रभावना अंग कहावै ॥
अष्ट अंग यह पाले जोई, सम्यग्दृष्टी कहिये सोई ।
अब गुण आठ ज्ञानके कहिये, भाखे श्रीजिन मनमें गहिये ॥

व्यंजन अक्षर सहित पढ़ीजै, व्यंजन-व्यंजित अंग कहीजै।
अर्थ सहित शुध शब्द उचारै, दूजा अर्थ समग्रह धारै ॥
तदुभय तीजा अंग लखीजै, अक्षर-अर्थसहित जु पढ़ीजै।
चौथा कालाध्ययन विचारै, काल समय लखि सुमरण धारै ॥
पंचम अंग उपधान बतावै, पाठ सहित तब बहु फल पावै।
षष्टम विनय सुलब्धि सुनीजै, वाणी बहुत विनय सु पढ़ीजै ॥
जापै पढ़े न लोपै जाई, अंग सप्तम गुरुवाद कहाई।
गुरुकी बहुत विनय जु करीजै, सो अष्टम अंग धर सुख लीजै ॥
यह आठों अंग-ज्ञान पढ़ावै, ज्ञाता मन वच तन कर ध्यावै।
अब आगे चारित्र सुनीजै, तेरह-विधि धर शिव-सुख लीजै ॥
छहों कायकी रक्षा कर है, सोई अहिंसा व्रत चित धर है।
हित मित सत्य वचन मुख कहिये, सो सतवादी केवल लहिये ॥
मन वच काय न चोरी करिये, सोई अचौर्य-व्रत चित धरिये।
मनमथ-भय मन रंच न आनै, सो मुनि ब्रह्मचर्य व्रत ठानै ॥
परिग्रह देख न मूर्छित होई, पंच महाव्रत-धारक सोई।
महाव्रत ये पांचों खरे हैं, सब तीर्थंकर इनको करे हैं ॥
मनमें विकल्प रंच न होई, मनोगुप्ति मुनि कहिये सोई।
वचन अलीक रंच नहिं भाखैं, वचन गुप्ति सो मुनिवर राखैं ॥
कायोत्सर्ग परीषह सहि हैं, ता मुनि काय-गुप्ति जिन कहि हैं।
पंच समिति अब सुनिये भाई, अर्थ सहित भाखों जिनराई ॥

हाथ चार जब भूमि निहारैं, तब मुनि ईर्यापथ पद धारैं ।
मिष्ट वचन मुख बोलै सोई, भाषा-समिति तास मुनि होई ॥
भोजन छयालिस दूषण टारैं, सो मुनि एषण शुद्ध विचारैं ।
देखकर पोथी ले अरु धर हैं, सो आदान-निक्षेपण वर हैं ॥
मल-मूत्र एकांत जु डारैं, परतिष्ठापन समिति संभारैं ।
यह सब अंग उनतीस कहे हैं, जिन भाखे गणधरने गहे हैं ॥
आठ-आठ-तेरहविधि जानों, दर्शन-ज्ञान-चरित्र सु ठानों ।
तातैं शिवपुर पहुँचो जाई, रत्नत्रयकी यह विधि भाई ॥
रत्नत्रय पूरण जब होई, क्षमा क्षमा करियो सब कोई ।
चैत माघ भादों त्रय बारा, क्षमा क्षमा हम उरमें धारा ॥

दोहा

यह क्षमावणी आरती, पढ़ै सुनै जो कोय ।
कहे "मल्ल" सरधा करो, मुक्ति-श्री-फल होय ॥२२॥

ॐ ह्रीं अष्टांगसम्यग्दर्शनाय अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय त्रयोदश विधसम्यक्चारित्राय रत्नत्रयाय अनर्घ्यपदप्राप्तये महार्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

सोरठा

दोष न गहियो कोय, गुण गह पढ़िये भावसौं ।
भूल चूक जो होय, अर्थ विचारि जु शोधियो ॥

[इत्याशीर्वादः । परिपुष्पाञ्जलिं क्षिपामि]

निर्वाणकांड [गाथा]

अट्ठावयम्मि उसहो चंपाए वासुपुज्ज-जिणणाहो ।
उज्जंते णेमि-जिणो पावाए णिव्वुदो महावीरो ॥१॥
वीसं तु जिण-वरिंदा अमरासुर-वंदिदा धुद-किलेसा ।
सम्मेदे गिरि-सिहरे णिव्वाण गया णमो तेसिं ॥
वरदत्तो य वरंगो सायरदत्तो य तारवरणयरे ।
आहुट्ठयकोडीओ णिव्वाण गया णमो तेसिं ॥
णेमि-सामी पज्जुण्णो संबुकुमारो तहेव अणिरुद्धो ।
बाहत्तरि-कोडीओ उज्जंते सत्त-सया वंदे ॥
राम-सुआ बिण्णि जणा लाड-णरिंदाण पंच कोडीओ ।
पावाए गिरि-सिहरे णिव्वाण गया णमो तेसिं ॥
पंडु-सुआ तिण्णि जणा दविड-णरिंदाण अट्ठ कोडीओ ।
सत्तुंजय-गिरिसिहरे णिव्वाण गया णमो तेसिं ॥
सत्तेव य बलभद्दा जदुव-णरिंदाण अट्ठ कोडीओ ।
गजपंथे गिरि-सिहरे णिव्वाण गया णमो तेसिं ॥
राम-हणू सुग्गीवो गवय गवक्खो य णील महणीलो ।
णवणवदी कोडीओ तुंगीगिरि-णिव्वुदे वंदे ॥
अंगाणंगकुमारा विक्खा-पंचद्ध-कोडि-रिसिसहिया ।
सुवण्णगिरि-मत्थयत्थे णिव्वाण गया णमो तेसिं ॥

दहमुह-रायस्स सुआ कोडी-पंचद्ध-मुणिवरें सहिया ।
रेवा-उहयम्मि तीरे णिव्वाण गया णमो तेसिं ॥
रेवा-णइए तीरे पच्छिम-भायम्मि सिद्धवर-कूडे ।
दो चक्की दह कप्पे आहुट्ठय-कोडि-णिव्वुदे बंदे ॥
वडवाणी-वर-णयरे दक्खिण-भायम्मि चूलगिरि-सिहरे ।
इंदजिय-कुंभयण्णो णिव्वाण गया णमो तेसिं ॥
पावागिरि-वर-सिहरे सुवण्णभद्दाइ-मुणिवरा चउरो ।
चलणा-णई-तडग्गे णिव्वाण गया णमो तेसिं ॥
फलहोडी-वर-गामे पच्छिम-भायम्मि दोणगिरि-सिहरे।
गुरुदत्ताइ-मुणिंदा णिव्वाण गया णमो तेसिं ॥
णायकुमार-मुणिंदो बालि महाबालि चेव अज्भेया ।
अट्ठावय-गिरि-सिहरे णिव्वाण गया णमो तेसिं ॥
अच्चलपुर-वर-णयरे ईसाणभाए मेढगिरि-सिहरे ।
आहुट्ठय-कोडीओ णिव्वाण गया णमो तेसिं ॥
वंसत्थल-वण-णियरे पच्छिम-भायम्मि कुंथुगिरि-सिहरे ।
कुल-देसभूसण-मुणी णिव्वाण गया णमो तेसिं ॥
जसरह-रायस्स सुआ पंचसया कलिंग-देसम्मि ।
कोडिसिलाए कोडि-मुणी णिव्वाण गया णमो तेसिं ॥
पासस्स समवसरणे गुरुदत्त-वरदत्त-पंच-रिसिपमुहा ।
रिस्सिंदे गिरिसिहरे णिव्वाण गया णमो तेसिं ॥

जे जिणु जित्थु तत्था जे दु गया णिव्वुदिं परमं ।
ते वंदामि य णिच्चं तिरयण-सुद्धो णमंसामि ॥
सेसाणं तु रिसीणं णिव्वाणं जम्मि जम्मि ठाणम्मि ।
ते हं वंदे सव्वे दुक्खक्खय-कारणट्ठाए ॥

निर्वाणकाण्ड [भाषा]

दोहा

वीतराग वंदौं सदा, भावसहित सिरनाय ।
कहूँ कांड निर्वाणकी, भाषा सुगम बनाय ॥

चौपाई

अष्टापद आदीश्वर स्वामि, वासुपूज्य चंपापुरि नामि ॥
नेमिनाथ स्वामी गिरनार, बंदो भाव-भगति उर धार ॥
चरम तीर्थंकर चरम-शरीर, पावापुरि स्वामी महावीर ।
शिखरसमेद जिनेसुर बीस, भावसहित बंदौं निश-दीस ॥
वरदत्तराय रु इंद मुनिंद, सायरदत्त आदि गुणवृंद ।
नगर तारवर मुनि उठकोडि, बंदौं भावसहित कर जोड़ि ॥
श्रीगिरनार शिखर विख्यात, कोडि बहत्तर अरु सौ सात ।
संबु प्रदुम्न कुमर द्वै भाय, अनिरुध आदि नमूं तसु पाय ॥
रामचंद्रके सुत द्वै वीर, लाडनरिंद आदि गुणधीर ।
पाँच कोडि मुनि मुक्ति मझार, पावागिरि वंदौं निरधार ॥

पांडव तीन द्रविड-राजान, आठ कोडि मुनि मुकति पयान।
श्रीशत्रुंजयगिरिके सीस, भावसहित वंदौं निश-दीस॥

जे बलभद्र मुकतिमें गये, आठ कोडि मुनि औरहु भये।
श्रीगजपंथ शिखर सुविशाल, तिनके चरण नमूं तिहुँ काल॥

राम हणू सुग्रीव सुडील, गव गवाख्य नील महानील।
कोडि निन्याणव मुक्ति पयान, तुंगीगिरि वंदौं धरि ध्यान॥

नंग अनंग कुमार सुजान, पाँच कोडि अरु अर्ध प्रमान।
मुक्ति गये सोनागिरि-शीश, ते वंदौं त्रिभुवनपति ईस॥

रावणके सुत आदिकुमार, मुक्ति गये रेवा-तट सार।
कोटि पंच अरु लाख पचास, ते वंदौं धरि परम हुलास॥

रेवानदी सिद्धवर कूट, पश्चिम दिशा देह जहँ छूट।
द्वै चक्री दश कामकुमार, ऊठकोडि वंदौं भव पार॥

बडवानी बडनयर सुचंग, दक्षिण दिशि गिरि चूल उतंग।
इंद्रजीत अरु कुंभ जु कर्ण, ते वंदौं भव-सायर-तर्ण॥

सुवरणभद्र आदि मुनि चार, पावागिरि-वर-शिखरमँझार।
चेलना-नदी-तीरके पास, मुक्ति गये वंदौं नित तास॥

फलहोडी बडगाम अनूप, पश्चिम दिशा द्रोणगिरि रूप।
गुरुदत्तादि मुनीसुर जहाँ, मुक्ति गये वंदौं नित तहाँ॥

बाल महाबाल मुनि दोय, नागकुमार मिले त्रय होय।
श्रीअष्टापद मुक्ति मँझार, ते वंदौं नित सुरत सँभार ॥

अचलापुरकी दिश ईसान, तहाँ मेंढ़गिरि नाम प्रधान।
साढ़े तीन कोडि मुनिराय, तिनके चरण नमूं चित लाय ॥

वंसस्थल वनके ढिग होय, पश्चिम दिशा कुंथुगिरि सोय।
कुलभूषण दिशिभूषण नाम, तिनके चरणनि करूँ प्रणाम ॥

जसरथ राजाके सुत कहे, देश कलिंग पाँचसौ लहे।
कोटिशिला मुनि कोटि प्रमान, वंदन करूँ जोर जुग पान ॥

समवसरण श्रीपार्श्व-जिनंद, रेसिंदीगिरि नयनानंद।
वरदत्तादि पंच ऋषिराज, ते वंदौं नित धरम-जिहाज ॥

तीन लोकके तीरथ जहाँ, नित प्रति वंदन कीजै तहाँ।
मन-वच-कायसहित सिर नाय, वंदन करहिं भविक गुण गाय ॥

संवत सतरहसौ इकताल, आश्विन सुदि दशमी सुविशाल।
'भैया' वंदन करहिं त्रिकाल, जय निर्वाणकांड गुणमाल ॥

[खण्ड ५]

स्वाध्याय-पाठ

श्रीजिनसहस्रनामस्तोत्रम्

[भगवज्जिनसेनाचार्य]

स्वयंभुवे नमस्तुभ्यमुत्पाद्यात्मानमात्मनि ।
स्वात्मनैव तथोद्भूतवृत्तयेऽचिन्त्यवृत्तये ॥ १ ॥

नमस्ते जगतां पत्ये लक्ष्मीभर्त्रे नमोऽस्तु ते ।
विदांवर नमस्तुभ्यं नमस्ते वदतांवर ॥ २ ॥

कर्मशत्रुहणं देवमामनन्ति मनीषिणः ।
त्वामानमत्सुरेण्मौलि-भा-मालाभ्यर्चित-क्रमम् ॥३ ॥

ध्यान-दुर्घण-निर्भिन्न-घन-घाति-महातरुः ।
अनन्त–भव–सन्तान–जयादासीरनन्तजित् ॥ ४ ॥

त्रैलोक्य-निर्जयावाप्त-दुर्दर्प्पमतिदुर्जयम् ।
मृत्युराजं विजित्यासीज्जिन मृत्युंजयो भवान् ॥ ५ ॥

विधुताशेष-संसार-बन्धनो भव्य-बान्धवः ।
त्रिपुरारिस्त्वमीशासि जन्म-मृत्युजरान्तकृत् ॥ ६ ॥

त्रिकाल-विजयाशेष-तत्त्वभेदात् त्रिधोत्थितम् ।
केवलाख्यं दधच्चक्षुस्त्रिनेत्रोऽसि त्वमीशिता ॥ ७ ॥

त्वामन्धकान्तकं प्राहुर्मोहान्धासुर-मर्द्दनात् ।
अर्द्धं ते नारयो यस्मादर्धनारीश्वरोऽस्यतः ॥ ८ ॥

शिवः शिव-पदाध्यासाद् दुरितारि-हरो हरः ।
शङ्करः कृतशं लोके शम्भवस्त्वं भवन्सुखे ॥ ९ ॥

वृषभोऽसि जगज्ज्येष्ठः पुरुः पुरु-गुणोदयैः ।
नाभेयो नाभि-सम्भूतेरिक्ष्वाकु-कुल-नन्दनः ॥ १० ॥

त्वमेकः पुरुषस्कंधस्त्वं द्वे लोकस्य लोचने ।
त्वं त्रिधा बुद्ध-सन्मार्गस्त्रिज्ञस्त्रिज्ञान-धारकः ॥११॥

चतुःशरण-माङ्गल्यमूर्तिस्त्वं चतुरस्रधीः ।
पञ्च-ब्रह्ममयो देव पावनस्त्वं पुनीहि माम् ॥१२॥

स्वर्गावतरणे तुभ्यं सद्योजातात्मने नमः ।
जन्माभिषेक-वामाय वामदेव नमोऽस्तु ते ॥१३॥

सन्निष्क्रान्तावघोराय परं प्रशममीयुषे ।
केवलज्ञान-संसिद्धावीशानाय नमोऽस्तु ते ॥१४॥

पुरस्तत्पुरुषत्वेन विमुक्त-पद-भागिने ।
नमस्तत्पुरुषावस्थां भाविनीं तेऽद्य बिभ्रते ॥१५॥

ज्ञानावरणनिर्ह्रासान्नमस्तेऽनन्तचक्षुषे ।
दर्शनावरणोच्छेदान्नमस्ते विश्वदृश्वने ॥१६॥

नमो दर्शनमोहघ्ने क्षायिकामलदृष्टये ।
नमश्चारित्रमोहघ्ने विरागाय महौजसे ॥१७॥

नमस्तेऽनन्त-वीर्याय नमोऽनन्त-सुखात्मने ।
नमस्तेऽनन्त-लोकाय लोकालोकावलोकिने ॥१८॥

नमस्तेऽनन्त-दानाय नमस्तेऽनन्त-लब्धये ।
नमस्तेऽनन्त-भोगाय नमोऽनन्तोपभोगिने ॥१९॥

नमः परम-योगाय नमस्तुभ्यमयोनये ।
नमः परम-पूताय नमस्ते परमर्षये ॥२०॥

नमः परम-विद्याय नमः पर-मत-च्छिदे ।
नमः परम-तत्त्वाय नमस्ते परमात्मने ॥२१॥

नमः परमरूपाय नमः परम-तेजसे ।
नमः परम-मार्गाय नमस्ते परमेष्ठिने ॥२२॥

परमर्द्धिजुषे धाम्ने परम-ज्योतिषे नमः ।
नमः पारेतमःप्राप्तधाम्ने परतरात्मने ॥२३॥

नमः क्षीण-कलङ्काय क्षीण-बन्ध नमोऽस्तु ते ।
नमस्ते क्षीण-मोहाय क्षीण-दोषाय ते नमः ॥२४॥

नमः सुगतये तुभ्यं शोभनां गतिमीयुषे ।
नमस्तेऽतीन्द्रिय-ज्ञान-सुखायानिन्द्रियात्मने ॥२५॥

काय-बन्धननिर्मोक्षादकायाय नमोऽस्तु ते ।
नमस्तुभ्यमयोगाय योगिनामधियोगिने ॥२६॥

अवेदाय नमस्तुभ्यमकषायाय ते नमः ।
नमः परम-योगीन्द्र-वन्दितांघ्रि-द्वयाय ते ॥२७॥

नमः परम-विज्ञान नमः परम-संयम ।
नमः परमदृग्दृष्ट-परमार्थाय तायिने ॥२८॥

नमस्तुभ्यमलेश्याय शुक्ललेश्यांशक-स्पृशे ।
नमो भव्येतरावस्थाव्यतीताय विमोक्षणे ॥२९॥

संज्ञ्यसंज्ञिद्वयावस्थाव्यतिरिक्तामलात्मने ।
नमस्ते वीतसंज्ञाय नमः क्षायिकदृष्टये ॥३०॥

अनाहाराय तृप्ताय नमः परमभाजुषे ।
व्यतीताशेषदोषाय भवाब्धेः पारमीयुषे ॥ ३१ ॥

अजराय नमस्तुभ्यं नमस्ते स्तादजन्मने ।
अमृत्यवे नमस्तुभ्यमचलायाक्षरात्मने ॥ ३२ ॥

अलमास्तां गुणस्तोत्रमनन्तास्तावका गुणाः ।
त्वां नामस्मृतिमात्रेण पर्युपासिसिषामहे ॥ ३३ ॥

एवं स्तुत्वा जिनं देवं भक्त्या परमया सुधीः
पठेदष्टोत्तरं नाम्नां सहस्रं पाप-शान्तये ॥ ३४ ॥

इति प्रस्तावना

प्रसिद्धाष्ट-सहस्रेद्धलक्षणं त्वां गिरां पतिम् ।
नाम्नामष्टसहस्रेण तोष्टुमोऽभीष्टसिद्धये ॥ १ ॥

श्रीमान्स्वयम्भूर्वृषभः शंभवः शंभुरात्मभूः ।
स्वयंप्रभः प्रभुर्भोक्ता विश्वभूरपुनर्भवः ॥ २ ॥

विश्वात्मा विश्वलोकेशो विश्वतश्चक्षुरक्षरः ।
विश्वविद्विश्वविद्येशो विश्वयोनिरनश्वरः ॥ ३ ॥

विश्वदृश्वा विभुर्धाता विश्वेशो विश्वलोचनः ।
विश्वव्यापी विधिर्वेधाः शाश्वतो विश्वतोमुखः ॥४॥

विश्वकर्मा जगज्ज्येष्ठो विश्वमूर्तिर्जिनेश्वरः ।
विश्वदृक् विश्वभूतेशो विश्वज्योतिरनीश्वरः ॥ ५ ॥

जिनो जिष्णुरमेयात्मा विश्वरीशो जगत्पतिः ।
अनन्तजिदचिन्त्यात्मा भव्यबन्धुरबन्धनः ॥ ६ ॥

युगादिपुरुषो ब्रह्मा पञ्चब्रह्ममयः शिवः ।
परः परतरः सूक्ष्मः परमेष्ठी सनातनः ॥ ७ ॥

स्वयंज्योतिरजोऽजन्मा ब्रह्मयोनिरयोनिजः ।
मोहारिविजयी जेता धर्मचक्री दयाध्वजः ॥ ८ ॥

प्रशान्तारिरनन्तात्मा योगी योगीश्वरार्चितः ।
ब्रह्मविद् ब्रह्मतत्त्वज्ञो ब्रह्मोद्याविद्यतीश्वरः ॥ ९ ॥

शुद्धो बुद्धः प्रबुद्धात्मा सिद्धार्थः सिद्धशासनः ।
सिद्धः सिद्धान्तविद् ध्येयः सिद्धसाध्यो जगद्धितः ॥१०॥

सहिष्णुरच्युतोऽनन्तः प्रभविष्णुर्भवोद्भवः ।
प्रभूष्णुरजरोऽजर्यो भ्राजिष्णुर्धीश्वरोऽव्ययः ॥११॥

विभावसुरसम्भूष्णुः स्वयम्भूष्णुः पुरातनः ।
परमात्मा परंज्योतिस्त्रिजगत्परमेश्वरः ॥१२॥

इति श्रीमदादिशतम् ॥ १ ॥

[प्रत्येक शतकके अन्तमें उदकचंदनतंदुल...आदि श्लोक पढ़कर अर्घ चढ़ाना चाहिये ।]

दिव्यभाषापतिर्दिव्यः पूतवाक्पूतशासनः ।
पूतात्मा परमज्योतिर्धर्माध्यक्षो दमीश्वरः ॥ १ ॥

श्रीपतिर्भगवानर्हन्नरजा विरजाः शुचिः ।
तीर्थकृत्केवलीशानः पूजार्हः स्नातकोऽमलः ॥ २ ॥

अनन्तदीप्तिर्ज्ञानात्मा स्वयम्बुद्धः प्रजापतिः ।
मुक्तः शक्तो निराबाधो निष्कलो भुवनेश्वरः ॥ ३ ॥

निरञ्जनो जगज्ज्योतिर्निरुक्तोक्तिरनामयः ।
अचलस्थितिरक्षोभ्यः कूटस्थः स्थाणुरक्षयः ॥ ४ ॥

अग्रणीर्ग्रामणीर्नेता प्रणेता न्यायशास्त्रकृत् ।
शास्ता धर्मपतिर्धर्म्यो धर्मात्मा धर्मतीर्थकृत् ॥ ५ ॥

वृषध्वजो वृषाधीशो वृषकेतुर्वृषायुधः ।
वृषो वृषपतिर्भर्ता वृषभाङ्को वृषोद्भवः ॥ ६ ॥

हिरण्यनाभिर्भूतात्मा भूतभृद् भूतभावनः ।
प्रभवो विभवो भास्वान् भवो भावो भवान्तकः ॥ ७ ॥
हिरण्यगर्भः श्रीगर्भः प्रभूतविभवोऽभवः ।
स्वयंप्रभः प्रभूतात्मा भूतनाथो जगत्पतिः ॥ ८ ॥
सर्वादिः सर्वदृक् सार्वः सर्वज्ञः सर्वदर्शनः ।
सर्वात्मा सर्वलोकेशः सर्ववित्सर्वलोकजित् ॥ ९ ॥
सुगतिः सुश्रुतः सुश्रुत् सुवाक् सूरिर्बहुश्रुतः ।
विश्रुतः विश्वतः पादो विश्वशीर्षः शुचिश्रवाः ॥१०॥
सहस्रशीर्षः क्षेत्रज्ञः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
भूतभव्यभवद्भर्ता विश्वविद्यामहेश्वरः ॥ ११ ॥

इति दिव्यादिशतम् ॥ २ ॥ अर्घम् ।

स्थविष्ठः स्थविरो ज्येष्ठः पृष्ठः प्रेष्ठो वरिष्ठधीः ।
स्थेष्ठो गरिष्ठो बंहिष्ठः श्रेष्ठोऽणिष्ठो गरिष्ठगीः ॥१॥
विश्वमुद्विश्वसृट् विश्वेट् विश्वभुग्विश्वनायकः
विश्वाशीर्विश्वरूपात्मा विश्वजिद्विजितान्तकः ॥ २ ॥
विभवो विभयो वीरो विशोको विजरो जरन् ।
विरागो विरतोऽसङ्गो विविक्तो वीतमत्सरः ॥ ३ ॥
विनयेजनताबन्धुर्विलीनाशेषकल्मषः ।
वियोगो योगविद्विद्वान्विधाता सुविधिः सुधीः ॥४॥

क्षान्तिभाक्पृथिवीमूर्तिः शान्तिभाक् सलिलात्मकः ।
वायुमूर्तिरसङ्गात्मा वह्निमूर्तिरधर्मधक् ॥ ५ ॥

सुयज्वा यजमानात्मा सुत्वा सुत्रामपूजितः ।
ऋत्विग्यज्ञपतिर्यज्ञो यज्ञाङ्गममृतं हविः ॥ ६ ॥

व्योममूर्तिरमूर्तात्मा निर्लेपो निर्मलोऽचलः ।
सोममूर्तिः सुसौम्यात्मा सूर्यमूर्तिर्महाप्रभः ॥ ७ ॥

मन्त्रविन्मन्त्रकृन्मन्त्री मन्त्रमूर्तिरनन्तगः ।
स्वतन्त्रस्तन्त्रकृत्स्वन्तः कृतान्तान्तः कृतान्तकृत् ॥८॥

कृती कृतार्थः सत्कृत्यः कृतकृत्यः कृतक्रतुः ।
नित्यो मृत्युञ्जयो मृत्युरमृतात्माऽमृतोद्भवः ॥ ९ ॥

ब्रह्मनिष्ठः परंब्रह्म ब्रह्मात्मा ब्रह्मसम्भवः ।
महाब्रह्मपतिर्ब्रह्मेट् महाब्रह्मपदेश्वरः ॥१०॥

सुप्रसन्नः प्रसन्नात्मा ज्ञानधर्मदमप्रभुः ।
प्रशमात्मा प्रशान्तात्मा पुराणपुरुषोत्तमः ॥११॥

इति स्थविष्ठादिशतम् ॥ ३ ॥ अर्घम् ।

महाशोकध्वजोऽशोकः कः स्रष्टा पद्मविष्टरः ।
पद्मेशः पद्मसम्भूतिः पद्मनाभिरनुत्तरः ॥ १ ॥

पद्मयोनिर्जगद्योनिरित्यः स्तुत्यः स्तुतीश्वरः ।
स्तवनार्हो हृषीकेशो जितजेयः कृतक्रियः ॥ २ ॥

गणाधिपो गणज्येष्ठो गण्यः पुण्यो गणाग्रणीः ।
गुणाकरो गुणाम्भोधिर्गुणज्ञो गुणनायकः ॥ ३ ॥

गुणादरी गुणोच्छेदी निर्गुणः पुण्यगीर्गुणः ।
शरण्यः पुण्यवाक्पूतो वरेण्यः पुण्यनायकः ॥ ४ ॥

अगण्यः पुण्यधीर्गुण्यः पुण्यकृत्पुण्यशासनः ।
धर्मारामो गुणग्रामः पुण्यापुण्यनिरोधकः ॥ ५ ॥

पापापेतो विपापात्मा विपाप्मा वीतकल्मषः ।
निर्द्वन्द्वो निर्मदः शान्तो निर्मोहो निरुपद्रवः ॥ ६ ॥

निर्निमेषो निराहारो निष्क्रियो निरुपप्लवः ।
निष्कलङ्को निरस्तैना निर्धूतागा निरास्रवः ॥ ७ ॥

विशालो विपुलज्योतिरतुलोऽचिन्त्यवैभवः ।
सुसंवृतः सुगुप्तात्मा सुभुत् सुनयतत्त्ववित् ॥ ८ ॥

एकविद्यो महाविद्यो मुनिः परिवृढः पतिः ।
धीशो विद्यानिधिः साक्षी विनेता विहतान्तकः ॥९॥

पिता पितामहः पाता पवित्रः पावनो गतिः ।
त्राता भिषग्वरो वर्यो वरदः परमः पुमान् ॥१०॥

कविः पुराणपुरुषो वर्षीयान्वृषभः पुरुः ।
प्रतिष्ठाप्रसवो हेतुर्भुवनैकपितामहः ॥११॥

इति महाशोकध्वजादिशतम् ॥ ४ ॥ अर्घम् ।

श्रीवृक्षलक्षणः श्लक्ष्णो लक्षण्यः शुभलक्षणः ।
निरक्षः पुण्डरीकाक्षः पुष्कलः पुष्करेक्षणः ॥ १ ॥

सिद्धिदः सिद्धसङ्कल्पः सिद्धात्मा सिद्धसाधनः।
बुद्धबोध्यो महाबोधिर्वर्धमानो महर्द्धिकः ॥ २ ॥

वेदाङ्गो वेदविद्वेद्यो जातरूपो विदांवरः ।
वेदवेद्यः स्वसंवेद्यो विवेदो वदतांवरः ॥ ३ ॥

अनादिनिधनोऽव्यक्तो व्यक्तवाग्व्यक्तशासनः ।
युगादिकृद्युगाधारो युगादिर्जगदादिजः ॥ ४ ॥

अतीन्द्रोऽतीन्द्रियो धीन्द्रो महेन्द्रोऽतीन्द्रियार्थदृक्
अनिन्द्रियोऽहमिन्द्रार्च्यो महेन्द्रमहितो महान् ॥५॥

उद्भवः कारणं कर्ता पारगो भवतारकः ।
अग्राह्यो गहनं गुह्यं परार्घ्यः परमेश्वरः ॥ ६ ॥

अनन्तर्द्धिरमेयर्द्धिरचिन्त्यर्द्धिः समग्रधीः ।
प्राग्र्यः प्राग्रहरोऽभ्यग्रः प्रत्यग्रोऽग्र्यऽग्रिमोऽग्रजः ॥७॥

महातपा महातेजा महोदर्को महोदयः ।
महायशा महाधामा महासत्त्वो महाधृतिः ॥ ८ ॥

महाधैर्यो महावीर्यो महासम्पन्महाबलः ।
महाशक्तिर्महाज्योतिर्महाभूतिर्महाद्युतिः ॥ ९ ॥

महामतिर्महानीतिर्महाक्षान्तिर्महादयः ।
महाप्राज्ञो महाभागो महानन्दो महाकविः ॥१०॥

महामहा महाकीर्तिर्महाकान्तिर्महावपुः ।
महादानो महाज्ञानो महायोगो महागुणः ॥११॥

महामहपतिः प्राप्तमहाकल्याणपञ्चकः ।
महाप्रभुर्महाप्रातिहार्याधीशो महेश्वरः ॥ १२ ॥

इति श्रीवृक्षादिशतम् ॥ ५ ॥ अर्घम् ।

महामुनिर्महामौनी महाध्यानी महादमः ।
महाक्षमो महाशीलो महायज्ञो महामखः ॥१॥

महाव्रतपतिर्मह्यो महाकान्तिधरोऽधिपः ।
महामैत्री महामेयो महोपायो महोमयः ॥२॥

महाकारुण्यको मन्ता महामन्त्रो महायतिः ।
महानादो महाघोषो महेज्यो महसांपतिः ॥३॥

महाध्वरधरो धुर्यो महौदार्यो महिष्ठवाक् ।
महात्मा महसांधाम महर्षिर्महितोदयः ॥४॥

महाक्लेशाङ्कुशः शूरो महाभूतपतिर्गुरुः ।
महापराक्रमोऽनन्तो महाक्रोधरिपुर्वशी ॥५॥

महाभवाब्धिसन्तारिर्महामोहाद्रिसूदनः ।
महागुणाकरः क्षान्तो महायोगीश्वरः शमी ॥६॥

महाध्यानपतिर्ध्यातमहाधर्मा महाव्रतः ।
महाकर्मारिहाऽऽत्मज्ञो महादेवो महेशिता ॥७॥

सर्वक्लेशापहः साधुः सर्वदोषहरो हरः ।
असंख्येयोऽप्रमेयात्मा शमात्मा प्रशमाकरः ॥८॥

सर्वयोगीश्वरोऽचिन्त्यः श्रुतात्मा विष्टरश्रवाः ।
दान्तात्मा दमतीर्थेशो योगात्मा ज्ञानसर्वगः ॥९॥

प्रधानमात्मा प्रकृतिः परमः परमोदयः ।
प्रक्षीणबन्धः कामारिः क्षेमकृत्क्षेमशासनः ॥१०॥

प्रणवः प्रणयः प्राणः प्राणदः प्रणतेश्वरः ।
प्रमाणं प्रणिधिर्दक्षो दक्षिणोऽध्वर्युरध्वरः ॥११॥

आनन्दो नन्दनो नन्दो वन्द्योऽनिन्द्योऽभिनन्दनः ।
कामहा कामदः काम्यः कामधेनुररिञ्जयः ॥१२॥

इति महामुन्यादिशतम् ॥६ अर्घम् ।

असंस्कृतसुसंस्कारः प्राकृतो वैकृतान्तकृत् ।
अन्तकृत्कान्तगुः कान्तश्चिन्तामणिरभीष्टदः ॥ १ ॥

अजितो जितकामारिरमितोऽमितशासनः ।
जितक्रोधो जितामित्रो जितक्लेशो जितान्तकः ॥२॥

जिनेन्द्रः परमानन्दो मुनीन्द्रो दुन्दुभिस्वनः ।
महेन्द्रवन्द्यो योगीन्द्रो यतीन्द्रो नाभिनन्दनः ॥३॥

नाभेयो नाभिजोऽजातः सुव्रतो मनुरुत्तमः ।
अभेद्योऽनत्ययोऽनाश्वानधिकोऽधिगुरुः सुधीः ॥४॥
सुमेधा विक्रमी स्वामी दुराधर्षो निरुत्सुकः ।
विशिष्टः शिष्टभुक् शिष्टः प्रत्ययः कामनोऽनघः ॥५॥
क्षेमी क्षेमङ्करोऽक्षय्यः क्षेमधर्मपतिः क्षमी ।
अग्राह्यो ज्ञाननिग्राह्यो ध्यानगम्यो निरुत्तरः ॥६॥
सुकृती धातुरिज्यार्हः सुनयश्चतुराननः ।
श्रीनिवासश्चतुर्वक्त्रश्चतुरास्यश्चतुर्मुखः ॥ ७ ॥
सत्यात्मा सत्यविज्ञानः सत्यवाक्सत्यशासनः ।
सत्याशीः सत्यसन्धानः सत्यः सत्यपरायणः ॥८॥
स्थेयान्स्थवीयान्नेदीयान्दवीयान् दूरदर्शनः ।
अणोरणीयाननणुर्गुरुराद्यो गरीयसां ॥९॥
सदायोगः सदाभोगः सदातृप्तः सदाशिवः ।
सदागतिः सदासौख्यः सदाविद्यः सदोदयः ॥१०॥
सुघोषः सुमुखः सौम्यः सुखदः सुहितः सुहृत् ।
सुगुप्तो गुप्तिभृद् गोप्ता लोकाध्यक्षो दमीश्वरः ॥११॥

इति असंस्कृतादिशतम् ॥७॥ अर्घम् ।

बृहद्बृहस्पतिर्वाग्मी वाचस्पतिरुदारधीः ।
मनीषी धिषणो धीमांञ्छेमुषीशो गिरांपतिः ॥१॥

नैकरूपो नयोत्तुङ्गो नैकात्मा नैकधर्मकृत् ।
अविज्ञेयोऽप्रतर्क्यात्मा कृतज्ञः कृतलक्षणः ॥२॥

ज्ञानगर्भो दयागर्भो रत्नगर्भः प्रभास्वरः ।
पद्मगर्भो जगद्गर्भो हेमगर्भः सुदर्शनः ॥३॥

लक्ष्मीवांस्त्रिदशाध्यक्षो दृढीयानिन ईशिता ।
मनोहरो मनोज्ञाङ्गो धीरो गम्भीरशासनः ॥४॥

धर्मयूपो दयायागो धर्मनेमिर्मुनीश्वरः ।
धर्मचक्रायुधो देवः कर्महा धर्मघोषणः ॥५॥

अमोघवागमोघाज्ञो निर्मलोऽमोघशासनः ।
सुरूपः सुभगस्त्यागी समयज्ञः समाहितः ॥६॥

सुस्थितः स्वास्थ्यभाक्स्वस्थो नीरजस्को निरुद्धवः।
अलेपो निष्कलङ्कात्मा वीतरागो गतस्पृहः ॥७॥

वश्येन्द्रियो विमुक्तात्मा निःसपत्नो जितेन्द्रियः ।
प्रशान्तोऽनन्तधामर्षिर्मङ्गलं मलहानघः ॥८॥

अनीदृगुपमाभूतो दृष्टिर्दैवमगोचरः ।
अमूर्तो मूर्तिमानेको नैको नानैकतत्त्वदृक् ॥९॥

अध्यात्मगम्यो गम्यात्मा योगविद्योगिवन्दितः ।
सर्वत्रगः सदाभावी त्रिकालविषयार्थदृक् ॥१०॥

शङ्करः शंवदो दान्तो दमी क्षान्तिपरायणः ।
अधिपः परमानन्दः परात्मज्ञः परात्परः ॥११॥
त्रिजगद्वल्लभोऽभ्यर्च्यस्त्रिजगन्मङ्गलोदयः ।
त्रिजगत्पतिपूज्यांघ्रिस्त्रिलोकाग्रशिखामणिः ॥१२॥

इति बृहदादिशतम् ॥ ८ ॥ अर्घम् ।

त्रिकालदर्शी लोकेशो लोकधाता दृढव्रतः ।
सर्वलोकातिगः पूज्यः सर्वलोकैकसारथिः ॥१॥
पुराणः पुरुषः पूर्वः कृतपूर्वाङ्गविस्तरः ।
आदिदेवः पुराणाद्यः पुरुदेवोऽधिदेवता ॥२॥
युगमुख्यो युगज्येष्ठो युगादिस्थितिदेशकः ।
कल्याणवर्णः कल्याणः कल्यः कल्याणलक्षणः ॥३॥
कल्याणप्रकृतिर्दीप्रकल्याणात्मा विकल्मषः ।
विकलङ्कः कलातीतः कलिलघ्नः कलाधरः ॥४॥
देवदेवो जगन्नाथो जगद्बन्धुर्जगद्विभुः ।
जगद्धितैषी लोकज्ञः सर्वगो जगदग्रजः ॥५॥
चराचरगुरुर्गोप्यो गूढात्मा गूढगोचरः ।
सद्योजातः प्रकाशात्मा ज्वलज्ज्वलनसप्रभः ॥६॥
आदित्यवर्णो भर्माभः सुप्रभः कनकप्रभः ।
सुवर्णवर्णो रुक्माभः सूर्यकोटिसमप्रभः ॥७॥

तपनीयनिभस्तुङ्गो बालार्काभोऽनलप्रभः ।
सन्ध्याभ्रबभ्रुर्हेमाभस्तप्तचामीकरच्छविः ॥ ८ ॥

निष्टप्तकनकच्छायः कनत्काञ्चनसन्निभः ।
हिरण्यवर्णः स्वर्णाभः शातकुम्भनिभप्रभः ॥ ९ ॥

द्युम्नाभो जातरूपाभस्तप्तजाम्बूनदद्युतिः ।
सुधौतकलधौतश्रीः प्रदीप्तो हाटकद्युतिः ॥ १० ॥

शिष्टेष्टः पुष्टिदः पुष्टः स्पष्टः स्पष्टाक्षरः क्षमः ।
शत्रुघ्नोऽप्रतिघोऽमोघः प्रशास्ता शासिता स्वभूः॥११॥

शान्तिनिष्ठो मुनिज्ज्येष्ठः शिवतातिः शिवप्रदः ।
शान्तिदः शान्तिकृच्छान्तिः कान्तिमान्कामितप्रदः॥१२॥

श्रेयोनिधिरधिष्ठानमप्रतिष्ठः प्रतिष्ठितः ।
सुस्थिरः स्थावरः स्थाणुः प्रथीयान्प्रथितः पृथुः ॥१३॥

इति त्रिकालदर्श्यादिशतम् ॥ ९ ॥ अर्घम् ।

दिग्वासा वातरशनो निर्ग्रन्थेशो निरम्बरः ।
निष्किञ्चनो निराशंसो ज्ञानचक्षुरमोमुहः ॥ १ ॥

तेजोराशिरनन्तौजा ज्ञानाब्धिः शीलसागरः ।
तेजोमयोऽमितज्योतिर्ज्योतिमूर्तिस्तमोपहः ॥ २ ॥

जगच्चूडामणिर्दीप्तः शंवान्विघ्नविनायकः ।
कलिघ्नः कर्मशत्रुघ्नो लोकालोकप्रकाशकः ॥ ३ ॥

अनिद्रालुरतन्द्रालुर्जागरूकः प्रमामयः ।
लक्ष्मीपतिर्जगज्ज्योतिर्धर्मराजः प्रजाहितः ॥ ४ ॥

मुमुक्षुर्बन्धमोक्षज्ञो जिताक्षो जितमन्मथः ।
प्रशान्तरसशैलूषो भव्यपेटकनायकः ॥ ५ ॥

मूलकर्ताऽखिलज्योतिर्मलघ्नो मूलकारणम् ।
आप्तो वागीश्वरः श्रेयाञ्छ्रायसोक्तिर्निरुक्तवाक् ॥६॥

प्रवक्ता वचसामीशो मारजिद्विश्वभाववित् ।
सुतनुस्तनुनिर्मुक्तः सुगतो हतदुर्नयः ॥ ७ ॥

श्रीशः श्रीश्रितपादाब्जो वीतभीरभयङ्करः ।
उत्सन्नदोषो निर्विघ्नो निश्चलो लोकवत्सलः ॥ ८ ॥

लोकोत्तरो लोकपतिर्लोकचक्षुरपारधीः ।
धीरधीर्बुद्धसन्मार्गः शुद्धः सूनृतपूतवाक् ॥ ९ ॥

प्रज्ञापारमितः प्राज्ञो यतिर्नियमितेन्द्रियः ।
भदन्तो भद्रकृद्भद्रः कल्पवृक्षो वरप्रदः ॥ १० ॥

समुन्मूलितकर्मारिः कर्मकाष्ठाशुशुक्षणिः ।
कर्मण्यः कर्मठः प्रांशुर्हेयादेयविचक्षणः ॥ ११ ॥

अनन्तशक्तिरच्छेद्यस्त्रिपुरारिस्त्रिलोचनः ।
त्रिनेत्रस्त्र्यम्बकस्त्र्यक्षः केवलज्ञानवीक्षणः ॥१२॥

समन्तभद्रः शान्तारिर्धर्माचार्यो दयानिधिः ।
सूक्ष्मदर्शी जितानङ्गः कृपालुर्धर्मदेशकः ॥१३॥
शुभंयुः सुखसाद्भूतः पुण्यराशिरनामयः ।
धर्मपालो जगत्पालो धर्मसाम्राज्यनायकः ॥१४॥

इति दिग्वासाद्यष्टोत्तरशतम् ॥ १० ॥ अर्घम् ।

धाम्नां पते तवामूनि नामान्यागमकोविदैः ।
समुच्चितान्यनुध्यायन्पुमान्पूतस्मृतिर्भवेत् ॥ १ ॥
गोचरोऽपि गिरामासां त्वमवाग्गोचरो मतः ।
स्तोता तथाप्यसंदिग्धं त्वत्तोऽभीष्टफलं भजेत् ॥२॥
त्वमतोऽसि जगद्बन्धुः त्वमतोऽसि जगद्भिषक् ।
त्वमतोऽसि जगद्धाता त्वमतोऽसि जगद्धितः ॥३॥
त्वमेकं जगतां ज्योतिस्त्वं द्विरूपोपयोगभाक् ।
त्वं त्रिरूपैकमुक्त्यङ्गः स्वोत्थानन्तचतुष्टयः ॥४॥
त्वं पञ्चब्रह्मतत्त्वात्मा पञ्चकल्याणनायकः ।
षड्भेदभावतत्त्वज्ञस्त्वं सप्तनयसंग्रहः ॥५॥
दिव्याष्टगुणमूर्तिस्त्वं नवकेवललब्धिकः ।
दशावतारनिर्धार्यो मां पाहि परमेश्वर ॥६॥
युष्मन्नामावलीदृब्धविलसत्स्तोत्रमालया ।
भवन्तं परिवस्यामः प्रसीदानुगृहाण नः ॥७॥

इदं स्तोत्रमनुस्मृत्य पूतो भवति भाक्तिकः ।
यः संपाठं पठत्येनं स स्यात्कल्याणभाजनम् ॥८॥

ततः सदेदं पुण्यार्थी पुमान्पठति पुण्यधीः ।
पौरुहूतीं श्रियं प्राप्तुं परमामभिलाषुकः ॥९॥

स्तुत्वेति मघवा देवं चराचरजगद्गुरुम् ।
ततस्तीर्थविहारस्य व्यधात्प्रस्तावनामिमाम् ॥१०॥

स्तुतिः पुण्यगुणोत्कीर्तिः स्तोता भव्यः प्रसन्नधीः ।
निष्ठितार्थो भवांस्तुत्यः फलं नैश्रेयसं सुखम् ॥११॥

यः स्तुत्यो जगतां त्रयस्य न पुनः स्तोता स्वयं कस्यचित्
ध्येयो योगिजनस्य यश्च नितरां ध्याता स्वयं कस्यचित् ॥
यो नेतॄन् नयते नमस्कृतिमलं नन्तव्यपक्षेक्षणः
स श्रीमान् जगतां त्रयस्य च गुरुर्देवः पुरुः पावनः ॥१२॥

तं देवं त्रिदशाधिपार्चितपदं घातिक्षयानन्तर-
प्रोत्थानन्तचतुष्टयं जिनमिनं भव्याब्जिनीनामिनम् ।
मानस्तम्भविलोकनानतजगन्मान्यं त्रिलोकीपतिं
प्राप्ताचिन्त्यबहिर्विभूतिमनघं भक्त्या प्रवन्दामहे ॥१३॥

[पुष्पांजलिं क्षिपामि ।]

तत्त्वार्थसूत्रम्

[आचार्य गृद्धपिच्छ]

मोक्षमार्गस्य नेतारं भेत्तारं कर्मभूभृताम् ।
ज्ञातारं विश्वतत्त्वानां वन्दे तद्गुणलब्धये ॥

त्रैकाल्यं द्रव्य-षट्कं नव-पद-सहितं जीव-षट्काय-लेश्याः
पञ्चान्ये चास्तिकाया व्रत-समिति-गति-ज्ञान-चारित्र-भेदाः ।
इत्येतन्मोक्षमूलं त्रिभुवन-महितैः प्रोक्तमर्हद्भिरीशैः
प्रत्येति श्रद्दधाति स्पृशति च मतिमान् यः स वै शुद्धदृष्टिः ॥१॥

सिद्धे जयप्पसिद्धे चउविहाराहणफलं पत्ते ।
वंदित्ता अरहंते वोच्छं आराहणा कमसो ॥२॥

उज्जोवणमुज्जवणं णिव्वहणं साहणं च णिच्छरणं ।
दंसण-णाण-चरित्तं तवाणमाराहणा भणिया ॥३॥

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्ष-मार्गः ॥१॥ तत्त्वार्थ-श्रद्धानं सम्यग्दर्शनम् ॥२॥ तन्निसर्गादधिगमाद्वा ॥३॥ जीवाजीवास्रव-बन्ध-संवर-निर्जरा-मोक्षास्तत्त्वम् ॥४॥ नाम-स्थापना-द्रव्य-भावतस्तन्न्यासः॥५॥ प्रमाण-नयैरधिगमः॥६॥ निर्देश-स्वामित्व-साधनाधिकरण - स्थिति-विधानतः ॥ ७ ॥ सत्संख्या-क्षेत्र-स्पर्शन-कालान्तर-भावाल्पबहुत्वैश्च ॥८॥ मति-श्रुतावधि-मनःपर्यय-केवलानि ज्ञानम् ॥९॥ तत्प्रमाणे ॥१०॥ आद्ये परोक्षम् ॥११॥ प्रत्यक्षमन्यत्॥१२॥मतिः स्मृतिः संज्ञा चिन्ताभिनिबोध इत्यनर्थान्तरम् ॥१३॥ तदिन्द्रियानिन्द्रिय-

निमित्तम् ॥१४॥ अवग्रहेहावाय-धारणाः॥१५॥ बहु-बहुविध-क्षिप्रानिःसृतानुक्त-ध्रुवाणां सेतराणाम् ॥१६॥ अर्थस्य॥१७॥ व्यञ्जनस्यावग्रहः ॥१८॥ न चक्षुरनिन्द्रियाभ्याम् ॥१९॥ श्रुतं मति-पूर्वं द्व्यनेक-द्वादश-भेदम्॥२०। भव-प्रत्ययोऽवधिर्देव-नारकाणाम्॥२१।क्षयोपशम-निमित्तः षड्विकल्पः शेषाणाम्॥२२॥ ऋजु-विपुलमती मनःपर्ययः ॥२३॥ विशुद्ध्यप्रतिपाताभ्यां तद्विशेषः ॥ २४ ॥ विशुद्धि-क्षेत्र-स्वामि-विषयेभ्योऽवधि-मनःपर्यययोः॥२५॥मति-श्रुतयोर्निबन्धो द्रव्येष्वसर्व-पर्यायेषु॥२६॥ रूपिष्ववधेः॥२७॥तदनन्त-भागे मनःपर्ययस्य ॥२८॥ सर्व-द्रव्य-पर्यायेषु केवलस्य ॥२९॥ एकादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्नाचतुर्भ्यः ॥ ३० ॥ मति-श्रुतावधयो विपर्ययश्च ॥ ३१ ॥ सदसतोरविशेषाद्यदृच्छोपलब्धेरुन्मत्तवत् ॥ ३२ ॥ नैगम-संग्रह-व्यवहारर्जु-सूत्र-शब्द-समभिरूढैवम्भूता नयाः ॥३३॥

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

औपशमिक-क्षायिकौ भावौ मिश्रश्च जीवस्य स्वतत्त्वमौदयिक-पारिणामिकौ च ॥ १ ॥ द्वि-नवाष्टादशैकविंशति-त्रि-भेदा यथाक्रमम् ॥ २ ॥ सम्यक्त्व-चारित्रे ॥ ३ ॥ ज्ञान-दर्शन-दान-लाभ-भोगोपभोग-वीर्याणि च ॥ ४ ॥ ज्ञानाज्ञानदर्शन-लब्धयश्चतुस्त्रित्रि-पञ्च-भेदाः सम्यक्त्व-चारित्र-संयमासंयमाश्च ॥ ५ ॥ गति-कषाय-लिङ्ग-मिथ्यादर्शनाज्ञाना-

संयतासिद्ध-लेश्याश्चतुश्चतुस्त्र्येकैकैकैक-षड्भेदाः ॥ ६ ॥ जीव-भव्याभव्यत्वानि च ॥ ७ ॥ उपयोगो लक्षणम् ॥ ८ ॥ स द्विविधोऽष्ट-चतुर्भेदः ॥ ९ ॥ संसारिणो मुक्ताश्च ॥ १० ॥ समनस्कामनस्काः ॥ ११ ॥ संसारिणस्त्रस-स्थावराः ॥१२॥ पृथिव्यप्तेजो-वायु-वनस्पतयः स्थावराः ॥१३॥ द्वीन्द्रियादय-स्त्रसाः ॥ १४ ॥ पञ्चेन्द्रियाणि ॥१५॥ द्विविधानि ॥१६॥ निर्वृत्त्युपकरणे द्रव्येन्द्रियम् ॥ १७ ॥ लब्ध्युपयोगौ भावेन्द्रियम्॥१८॥ स्पर्शन-रसन-घ्राण-चक्षुः-श्रोत्राणि ॥१९॥ स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण-शब्दास्तदर्थाः ॥ २० ॥ श्रुतमनिन्द्रियस्य ॥२१॥ वनस्पत्यन्तानामेकम् ॥२२॥ कृमि-पिपीलिका-भ्रमर-मनुष्यादीनामेकैक-वृद्धानि ॥२३॥ संज्ञिनः समनस्काः ॥२४॥ विग्रह-गतौ कर्म-योगः ॥ २५ ॥ अनुश्रेणि गतिः ॥ २६ ॥ अविग्रहा जीवस्य ॥ २७ ॥ विग्रहवती च संसारिणः प्राक् चतुर्भ्यः ॥ २८ ॥ एकसमयाऽविग्रहा ॥ २९ ॥ एकं द्वौ त्रीन्वानाहारकः ॥३०॥ संमूर्छन-गर्भोपपादा जन्म ॥ ३१ ॥ सचित्त-शीत-संवृताः सेतरा मिश्राश्चैकशस्तद्योनयः ॥ ३२ ॥ जरायुजाण्डज-पोतानां गर्भः ॥ ३३ ॥ देव-नारकाणा-मुपपादः ॥ ३४ ॥ शेषाणां सम्मूर्च्छनम् ॥ ३५ ॥ औदारिक-वैक्रियिकाहारक-तैजस-कार्मणानि शरीराणि ॥ ३६ ॥ परं परं सूक्ष्मम् ॥३७॥ प्रदेशतोऽसंख्येयगुणं प्राक् तैजसात् ॥३८॥

अनन्त-गुणे परे ॥ ३९ ॥ अप्रतीघाते ॥ ४० ॥ अनादि-सम्बन्धे च ॥ ४१ ॥ सर्वस्य ॥ ४२ ॥ तदादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्नाचतुर्भ्यः ॥ ४३ ॥ निरुपभोग-मन्त्यम् ॥ ४४ ॥ गर्भसंमूर्च्छनजमाद्यम् ॥४५॥ औपपादिकं वैक्रियिकम् ॥४६॥ लब्धि-प्रत्ययं च ॥४७॥ तैजसमपि ॥४८॥ शुभं विशुद्धमव्याघाति चाहारकं प्रमत्तसंयतस्यैव ॥ ४९ ॥ नारक-संमूर्च्छिनो नपुंसकानि ॥ ५० ॥ न देवाः ॥ ५१ ॥ शेषास्त्रिवेदाः ॥ ५२ ॥ औपपादिक-चरमोत्तमदेहाऽसंख्येय-वर्षायुषोऽनपवर्त्यायुषः ॥ ५३ ॥

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

रत्न-शर्करा-बालुका-पङ्क-धूम-तमो-महातमः-प्रभा-भूमयो घनाम्बुवाताकाश-प्रतिष्ठाः सप्ताऽधोऽधः ॥ १ ॥ तासु त्रिंश-त्पंचविंशति-पंचदश-दश-त्रि-पञ्चोनैक-नरक-शतसहस्राणि पञ्च चैव यथाक्रमम् ॥२॥ नारका नित्याऽशुभतर-लेश्या-परिणाम-देह-वेदना-विक्रियाः ॥ ३ ॥ परस्परोदीरित-दुःखाः ॥ ४ ॥ संक्लिष्टाऽसुरोदीरित-दुखाश्च प्राक् चतुर्थ्याः ॥ ५ ॥ तेष्वेक-त्रि-सप्त-दश-सप्तदश-द्वाविंशति - त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमा सत्त्वानां परा स्थितिः ॥ ६ ॥ जंबूद्वीप-लवणोदादयः शुभ-नामानो द्वीप-समुद्राः॥७॥द्विर्द्विर्विष्कम्भाः पूर्व-पूर्व-परिक्षेपिणो वलयाकृतयः ॥८॥ तन्मध्ये मेरु-नाभिर्वृत्तो योजन-शतसहस्र-

विष्कम्भो जम्बूद्वीपः ॥ ९ ॥ भरत-हैमवत-हरि-विदेह-रम्यक-हैरण्यवतैरावतवर्षाः क्षेत्राणि ॥१०॥ तद्विभाजिनः पूर्वापरायता हिमवन्महाहिमवन्निषध-नील-रुक्मि-शिखरिणो वर्षधर-पर्वताः ॥११॥ हेमार्जुन-तपनीय-वैडूर्य-रजत-हेममयाः ॥१२॥ मणिविचित्र-पार्श्वा उपरिमूले च तुल्य-विस्ताराः ॥ १३ ॥ पद्म-महापद्म-तिगिंछ-केशरि-महापुण्डरीक-पुण्डरीका ह्रदास्तेषामुपरि ॥ १४ ॥ प्रथमो योजन-सहस्रायामस्तदर्द्धविष्कम्भो ह्रदः ॥ १५ ॥ दश-योजनावगाहः ॥ १६ ॥ तन्मध्ये योजनं पुष्करम् ॥१७॥ तद्द्विगुण-द्विगुणा ह्रदाः पुष्कराणि च ॥१८॥ तन्निवासिन्यो देव्यः श्री-ह्री-धृति-कीर्ति-बुद्धि-लक्ष्म्यः पल्योपमस्थितयः ससामानिक-परिषत्काः ॥ १९ ॥ गङ्गा-सिन्धु-रोहिद्रोहितास्या-हरिद्धरिकान्ता-सीता-सीतोदा-नारी-नरकान्ता-सुवर्ण-रूप्यकूला-रक्ता-रक्तोदाः सरितस्तन्मध्यगाः ॥ २० ॥ द्वयोर्द्वयोः पूर्वाः पूर्वगाः ॥ २१ ॥ शेषास्त्वपरगाः ॥ २२ ॥ चतुर्दश-नदी-सहस्र-परिवृता गंगा-सिन्ध्वादयो नद्यः ॥२३॥ भरतः षड्विंशति-पंचयोजनशत-विस्तारः षट् चैकोनविंशति-भागा योजनस्य॥२४॥ तद्द्विगुण-द्विगुण-विस्तारा वर्षधर-वर्षा विदेहान्ताः॥२५॥ उत्तरा दक्षिण-तुल्याः॥२६॥ भरतैरावतयोर्वृद्धि-ह्रासौ षट्-समयाभ्यामुत्सर्पिण्यवसर्पिणीभ्याम् ॥ २७ ॥ ताभ्यामपरा भूमयोऽवस्थिताः ॥ २८ ॥ एक-द्वि-त्रि-

पल्योपम-स्थितयो हैमवतक-हारिवर्षक-दैवकुरवकाः ॥ २६ ॥ तथोत्तराः ॥ ३० ॥ विदेहेषु संख्येय-कालाः ॥३१॥ भरतस्य विष्कम्भो जम्बूद्वीपस्य नवति-शत-भागः ॥ ३२ ॥ द्विर्धातकीखण्डे ॥३३॥ पुष्करार्द्धे च ॥३४॥ प्राङ्मानुषोत्तरान्मनुष्याः ॥ ३५ ॥ आर्या म्लेच्छाश्च ॥ ३६ ॥ भरतैरावत-विदेहाः कर्मभूमयोऽन्यत्र देवकुरूत्तरकुरुभ्यः॥३७॥ नृस्थिती परावरे त्रिपल्योपमान्तर्मुहूर्ते ॥ ३८ ॥ तिर्यग्योनिजानां च ॥ ३६ ॥

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

देवाश्चतुर्णिकायाः॥१॥आदितस्त्रिषु पीतान्त-लेश्याः॥२॥ दशाष्ट-पञ्च-द्वादश-विकल्पाः कल्पोपपन्न-पर्यन्ताः ॥३॥ इन्द्र-सामानिक - त्रायस्त्रिंश-पारिषदात्मरक्ष - लोकपालानीक-प्रकीर्णकाभियोग्य-किल्विषिकाश्चैकशः ॥४॥ त्रायस्त्रिंश-लोकपाल-वर्ज्या व्यन्तर-ज्योतिष्काः ॥ ५ ॥ पूर्वयोर्द्वीन्द्राः ॥ ६ ॥ काय-प्रवीचारा आ ऐशानात् ॥७॥ शेषाः स्पर्श-रूप-शब्द-मनः-प्रवीचाराः ॥८॥ परेऽप्रवीचाराः॥६॥ भवनवासिनोऽसुर-नाग-विद्युत्सुपर्णाग्नि-वात-स्तनितोदधि-द्वीप-दिक्कुमाराः ॥१० व्यन्तराः किन्नर-किंपुरुष-महोरग-गन्धर्व-यक्ष-राक्षस-भूत-पिशाचाः ॥ ११ ॥ ज्योतिष्काः सूर्याचन्द्रमसौ ग्रह-नक्षत्र-प्रकीर्णक-तारकाश्च॥१२॥ मेरु-प्रदक्षिणा नित्य-गतयो नृ-लोके

॥१३॥ तत्कृतः काल-विभागः ॥१४॥ बहिरवस्थिताः ॥१५॥ वैमानिकाः ॥१६॥ कल्पोपपन्नाः कल्पातीताश्च ॥१७॥ उपर्युपरि ॥१८॥ सौधर्मैशान-सानत्कुमार-माहेन्द्र-ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर-लान्तव-कापिष्ठ-शुक्र-महाशुक्र-शतार-सहस्रारेष्वानत-प्राणतयोरारणाच्युतयोर्नवसु ग्रैवेयकेषु विजय-वैजयन्त-जयन्तापराजितेषु सर्वार्थसिद्धौ च ॥१९॥ स्थिति-प्रभाव-सुख-द्युति-लेश्या-विशुद्धीन्द्रियावधि-विषयतोऽधिकाः ॥ २० ॥ गतिशरीर-परिग्रहाभिमानतो हीनाः ॥२१॥ पीत-पद्म-शुक्ल-लेश्या द्वि-त्रि-शेषेषु ॥२२॥ प्राग्ग्रैवेयकेभ्यः कल्पाः ॥२३॥ ब्रह्म-लोकालया लौकान्तिकाः ॥ २४ ॥ सारस्वतादित्य - वह्न्यरुण - गर्दतोय-तुषिताव्याबाधारिष्टाश्च ॥२५॥ विजयादिषु द्वि-चरमाः ॥२६॥ औपपादिक-मनुष्येभ्यः शेषास्तिर्यग्योनयः ॥२७॥ स्थिति-रसुर-नाग-सुपर्ण-द्वीप-शेषाणां सागरोपम-त्रिपल्योपमार्ध-हीन-मिताः ॥२८॥ सौधर्मैशानयोः सागरोपमेऽधिके ॥२९॥ सानत्कुमार-माहेन्द्रयोः सप्त ॥३०॥ त्रि-सप्त-नवैकादश-त्रयोदश-पञ्चदशभिरधिकानि तु ॥३१॥ आरणाच्युतादूर्ध्वमेकैकेन नवसु ग्रैवेयकेषु विजयादिषु सर्वार्थसिद्धौ च ॥३२॥ अपरा पल्योपममधिकम् ॥३३॥ परतःपरतःपूर्वा पूर्वाऽनन्तरा ॥३४॥ नारकाणां च द्वितीयादिषु ॥३५॥ दश-वर्ष-सहस्राणि प्रथमायाम् ॥३६॥ भवनेषु च ॥३७॥ व्यन्तराणां च ॥३८॥ परा पल्योपम-

मधिकम् ।।३६।। ज्योतिष्काणां च ।।४०।। तदष्ट-भागोऽपरा ।।४१।। लौकान्तिकानामष्टौ सागरोपमाणि सर्वेषाम् ।।४२।।

इति तत्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे चतुर्थोऽध्यायः ।। ४ ।।

अजीव-काया धर्माधर्माकाश-पुद्गलाः ।।१।। द्रव्याणि ।। २ ।। जीवाश्च ।। ३ ।। नित्यावस्थितान्यरूपाणि ।। ४ ।। रूपिणः पुद्गलाः ।। ५ ।। आ आकाशादेकद्रव्याणि ।। ६ ।। निष्क्रियाणि च ।। ७ ।। असंख्येयाः प्रदेशा धर्माधर्मैक-जीवानाम् ।।८।। आकाशस्यानन्ताः।।९।। संख्येयासंख्येयाश्च पुद्गलानाम् ।।१०।। नाणोः ।।११।। लोकाकाशेऽवगाहः ।। १२ ।। धर्माधर्मयोः कृत्स्ने ।। १३ ।। एकप्रदेशादिषु भाज्यः पुद्गलानाम् ।। १४ ।। असंख्येय-भागादिषु जीवानाम् ।।१५।। प्रदेश-संहार-विसर्पाभ्यां प्रदीपवत् ।।१६।। गति-स्थित्युपग्रहौ धर्माधर्मयोरुपकारः ।।१७।। आकाशस्या-वगाहः।।१८।। शरीर-वाङ्-मनः-प्राणापानाः पुद्गलानाम्।।१९ सुख-दुःख-जीवित-मरणोपग्रहाश्च ।। २० ।। परस्परोपग्रहो जीवानाम् ।। २१ ।। वर्तना-परिणाम-क्रिया-परत्वापरत्वे च कालस्य ।। २२ ।। स्पर्श-रस-गन्ध-वर्णवन्तः पुद्गलाः ।।२३।। शब्द-बन्ध-सौक्ष्म्य-स्थौल्य-संस्थान-भेद-तमश्छायातपोद्योत-वन्तश्च ।। २४ ।। अणवः स्कन्धाश्च ।। २५ ।। भेद-संघातेभ्य उत्पद्यन्ते ।।२६।। भेदादणुः ।।२७।। भेद-संघाताभ्यां

चाक्षुषः ॥ २८ ॥ सद् द्रव्य-लक्षणम् ॥ २९ ॥ उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य-युक्तं सत् ॥ ३० ॥ तद्भावाव्ययं नित्यम् ॥३१॥ अर्पितानर्पितसिद्धेः ॥ ३२ ॥ स्निग्ध-रूक्षत्वाद्बन्धः ॥ ३३ ॥ न जघन्य-गुणानाम् ॥३४॥ गुण-साम्ये सदृशानाम् ॥३५॥ द्व्यधिकादि-गुणानां तु ॥ ३६ ॥ बन्धेऽधिकौ पारिणामिकौ च ॥३७॥ गुण-पर्ययवद् द्रव्यम् ॥ ३८ ॥ कालश्च ॥ ३९ ॥ सोऽनन्तसमयः ॥४०॥ द्रव्याश्रया निर्गुणा गुणाः ॥४१॥ तद्भावः परिणामः ॥ ४२ ॥

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

काय-वाङ्-मनः-कर्म योगः ॥१॥ स आस्रवः॥२॥ शुभः पुण्यस्याशुभः पापस्य ॥३॥ सकषायाकषाययोः साम्परायिकेर्यापथयोः ॥ ४ ॥ इन्द्रिय-कषायाव्रत-क्रियाः पञ्च-चतुः-पञ्च-पञ्चविंशति-संख्याः पूर्वस्य भेदाः ॥५॥ तीव्र-मन्द-ज्ञाता-ज्ञात-भावाधिकरण-वीर्य-विशेषेभ्यस्तद्विशेषः ॥ ६ ॥ अधिकरणं जीवाजीवाः ॥७॥ आद्यं संरम्भ-समारम्भारम्भ-योग-कृत-कारितानुमत-कषाय-विशेषैस्त्रिस्त्रिस्त्रिश्चतुश्चैकशः ॥८॥ निर्वर्तना-निक्षेप-संयोग-निसर्गा द्वि-चतुर्द्वि-त्रि-भेदाः परम्॥९॥तत्प्रदोष-निह्नव-मात्सर्यान्तरायासादनोपघाता ज्ञान-दर्शनावरणयोः॥१० दुःख-शोक-तापाक्रन्दन-वध-परिदेवनान्यात्म-परोभय–स्थानान्यसद्वेद्यस्य ॥११॥ भूत-व्रत्यनुकम्पादान-सरागसंयमादि-

योगः क्षांतिः शौचमिति सद्वेद्यस्य ॥१२॥ केवलि-श्रुत-संघ-धर्म-देवावर्णवादो दर्शनमोहस्य ॥ १३ ॥ कषायोदयात्तीव्र-परिणामश्चारित्रमोहस्य ॥ १४ ॥ बह्वारम्भ-परिग्रहत्वं नारकस्यायुषः ॥१५॥ माया तैर्यग्योनस्य ॥१६॥ अल्पारम्भ-परिग्रहत्वं मानुषस्य ॥१७॥ स्वभाव-मार्दवं च ॥१८॥ निःशील-व्रतत्वं च सर्वेषाम् ॥१९॥ सरागसंयम-संयमासंयमाकामनिर्जरा-बालतपांसि दैवस्य ॥२०॥ सम्यक्त्वं च ॥२१॥ योगवक्रता विसंवादनं चाशुभस्य नाम्नः॥२२॥ तद्विपरीतं शुभस्य ॥२३॥ दर्शनविशुद्धिर्विनयसम्पन्नता शील-व्रतेष्वनतोचारोऽभीक्ष्ण-ज्ञानोपयोग-संवेगौ शक्तितस्त्याग-तपसी साधु-समाधिर्वैया-वृत्यकरणमर्हदाचार्य-बहुश्रुत-प्रवचन-भक्तिरावश्यकापरिहाणि-मार्ग-प्रभावना प्रवचन-वत्सलत्वमिति तीर्थकरत्वस्य ॥२४॥ परात्म-निन्दा-प्रशंसे सदसद्गुणोच्छादनोद्भावने च नीचै-र्गोत्रस्य॥२५॥ तद्विपर्ययो नीचैर्वृत्त्यनुत्सेकौ चोत्तरस्य॥२६॥ विघ्नकरणमन्तरायस्य ॥२७॥

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

हिंसाऽनृत-स्तेयाब्रह्म-परिग्रहेभ्यो विरतिर्व्रतम् ॥१॥ देश-सर्वतोऽणु-महती॥२॥तत्स्थैर्यार्थं भावनाः पञ्च पञ्च ॥३॥ वाङ्-मनोगुप्तीर्यादाननिक्षेपण-समित्यालोकित-पानभोजनानि पञ्च ॥४॥क्रोध-लोभ-भीरुत्व-हास्य-प्रत्याख्यानान्यनुवीची-भाषणं च

पञ्च॥५॥शून्यागार-विमोचितावास-परोपरोधाकरण-भैक्ष्यशुद्धि-सधर्माविसंवादाः पञ्च ॥६॥ स्त्रीरागकथाश्रवण-तन्मनोहरांग-निरीक्षण-पूर्वरतानुस्मरण-वृष्येष्टरस-स्वशरीरसंस्कार-त्यागाः पञ्च ॥७॥ मनोज्ञामनोज्ञेन्द्रिय-विषय-राग-द्वेष-वर्जनानि पञ्च ॥८॥ हिंसादिष्विहामुत्रापायावद्यदर्शनम् ॥९॥ दुःखमेव वा ॥१०॥ मैत्री-प्रमोद-कारुण्य-माध्यस्थानि च सत्त्व-गुणाधिक-क्लिश्य-मानाविनेयेषु ॥११॥ जगत्काय-स्वभावौ वा संवेग-वैराग्यार्थम् ॥ १२ ॥ प्रमत्तयोगात्प्राण-व्यपरोपणं हिंसा ॥ १३ ॥ असदभिधानमनृतम् ॥१४॥ अदत्तादानं स्तेयम् ॥१५॥ मैथुन-मब्रह्म ॥१६॥ मूर्छा परिग्रहः ॥१७॥ निःशल्यो व्रती ॥१८॥ अगार्यनगारश्च॥१९॥ अणुव्रतोऽगारी॥२०॥ दिग्देशानर्थदण्ड-विरति-सामायिक-प्रोषधोपवासोपभोग-परिभोग-परिमाणा-तिथि-संविभाग-व्रत-सम्पन्नश्च ॥२१॥ मारणान्तिकीं सल्लेखनां जोषिता ॥ २२ ॥ शंका-कांक्षा-विचिकित्सान्यदृष्टि-प्रशंसा-संस्तवाः सम्यग्दृष्टेरतीचाराः ॥२३॥ व्रत-शीलेषु पञ्च पञ्च यथाक्रमम् ॥ २४ ॥ बन्ध-वध-च्छेदातिभारारोपणान्नपान-निरोधाः ॥२५॥ मिथ्योपदेश-रहोभ्याख्यान-कूटलेखक्रिया-न्यासापहार-साकारमन्त्रभेदाः ॥२६॥ स्तेनप्रयोग-तदाहृता-दान-विरुद्धराज्यातिक्रम-हीनाधिकमानोन्मान-प्रतिरूपकव्यव-हाराः ॥ २७ ॥ परविवाहकरणेत्वरिकापरिगृहीतापरिगृहीता-

गमनानङ्गक्रीडा-कामतीव्राभिनिवेशाः ॥ २८ ॥ क्षेत्रवास्तु-हिरण्यसुवर्ण-धनधान्य-दासीदास-कुप्य-प्रमाणातिक्रमाः ॥२९॥ ऊर्ध्वाधस्तिर्यग्व्यतिक्रम-क्षेत्रवृद्धि-स्मृत्यन्तराधानानि ॥३०॥ आनयन-प्रेष्यप्रयोग-शब्द-रूपानुपात-पुद्गलक्षेपाः ॥ ३१ ॥ कन्दर्प-कौत्कुच्य-मौखर्यासमीक्ष्याधिकरणोपभोगपरिभोगानर्थक्यानि ॥ ३२ ॥ योग-दुःप्रणिधानानादर-स्मृत्यनुपस्थानानि ॥ ३३ ॥ अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितोत्सर्गादान-संस्तरोपक्रमणानादर-स्मृत्यनुपस्थानानि ॥ ३४ ॥ सचित्त-सम्बन्ध-सम्मिश्राभिषव-दुःपक्वाहाराः ॥३५॥ सचित्तनिक्षेपापिधान-परव्यपदेश-मात्सर्य-कालातिक्रमः ॥३६॥ जीवित-मरणाशंसा-मित्रानुराग-सुखानुबन्ध-निदानानि ॥ ३७ ॥ अनुग्रहार्थं स्वस्यातिसर्गो दानम् ॥३८॥ विधि-द्रव्य-दातृ-पात्र-विशेषात्तद्विशेषः ॥३९॥

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

मिथ्यादर्शनाविरति-प्रमाद-कषाय-योगा बन्धहेतवः ।१। सकषायत्वाज्जीवः कर्मणो योग्यान् पुद्गलानादत्ते स बन्धः॥२॥ प्रकृति-स्थित्यनुभव-प्रदेशास्तद्विधयः ॥ ३ ॥ आद्यो ज्ञान-दर्शनावरण-वेदनीय-मोहनीयायुर्नाम-गोत्रान्तरायाः ॥ ४ ॥ पञ्च-नव-द्व्यष्टाविंशति-चतुर्द्विचत्वारिंशद्-द्वि-पञ्च-भेदा यथाक्रमम् ॥५॥ मति-श्रुतावधि-मनःपर्यय-केवलानाम् ॥६॥ चक्षु-

रचक्षुरवधि-केवलानां निद्रा-निद्रानिद्रा-प्रचला-प्रचलाप्रचला-स्त्यानगृद्धयश्च ॥७॥ सदसद्वेद्ये ॥८॥ दर्शन-चारित्र-मोहनीया-कषाय-कषायवेदनीयाख्यास्त्रि-द्वि-नव-षोडशभेदाः सम्यक्त्व-मिथ्यात्व-तदुभयान्यकषाय-कषायौ हास्य-रत्यरति-शोक-भय-जुगुप्सा-स्त्री-पुन्नपुंसक-वेदा अनन्तानुबन्ध्यप्रत्याख्यान-प्रत्याख्यान-संज्वलन-विकल्पाश्चैकशः क्रोध-मान-माया-लोभाः॥९॥ नारक-तैर्यग्योन-मानुष-दैवानि ॥ १० ॥ गति-जाति-शरीराङ्गोपाङ्ग-निर्माण-बन्धन-संघात-संस्थान–संहनन–स्पर्श–रस-गन्ध-वर्णानुपूर्व्यगुरुलघूपघात - परघातातपोद्योतोच्छ्वास-विहायोगतयः प्रत्येकशरीर-त्रस-सुभग-सुस्वर-शुभ-सूक्ष्म-पर्याप्ति-स्थिरादेय-यशःकीर्ति-सेतराणि तीर्थकरत्वं च ॥११॥ उच्चैर्नीचैश्च ॥ १२ ॥ दान - लाभ - भोगोपभोग-वीर्याणम् ॥ १३ ॥ आदितस्तिसृणामन्तरायस्य च त्रिंशत्सागरोपम-कोटीकोट्यः परा स्थितिः ॥१४॥ सप्ततिर्मोहनीयस्य ॥१५॥ विंशतिर्नाम-गोत्रयोः ॥१६॥ त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाण्यायुषः ॥१७॥ अपरा द्वादश-मुहूर्ता वेदनीयस्य ॥१८॥ नाम-गोत्रयोरष्टौ ॥१९॥ शेषाणामन्तर्मुहूर्ता॥२०॥विपाकोऽनुभवः॥२१॥स यथानाम॥२२ ततश्च निर्जरा ॥२३॥ नाम-प्रत्ययाः सर्वतो योग-विशेषात्-सूक्ष्मैक-क्षेत्रावगाह-स्थिताः सर्वात्म-प्रदेशेष्वनन्तानन्त-

प्रदेशाः ॥२४॥ सद्वेद्य-शुभायुर्नाम-गोत्राणि पुण्यम् ॥२५॥ अतोऽन्यत्पापम् ॥२६॥

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रेऽष्टमोऽध्यायः ॥८॥

आस्रव-निरोधः संवरः॥१॥ स गुप्ति-समिति-धर्मानुप्रेक्षा-परीषहजय-चारित्रैः ॥२॥ तपसा निर्जरा च ॥३॥ सम्यग्योग-निग्रहो गुप्तिः ॥ ४ ॥ ईर्या-भाषैषणादाननिक्षेपोत्सर्गाः समितयः ॥५॥ उत्तम-क्षमा-मार्दवार्जव-शौच-सत्य-संयम-तप-स्त्यागाकिञ्चन्य-ब्रह्मचर्याणि धर्मः॥६॥ अनित्याशरण-संसारैकत्वान्यत्वाशुच्यास्रवसंवरनिर्जरा - लोक-बोधिदुर्लभ-धर्मस्वाख्यातत्वानुचिन्तनमनुप्रेक्षाः ॥ ७ ॥ मार्गाच्यवन-निर्जरार्थं परिषोढव्याः परीषहाः ॥८॥ क्षुत्पिपासा-शीतोष्णदंशमशक-नाग्न्यारति-स्त्री-चर्या - निषद्या - शय्याक्रोश-वध - याचनालाभ-रोग-तृणस्पर्श-मल-सत्कारपुरस्कार-प्रज्ञाज्ञानादर्शनानि ॥९॥ सूक्ष्मसाम्पराय-च्छद्मस्थवीतरागयोश्चतुर्दश ॥१०॥ एकादश जिने ॥११॥ बादरसाम्पराये सर्वे ॥१२॥ ज्ञानावरणे प्रज्ञाज्ञाने ॥१३॥ दर्शनमोहान्तराययोरदर्शनालाभौ ॥१४॥ चारित्र-मोहे नाग्न्यारति-स्त्री-निषद्याक्रोश-याचना-सत्कारपुरस्काराः ॥ १५ ॥ वेदनीये शेषाः ॥ १६ ॥ एकादयो भाज्या युगपदेकस्मिन्नैकोनविंशतेः ॥ १७ ॥ सामायिक-च्छेदो-पस्थापना-परिहारविशुद्धि- सूक्ष्मसाम्पराय - यथाख्यातमिति

चारित्रम् ॥ १८ ॥ अनशनावमौदर्य-वृत्तिपरिसंख्यान-रस-परित्याग-विविक्तशय्यासन-कायक्लेशा बाह्यं तपः ॥१६॥ प्रायश्चित्त-विनय-वैयावृत्त्य-स्वाध्याय-व्युत्सर्ग-ध्यानान्युत्तरम् ॥२०॥ नव-चतुर्दश-पञ्च-द्वि-भेदा यथाक्रमं प्राग्ध्यानात्॥२१॥ आलोचना-प्रतिक्रमण - तदुभय - विवेक - व्युत्सर्ग-तपश्छेद-परिहारोपस्थापनाः ॥२२॥ ज्ञान-दर्शन-चारित्रोपचाराः ॥ २३ ॥ आचार्योपाध्याय - तपस्वि- शैक्ष - ग्लान-गण-कुल - संघ - साधु-मनोज्ञानाम्।२४।वाचना-पृच्छनानुप्रेक्षाम्नाय-धर्मोपदेशाः।२५ बाह्याभ्यन्तरोपध्योः ॥ २६ ॥ उत्तमसंहननस्यैकाग्रचिन्ता-निरोधो ध्यानमान्तर्मुहूर्तात् ॥२७॥ आर्त्त-रौद्र-धर्म्य-शुक्लानि ॥ २८ ॥ परे मोक्ष-हेतू ॥ २६ ॥ आर्तममनोज्ञस्य संप्रयोगे तद्विप्रयोगाय स्मृति-समन्वाहारः ॥३०॥ विपरीतं मनोज्ञस्य ॥३१॥ वेदनायाश्च ॥३२॥ निदानं च ॥३३॥ तदविरत-देशविरत-प्रमत्तसंयतानाम्॥३४॥ हिंसानृत-स्तेय-विषयसंरक्षणेभ्यो रौद्रमविरत-देशविरतयोः ॥ ३५ ॥ आज्ञापाय-विपाक-संस्थान-विचयाय धर्म्यम्॥३६॥ शुक्ले चाद्ये पूर्वविदः॥३७॥ परे केवलिनः॥३८॥ पृथक्त्वैकत्ववितर्क-सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति-व्युपरतक्रियानिवर्तीनि ॥ ३६ ॥ त्र्येकयोग-काययोगा-योगानाम्॥४०॥ एकाश्रये सवितर्क-वीचारे पूर्वे ॥४१॥ अवी-चारं द्वितीयम्॥४२॥ वितर्कः श्रुतम्॥४३॥ वीचारोऽर्थ-व्यञ्जन-

योग-संक्रान्तिः ॥४४॥ सम्यग्दृष्टि-श्रावक-विरतानन्तवियोजक-दर्शनमोहक्षपकोपशमकोपशान्त-मोहक्षपक-क्षीणमोह-जिनाः क्रमशोऽसंख्येयगुण-निर्जराः ॥ ४५ ॥ पुलाक-वकुश-कुशील-निर्ग्रन्थ-स्नातका निर्ग्रन्थाः॥४६॥ संयम-श्रुत-प्रतिसेवना-तीर्थ-लिङ्ग-लेश्योपपाद-स्थान-विकल्पतः साध्याः ॥४७॥

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे नवमोऽध्यायः ॥९॥

मोहक्षयाज्ज्ञान-दर्शनावरणान्तराय-क्षयाच्च केवलम्॥१॥ वन्धहेत्वभाव-निर्जराभ्यां कृत्स्न-कर्म-विप्रमोक्षो मोक्षः ॥२॥ औपशमिकादि-भव्यत्वानां च ॥३॥ अन्यत्र केवलसम्यक्त्व-ज्ञान-दर्शन-सिद्धत्वेभ्यः ॥४॥ तदनन्तरमूर्ध्वं गच्छत्या लोकान्तात् ॥ ५ ॥ पूर्वप्रयोगादसङ्गत्वाद् बन्धच्छेदात्तथागतिपरिणामाच्च॥६॥ आविद्धकुलालचक्रवद्व्यपगतलेपालाबुवदेरण्ड-बीजवदग्निशिखावच्च ॥७॥ धर्मास्तिकायाभावात् ॥८॥ क्षेत्र-काल-गति-लिङ्ग-तीर्थ-चारित्र-प्रत्येकबुद्ध-बोधित-ज्ञानावगाह-नान्तर-संख्याल्पबहुत्वतः साध्याः ॥९॥

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे दशमोऽध्यायः ॥१०॥

कोटीशतं द्वादश चैव कोट्यो लक्षाण्यशीतिस्त्र्यधिकानि चैव ।
पञ्चाशदष्टौ च सहस्रसंख्यामेतत् श्रुतं पञ्चपदं नमामि ॥ १ ॥

अरहंत भासियत्थं गणहरदेवेहिं गंथियं सव्वं ।
पणमामि भत्तिजुत्तो, सुदणाणमहोवयं सिरसा ॥ २ ॥

अक्षर-मात्र-पद-स्वर-हीनं व्यंजन-सन्धि-विवर्जित-रेफम् ।
साधुभिरत्र मम क्षमितव्यं को न विमुह्यति शास्त्र-समुद्रे ।३।

दशाध्याये परिच्छिन्ने तत्त्वार्थे पठिते सति ।
फलं स्यादुपवासस्य भाषितं मुनिपुंगवैः ॥ ४ ॥

तत्त्वार्थसूत्रकर्त्तारं गृद्ध्रपिच्छोपलक्षितम् ।
वन्दे गणीन्द्रसञ्जातमुमास्वामिमुनीश्वरम् ॥ ५ ॥

जं सक्कइ तं कीरइ जं पुण सक्कइ तहेव सद्दहणं ।
सद्दहमाणो जीवो पावइ अजरामरं ठाणं ॥६॥

तवयरणं वयधरणं संजमसरणं च जीवदयाकरणम् ।
अंते समाहिमरणं चउविहदुक्खं णिवारेइ ॥ ७ ॥

इति तत्त्वार्थसूत्रं समाप्तम् ।

छहढाला

[कविवर दौलतरामजी]

तीन भुवनमें सार, वीतराग विज्ञानता ।
शिवस्वरूप शिवकार, नमौं त्रियोग सम्हारिकैं ॥

पहली ढाल

चौपाई १५ मात्रा

जे त्रिभुवनमैं जीव अनंत, सुख चाहैं दुखतैं भयवंत ।
तातैं दुखहारी सुखकारि, कहैं सीख गुरु करुणा धारि ॥

ताहि सुनो भवि मन थिर आन, जो चाहो अपनो कल्यान।
मोह-महामद पियो अनादि, भूलि आपको भरमत बादि॥

तास भ्रमनकी है बहु कथा, पै कछु कहूं कही मुनि जथा।
काल अनंत निगोदमँझार, बीत्यो एकेंद्री-तन धार॥

एक स्वासमें अठ-दश बार, जन्म्यो मर्‍यो भर्‍यो दुख-भार।
निकसि भूमि जल पावक भयो, पवन प्रतेक वनस्पति थयो॥

दुर्लभ लहि ज्यों चिंतामणी, त्यों परजाय लही त्रसतणी।
लट पिपीलि अलि आदि शरीर, धर-धर मर्‍यो सही बहु पीर॥

कबहूँ पंचेंद्रिय पशु भयो, मन विन निपट अज्ञानी थयो।
सिंहादिक सैनी ह्वै क्रूर, निबल-पशू हति खाये भूर॥

कबहूँ आप भयो बल-हीन, सबलनि करि खायो अतिदीन।
छेदन भेदन भूख पियास, भारवहन हिम आतप त्रास॥

वध-बंधन आदिक दुख घने, कोटि जीभतैं जात न भने।
अतिसंक्लेश-भावतैं मर्‍यो, घोर शुभ्र-सागरमें पर्‍यो॥

तहाँ भूमि परसत दुख इस्यो, बीछू सहस डसैं तन तिस्यो।
तहाँ राध-शोणित-वाहिनी, कृमि-कुल-कलित देह-दाहिनी॥

सेमर-तरु-जुत दल-असिपत्र, असि ज्यों देह विदारैं तत्र।
मेरु समान लोह गलि जाय, ऐसी शीत उष्णता थाय॥

तिल तिल करहिं देहके खंड, असुर भिड़ावैं दुष्ट प्रचंड ।
सिंधु नीरतैं प्यास न जाय, तौ पण एक न बूंद लहाय ॥

तीन लोकको नाज जु खाय, मिटै न भूख कणा न लहाय ।
ये दुख बहु सागरलौं सहै, कर्म-जोगतैं नर-गति लहै ॥

जननी-उदर वस्यो नव-मास, अंग-सकुचतैं पाई त्रास ।
निकसत जे दुख पाये घोर, तिनकौ कहत न आवै ओर ॥

बालपनेमें ज्ञान न लह्यो, तरुण समय तरुणी-रत रह्यो ।
अर्धमृतकसम बूढ़ापनो, कैसे रूप लखै आपनो ॥

कभी अकामनिर्जरा करै, भवनत्रिकमें सुर-तन धरै ।
विषय-चाह-दावानल दह्यो, मरत विलाप करत दुख सह्यो ॥

जो विमान बासी हू थाय, सम्यकदर्शन विन दुख पाय ।
तहँतैं चय थावर-तन धरै, यों परिवर्तन पूरे करै ॥

दूसरी ढाल

पद्धरि छंद

ऐसैं मिथ्यादृग-ज्ञान-चरण, वश भ्रमत भरत दुख जन्म-मरण ।
तातैं इनको तजिये सुजान, सुन तिन संछेप कहूँ वखान ॥

जीवादि प्रयोजनभूत तत्त्व, सरधै तिनमांहिं विपर्ययत्व ।
चेतनको है उपयोगरूप, विन मूरति चिनमूरति अनूप ॥

पुद्गल नभ धर्म अधर्म काल, इनतैं न्यारी है जीव-चाल ।
ताकों न जान विपरीत मान, करि करै देहमें निज पिछान ॥
मैं सुखी दुखी मैं रंक राव, मेरो धन गृह गोधन प्रभाव ।
मेरे सुत तिय मैं सबल दीन, बेरूप सुभग मूरख प्रवीन ॥
तन उपजत अपनी उपज जान, तन नशत आपको नाश मान ।
रागादि प्रगट जे दुःख दैन, तिनहीको सेवत गिनत चैन ॥
शुभ-अशुभ-बंधके फल मझार, रति अरति करै निज-पद विसार ।
आतम-हित-हेतु विराग-ज्ञान, ते लखै आपको कष्ट दान ॥
रोकी न चाह निज शक्ति खोय, शिवरूप निराकुलता न जोय ।
याही प्रतीतजुत कछुक ज्ञान, सो दुख-दायक अज्ञान जान ॥
इन जुत विषयनिमें जो प्रवृत्त, ताको जानो मिथ्याचरित्त ।
या मिथ्यात्वादि निसर्ग जेह, अब जे गृहीत सुनिये सु तेह ॥
जो कुगुरु कुदेव कुधर्म सेव, पोषैं चिर दर्शनमोह एव ।
अंतर रागादिक धरैं जेह, बाहर धन अंबरतैं सनेह ॥
धारैं कुलिंग लहि महत-भाव, ते कुगुरु जनम-जल-उपल-नाव ।
जे राग-दोष-मल करि मलीन, वनिता-गदादिजुत चिन्ह चीन ॥
ते हैं कुदेव तिनकी जु सेव, शठ करत न तिन भव-भ्रमन-छेव ।
रागादि-भाव हिंसा समेत, दर्वित त्रस-थावर मरन-खेत ॥

जे क्रिया तिन्हैं जानहु कुधर्म, तिन सरधै जीव लहै अशर्म ।
याकौं गृहीत मिथ्यात जान, अब सुन गृहीत जो है अजान ॥
एकांतवाद दूषित समस्त, विषयादिक-पोषक अप्रशस्त ।
कपिलादि-रचित श्रुतको अभ्यास, सो है कुबोध बहु देन त्रास ॥
जो ख्याति-लाभ-पूजादि चाह, धरि करत विविध-विध देहदाह
आतम अनात्मके ज्ञान-हीन, जे जे करनी तन करन-छीन ॥
ते सब मिथ्याचारित्र त्यागि, अब आतमके हित-पंथ लागि ।
जग-जाल-भ्रमनको देय त्यागि, अब 'दौलत' निज आतम सुपागि

तीसरी ढाल

नरेंद्रछन्द

आतमको हित है सुख सो सुख, आकुलता विन कहिये ।
आकुलता शिवमांहिं न तातैं, शिव-मग लाग्यो चहिये ॥
सम्यकदर्शन-ज्ञान चरन शिव,-मग सो दुविध विचारो ।
जो सत्यारथरूप सु निश्चय, कारन सो व्यवहारो ॥
पर-द्रव्यनितैं भिन्न आपमैं, रुचि सम्यक्त भला है ।
आप रूपको जानपनो सो, सम्यकज्ञानकला है ॥
आप-रूपमैं लीन रहै थिर, सम्यकचारित सोई ।
अब व्यवहार मोख मग सुनिये, हेतु नियतको होई ॥

जीव अजीव तत्त्व अरु आस्रव, बंध रु संवर जानो।
निर्जर मोक्ष कहे जिन तिनको, ज्यौंको त्यौं सरधानो॥
है सोई समकित व्यवहारी, अब इन रूप बखानौ।
तिनको सुनि सामान्य-विशेषै, दृढ प्रतीत उर आनौ॥

बहिरातम अंतरआतम परमातम जीव त्रिधा है।
देह जीवको एक गिनै बहिरातमतत्त्व मुधा है॥
उत्तम मध्यम जघन त्रिविधिके, अंतर-आतमज्ञानी।
द्विविध संग विन शुध-उपयोगी, मुनि उत्तम निज-ध्यानी॥

मध्यम अंतर आतम हैं जे, देशव्रती आगारी।
जघन कहे अविरत-समदृष्टी, तीनों शिवमगचारी॥
सकल निकल परमातम द्वैविध, तिनमें घाति निवारी।
श्री अरहंत सकल परमातम, लोकालोक-निहारी॥

ज्ञानशरीरी त्रिविध कर्ममल-वर्जित सिद्ध महंता।
ते हैं निकल अमल परमातम, भोगैं शर्म अनंता॥
बहिरातमता हेय जानि तजि, अंतर आतम हूजै।
परमातमको ध्याय निरंतर, जो नित आनँद पूजै॥

चेतनता विन सो अजीव है, पंच भेद ताके हैं।
पुद्गल पंच वरन रसपन गंध दु फरस वसु जाके हैं॥

जिय-पुद्गलको चलन सहाई, धर्मद्रव्य अनरूपी।
तिष्ठत होय अधर्म सहाई, जिन विनमूर्ति निरूपी ॥
सकल-द्रव्यको वास जासमें, सो आकाश पिछानों।
नियत वरतना निशि-दिन सो, व्यवहारकाल परिमानो ॥
यों अजीव अब आस्रव सुनिये, मन वच काय त्रियोगा।
मिथ्या अविरत अरु कषाय, परमादसहित उपयोगा ॥
ये ही आतमके दुख-कारन, तातैं इनको तजिये।
जीव-प्रदेश बँधै विधिसों सो, बंधन कबहुं न सजिये ॥
शम-दमसों जो कर्म न आवैं, सो संवर आदरिये।
तप-बलतैं विधि-झरन निरजरा, ताहि सदा आचरिये ॥
सकल करमतैं रहित अवस्था, सो शिव थिर सुख-कारी।
इहि विधि जो सरधा तत्त्वनकी, सो समकित व्योहारी ॥
देव जिनेन्द्र गुरु परिग्रह बिन, धर्म दयाजुत सारो।
यहू मान समकितको कारन, अष्ट अंगजुत धारो ॥
वसु मद टारि निवारि त्रि-शठता, षट अनायतन त्यागो।
शंकादिक वसु दोष विना संवेगादिक चित पागो ॥
अष्ट अंग अरु दोष पचीसों, अब संक्षेपहु कहिये।
विन जानेतैं दोष-गुननको, कैसे तजिये गहिये ॥

जिन-वचमें शंका न धारि वृष, भव-सुख-वांछा भानै।
मुनि-तन मलिन न देख घिनावै, तत्त्व कुतत्त्व पिछानै॥
निज-गुन अरु पर औगुन ढाकै, वा जिन-धर्म बढ़ावै।
कामादिककर वृषतैं चिगते, निज-परको सु दृढ़ावै॥
धर्मीसों गउ-वच्छ-प्रीति-सम, कर जिन-धर्म दिपावै।
इन गुनतैं विपरीत दोष वसु, तिनको सतत खिपावै॥

पिता भूप वा मातुल नृप जो, होय तो न मद ठानै।
मद न रूपको मद न ज्ञानको, धन बलको मद भानै॥

तपको मद न मद जु प्रभुताको, करै न सो निज जानै।
मद धारै तौ येहि दोष वसु, समकितको मल ठानै॥

कुगुरु-कुदेव-कुवृष-सेवककी, नहिं प्रशंस उचरै है।
जिनमुनि जिनश्रुत विन कुगुरादिक, तिन्हैं न नमन करै है॥

दोषरहित गुनसहित सुधी जे, सम्यकदरश सजे हैं।
चरितमोहवश लेश न संजम, पै सुरनाथ जजे हैं॥

गेही पै गृहमें न रचै ज्यों, जलमें भिन्न कमल है।
नगरनारिको प्यार यथा, कादेमें हेम अमल है॥

प्रथम नरक विन षट भू ज्योतिष, वान भवन षँढ नारी।
थावर विकलत्रय पशुमें नहिं, उपजत समकित-धारी॥

तीन लोक तिहुँ कालमाहिं नहिं, दर्शनसम सुखकारी ।
सकल धरमको मूल यही इस, विन करनी दुखकारी ॥

मोक्ष-महलकी परथम सीढ़ी, या विन ज्ञान चरित्रा ।
सम्यकता न लहै सो दर्शन, धारो भव्य पवित्रा ॥

'दौल' समझ सुन चेत सयाने, काल वृथा मत खोवै ।
यह नर-भव फिर मिलन कठिन है, जो सम्यक नहिं होवै ॥

चौथी ढाल

दोहा

सम्यकश्रद्धा धारि पुनि, सेवहु सम्यकज्ञान ।
स्व-पर अर्थ बहु धर्मजुत, जो प्रकटावन भान ॥१॥

रोला छंद २४ मात्रा

सम्यकसाथै ज्ञान होय पै भिन्न अराधो ।
लक्षण श्रद्धा जान दुहूमें भेद अबाधो ॥
सम्यक कारण जान ज्ञान कारज है सोई ।
युगपद होतैं हू प्रकाश दीपकतैं होइ ॥२॥

तास भेद दो हैं परोक्ष परतछ तिनमाहीं ।
मति श्रुत दोय परोक्ष अक्ष मनतैं उपजाहीं ॥

अवधिज्ञान मनपर्जय दो हैं देशप्रतच्छा ।
द्रव्य-क्षेत्र-परिमान लिये जानैं जिय स्वच्छा ॥३॥

सकल द्रव्यके गुन अनंत परजाय अनंता ।
जानैं एकै काल प्रगट केवलि भगवंता ॥
ज्ञान समान न आन जगतमें सुखको कारन ।
इह परमामृत जन्म जरा-मृत-रोग-निवारन ॥४॥

कोटि जनम तप तपैं ज्ञान विन कर्म झरैं जे ।
ज्ञानीके छिनमांहिं गुप्तितैं सहज टरैं ते ॥
मुनिव्रत धार अनंत बार ग्रीवक उपजायो ।
पै निज-आतम-ज्ञान विना सुख लेश न पायो ॥५॥

तातैं जिनवर-कथित, तत्त्व अभ्यास करीजै ।
संशय विभ्रम मोह त्याग आपो लखि लीजै ॥
यह मानुष-परजाय सुकुल सुनिबो जिन-वानी ।
इह विधि गये न मिलैं सुमणि ज्यों उदधि समानी ॥६॥

धन समाज गज बाज राज तो काज न आवै ।
ज्ञान आपको रूप भये फिर अचल रहावै ॥
तास ज्ञानको कारन स्व-पर-विवेक बखान्यो ।
कोटि उपाय बनाय भव्य ताको उर आन्यो ॥७॥

जे पूरब शिव गये जांय अब आगै जे हैं।
सो सब महिमा ज्ञानतनी मुनिनाथ कहै हैं॥
विषय-चाह-दव-दाह जगत-जन अरनि दझावै।
तासु उपाय न आन ज्ञान-घनघान बुझावै॥८॥
पुण्य-पाप-फल मांहिं हरष विलखौ मत भाई।
यह पुद्गल-परजाय उपजि विनसै फिर थाई॥
लाख बातकी बात यहै निश्चय उर लावो।
तोड़ सकल जग-दंद-फंद निज-आतम ध्यावो॥९॥
सम्यकज्ञानी होइ बहुरि दृढ़ चारित लीजै।
एकदेश अरु सकलदेश तस भेद कहीजै॥
त्रस-हिंसाको त्याग वृथा थावर न सँघारै।
पर-वधकार कठोर निंद्य नहिं वयन उचारै॥१०॥

जल मृतिका विन और नाहिं कछु गहै अदत्ता।
निज वनिता विन सकल नारिसौं रहै विरत्ता॥
अपनी शक्ति विचार परिग्रह थोरो राखै।
दश दिशि गमन-प्रमान ठान तसु सीम न नाखै॥११॥
ताहूमें फिर ग्राम गली गृह बाग बजारा।
गमनागमन प्रमान ठान अन सकल निवारा॥
काहूके धन-हानि किसी जय हार न चिंतै।
देय न सो उपदेश होय अघ बनिज कृषीतै॥१२॥

कर प्रमाद जल भूमि वृक्ष पावक न विराधै।
असि धनु हल हिंसोपकरन नहिं दे जस लाधै॥
राग-दोष-करतार कथा, कबहूँ न सुनीजै।
औरहु अनरथदंड हेतु अघ तिन्हैं न कीजै॥१३॥

धर उर समता-भाव सदा सामायिक करिये।
पर्व-चतुष्टयमाहिं पाप तजि प्रोषध धरिये॥
भोग और उपभोग नियम करि ममतु निवारै।
मुनिको भोजन देय फेर निज करहिं अहारै॥१४॥

बारह व्रतके अतीचार पन पन न लगावै।
मरन समय सन्यास धारि तसु दोष नसावै॥
यौं श्रावकव्रत पाल स्वर्ग सोलम उपजावै।
तहँतें चय नर-जन्म पाय मुनि ह्वै शिव जावै॥१५॥

पाँचवीं ढाल

सखीछन्द

मुनि सकलव्रती बड़भागी, भवभोगनतैं वैरागी।
वैराग्य उपावन माई, चिंत्यो अनुप्रेक्षा भाई॥१॥
इन चिंतत समरस जागै, जिमि ज्वलन पवनके लागै।
जबही जिय आतम जानै, तब ही जिय शिवसुख ठानै॥२॥
जोवन गृह गोधन नारी, हय गय जन आज्ञाकारी।
इंद्रीय भोग छिन थाई, सुरधनु चपला चपलाई॥३॥

सुर असुर खगाधिप जेते, मृग ज्यों हरि काल दले ते।
मणि मंत्र तंत्र बहु होई, मरते न बचावै कोई ॥४॥

चहुंगति दुख जीव भरै हैं, परिवर्तन पंच करै हैं।
सबविधि संसार असारा, यामैं सुख नाहिं लगारा ॥५॥

शुभ अशुभ करमफल जेते, भोगै जिय एकहि तेते।
सुत दारा होय न सीरी, सब स्वारथके हैं भीरी ॥६॥

जल-पय ज्यौं जिय-तन मेला, पै भिन्न भिन्न नहिं भेला।
तो प्रगट जुदे धन धामा, क्यों ह्वै इक मिलि सुत रामा॥७॥

पल-रुधिर राध-मल-थैली, कीकस वसादितैं मैली।
नव द्वार बहै घिनकारी, अस देह करै किम यारी ॥८॥

जो जोगनकी चपलाई, तातैं ह्वै आस्रव भाई।
आस्रव दुखकार घनेरे, बुधिवंत तिन्हैं निरवेरे ॥९॥

जिन पुण्य-पाप नहिं कीना, आतम अनुभव चित दीना।
तिन ही विधि आवत रोके, संवर लहि सुख अवलोके ॥१०॥

निज काल पाय विधि झरना, तासौं निज-काज न सरना।
तप करि जो कर्म खपावै, सोई शिवसुख दरसावै ॥११॥

किन हू न करचो न धरै को, षटद्रव्यमयी न हरै को।
सो लोकमाँहि बिन समता, दुख सहै जीव नित भ्रमता ॥१२॥

अंतिम ग्रीवकलौंकी हद, पायो अनंत बिरियां पद ।
पर सम्यकज्ञान न लाध्यो, दुर्लभ निजमें मुनि साध्यो ॥१३॥

जे भाव मोहतैं न्यारे, दृग ज्ञान व्रतादिक सारे ।
सो धर्म जबै जिय धारै, तबही सुख अचल निहारै ॥१४॥

सो धर्म मुनिनकरि धरिये, तिनकी करतूति उचरिये ।
ताको सुनिये भवि प्रानी, अपनी अनुभूति पिछानी ॥१५॥

छठी ढाल

हरिगीता छंद

षटकाय जीव न हननतैं सबविधि दरव हिंसा टरी ।
रागादि भाव निवारितैं हिंसा न भावित अवतरी ॥
जिनके न लेश मृषा न जल तृन हू विना दीयो गहैं ।
अठदश-सहस विधि शीलधर चिद्ब्रह्ममें नित रमि रहैं ॥१॥

अंतर चतुर्दश भेद बाहिर संग दशधातैं टलैं ।
परमाद तजि चउ कर मही लखि समिति ईर्यातैं चलैं ॥
जग सुहितकर सब अहितहर श्रुति-सुखद सब संशय हरैं ।
भ्रम-रोग-हर जिनके वचन मुख-चद्रतैं अमृत झरैं ॥२॥

छ्यालीस दोष विना सुकुल श्रावकतणे घर अशनको ।
लें तप बढ़ावन हेत नहिं तन पोषते तजि रसनको ॥
शुचि ज्ञान संजम उपकरन लखिकैं गहैं लखिकैं धरैं ।
निर्जंतु थान विलोकि तन-मल मूत्र श्लेषम परिहरैं ॥३॥

सम्यक प्रकार निरोधि मन-वच-काय आतम ध्यावते ।
तिन सुथिर मुद्रा देखि मृग-गन उपल खाज खुजावते ॥
रस रूप गंध तथा फरस अरु शब्द शुभ असुहावने ।
तिनमें न राग विरोध पंचेंद्रिय-जयन पद पावने ॥
समता सम्हारैं थुति उचारैं बंदना जिनदेवको ।
नित करैं श्रुत-रति धरैं प्रतिक्रम तजैं तन अहमेवको ॥
जिनके न न्हौन न दंत-धोवन लेश अंबर आवरन ।
भूमाहिं पिछली रयनिमें कछु शयन एकाशन करन ॥५॥
इक बार दिनमें लें अहार खड़े अलप निज पानमें ।
कचलोंच करत न डरत परिषहसों लगे निज ध्यानमें ॥
अरि मित्र महल मसान कंचन काच निंदन थुति करन ।
अर्घावतारन असि-प्रहारनमें सदा समता धरन ॥६॥
तप तपै द्वादश धरैं वृष दश रतन-त्रय सेवैं सदा ।
मुनि-साथमें वा एक विचरैं चहैं नहिं भव-सुख कदा ॥
यों है सकलसंजमचरित सुनिये स्वरूपाचरन अब ।
जिस होत प्रगटै आपनी निधि मिटै परकी प्रवृति सब ॥७॥
जिन परम पैनी सुबुधि-छैनी डारि अंतर भेदिया ।
वरनादि अरु रागादितैं निज-भावको न्यारा किया ॥
निजमाहिं निजके हेतु निजकर आपको आपै गह्यो ।
गुन गुनी ज्ञाता ज्ञान ज्ञेय मझार कछु भेद न रह्यो ॥८॥

जहँ ध्यान ध्याता ध्येयको न विकल्प वच भेद न जहां ।
चिद्भाव कर्म चिदेश करता चेतना किरिया तहां ॥
तीनों अभिन्न अखिन्न शुध उपयोगकी निश्चल दशा ।
प्रगटी जहां दृग ज्ञान व्रत ये तीनधा एकै लशा ॥९॥

परमान नय निक्षेपको न उदोत अनुभव में दिखै ।
दृग-ज्ञान-सुख-बलमय सदा नहिं आन भाव जु मो विखै ।
मैं साध्य साधक मैं अबाधक कर्म अरु तसु फलनितैं ।
चितपिंड चंड अखंड सुगुन-करंड च्युत पुनि कलनितैं ॥
यों चिंत्य निजमें थिर भये तिन अकथ जो आनँद लह्यो ।
सो इंद्र नाग नरेंद्र वा अहमिंद्रकै नाहीं कह्यो ॥
तब ही शुकलध्यानाग्निकर चउ-घातिविधि-कानन दह्यो ।
सब लख्यो केवलज्ञानकरि भवि-लोककों शिव-मग कह्यो ॥
पुनि घाति शेष अघातिविधि छिनमांहि अष्टम-भू बसैं ।
वसुकर्म विनशै सुगुन वसु सम्यक्त्व आदिक सब लसैं ॥
संसार खार अपार पारावार तिर तीरहिं गये ।
अविकार अकल अरूप शुध चिद्रूप अविनाशी भये ॥
निजमांहि लोक अलोक गुन परजाय प्रतिबिंबित थये ।
रहि हैं अनंतानंतकाल यथा तथा शिव परनये ॥
धनि धन्य हैं वे जीव नर-भव पाय यह कारज किया ।
तिनही अनादी भ्रमन पंच प्रकार तजि वर सुख लिया ॥

मुख्योपचार दुभेद यौं बड़भागि रत्नत्रय धरैं।
अरु धरैंगे ते शिव लहैं तिन सुजस-जल-जग-मल हरैं॥
इमि जानि आलस हानि साहस ठानि यह सिख आदरो।
जबलौं न रोग जरा गहै तबलौं जगत निज हित करो॥१४॥

यह राग आग दहै सदा तातैं समामृत सेइये।
चिर भजे विषय कषाय अब तौ त्याग निजपद बेइये॥
कहा रच्यो पर-पदमें न तेरो पद यहै क्यों दुख सहै।
अब 'दौल' होउ सुखी स्व-पद रचि दाव मत चूको यहै॥

दोहा

इक[1] नव[9] वसु[8] इक[1] वर्षकी, तीज शुकल बैशाख।
कर्‍यो तत्व उपदेश यह, लखि 'बुधजन'की भाख॥
लघु-धी तथा प्रमादतैं, शब्द-अर्थकी भूल।
सुधी सुधार पढो सदा, जो पावो भव-कूल॥

[खण्ड ६]

स्तोत्रादि [संस्कृत]

महावीराष्टकस्तोत्रम्

[कविवर भागचन्द]

शिखरिणी

यदीये चैतन्ये मुकुर इव भावाश्चिदचितः
समं भान्ति ध्रौव्य-व्यय-जनि-लसन्तोऽन्तरहिताः ।
जगत्साक्षी मार्ग-प्रकटन-परो भानुरिव यो
महावीरस्वामी नयन-पथ-गामी भवतु मे ॥ १ ॥

अताम्रं यच्चक्षुः कमल-युगलं स्पन्द-रहितं
जनान्कोपापायं प्रकटयति वाभ्यन्तरमपि ।
स्फुटं मूर्तिर्यस्य प्रशमितमयी वातिविमला
महावीर-स्वामी नयन-पथ-गामी भवतु मे ॥ २ ॥

नमन्नाकेन्द्राली-मुकुट-मणि-भा-जाल-जटिलं
लसत्पादाम्भोज-द्वयमिह यदीयं तनुभृताम् ।
भवज्ज्वाला-शान्त्यै प्रभवति जलं वा स्मृतमपि
महावीर-स्वामी नयन-पथ-गामी भवतु मे ॥ ३ ॥

यदर्चा-भावेन प्रमुदित-मना दर्दुर इह
क्षणादासीत्स्वर्गी गुण-गण-समृद्धः सुख-निधिः ।
लभन्ते सद्भक्ताः शिव-सुख-समाजं किमु तदा
महावीर-स्वामी नयन-पथ-गामी भवतु मे ॥ ४ ॥

कनत्स्वर्णाभासोऽप्यपगत-तनुर्ज्ञान-निवहो
विचित्रात्माप्येको नृपति-वर-सिद्धार्थ-तनयः ।
अजन्मापि श्रीमान् विगत-भव-रागोद्भुत-गतिः
महावीर-स्वामी नयन-पथ-गामी भवतु मे ॥ ५ ॥

यदीया वाग्गङ्गा विविध-नय-कल्लोल-विमला
वृहज्ज्ञानाम्भोभिर्जगति जनतां या स्नपयति ।
इदानीमप्येषा बुध-जन-मरालैः परिचिता
महावीर-स्वामी नयन-पथ-गामी भवतु मे ॥ ६ ॥

अनिर्वारोद्रेकस्त्रिभुवन-जयी काम-सुभटः
कुमारावस्थायामपि निज-बलाद्येन विजितः ।
स्फुरन्नित्यानन्द-प्रशम-पद-राज्याय स जिनः
महावीर-स्वामी नयन-पथ-गामी भवतु मे ॥ ७ ॥

महामोहातङ्क-प्रशमन-पराकस्मिक-भिषक्
निरापेक्षो बन्धुर्विदित-महिमा मङ्गलकरः ।
शरण्यः साधूनां भव-भयभृतामुत्तमगुणो
महावीर-स्वामी नयन-पथ-गामी भवतु मे ॥ ८ ॥

महावीराष्टकं स्तोत्रं भक्त्या 'भागेन्दु'ना कृतम् ।
यः पठेच्छृणुयाच्चापि स याति परमां गतिम् ॥ ६ ॥

भक्तामरस्तोत्रम्

[श्रीमानतुङ्गाचार्य]

भक्तामर-प्रणत-मौलि-मणि-प्रभाणा-
मुद्योतकं दलित-पाप-तमो-वितानम् ।
सम्यक्प्रणम्य जिन-पाद-युगं युगादा-
वालम्बनं भव-जले पततां जनानाम् ॥१॥

यः संस्तुतः सकल-वाङ्मय-तत्त्व-बोधा-
दुद्भूत-बुद्धि-पटुभिः सुर-लोक-नाथैः ।
स्तोत्रैर्जगत्त्रितय-चित्त-हरैरुदारैः
स्तोष्ये किलाहमपि तं प्रथमं जिनेन्द्रम् ॥२॥

बुद्ध्या विनापि विबुधार्चित-पाद-पीठ
स्तोतुं समुद्यत-मतिर्विगत-त्रपोऽहम् ।
बालं विहाय जल-संस्थितमिन्दु-बिम्ब-
मन्यः क इच्छति जनः सहसा ग्रहीतुम् ॥३॥

वक्तुं गुणान्गुण-समुद्र शशाङ्क-कान्तान्
कस्ते क्षमः सुर-गुरु-प्रतिमोऽपि बुद्ध्या ।
कल्पान्त-काल-पवनोद्धत-नक्र-चक्रं
को वा तरीतुमलमम्बु निधिं भुजाभ्याम् ॥४॥

सोऽहं तथापि तव भक्ति-वशान्मुनीश
कर्तुं स्तवं विगत-शक्तिरपि प्रवृत्तः ।
प्रीत्यात्म-वीर्यमविचार्य मृगो मृगेन्द्रं
नाभ्येति किं निज-शिशोः परिपालनार्थम् ॥५॥

अल्प-श्रुतं श्रुतवतां परिहास-धाम
त्वद्भक्तिरेव मुखरीकुरुते बलान्माम् ।
यत्कोकिलः किल मधौ मधुरं विरौति
तच्चारु-चूत-कलिका-निकरैक-हेतु ॥६॥

त्वत्संस्तवेन भव-सन्तति-सन्निबद्धं
पापं क्षणात्क्षयमुपैति शरीरभाजाम् ।
आक्रान्त-लोकमलि-नीलमशेषमाशु
सूर्यांशु-भिन्नमिव शार्वरमन्धकारम् ॥७॥

मत्वेति नाथ तव संस्तवनं मयेद-
मारभ्यते तनु-धियापि तव प्रभावात् ।
चेतो हरिष्यति सतां नलिनी-दलेषु
मुक्ता-फलद्युतिमुपैति ननूद-बिन्दुः ॥८॥

आस्तां तव स्तवनमस्त-समस्त-दोषं
त्वत्सङ्कथापि जगतां दुरितानि हन्ति ।
दूरे सहस्रकिरणः कुरुते प्रभैव
पद्माकरेषु जलजानि विकासभाञ्जि ॥९॥

नात्यद्भुतं भुवन-भूषण भूत-नाथ
भूतैर्गुणैर्भुवि भवन्तमभिष्टुवन्तः ।
तुल्या भवन्ति भवतो ननु तेन किं वा
भूत्याश्रितं य इह नात्मसमं करोति ॥१०॥
दृष्ट्वा भवन्तमनिमेष-विलोकनीयं
नान्यत्र तोषमुपयाति जनस्य चक्षुः ।
पीत्वा पयः शशिकर-द्युति-दुग्ध-सिन्धोः
क्षारं जलं जल-निधेरसितुं क इच्छेत् ॥११॥
यैः शान्त-राग-रुचिभिः परमाणुभिस्त्वं
निर्मापितस्त्रिभुवनैक-ललाम-भूत ।
तावन्त एव खलु तेऽप्यणवः पृथिव्यां
यत्ते समानमपरं न हि रूपमस्ति ॥१२॥
वक्त्रं क्व ते सुर-नरोरग-नेत्र-हारि
निःशेष-निर्जित-जगत्त्रितयोपमानम् ।
बिम्बं कलङ्क-मलिनं क्व निशाकरस्य
यद्वासरे भवति पाण्डु पलाश-कल्पम् ॥१३॥
संपूर्ण-मण्डल-शशाङ्क-कला-कलाप-
शुभ्रा गुणास्त्रिभुवनं तव लङ्घयन्ति ।
ये संश्रितास्त्रिजगदीश्वर-नाथमेकं
कस्तान्निवारयति संचरतो यथेष्टम् ॥१४॥

चित्रं किमत्र यदि ते त्रिदशाङ्गनाभि-
नीतं मनागपि मनो न विकार-मार्गम् ।
कल्पान्त-काल-मरुता चलिताचलेन
किं मन्दराद्रि-शिखरं चलितं कदाचित् ॥१५॥
निर्धूम-वर्तिरपवर्जित-तैल-पूरः
कृत्स्नं जगत्त्रयमिदं प्रकटीकरोषि ।
गम्यो न जातु मरुतां चलिताचलानां
दीपोऽपरस्त्वमसि नाथ जगत्प्रकाशः ॥१६॥
नास्तं कदाचिदुपयासि न राहु-गम्यः
स्पष्टीकरोषि सहसा युगपज्जगन्ति ।
नाम्भोधरोदर-निरुद्ध-महा-प्रभावः
सूर्यातिशायि-महिमासि मुनीन्द्र लोके ॥१७॥
नित्योदयं दलित-मोह-महान्धकारं
गम्यं न राहु-वदनस्य न वारिदानाम् ।
विभ्राजते तव मुखाब्जमनल्पकान्ति
विद्योतयज्जगदपूर्व-शशाङ्क-बिम्बम् ॥१८॥
किं शर्वरीषु शशिनाह्नि विवस्वता वा
युष्मन्मुखेन्दु-दलितेषु तमःसु नाथ ।
निष्पन्न-शालि-वन-शालिनि जीव-लोके
कार्यं कियज्जलधरैर्जल-भार-नम्रैः ॥१९॥

ज्ञानं यथा त्वयि विभाति कृतावकाशं
नैवं तथा हरि-हरादिषु नायकेषु ।
तेजःस्फुरन्मणिषु याति यथा महत्त्वं
नैवं तु काच-शकले किरणाकुलेऽपि ॥२०॥

मन्ये वरं हरि-हरादय एव दृष्टा
दृष्टेषु येषु हृदयं त्वयि तोषमेति ।
किं वीक्षितेन भवता भुवि येन नान्यः
कश्चिन्मनो हरति नाथ भवान्तरेऽपि ॥२१॥

स्त्रीणां शतानि शतशो जनयन्ति पुत्रान्
नान्या सुतं त्वदुपमं जननी प्रसूता ।
सर्वा दिशो दधति भानि सहस्र-रश्मिं
प्राच्येव दिग्जनयति स्फुरदंशुजालम् ॥२२॥

त्वामामनन्ति मुनयः परमं पुमांस-
मादित्य-वर्णममलं तमसः परस्तात् ।
त्वामेव सम्यगुपलभ्य जयन्ति मृत्युं
नान्यः शिवः शिव-पदस्य मुनीन्द्र पन्थाः ॥२३॥

त्वामव्ययं विभुमचिन्त्यमसंख्यमाद्यं
ब्रह्माणमीश्वरमनन्तमनङ्गकेतुम् ।
योगीश्वरं विदित-योगमनेकमेकं
ज्ञान-स्वरूपममलं प्रवदन्ति सन्तः ॥२४॥

बुद्धस्त्वमेव विबुधार्चित-बुद्धि-बोधात्
त्वं शङ्करोऽसि भुवन-त्रय-शङ्करत्वात् ।
धातासि धीर शिव-मार्ग-विधेर्विधानाद्
व्यक्तं त्वमेव भगवन्पुरुषोत्तमोऽसि ॥२५॥

तुभ्यं नमस्त्रिभुवनार्तिहराय नाथ
तुभ्यं नमः क्षिति-तलामल-भूषणाय ।
तुभ्यं नमस्त्रिजगतः परमेश्वराय
तुभ्यं नमो जिन भवोदधि-शोषणाय ॥२६॥

को विस्मयोऽत्र यदि नाम गुणैरशेषै-
स्त्वं संश्रितो निरवकाशतया मुनीश ।
दोषैरुपात्तविविधाश्रय-जात-गर्वैः
स्वप्नान्तरेऽपि न कदाचिदपीक्षितोऽसि ॥२७॥

उच्चैरशोक-तरु-संश्रितमुन्मयूख-
माभाति रूपममलं भवतो नितान्तम् ।
स्पष्टोल्लसत्किरणमस्त-तमो-वितानं
बिम्बं रवेरिव पयोधर-पार्श्ववर्ति ॥२८॥

सिंहासने मणि-मयूख-शिखा-विचित्रे
विभ्राजते तव वपुः कनकावदातम् ।
बिम्बं वियद्विलसदंशुलता-वितानं
तुङ्गोदयाद्रिशिरसीव सहस्र-रश्मेः ॥२९॥

कुन्दावदात-चल-चामर-चारु-शोभं
विभ्राजते तव वपुः कलधौत-कान्तम् ।
उद्यच्छशाङ्क-शुचि-निर्झर-वारि-धार-
मुच्चैस्तटं सुरगिरेरिव शातकौम्भम् ॥३०॥

छत्र-त्रयं तव विभाति शशाङ्क-कान्त-
मुच्चैः स्थितं स्थगित-भानु-कर-प्रतापम् ।
मुक्ता-फल-प्रकर-जाल-विवृद्ध-शोभं
प्रख्यापयत्त्रिजगतः परमेश्वरत्वम् ॥३१॥

गम्भीर-तार-रव-पूरित-दिग्विभाग-
स्त्रैलोक्य-लोक-शुभ-सङ्गम-भूति-दक्षः ।
सद्धर्मराज-जय-घोषण-घोषकः सन्
खे दुन्दुभिर्नदति ते यशसः प्रवादी ॥३२॥

मन्दार-सुन्दर-नमेरु-सुपारिजात-
सन्तानकादि-कुसुमोत्कर-वृष्टि-रुद्धा ।
गन्धोद-बिन्दु-शुभ-मन्द-मरुत्प्रयाता
दिव्या दिवः पतति ते वचसां ततिर्वा ॥३३॥

शुम्भत्प्रभा-वलय-भूरि-विभा विभोस्ते
लोक-त्रये द्युतिमतां द्युतिमाक्षिपन्ती ।
प्रोद्यद्दिवाकर-निरन्तर-भूरि-संख्या
दीप्त्या जयत्यपि निशामपि सोम-सौम्याम्।३४।

स्वर्गापवर्ग-गम-मार्ग-विमार्गणेष्टः
सद्धर्म-तत्त्व-कथनैक-पटुस्त्रिलोक्याः ।
दिव्य-ध्वनिर्भवति ते विशदार्थ-सर्व-
भाषा-स्वभाव-परिणाम-गुण-प्रयोज्यः ॥३५॥

उन्निद्र-हेम-नव-पङ्कज-पुञ्ज-कान्ती
पर्युल्लसन्नख-मयूख-शिखाभिरामौ ।
पादौ पदानि तव यत्र जिनेन्द्र धत्तः
पद्मानि तत्र विबुधाः परिकल्पयन्ति ॥३६॥

इत्थं यथा तव विभूतिरभूज्जिनेन्द्र
धर्मोपदेशन-विधौ न तथा परस्य ।
यादृक्प्रभा दिनकृतः प्रहतान्धकारा
तादृक्कुतो ग्रह-गणस्य विकासिनोऽपि॥३७॥

श्च्योतन्मदाविल-विलोल-कपोल-मूल-
मत्त-भ्रमद्भ्रमर-नाद-विवृद्ध-कोपम् ।
ऐरावताभमिभमुद्धतमापतन्तं
दृष्ट्वा भयं भवति नो भवदाश्रितानाम् ॥३८॥

भिन्नेभ-कुम्भ-गलदुज्ज्वल-शोणिताक्त-
मुक्ता-फल-प्रकर-भूषित-भूमि-भागः ।
बद्ध-क्रमः क्रम-गतं हरिणाधिपोऽपि
नाक्रामति क्रम-युगाचल-संश्रितं ते ॥३९॥

कल्पान्त-काल-पवनोद्धत-वह्नि-कल्पं
दावानलं ज्वलितमुज्ज्वलमुत्स्फुलिङ्गम् ।
विश्वं जिघत्सुमिव संमुखमापतन्तं
त्वन्नाम-कीर्तन-जलं शमयत्यशेषम् ॥४०॥
रक्तेक्षणं समद-कोकिल-कण्ठ-नीलं
क्रोधोद्धतं फणिनमुत्फणमापतन्तम् ।
आक्रामति क्रम-युगेण निरस्त-शङ्क-
स्त्वन्नाम-नाग-दमनी हृदि यस्य पुंसः ॥४१॥
वल्गत्तुरङ्ग-गज-गर्जित-भीमनाद-
माजौ बलं बलवतामपि भूपतीनाम् ।
उद्यद्दिवाकर-मयूख-शिखापविद्धं
त्वत्कीर्तनात्तम इवाशु भिदामुपैति ॥४२॥
कुन्ताग्र-भिन्न-गज-शोणित-वारिवाह-
वेगावतार-तरणातुर-योध-भीमे ।
युद्धे जयं विजित-दुर्जय-जेय-पक्षा-
स्त्वत्पाद-पङ्कज-वनाश्रयिणो लभन्ते ॥४३॥
अम्भोनिधौ क्षुभित-भीषण-नक्र-चक्र-
पाठीन-पीठ-भय-दोल्बण-वाडवाग्नौ ।
रङ्गत्तरङ्ग-शिखर-स्थित-यान-पात्रा-
स्त्रासं विहाय भवतः स्मरणाद् व्रजन्ति ॥४४॥

उद्भूत-भीषण-जलोदर-भार-भुग्नाः
शोच्यां दशामुपगताश्च्युत-जीविताशाः ।
त्वत्पाद-पङ्कज-रजोमृत-दिग्ध-देहा
मर्त्या भवन्ति मकरध्वज-तुल्यरूपाः ॥४५॥

आपाद-कण्ठमुरु-शृङ्खल-वेष्टिताङ्गा
गाढं बृहन्निगड-कोटि-निघृष्ट-जङ्घाः ।
त्वन्नाम-मन्त्रमनिशं मनुजाः स्मरन्तः
सद्यः स्वयं विगत-बन्ध-भया भवन्ति ॥४६॥

मत्तद्विपेन्द्र-मृगराज-दवानलाहि-
सङ्ग्राम-वारिधि-महोदर-बन्धनोत्थम् ।
तस्याशु नाशमुपयाति भयं भियेव
यस्तावकं स्तवमिमं मतिमानधीते ॥४७॥

स्तोत्रस्रजं तव जिनेन्द्र गुणैर्निबद्धां
भक्त्या मया रुचिर-वर्ण-विचित्र-पुष्पाम् ।
धत्ते जनो य इह कण्ठ-गतामजस्रं
तं 'मानतुङ्ग'मवशा समुपैति लक्ष्मीः ॥४८॥

कल्याणमन्दिरस्तोत्रम्

[श्रीसिद्धसेनदिवाकर]

कल्याण-मन्दिरमुदारमवद्य-भेदि
भीताभय-प्रदमनिन्दितमङ्घ्रि-पद्मम् ।
संसार-सागर-निमज्जदशेष-जन्तु-
पोतायमानमभिनम्य जिनेश्वरस्य ॥ १ ॥

यस्य स्वयं सुरगुरुर्गरिमाम्बुराशेः
स्तोत्रं सुविस्तृत-मतिर्न विभुर्विधातुम् ।
तीर्थेश्वरस्य कमठ-स्मय-धूमकेतो-
स्तस्याहमेष किल संस्तवनं करिष्ये ॥२॥

सामान्यतोऽपि तव वर्णयितुं स्वरूप-
मस्मादृशः कथमधीश भवन्त्यधीशाः ।
धृष्टोऽपि कौशिक-शिशुर्यदि वा दिवान्धो
रूपं प्ररूपयति किं किल घर्मरश्मेः ॥३॥

मोह-क्षयादनुभवन्नपि नाथ मर्त्यो
नूनं गुणान्गणयितुं न तव क्षमेत ।
कल्पान्त-वान्त-पयसः प्रकटोऽपि यस्मा-
न्मीयेत केन जलधेर्ननु रत्नराशिः ॥४॥

अभ्युद्यतोऽस्मि तव नाथ जडाशयोऽपि
कर्तुं स्तवं लसदसंख्य-गुणाकरस्य ।
बालोऽपि किं न निज-बाहु-युगं वितत्य
विस्तीर्णतां कथयति स्वधियाम्बुराशेः ॥५॥
ये योगिनामपि न यान्ति गुणास्तवेश
वक्तुं कथं भवति तेषु ममावकाशः ।
जाता तदेवमसमीक्षित-कारितेयं
जल्पन्ति वा निज-गिरा ननु पक्षिणोऽपि ॥६॥
आस्तामचिन्त्य-महिमा जिन संस्तवस्ते
नामापि पाति भवतो भवतो जगन्ति ।
तीव्रातपोपहत-पान्थ-जनान्निदाघे
प्रीणाति पद्म-सरसः सरसोऽनिलोऽपि ॥७॥
हृद्वर्तिनि त्वयि विभो शिथिलीभवन्ति
जन्तोः क्षणेन निबिडा अपि कर्म-बन्धाः ।
सद्यो भुजङ्गममया इव मध्य-भाग-
मभ्यागते वन-शिखण्डिनि चन्दनस्य ॥८॥
मुच्यन्त एव मनुजाः सहसा जिनेन्द्र
रौद्रैरुपद्रव-शतैस्त्वयि वीक्षितेऽपि ।
गो-स्वामिनि स्फुरित-तेजसि दृष्टमात्रे
चौरैरिवाशु पशवः प्रपलायमानैः ॥९॥

त्वं तारको जिन कथं भविनां त एव
त्वामुद्वहन्ति हृदयेन यदुत्तरन्तः ।
यद्वा दृतिस्तरति यज्जलमेष नून-
मन्तर्गतस्य मरुतः स किलानुभावः ॥१०॥

यस्मिन्हर-प्रभृतयोऽपि हत-प्रभावाः
सोऽपि त्वया रति-पतिः क्षपितः क्षणेन ।
विध्यापिता हुतभुजः पयसाथ येन
पीतं न किं तदपि दुर्धर-वाडवेन ॥११॥

स्वामिन्ननल्प-गरिमाणमपि प्रपन्नाः
त्वां जन्तवः कथमहो हृदये दधानाः ।
जन्मोदधिं लघु तरन्त्यतिलाघवेन
चिन्त्यो न हन्त महतां यदि वा प्रभावः ॥१२॥

क्रोधस्त्वया यदि विभो प्रथमं निरस्तो
ध्वस्तास्तदा वद कथं किल कर्म-चौराः ।
प्लोषत्यमुत्र यदि वा शिशिरापि लोके
नील-द्रुमाणि विपिनानि न किं हिमानी ॥१३॥

त्वां योगिनो जिन सदा परमात्मरूप-
मन्वेषयन्ति हृदयाम्बुज-कोष-देशे ।
पूतस्य निर्मल-रुचेर्यदि वा किमन्य-
दक्षस्य सम्भव-पदं ननु कर्णिकायाः ॥१४॥

ध्यानाज्जिनेश भवतो भविनः क्षणेन
देहं विहाय परमात्म-दशां व्रजन्ति ।
तीव्रानलादुपल-भावमपास्य लोके
चामीकरत्वमचिरादिव धातु-भेदाः ॥१५॥

अन्तः सदैव जिन यस्य विभाव्यसे त्वं
भव्यैः कथं तदपि नाशयसे शरीरम् ।
एतत्स्वरूपमथ मध्य-विवर्तिनो हि
यद्विग्रहं प्रशमयन्ति महानुभावाः ॥१६॥

आत्मा मनीषिभिरयं त्वदभेद-बुद्ध्या
ध्यातो जिनेन्द्र भवतीह भवत्प्रभावः ।
पानीयमप्यमृतमित्यनुचिन्त्यमानं
किं नाम नो विष-विकारमपाकरोति ॥१७॥

त्वामेव वीत-तमसं परवादिनोऽपि
नूनं विभो हरि-हरादि-धिया प्रपन्नाः ।
किं काच-कामलिभिरीश सितोऽपि शङ्खो
नो गृह्यते विविध-वर्ण-विपर्ययेण ॥१८॥

धर्मोपदेश-समये सविधानुभावाद्
आस्तां जनो भवति ते तरुरप्यशोकः ।
अभ्युद्गते दिनपतौ समहीरुहोऽपि
किं वा विबोधमुपयाति न जीव-लोकः ॥१९॥

चित्रं विभो कथमवाङ्मुख-वृन्तमेव
विष्वक्पतत्यविरला सुर-पुष्प-वृष्टिः ।
त्वद्गोचरे सुमनसां यदि वा मुनीश
गच्छन्ति नूनमध एव हि बन्धनानि ॥२०॥
स्थाने गभीर-हृदयोदधि-सम्भवायाः
पीयूषतां तव गिरः समुदीरयन्ति ।
पीत्वा यतः परम-सम्मद-सङ्ग-भाजो
भव्या व्रजन्ति तरसाप्यजरामरत्वम् ॥२१॥
स्वामिन्सुदूरमवनम्य समुत्पतन्तो
मन्ये वदन्ति शुचयः सुर-चामरौघाः ।
येऽस्मै नतिं विदधते मुनि-पुङ्गवाय
ते नूनमूर्ध्व-गतयः खलु शुद्ध-भावाः ॥२२॥
श्यामं गभीर-गिरमुज्ज्वल-हेम-रत्न-
सिंहासनस्थमिह भव्य-शिखण्डिनस्त्वाम् ।
आलोकयन्ति रभसेन नदन्तमुच्चैः
चामीकराद्रि-शिरसीव नवाम्बुवाहम् ॥२३॥
उद्गच्छता तव शिति-द्युति-मण्डलेन
लुप्त-च्छद-च्छविरशोक-तरुर्बभूव ।
सांनिध्यतोऽपि यदि वा तव वीतराग
नीरागतां व्रजति को न सचेतनोऽपि ॥२४॥

भो भोः प्रमादमवधूय भजध्वमेन-
मागत्य निर्वृति-पुरीं प्रति सार्थवाहम् ।
एतन्निवेदयति देव जगत्त्रयाय
मन्ये नदन्नभिनभः सुरदुन्दुभिस्ते ॥२५॥
उद्द्योतितेषु भवता भुवनेषु नाथ
तारान्वितो विधुरयं विहताधिकारः ।
मुक्ता-कलाप-कलितोरु-सितातपत्र-
व्याजात्त्रिधा धृत-तनुर्ध्रुवमभ्युपेतः ॥२६॥
स्वेन प्रपूरित-जगत्त्रय-पिण्डितेन
कान्ति-प्रताप-यशसामिव संचयेन ।
माणिक्य-हेम-रजत-प्रविनिर्मितेन
सालत्रयेण भगवन्नभितो विभासि ॥ २७ ॥
दिव्य-स्रजो जिन नमत्त्रिदशाधिपाना-
मुत्सृज्य रत्न-रचितानपि मौलि-बन्धान् ।
पादौ श्रयन्ति भवतो यदि वापरत्र
त्वत्सङ्गमे सुमनसो न रमन्त एव ॥ २८ ॥
त्वं नाथ जन्म-जलधेर्विपराङ्मुखोऽपि
यत्तारयस्यसुमतो निज-पृष्ठ-लग्नान् ।
युक्तं हि पार्थिव-निपस्य सतस्तवैव
चित्रं विभो यदसि कर्म-विपाक-शून्यः ॥२९॥

विश्वेश्वरोऽपि जन-पालक दुर्गतस्त्वं
किं वाक्षर-प्रकृतिरप्यलिपिस्त्वमीश ।
अज्ञानवत्यपि सदैव कथञ्चिदेव
ज्ञानं त्वयि स्फुरति विश्व-विकास-हेतुः ॥३०॥

प्राग्भार-सम्भृत-नभांसि रजांसि रोषाद्
उत्थापितानि कमठेन शठेन यानि ।
छायापि तैस्तव न नाथ हता हताशो
ग्रस्तस्त्वमीभिरयमेव परं दुरात्मा ॥ ३१ ॥

यद्गर्जदूर्जित-घनौघमदभ्र-भीम-
भ्रश्यत्तडिन्मुसल-मांसल-घोरधारम् ।
दैत्येन मुक्तमथ दुस्तर-वारि दध्रे
तेनैव तस्य जिन दुस्तर-वारि कृत्यम् ॥३२॥

ध्वस्तोर्ध्व-केश-विकृताकृति-मर्त्य-मुण्ड-
प्रालम्बभृद्भयदवक्त्र-विनिर्यदग्निः ।
प्रेतव्रजः प्रति भवन्तमपीरितो यः
सोऽस्याभवत्प्रतिभवं भव-दुःख-हेतुः ॥ ३३ ॥

धन्यास्त एव भुवनाधिप ये त्रिसन्ध्य-
माराधयन्ति विधिवद्विधुतान्य-कृत्याः ।
भक्त्योल्लसत्पुलक-पक्ष्मल-देह-देशाः
पाद-द्वयं तव विभो भुवि जन्मभाजः ॥३४॥

अस्मिन्नपार-भव-वारि-निधौ मुनीश
मन्ये न मे श्रवण-गोचरतां गतोऽसि ।
आकर्णिते तु तव गोत्र-पवित्र-मन्त्रे
किं वा विपद्विषधरी सविधं समेति ॥ ३५ ॥

जन्मान्तरेऽपि तव पाद-युगं न देव
मन्ये मया महितमीहित-दान-दक्षम् ।
तेनेह जन्मनि मुनीश पराभवानां
जातो निकेतनमहं मथिताशयानाम् ॥ ३६ ॥

नूनं न मोह-तिमिरावृत-लोचनेन
पूर्वं विभो सकृदपि प्रविलोकितोऽसि ।
मर्माविधो विधुरयन्ति हि मामनर्थाः
प्रोद्यत्प्रबन्ध-गतयः कथमन्यथैते ॥ ३७ ॥

आकर्णितोऽपि महितोऽपि निरीक्षितोऽपि
नूनं न चेतसि मया विधृतोऽसि भक्त्या ।
जातोऽस्मि तेन जन-बान्धव दुःखपात्रं
यस्मात्क्रियाः प्रतिफलन्ति न भाव-शून्याः ॥३८॥

त्वं नाथ दुःखि-जन-वत्सल हे शरण्य
कारुण्य-पुण्य-वसते वशिनां वरेण्य ।
भक्त्या नते मयि महेश दयां विधाय
दुःखाङ्कुरोद्दलन-तत्परतां विधेहि ॥३९॥

निःसङ्ख्य-सार-शरणं शरणं शरण्य-
मासाद्य सादित-रिपु प्रथितावदानम् ।
त्वत्पाद-पङ्कजमपि प्रणिधान-वन्ध्यो
वन्ध्योऽस्मि चेद्भुवन-पावन हा हतोऽस्मि ॥४०॥

देवेन्द्र-वन्द्य विदिताखिल-वस्तुसार
संसार-तारक विभो भुवनाधिनाथ ।
त्रायस्व देव करुणा-ह्रद मां पुनीहि
सीदन्तमद्य भयद-व्यसनाम्बु-राशेः ॥४१॥

यद्यस्ति नाथ भवदङ्घ्रि-सरोरुहाणां
भक्तेः फलं किमपि सन्तत-सञ्चितायाः ।
तन्मे त्वदेक-शरणस्य शरण्य भूयाः
स्वामी त्वमेव भुवनेऽत्र भवान्तरेऽपि ॥४२॥

इत्थं समाहित-धियो विधिवज्जिनेन्द्र
सान्द्रोल्लसत्पुलक-कञ्चुकिताङ्गभागाः ।
त्वद्बिम्ब-निर्मल-मुखाम्बुज-बद्ध-लक्ष्या
ये संस्तवं तव विभो रचयन्ति भव्याः ॥४३॥

जन-नयन-'कुमुदचन्द्र'-प्रभास्वराः स्वर्ग-सम्पदो भुक्त्वा ।
ते विगलित-मल-निचया अचिरान्मोक्षं प्रपद्यन्ते ॥४४॥

एकीभावस्तोत्रम्

[श्रीवादिराज]

एकीभावं गत इव मया यः स्वयं कर्म-बन्धो
घोरं दुःखं भव-भव-गतो दुर्निवारः करोति ।
तस्याप्यस्य त्वयि जिन-रवे भक्तिरुन्मुक्तये चेत्
जेतुं शक्यो भवति न तया कोऽपरस्तापहेतुः ॥१॥

ज्योतीरूपं दुरित-निवह-ध्वान्त-विध्वंस-हेतुं
त्वामेवाहुर्जिनवर चिरं तत्त्व-विद्याभियुक्ताः ।
चेतोवासे भवसि च मम स्फार-मुद्भासमान-
स्तस्मिन्नंहः कथमिव तमो वस्तुतो वस्तुमीष्टे ॥२॥

आनन्दाश्रु-स्नपित-वदनं गद्गदं चाभिजल्पन्
यश्चायेत त्वयि दृढ-मनाः स्तोत्र-मन्त्रैर्भवन्तम् ।
तस्याभ्यस्तादपि च सुचिरं देह-वल्मीक-मध्यात्
निष्कास्यन्ते विविध-विषम-व्याधयः काद्रवेयाः ॥३॥

प्रागेवेह त्रिदिव-भवनादेष्यता भव्य-पुण्यात्
पृथ्वी-चक्रं कनकमयतां देव निन्ये त्वयेदम् ।
ध्यान-द्वारं मम रुचिकरं स्वान्त-गेहं प्रविष्टः
तत्किं चित्रं जिन वपुरिदं यत्सुवर्णीकरोषि ॥४॥

लोकस्यैकस्त्वमसि भगवन्निर्निमित्तेन बन्धु-
स्त्वय्येवासौ सकल-विषया शक्तिरप्रत्यनीका ।
भक्ति-स्फीतां चिरमधिवसन्मामिकां चित्त-शय्यां
मय्युत्पन्नं कथमिव ततः क्लेश-यूथं सहेथाः ॥५॥
जन्माटव्यां कथमपि मया देव दीर्घं भ्रमित्वा
प्राप्तैवेयं तव नय-कथा स्फार-पीयूष-वापी ।
तस्या मध्ये हिमकर-हिम-व्यूह-शीते नितान्तं
निर्मग्नं मां न जहति कथं दुःख-दावोपतापाः ॥६॥
पाद-न्यासादपि च पुनतो यात्रया ते त्रिलोकीं
हेमाभासो भवति सुरभिः श्रीनिवासश्च पद्मः ।
सर्वाङ्गेण स्पृशति भगवंस्त्वय्यशेषं मनो मे
श्रेयः किं तत्स्वयमहरहर्यन्न मामभ्युपैति ॥७॥
पश्यन्तं त्वद्वचनममृतं भक्ति-पात्र्या पिबन्तं
कर्मारण्यात्पुरुषमसमानन्द-धाम प्रविष्टम् ।
त्वां दुर्वार-स्मर-मद-हरं त्वत्प्रसादैक-भूमिं
क्रूराकाराः कथमिव रुजा-कण्टका निर्लुठन्ति ॥८॥
पाषाणात्मा तदितरसमः केवलं रत्न-मूर्तिः
मानस्तम्भो भवति च परस्तादृशो रत्न-वर्गः ।
दृष्टि-प्राप्तो हरति स कथं मान-रोगं नराणां
प्रत्यासत्तिर्यदि न भवतस्तस्य तच्छक्ति-हेतुः ॥९॥

ह्यः प्राप्तो मरुदपि भवन्मूर्ति-शैलोपवाही
सद्यः पुंसां निरवधि-रुजा-धूलिबन्धं धुनोति ।
ध्यानाहूतो हृदय-कमलं यस्य तु त्वं प्रविष्टः
तस्याशक्यः क इह भुवने देव लोकोपकारः ॥१०॥
जानासि त्वं मम भव-भवे यच्च यादृक्च दुःखं
जातं यस्य स्मरणमपि मे शस्त्रवन्निष्पिनष्टि ।
त्वं सर्वेशः सकृप इति च त्वामुपेतोऽस्मि भक्त्या
यत्कर्तव्यं तदिह विषये देव एव प्रमाणम् ॥११॥
प्रापद्दैवं तव नुति-पदैर्जीवकेनोपदिष्टैः
पापाचारी मरण-समये सारमेयोऽपि सौख्यम् ।
कः सन्देहो यदुपलभते वासव-श्री-प्रभुत्वं
जल्पञ्जाप्यैर्मणिभिरमलैस्त्वन्नमस्कार-चक्रम् ॥१२॥
शुद्धे ज्ञाने शुचिनि चरिते सत्यपि त्वय्यनीचा
भक्तिर्नो चेदनवधि-सुखावञ्चिका कुञ्चिकेयम् ।
शक्योद्घाटं भवति हि कथं मुक्ति-कामस्य पुंसो
मुक्ति-द्वारं परिदृढ-महामोह-मुद्रा-कवाटम् ॥१३॥
प्रच्छन्नः खल्वयमघमयैरन्धकारैः समन्तात्
पन्था मुक्तेः स्थपुटित-पदः क्लेश-गर्तैरगाधैः ।
तत्कस्तेन व्रजति सुखतो देव तत्त्वावभासी
यद्यग्रेऽग्रे न भवति भवद्भारती-रत्न-दीपः ॥१४॥

आत्म-ज्योतिर्निधिरनवधिर्द्रष्टुरानन्द-हेतुः
कर्म-क्षोणी-पटल-पिहितो योऽनवाप्यः परेषाम्।
हस्ते कुर्वन्त्यनतिचिरतस्तं भवद्भक्तिभाजः
स्तोत्रैर्बन्ध-प्रकृति-परुषोद्दाम-धात्री-खनित्रैः ॥१५॥

प्रत्युत्पन्ना नय-हिमगिरेरायता चामृताब्धेः
या देव त्वत्पद-कमलयोः संगता भक्ति-गङ्गा।
चेतस्तस्यां मम रुजि-वशादाप्लुतं क्षालितांहः
कल्माषं यद्भवति किमियं देव सन्देह-भूमिः ॥१६॥

प्रादुर्भूत-स्थिर-पद-सुख त्वामनुध्यायतो मे
त्वय्येवाहं स इति मतिरुत्पद्यते निर्विकल्पा।
मिथ्यैवेयं तदपि तनुते तृप्तिमभ्रेषरूपां
दोषात्मानोऽप्यभिमत-फलास्त्वत्प्रसादाद्भवन्ति ॥१७॥

मिथ्यावादं मलमपनुदन्सप्तभङ्गी-तरङ्गैः
वागम्भोधिर्भुवनमखिलं देव पर्येति यस्ते।
तस्यावृत्तिं सपदि विबुधाश्चेतसैवाचलेन
व्यातन्वन्तः सुचिरममृतासेवया तृप्नुवन्ति ॥१८॥

आहार्येभ्यः स्पृहयति परं यः स्वभावादहृद्यः
शस्त्र-ग्राही भवति सततं वैरिणा यश्च शक्यः।
सर्वाङ्गेषु त्वमसि सुभगस्त्वं न शक्यः परेषां
तत्किं भूषा-वसन-कुसुमैः किं च शस्त्रैरुदस्त्रैः ॥१९॥

इन्द्रः सेवां तव सुकुरुतां किं तया श्लाघनं ते
तस्यैवेयं भव-लय-करीं श्लाघ्यतामातनोति ।
त्वं निस्तारी जनन-जलधेः सिद्धि-कान्ता-पतिस्त्वं
त्वं लोकानां प्रभुरिति तव श्लाघ्यते स्तोत्रमित्थम्॥२०॥
वृत्तिर्वाचामपर-सदृशी न त्वमन्येन तुल्यः
स्तुत्युद्गाराः कथमिव ततस्त्वय्यमी नः क्रमन्ते ।
मैवं भूवंस्तदपि भगवन्भक्ति-पीयूष-पुष्टाः
ते भव्यानामभिमत-फलाः पारिजाता भवन्ति ।२१।
कोपावेशो न तव न तव क्वापि देव प्रसादो
व्याप्तं चेतस्तव हि परमोपेक्षयेवानपेक्षम् ।
आज्ञावश्यं तदपि भुवनं संनिधिर्वैरहारी
क्वैवंभूतं भुवन-तिलकं प्राभवं त्वत्परेषु ॥ २२ ॥
देव स्तोतुं त्रिदिव-गणिका-मण्डली-गीत-कीर्तिं
तोतूर्ति त्वां सकल-विषय-ज्ञान-मूर्तिं जनो यः ।
तस्य क्षेमं न पदमटतो जातु जोहूर्ति पन्थाः
तत्त्वग्रन्थ-स्मरण-विषये नैष मोमूर्ति मर्त्यः ॥२३॥
चित्ते कुर्वन्निरवधि-सुख-ज्ञान-दृग्वीर्य-रूपं
देव त्वां यः समय-नियमादादरेण स्तवीति ।
श्रेयोमार्गं स खलु सुकृती तावता पूरयित्वा
कल्याणानां भवति विषयः पञ्चधा पञ्चितानाम् ॥२४

भक्ति-प्रह्व-महेन्द्र-पूजित-पद त्वत्कीर्तने न क्षमाः
सूक्ष्म-ज्ञान-दृशोऽपि संयमभृतः के हन्त मन्दा वयम् ।
अस्माभिः स्तवन-च्छलेन तु परस्त्वय्यादरस्तन्यते
स्वात्माधीन-सुखैषिणां स खलु नः कल्याण-कल्पद्रुमः ।।

वादिराजमनु शाब्दिक-लोको वादिराजमनु तार्किक-सिंहः ।
वादिराजमनु काव्यकृतस्ते वादिराजमनु भव्य-सहायः ।।

विषापहारस्तोत्रम्

[श्रीधनञ्जय]

स्वात्म-स्थितः सर्व-गतः समस्त-व्यापार-वेदी विनिवृत्त-सङ्गः ।
प्रवृद्ध-कालोऽप्यजरो वरेण्यः पायादपायात्पुरुषः पुराणः ।।
परैरचिन्त्यं युग-भारमेकः स्तोतुं वहन्योगिभिरप्यशक्यः ।
स्तुत्योऽद्य मेऽसौ वृषभो न भानोः किमप्रवेशे विशति प्रदीपः ।।

तत्याज शक्रः शकनाभिमानं नाहं त्यजामि स्तवनानुबन्धम् ।
स्वल्पेन बोधेन ततोऽधिकार्थं वातायनेनेव निरूपयामि ।।
त्वं विश्वदृश्वा सकलैरदृश्यो विद्वानशेषं निखिलैरवेद्यः ।
वक्तुं कियान्कीदृश इत्यशक्यः स्तुतिस्ततोऽशक्तिकथा तवास्तु ।।

व्यापीडितं बालमिवात्म-दोषैरुल्लाघतां लोकमवापिपस्त्वम् ।
हिताहितान्वेषणमान्द्यभाजः सर्वस्य जन्तोरसि बाल-वैद्यः ॥

दाता न हर्ता दिवसं विवस्वानद्यश्व इत्यच्युत दर्शिताशः ।
संव्याजमेवं गमयत्यशक्तः क्षणेन दत्सेऽभिमतं नताय ॥६॥

उपैति भक्त्या सुमुखः सुखानि त्वयि स्वभावाद्विमुखश्च दुःखम् ।
सदावदात-द्युतिरेकरूपस्तयोस्त्वमादर्श इवावभासि ॥७॥

अगाधताब्धेः स यतः पयोधिर्मेरोश्च तुङ्गा प्रकृतिः स यत्र ।
द्यावापृथिव्योः पृथुता तथैव व्याप त्वदीया भुवनान्तराणि ॥

तवानवस्था परमार्थ-तत्त्वं त्वया न गीतः पुनरागमश्च ।
दृष्टं विहाय त्वमदृष्टमैषीर्विरुद्ध-वृत्तोऽपि समञ्जसस्त्वम् ॥

स्मरः सुदग्धो भवतैव तस्मिन्नुद्धूलितात्मा यदि नाम शम्भुः ।
अशेत वृन्दोपहतोऽपि विष्णुः किं गृह्यते येन भवानजागः ॥

स नीरजाः स्यादपरोऽघवान्वा तद्दोषकीर्त्यैव न ते गुणित्वम् ।
स्वतोऽम्बुराशेर्महिमा न देव स्तोकापवादेन जलाशयस्य ॥

कर्मस्थितिं जन्तुरनेक-भूमिं नयत्यमुं सा च परस्परस्य ।
त्वं नेतृ-भावं हि तयोर्भवाब्धौ जिनेन्द्र नौ-नाविकयोरिवाख्यः॥

सुखाय दुःखानि गुणाय दोषान्धर्माय पापानि समाचरन्ति ।
तैलाय बालाः सिकता-समूहं निपीडयन्ति स्फुटमत्वदीयाः ॥

विषापहारं मणिमौषधानि मन्त्रं समुद्दिश्य रसायनं च ।
भ्राम्यन्त्यहो न त्वमिति स्मरन्ति पर्याय-नामानि तवैव तानि ॥

चित्ते न किञ्चित्कृतवानसि त्वं देवः कृतश्चेतसि येन सर्वम् ।
हस्ते कृतं तेन जगद्विचित्रं सुखेन जीवत्यपि चित्तबाह्यः ॥

त्रिकाल-तत्त्वं त्वमवैस्त्रिलोकी-स्वामीति संख्या-नियतेरमीषाम् ।
बोधाधिपत्यं प्रति नाभविष्यंस्तेऽन्येऽपि चेद्व्याप्स्यदमूनपीदम् ॥

नाकस्य पत्युः परिकर्म रम्यं नागम्यरूपस्य तवोपकारि ।
तस्यैव हेतुः स्वसुखस्य भानोरुद्बिभ्रतच्छत्रमिवादरेण ॥

क्वोपेक्षकस्त्वं क्व सुखोपदेशः स चेत्किमिच्छा-प्रतिकूल-वादः ।
क्वासौ क्व वा सर्वजगत्प्रियत्वं तन्नो यथातथ्यमवेविचं ते ॥

तुङ्गात्फलं यत्तदकिञ्चनाच्च प्राप्यं समृद्धान्न धनेश्वरादेः ।
निरम्भसोऽप्युच्चतमादिवाद्रेर्नैकापि निर्याति धुनी पयोधेः ॥

त्रैलोक्य-सेवा-नियमाय दण्डं दध्रे यदिन्द्रो विनयेन तस्य ।
तत्प्रातिहार्यं भवतः कुतस्त्यं तत्कर्म-योगाद्यदि वा तवास्तु ॥

श्रिया परं पश्यति साधु निःस्वः श्रीमान्न कश्चित्कृपणं त्वदन्यः ।
यथा प्रकाश-स्थितमन्धकारस्थायीक्षतेऽसौ न तथा तमःस्थम् ॥

स्ववृद्धिनिःश्वास-निमेषभाजि प्रत्यक्षमात्मानुभवेऽपि मूढः ।
किं चाखिल-ज्ञेय-विवर्ति-बोधस्वरूपमध्यक्षमवैति लोकः ॥

तस्यात्मजस्तस्य पितेति देव त्वां येऽवगायन्ति कुलं प्रकाश्य ।
तेऽद्यापि नन्वाश्मनमित्यवश्यं पाणौ कृतं हेम पुनस्त्यजन्ति ॥

दत्तस्त्रिलोक्यां पटहोऽभिभूताः सुरासुरास्तस्य महान् स लाभः ।
मोहस्य मोहस्त्वयि को विरोद्धुर्मूलस्य नाशो बलवद्विरोधः ॥

मार्गस्त्वयैको ददृशे विमुक्तेश्चतुर्गतीनां गहनं परेण ।
सर्वं मया दृष्टमिति स्मयेन त्वं मा कदाचिद्भुजमालुलोक ॥

स्वर्भानुरर्कस्य हविर्भुजोऽम्भः कल्पान्तवातोऽम्बुनिधेर्विघातः ।
संसार-भोगस्य वियोग-भावो विपक्ष-पूर्वाभ्युदयास्त्वदन्ये ॥

अजानतस्त्वां नमतः फलं यत्तज्जानतोऽन्यं न तु देवतेति ।
हरिन्मणिं काचधिया दधानस्तं तस्य बुद्ध्या वहतो न रिक्तः ॥

प्रशस्त-वाचश्चतुराः कषायैर्दग्धस्य देव-व्यवहारमाहुः ।
गतस्य दीपस्य हि नन्दितत्वं दृष्टं कपालस्य च मङ्गलत्वम् ॥

नानार्थमेकार्थमदस्त्वदुक्तं हितं वचस्ते निशमय्य वक्तुः ।
निर्दोषतां के न विभावयन्ति ज्वरेण मुक्तः सुगमः स्वरेण ॥

न क्वापि वाञ्छा ववृते च वाक्ते काले क्वचित्कोऽपि तथा नियोगः ।
न पूरयाम्यम्बुधिमित्युदंशुः स्वयं हि शीतद्युतिरभ्युदेति ॥

गुणा गभीराः परमाः प्रसन्ना बहु-प्रकारा बहवस्तवेति ।
दृष्टोऽयमन्तः स्तवने न तेषां गुणो गुणानां किमतः परोऽस्ति ॥

स्तुत्या परं नाभिमतं हि भक्त्या स्मृत्या प्रणत्या च ततो भजामि।
स्मरामि देवं प्रणमामि नित्यं केनाप्युपायेन फलं हि साध्यम् ॥
ततस्त्रिलोकी-नगराधिदेवं नित्यं परं ज्योतिरनन्त-शक्तिम् ।
अपुण्य-पापं पर-पुण्य-हेतुं नमाम्यहं वन्द्यमवन्दितारम् ॥
अशब्दमस्पर्शमरूप-गन्धं त्वां नीरसं तद्विषयावबोधम् ।
सर्वस्य मातारममेयमन्यैर्जिनेन्द्रमस्मार्यमनुस्मरामि ॥
अगाधमन्यैर्मनसाप्यलङ्घ्यं निष्किञ्चनं प्रार्थितमर्थवद्भिः ।
विश्वस्य पारं तमदृष्टपारं पतिं जनानां शरणं व्रजामि ॥
त्रैलोक्य-दीक्षा-गुरवे नमस्ते यो वर्धमानोऽपि निजोन्नतोऽभूत्।
प्राग्गण्डशैलः पुनरद्रि-कल्पः पश्चान्न मेरुः कुल-पर्वतोऽभूत् ॥
स्वयंप्रकाशस्य दिवा निशा वा न बाध्यता यस्य न बाधकत्वम्।
न लाघवं गौरवमेकरूपं वन्दे विभुं कालकलामतीतम् ॥
इति स्तुतिं देव विधाय दैन्याद्वरं न याचे त्वमुपेक्षकोऽसि ।
छायातरुं संश्रयतः स्वतः स्यात्कश्छायया याचितयात्मलाभः ॥
अथास्ति दित्सा यदि वोपरोधस्त्वय्येव सक्तां दिश भक्ति-बुद्धिम्
करिष्यते देव तथा कृपां मे को वात्मपोष्ये सुमुखो न सूरिः ॥
वितरति विहिता यथाकथञ्चिज्जिन विनताय मनीषितानि भक्तिः
त्वयि नुति-विषया पुनर्विशेषाद्दिशति सुखानि यशो 'धनं जयं' च॥

जिनचतुर्विंशतिका

[श्री भूपाल कवि]

श्रीलीलायतनं मही-कुल-गृहं कीर्ति-प्रमोदास्पदं
वाग्देवी-रति-केतनं जय-रमा-क्रीडा-निधानं महत् ।
स स्यात्सर्व-महोत्सवैक-भवनं यः प्रार्थितार्थ-प्रदं
प्रातः पश्यति कल्प-पादप-दल-च्छायं जिनांघ्रि-द्वयम् ॥

शान्तं वपुः श्रवण-हारि वचश्चरित्रं
सर्वोपकारि तव देव ततः श्रुतज्ञाः ।
संसार-मारव-महास्थल-रुन्द-सान्द्र-
च्छाया-महीरुह भवन्तमुपाश्रयन्ते ॥२॥

स्वामिन्नद्य विनिर्गतोऽस्मि जननी-गर्भान्ध-कूपोदरा-
दद्योद्घाटित-दृष्टिरस्मि फलवज्जन्मास्मि चाद्य स्फुटम् ।
त्वामद्राक्षमहं यदक्षय-पदानन्दाय लोकत्रयी-
नेत्रेन्दीवर-काननेन्दुममृत-स्यन्दि-प्रभा-चन्द्रिकम् ॥३॥

निःशेष-त्रिदशेन्द्र-शेखर-शिखा-रत्न-प्रदीपावली-
सान्द्रीभूत-मृगेन्द्र-विष्टर-तटी-माणिक्य-दीपावलिः ।
क्वेयं श्रीः क्व च निःस्पृहत्वमिदमित्यूहातिगस्त्वादृशः
सर्व-ज्ञान-दृशश्चरित्र-महिमा लोकेश लोकोत्तरः ॥४॥

राज्यं शासनकारि-नाकपति यत्त्यक्तं तृणावज्ञया
हेला-निर्दलित-त्रिलोक-महिमा यन्मोह-मल्लो जितः।
लोकालोकमपि स्वबोध-मुकुरस्यान्तः कृतं यत्त्वया
सैषाश्चर्य-परम्परा जिनवर क्वान्यत्र सम्भाव्यते ॥५॥
दानं ज्ञान-धनाय दत्तमसकृत्पात्राय सद्वृत्तये
चीर्णान्युग्र-तपांसि तेन सुचिरं पूजाश्च बह्व्यः कृताः ।
शीलानां निचयः सहामलगुणैः सर्वः समासादितो
दृष्टस्त्वं जिन येन दृष्टि-सुभगः श्रद्धा-परेण क्षणम् ॥६॥
प्रज्ञा-पारमितः स एव भगवान्पारं स एव श्रुत-
स्कन्धाब्धेर्गुण-रत्न-भूषण इति श्लाघ्यः स एव ध्रुवम् ।
नीयन्ते जिन येन कर्ण-हृदयालङ्कारतां त्वद्गुणाः
संसाराहि-विषापहार-मणयस्त्रैलोक्य-चूडामणे ॥७॥

जयति दिविज-वृन्दान्दोलितैरिन्दुरोचिः
निचय-रुचिभिरुच्चैश्चामरैर्वीज्यमानः ।
जिनपतिरनुरज्यन्मुक्ति-साम्राज्य-लक्ष्मी-
युवति-नव-कटाक्ष-क्षेप-लीलां दधानैः ॥८॥

देवः श्वेतातपत्र-त्रय-चमरिरुहाशोक-भाश्चक्र-भाषा-
पुष्पौघासार-सिंहासन-सुरपटहैरष्टभिः प्रातिहार्यैः ।
साश्चर्यैर्भ्राजमानः सुर-मनुज-सभाम्भोजिनी-भानुमाली
पायान्नः पादपीठीकृत-सकल-जगत्पाल-मौलिर्जिनेन्द्रः ॥

नृत्यत्स्वर्दन्ति-दन्ताम्बुरुह-वन-नटन्नाक-नारी-निकायः
सद्यस्त्रैलोक्य-यात्रोत्सव-कर-निनदातोद्यमाद्यन्निलिम्पः ।
हस्ताम्भोजात-लीला-विनिहित सुमनोदाम-रम्यामर-स्त्री-
काम्यः कल्याण-पूजाविधिषु विजयते देव देवागमस्ते ॥

चक्षुष्मानहमेव देव भुवने नेत्रामृत-स्यन्दिनं
त्वद्वक्त्रेन्दुमतिप्रसाद-सुभगैस्तेजोभिरुद्भासितम् ।
येनालोकयता मयानति-चिराच्चक्षुः कृतार्थीकृतं
द्रष्टव्यावधि-वीक्षण-व्यतिकर-व्याजृम्भमाणोत्सवम् ॥

कन्तोः सकान्तमपि मल्लमवैति कश्चिन्-
मुग्धो मुकुन्दमरविन्दजमिन्दुमौलिम् ।
मोघीकृत-त्रिदश-योषिदपाङ्गपातः
तस्य त्वमेव विजयी जिनराज मल्लः ॥१२॥

किसलयितमनल्पं त्वद्विलोकाभिलाषात्
कुसुमितमतिसान्द्रं त्वत्समीप-प्रयाणात् ।
मम फलितममन्दं त्वन्मुखेन्दोरिदानीं
नयन-पथमवाप्तादेव पुण्यद्रुमेण ॥१३॥

त्रिभुवन-वन-पुष्प्यत्पुष्प-कोदण्ड-दर्प-
प्रसर-दव-नवाम्भो-मुक्ति-सूक्ति-प्रसूतिः ।
स जयति जिनराज-व्रात-जीमूत-संघः
शतमख-शिखि-नृत्यारम्भ-निर्बन्ध-बन्धुः ॥१४॥

भूपाल-स्वर्ग-पाल-प्रमुख-नर-सुर-श्रेणि-नेत्रालिमाला-
लीला-चैत्यस्य चैत्यालयमखिलजगत्कौमुदीन्दोर्जिनस्य ।
उत्तंसीभूत-सेवाञ्जलि-पुट-नलिनी-कुड्मलास्त्रिः परीत्य
श्रीपाद-च्छाययापस्थितभवदवथुः संश्रितोऽस्मीव मुक्तिम् ॥

देव त्वदंघ्रि-नख-मण्डल-दर्पणेऽस्मिन्
अर्घ्ये निसर्ग-रुचिरे चिर-दृष्ट-वक्त्रः ।
श्रीकीर्ति-कान्ति-धृति-सङ्गम-कारणानि
भव्यो न कानि लभते शुभ-मङ्गलानि ॥१६॥

जयति सुर-नरेन्द्र-श्रीसुधा-निर्झरिण्याः
कुलधरणि-धरोऽयं जैन-चैत्याभिरामः ।
प्रविपुल-फल-धर्मानोकहाग्र-प्रवाल-
प्रसर-शिखर-शुम्भत्केतनः श्रीनिकेतः ॥१७॥

विनमदमरकान्ता-कुन्तलाक्रान्त-कान्ति-
स्फुरित-नख-मयूख-द्योतिताशान्तरालः ।
दिविज-मनुज-राज-व्रात-पूज्य-क्रमाब्जो
जयति विजित-कर्माराति-जालो जिनेन्द्रः ॥१८॥

सुप्तोत्थितेन सुमुखेन सुमङ्गलाय
द्रष्टव्यमस्ति यदि मङ्गलमेव वस्तु ।
अन्येन किं तदिह नाथ तवैव वक्त्रं
त्रैलोक्य-मङ्गल-निकेतनमीक्षणीयम् ॥१९॥

त्वं धर्मोदय-तापसाश्रम-शुकस्त्वं काव्य-बन्ध-क्रम-
क्रीडानन्दन-कोकिलस्त्वमुचितः श्रीमल्लिका-षट्पदः ।
त्वं पुन्नाग-कथारविन्द-सरसी-हंसस्त्वमुत्तंसकैः
कैर्भूपाल न धार्यसे गुण-मणि-स्रङ्मालिभिर्मौलिभिः ॥
शिव-सुखमजर-श्री-सङ्गमं चाभिलष्य
स्वमभिनियमयन्ति क्लेश-पाशेन केचित् ।
वयमिह तु वचस्ते भूपतेर्भावयन्तः
तदुभयमपि शश्वल्लीलया निर्विशामः ॥२१॥
देवेन्द्रास्तव मज्जनानि विदधुर्देवाङ्गना मङ्गला-
न्यापेठुः शरदिन्दु-निर्मल-यशो गन्धर्व-देवा जगुः ।
शेषाश्चापि यथानियोगमखिलाः सेवां सुराश्चक्रिरे
तत्किं देव वयं विदध्म इति नश्चित्तं तु दोलायते ॥
देव त्वज्जननाभिषेक-समये रोमाञ्च-सत्कञ्चुकैः
देवेन्द्रैर्यदनर्ति नर्तनविधौ लब्ध-प्रभावैः स्फुटम् ।
किञ्चान्यत्सुर-सुन्दरी-कुच-तट-प्रान्तावनद्धोत्तम-
प्रेङ्खद्वल्लकि-नाद-झंकृतमहो तत्केन संवर्ण्यते ॥२३॥
देव त्वत्प्रतिबिम्बमम्बुज-दलस्मेरेक्षणं पश्यतां
यत्रास्माकमहो महोत्सव-रसो दृष्टेरियान्वर्तते ।
साक्षात्तत्र भवन्तमीक्षितवतां कल्याण-काले तदा
देवानामनिमेष-लोचनतया वृत्तः स किं वर्ण्यते ॥२४॥

दृष्टं धाम रसायनस्य महतां दृष्टं निधीनां पदं
दृष्टं सिद्ध-रसस्य सद्म सदनं दृष्टं च चिन्तामणेः ।
किं दृष्टैरथवानुषङ्गिक-फलैरेभिर्मयाद्य ध्रुवं
दृष्टं मुक्ति-विवाह-मङ्गल-गृहं दृष्टे जिन-श्री-गृहे ॥२५॥

दृष्टस्त्वं जिनराज-चन्द्र विकसद्भूपेन्द्र-नेत्रोत्पले
स्नातं त्वन्नुति-चन्द्रिकाम्भसि भवद्विद्वच्चकोरोत्सवे ।
नीतश्चाद्य निदाघजः क्लमभरः शान्तिं मया गम्यते
देव त्वद्गत-चेतसैव भवतो भूयात्पुनर्दर्शनम् ॥२६॥

भावनाद्वात्रिंशतिका

सत्त्वेषु मैत्रीं गुणिषु प्रमोदं क्लिष्टेषु जीवेषु कृपापरत्वम् ।
मध्यस्थ-भावं विपरीतवृत्तौ सदा ममात्मा विदधातु देव ॥
शरीरतः कर्तुमनन्तशक्तिं विभिन्नमात्मानमपास्त-दोषम् ।
जिनेन्द्र कोषादिव खड्गयष्टिं तव प्रसादेन ममास्तु शक्तिः ॥
दुःखे सुखे वैरिणि बन्धु-वर्गे योगे वियोगे भुवने वने वा ।
निराकृताशेष-ममत्व-बुद्धेः समं मनो मेऽस्तु सदापि नाथ ॥

मुनीश लीनाविव कीलिताविव
स्थिरौ निखाताविव बिम्बिताविव ।
पादौ त्वदीयौ मम तिष्ठतां सदा
तमो-धुनानौ हृदि दीपकाविव ॥ ४ ॥

एकेन्द्रियाद्या यदि देव देहिनः प्रमादतः संचरता इतस्ततः ।
क्षता विभिन्ना मिलिता निपीडितास्तदस्तु मिथ्या दुरनुष्ठितं तदा॥
विमुक्ति-मार्ग-प्रतिकूल-वर्त्तिना मया कषायाक्ष-वशेन दुर्धिया ।
चारित्र-शुद्धेर्यदकारि लोपनं तदस्तु मिथ्या मम दुष्कृतं प्रभो ॥
विनिन्दनालोचन-गर्हणैरहं मनो-वचः-काय-कषाय-निर्मितम् ।
निहन्मि पापं भव-दुःख-कारणं भिषग्विषं मन्त्र-गुणैरिवाखिलम्॥
अतिक्रमं यद्विमतेर्व्यतिक्रमं जिनातिचारं सुचरित्र-कर्म्मणः ।
व्यधामनाचारमपि प्रमादतः प्रतिक्रमं तस्य करोमि शुद्धये ॥
क्षतिं मनः-शुद्धि-विधेरतिक्रमं व्यतिक्रमं शील-वृतेर्विलंघनम् ।
प्रभोऽतिचारं विषयेषु वर्तनं वदन्त्यनाचारमिहातिसक्तताम् ॥
यदर्थ-मात्रा-पदवाक्य-हीनं मया प्रमादाद्यदि किञ्चनोक्तम् ।
तन्मे क्षमित्वा विदधातु देवी सरस्वती केवलबोध-लब्धिम् ॥

बोधिः समाधिः परिणाम-शुद्धिः
स्वात्मोपलब्धिः शिव-सौख्य-सिद्धिः ।
चिन्तामणिं चिन्तित-वस्तु-दाने
त्वां वन्द्यमानस्य ममास्तु देवि ॥११॥

यः स्मर्यते सर्व-मुनीन्द्र-वृन्दैर्यः स्तूयते सर्वनरामरेन्द्रैः ।
यो गीयते वेद-पुराण-शास्त्रैः स देव-देवो हृदये ममास्ताम् ॥

यो दर्शन-ज्ञान-सुख-स्वभावः समस्त-संसार-विकार-बाह्यः ।
समाधिगम्यः परमात्म-संज्ञः स देव-देवो हृदये ममास्ताम् ॥

निषूदते यो भव-दुख-जालं निरीक्षते यो जगदन्तरालम् ।
योऽन्तर्गतो योगि-निरीक्षणीयः स देव-देवो हृदये ममास्ताम् ॥

विमुक्ति-मार्ग-प्रतिपादको यो यो जन्म-मृत्यु-व्यसनाद्यतीतः ।
त्रिलोक-लोकी विकलोऽकलङ्कः स देव-देवो हृदये ममास्ताम् ॥

क्रोडीकृताशेष-शरीरि-वर्गा रागादयो यस्य न सन्ति दोषाः ।
निरिन्द्रियो ज्ञानमयोऽनपायः स देव-देवो हृदये ममास्ताम् ॥

यो व्यापको विश्व-जनीनवृत्तेः सिद्धो विबुद्धो धुत-कर्म-बन्धः ।
ध्यातो धुनीते सकलं विकारं स देव-देवो हृदये ममास्ताम् ॥

न स्पृश्यते कर्म-कलङ्क-दोषैः यो ध्वान्त-संघैरिव तिग्म-रश्मिः ।
निरञ्जनं नित्यमनेकमेकं तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये ॥

विभासते यत्र मरीचिमाली न विद्यमाने भुवनावभासि ।
स्वात्म-स्थितं बोधमय-प्रकाशं तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये ॥

विलोक्यमाने सति यत्र विश्वं विलोक्यते स्पष्टमिदं विविक्तम् ।
शुद्धं शिवं शान्तमनाद्यनन्तं तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये ॥

येन क्षता मन्मथ-मान-मूर्च्छा-विषाद-निद्रा-भय-शोक-चिन्ताः।
क्षयोऽनलेनेव तरु-प्रपञ्चस्तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये ॥

नसंस्तरोऽश्मा न तृणं न मेदिनी विधानतो नो फलको विनिर्मितः
यतो निरस्ताक्ष-कषाय-विद्विषः सुधीभिरात्मैव सुनिर्मितो मतः॥

न संस्तरो भद्र समाधि-साधनं न लोक-पूजा न च संघ-मेलनम्।
यतस्ततोऽध्यात्म-रतो भवानिशं विमुच्य सर्वामपि बाह्य-वासनाम्

न सन्ति बाह्या मम केचनार्था भवामि तेषां न कदाचनाहम्।
इत्थं विनिश्चित्य विमुच्य बाह्यं स्वस्थः सदा त्वं भद्र मुक्त्यै ॥

आत्मानमात्मन्यवलोक्यमानस्त्वं दर्शन-ज्ञानमयो विशुद्धः।
एकाग्रचित्तः खलु यत्र तत्र स्थितोऽपि साधुर्लभते समाधिम् ॥

एकः सदा शाश्वतिको ममात्मा विनिर्मलः साधिगम-स्वभावः
बहिर्भवाः सन्त्यपरे समस्ता न शाश्वताः कर्म-भवाः स्वकीया॥

यस्यास्ति नैक्यं वपुषापि सार्द्धं तस्यास्ति किं पुत्र-कलत्र-मित्रैः।
पृथक्कृते चर्मणि रोम-कूपाः कुतो हि तिष्ठन्ति शरीरमध्ये ॥

संयोगतो दुःखमनेकभेदं यतोऽश्नुते जन्म-वने शरीरी।
ततस्त्रिधासौ परिवर्जनीयो यियासुना निर्वृतिमात्मनीनाम् ॥

सर्वं निराकृत्य विकल्प-जालं संसार-कान्तार-निपात-हेतुम्।
विविक्तमात्मानमवेक्ष्यमाणो निलीयसे त्वं परमात्म-तत्त्वे ॥

स्वयंकृतं कर्म यदात्मना पुरा फलं तदीयं लभते शुभाशुभम् ।
परेण दत्तं यदि लभ्यते स्फुटं स्वयंकृतं कर्म निरर्थकं तदा ॥

निजार्जितं कर्म विहाय देहिनो न कोऽपि कस्यापि ददाति किञ्चन
विचारयन्नेवमनन्यमानसः परो ददातीति विमुच्य शेमुषीम् ॥

यैः परमात्माऽमितगति-वन्द्यः सर्व-विविक्तो भृशमनवद्यः ।
शश्वदधीतो मनसि लभन्ते मुक्ति-निकेतं विभव-वरं ते ॥

इति द्वात्रिंशतिवृत्तैः परमात्मानमीक्षते ।
योऽनन्यगत-चेतस्को यात्यसौ पदमव्ययम् ॥

स्तोत्र आदि [हिन्दी]

भक्तामरस्तोत्र [भाषा]

[हेमराज]

आदिपुरुष आदीश जिन, आदि सुविधि करतार ।
धरम-धुरंधर परमगुरु, नमों आदि अवतार ॥

सुर-नत-मुकुट रतन-छवि करैं, अंतर पाप-तिमिर सब हरैं ।
जिनपद बंदों मन वच काय, भव-जल-पतित उधरन-सहाय ॥

श्रुत-पारग इंद्रादिक देव, जाकी थुति कीनी कर सेव ।
शब्द मनोहर अरथ विशाल, तिस प्रभुकी वरनों गुन-माल ॥

विबुध-वंद्य-पद मैं मति-हीन, हो निलज्ज थुति-मनसा कीन ।
जल-प्रतिबिंब बुद्ध को गहै, शशि-मंडल बालक ही चहै ॥

गुन-समुद्र तुम गुन अविकार, कहत न सुर-गुरु पावैं पार ।
प्रलय-पवन-उद्धत जल-जंतु, जलधि तिरै को भुज बलवंतु ॥

सो मैं शक्ति-हीन थुति करूं, भक्ति-भाव-वश कछु नहिं डरूं ।
ज्यों मृगि निज-सुत पालन हेत, मृगपति सन्मुख जाय अचेत ॥

मैं शठ सुधी हँसनको धाम, मुझ तव भक्ति बुलावै राम ।
ज्यों पिक अंब-कली-परभाव, मधु-ऋतु मधुर करै आराव ॥

तुम जस जंपत जन छिनमाहिं, जनम जनमके पाप नशाहिं ।
ज्यों रबि उगै फटै ततकाल, अलिवत नील निशा-तम-जाल ॥

तव प्रभावतैं कहूँ विचार, होसी यह थुति जन-मन-हार ।
ज्यों जल-कमल पत्रपै परै, मुक्ताफलकी दुति विस्तरै ॥

तुम गुन-महिमा हत-दुख-दोष, सो तो दूर रहो सुख-पोष ।
पाप-विनाशक है तुम नाम, कमल-विकाशी ज्यों रवि-धाम ॥

नहिं अचंभ जो होहिं तुरंत, तुमसे तुम गुण वरणत संत ।
जो अधनीको आप समान, करै न सो निंदित धनवान ॥

इकटक जन तुमको अविलोय, अवरविषैं रति करै न सोय ।
को करि छीर-जलधि जल पान, क्षार नीर पीवै मतिमान ॥

प्रभु तुम वीतराग गुन-लीन, जिन परमानु देह तुम कीन ।
हैं तितने ही ते परमानु, यातैं तुम सम रूप न आनु ॥

कहँ तुम मुख अनुपम अविकार, सुर-नर-नाग-नयन-मनहार ।
कहां चंद्र-मंडल सकलंक, दिनमें ढाक-पत्र सम रंक ॥

पूरन-चंद-ज्योति छविवंत, तुम गुन तीन जगत लंघंत ।
एक नाथ त्रिभुवन आधार, तिन विचारत को करै निवार ॥

जो सुर-तिय विभ्रम आरम्भ, मन न डिग्यो तुम तौ न अचंभ ।
अचल चलावै प्रलय समीर, मेरु-शिखर डगमगैं न धीर ॥

धूमरहित वाती गत नेह परकाशै त्रिभुवन-घर एह ।
वात-गम्य नाहीं परचंड, अपर दीप तुम बलो अखंड ॥

छिपहु न लुपहु राहुकी छांहिं, जग-परकाश हो छिनमांहिं ।
धन अनवर्त्त दाह विनिवार, रवितैं अधिक धरो गुणसार ॥
सदा उदित विदलित मनमोह, विघटित नेह राहु अविरोह ।
तुम मुख-कमल अपूरव चंद, जगत-बिकाशी जोति अमंद ॥
निश-दिन शशि रविको नहिं काम, तुम मुख-चंद हरै तम-घाम ।
जो स्वभावतैं उपजै नाज, सजल मेघ तो कौनहु काज ॥
जो सुबोध सोहै तुममाहिं, हरि नर आदिकमें सो नाहिं ॥
जो दुति महा-रतन में होय काच-खंड पावै नहिं सोय ॥

नाराच छंद

सराग देव देख मैं भला विशेष मानिया ।
स्वरूप जाहि देख वीतराग तू पिछानिया ॥
कछू न तोहिं देखके जहाँ तुही विशेखिया ।
मनोग चित्त-चोर और भूल हूँ न पेखिया ॥
अनेक पुत्रवंतिनी नितंविनी सपूत हैं ।
न तो समान पुत्र और माततैं प्रसूत हैं ॥
दिशा धरंत तारिका अनेक कोटिको गिनै ।
दिनेश तेजवंत एक पूर्व ही दिशा जनै ॥
पुरान हो पुमान हो पुनीत पुन्यवान हो ।
कहैं मुनीश अंधकार-नाशको सुभान हो ॥

महंत तोहि जानके न होय वश्य कालके ।
न और मोहि मोखपंथ देय तोहि टालके ॥
अनंत नित्य चित्तकी अगम्य रम्य आदि हो ।
असंख्य सर्वव्यापि विष्णु ब्रह्म हो अनादि हो ॥
महेश कामकेतु योग ईश योग ज्ञान हो ।
अनेक एक ज्ञानरूप शुद्ध संतमान हो ॥
तुही जिनेश बुद्ध है सुबुद्धिके प्रमानतैं ।
तुही जिनेश शंकरो जगत्त्रये विधानतैं ॥
तुही विधात है सही सुमोखपंथ धारतैं ।
नरोत्तमो तुही प्रसिद्ध अर्थके विचारतैं ॥
नमों करूं जिनेश तोहि आपदा निवार हो ।
नमो करूं सु भूरि भूमि-लोकके सिंगार हो ॥
नमों करूं भवाब्धि-नीर-राशि-शोष-हेतु हो ।
नमो करूं महेश तोहि मोखपंथ देतु हो ॥

चौपाई

तुम जिन पूरन गुन-गन भरे, दोष गर्वकरि तुम परिहरे ।
और देव-गण आश्रय पाय, स्वप्न न देखे तुम फिर आय ॥
तरु अशोक-तर किरन उदार, तुम तन शोभित है अविकार ।
मेघ निकट ज्यों तेज फुरंत, दिनकर दिपै तिमिर निहनंत ॥

सिंहासन मनि-किरन-विचित्र, तापर कंचन-वरन पवित्र ।
तुम तन शोभित किरन-विथार, ज्यों उदयाचल रवि तम-हार ।।

कुंद-पुहुप-सित-चमर ढुरंत, कनक-वरन तुम तन शोभंत ।
ज्यों सुमेरु-तट निर्मल कांति, झरना झरै नीर उमगांति ।।

ऊँचे रहैं सूर दुति लोप, तीन छत्र तुम दिपैं अगोप ।
तीन लोककी प्रभुता कहैं, मोती-झालरसों छवि लहैं ।।

दुंदुभि-शब्द गहर गंभीर, चहुँदिशि होय तुम्हारै धीर ।
त्रिभुवन-जन शिव-संगम करै, मानूँ जय जय रव उच्चरै ।।

मंद पवन गंधोदक इष्ट, विविध कल्पतरु पुहप-सुवृष्ट ।
देव करैं विकसित दल सार, मानों द्विज-पंकति अवतार ।।

तुम तन-भामंडल जिनचंद, सब दुतिवंत करत है मंद ।
कोटि शंख रवि तेज छिपाय, शशि निर्मल निशि करै अछाय ।।

स्वर्ग-मोख-मारग-संकेत, परम-धरम उपदेशन हेत ।
दिव्य वचन तुम खिरैं अगाध, सब भाषागर्भित हित साध ।।

दोहा

विकसित-सुवरन-कमल-दुति, नख-दुति मिलि चमकाहिं ।
तुम पद पदवी जहँ धरो, तहँ सुर कमल रचाहिं ।।
ऐसी महिमा तुम विषै, और धरै नहिं कोय ।
सूरजमें जो जोत है, नहिं तारा-गण होय ।।

षट्पद

मद-अवलिप्त-कपोल-मूल अलि-कुल झंकारैं ।
तिन सुन शब्द प्रचंड क्रोध उद्धत अति धारैं ।।
काल-वरन विकराल, कालवत सनमुख आवै ।
ऐरावत सो प्रबल सकल जन भय उपजावै ।।
देखि गयंद न भय करै तुम पद-महिमा छीन ।
विपतिरहित संपतिसहित वरतैं भक्त अदीन ।।
अति मद-मत्त-गयंद कुंभथल नखन विदारै ।
मोती रक्त समेत डारि भूतल सिंगारै ।।
बांकी दाढ विशाल वदनमें रसना लोलै ।
भीम भयानक रूप देखि जन थरहर डोलै ।।
ऐसे मृगपति पगतलैं जो नर आयो होय ।
शरण गये तुम चरणकी बाधा करै न सोय ।।
प्रलय-पवनकर उठी आग जो तास पटंतर ।
बमैं फुलिंग शिखा उतंग पर जलैं निरंतर ।।
जगत समस्त निगल्ल भस्मकर हैगी मानों ।
तडतडाट दव-अनल जोर चहुंदिशा उठानो ।।
सो इक छिनमें उपशमें नाम-नीर तुम लेत ।
होय सरोवर परिनमै विकसित कमल समेत ।।

कोकिल-कंठ-समान श्याम-तन क्रोध जलंता।
रक्त-नयन फुंकार मार विष-कण उगलंता॥
फणको ऊंचो करै वेग ही सन्मुख धाया।
तब जन होय निशंक देख फणिपतिको आया॥

जो चांपै निज पगतलैं व्यापै विष न लगार।
नाग-दमनि तुम नामकी है जिनके आधार॥

जिस रनमाहिं भयानक रव कर रहे तुरंगम।
घनसे गज गरजाहिं मत्त मानों गिरि जंगम॥
अति कोलाहलमाहिं बात जहँ नाहिं सुनीजै।
राजनको परचंड देख बल धीरज छीजै॥

नाथ तिहारे नामतैं सो छिनमाहिं पलाय।
ज्यों दिनकर परकाशतैं अंधकार विनशाय॥

मारै जहा गयंद कुंभ हथियार विदारै।
उमगै रुधिर प्रवाह वेग जलसम विस्तारै॥
होय तिरन असमर्थ महाजोधा बल पूरे।
तिस रनमें जिन तोर भक्त जे हैं नर सूरे॥

दुर्जय अरिकुल जीतके जय पावैं निकलंक।
तुम पद-पंकज मन बसै ते नर सदा निशंक॥

नक्र चक्र मगरादि मच्छकरि भय उपजावै।
जामैं बडवा अग्नि दाहतैं नीर जलावै॥

पार न पावै जास थाह नहिं लहिये जाकी।
गरजै अतिगंभीर लहरिकी गिनति न ताकी॥

सुखसों तिरै समुद्रको जे तुम गुन सुमराहिं।
लोलक-लोलनके शिखर पार यान ले जाहिं॥

महा जलोदर रोग, भार पीड़ित नर जे हैं।
वात पित्त कफ कुष्ट आदि जो रोग गहै हैं॥

सोचत रहैं उदास नाहिं जीवनकी आशा।
अति घिनावनी देह धरैं दुर्गंधि-निवासा॥

तुम पद-पंकज-धूलको जो लावैं निज-अंग।
ते नीरोग शरीर लहि छिनमें होय अनंग॥

पांव कंठतैं जकर वांध सांकल अति भारी।
गाढी बेड़ी पैरमांहि जिन जांघ विदारी॥

भूख प्यास चिंता शरीर दुख जे विललाने।
सरन नाहिं जिन कोय भूपके बंदीखाने॥

तुम सुमरत स्वयमेव ही बंधन सब खुल जाहिं।
छनमें ते संपति लहैं चिंता भय विनसाहिं॥

महामत्त गजराज और मृगराज दवानल।
फणपति रण परचंड नीर-निधि रोग महाबल॥
बंधन ये भय आठ डरपकर मानों नाशै।
तुम सुमरत छिनमाहिं अभय थानक परकाशै॥
इस अपार संसारमें शरन नाहिं प्रभु कोय।
यातैं तुम पद-भक्तको भक्ति सहाई होय॥
यह गुनमाल विशाल नाथ तुम गुनन सँवारी।
विविध-वर्णमय-पुहुप गूँथ मैं भक्ति विथारी॥
जे नर पहिरे कंठ भावना मनमें भावैं।
'मानतुंग' ते निजाधीन शिव-लछमी पावैं॥
भाषा भक्तामर कियो 'हेमराज' हित हेत।
जे नर पढैं सुभावसों ते पावैं शिव-खेत॥

दर्शनपाठ

[कविवर बुधजनजी]

प्रभु पतित-पावन मैं अपावन चरन आयो सरन जी।
यो विरद आप निहार स्वामी मेट जामन मरन जी॥
तुम ना पिछान्या आन मान्या देव विवध प्रकार जी।
या बुद्धिसेती निज न जाण्यो भ्रम गिण्यो हितकार जी॥

भव-विकट-वनमें करम वैरी ज्ञान-धन मेरो हर्‍यो।
तब इष्ट भूल्यो भ्रष्ट होय अनिष्ट-गति धरतो फिर्‍यो॥
धन घडी यो धन दिवस यो ही धन जनम मेरो भयो।
अब भाग मेरो उदय आयो दरश प्रभुको लख लयो॥
छवि वीतरागी नगन मुद्रा दृष्टि नासापै धरैं।
वसु प्रातिहार्य अणंत गुण जुत कोटि रवि छविको हरैं॥
मिट गयो तिमिर मिथ्यात मेरो उदय रवि आतम भयो।
मो उर हरष ऐसो भयो मनु रंक चिंतामणि लयो॥
मैं हाथ जोड़ नवाय मस्तक वीनऊं तुव चरन जी।
सर्वोत्कृष्ट त्रिलोक-पति जिन सुनहु तारन-तरन जी॥
जाचूं नहीं सुर-वास पुनि नर-राज परिजन साथ जी।
'बुध' जाचहूँ तुव भक्ति भव भव दीजिये शिवनाथ जी।

स्तुति

[कविवर दौलतरामजी]

दोहा

सकल ज्ञेय ज्ञायक तदपि, निजानन्द-रस-लीन।
सो जिनेन्द्र जयवंत नित, अरि-रज-रहस-विहीन॥१॥

जय वीतराग विज्ञान-पूर, जय मोह-तिमिरको हरन सूर।
जय ज्ञान अनंतानंत धार, दृग-सुख-वीरज-मण्डित अपार ॥
जय परम शांत मुद्रा समेत, भवि-जनको निज अनुभूति हेत।
भवि-भागनवश जोगे वशाय, तुम धुनि ह्वै सुनि विभ्रम नशाय॥
तुम गुण चिंतत निज-पर-विवेक, प्रगटै विघटै आपद अनेक।
तुम जग-भूषण दूषण-वियुक्त, सब महिमायुक्त विकल्प-मुक्त॥
अविरुद्ध शुद्ध चेतनस्वरूप, परमात्म परम पावन अनूप।
शुभ अशुभ विभाव अभाव कीन, स्वाभाविक परिणतिमय अलीन
अष्टादश दोष विमुक्त धीर, स्व चतुष्टयमय राजत गभीर।
मुनि गणधरादि सेवत महंत, नव केवल-लब्धि-रमा धरंत॥
तुम शासन सेय अमेय जीव, शिव गये जाहिं जैहैं सदीव।
भव-सागरमें दुख छार वारि, तारनको अवर न आप टारि॥
यह लखि निज दुख-गद-हरण-काज, तुम ही निमित्त कारण इलाज
जाने तातैं मैं शरण आय, उचरों निज दुख जो चिर लहाय॥
मैं भ्रम्यो अपनपो विसरि आप, अपनाये विधि-फल-पुण्य-पाप
निजको परकौ करता पिछान, परमें अनिष्टता इष्ट ठान॥
आकुलित भयो अज्ञान धारि, ज्यों मृग मृग-तृष्णा जानि वारि
तन-परणतिमें आपो चितार, कबहूँ न अनुभवो स्व-पदसार॥
तुमको विन जाने जो कलेश, पाये सो तुम जानत जिनेश।
पशु-नारक-नर-सुर-गति-मझार, भव धर धर मर्‍यो अनंत बार॥

अब काललब्धि बलतैं दयाल, तुम दर्शन पाय भयो खुशाल।
मन शांत भयो मिटि सकल द्वन्द, चाख्यो स्वातमरस दुखनिकंद॥
तातैं अब ऐसी करहु नाथ, विछुरै न कभी तुअ चरण साथ।
तुम गुणगणको नहिं छेव देव, जग तारन को तुम विरद एव॥
आतमके अहित विषय कषाय, इनमें मेरी परिणति न जाय।
मैं रहूँ आपमें आप लीन, सो करो होउँ ज्यों निजाधीन॥
मेरे न चाह कछु और ईश, रत्नत्रय-निधि दीजे मुनीश।
मुझ कारजके कारन सु आप, शिव करहु हरहु मम मोह-ताप॥
शशि शांतिकरन तप हरन हेत, स्वयमेव तथा तुम कुशल देत।
पीवत पियूष ज्यों रोग जाय, त्यों तुम अनुभवतैं भव नशाय॥
त्रिभुवन तिहुँकाल मंझार कोय, नहिं तुम विन निज सुखदाय होय
मो उर यह निश्चय भयो आज, दुखजलधि उतारन तुम जिहाज॥

दोहा

तुम गुणगण-मणिगणपती, गणत न पावहिं पार।
'दौल' स्वल्प-मति किमि कहै, नमूं त्रियोग संभार॥

स्तुति

[कविवर भूधरदास जी]

अहो जगतगुरु देव, सुनिए अरज हमारी ।
तुम प्रभु दीनदयाल, मैं दुखिया संसारी ॥
इस भव-वनके माहिं, काल अनादि गमायो ।
भ्रम्यो चहूँ गतिमाहिं, सुख नहिं दुख बहु पायो ॥
कर्म-महारिपु जोर, एक न कान करै जी ।
मनमाने दुख देहिं, काहूसों न डरैजी ॥
कबहूँ इतर निगोद, कबहूँ नरक दिखावै ।
सुर-नर-पशुगतिमाहिं, बहुविधि नाच नचावै ॥
प्रभु इनको परसंग, भव-भवमाहिं बुरो जी ।
जे दुख देखे देव, तुमसों नाहिं दुरो जी ॥
एक जनमकी बात, कहि न सकौं सुनि स्वामी ।
तुम अनंत परजाय, जानतु अंतरजामी ॥
मैं तो एक अनाथ, ये मिल दुष्ट घनेरे ।
कियो बहुत बेहाल, सुनियो साहिब मेरे ॥
ज्ञान महानिधि लूटि, रंक निबलकरि डारयो ।
इनही तुम मुझ माहिं, हे जिन अंतर पारयो ॥

पाप पुन्य मिलि दोय, पायनि बेड़ी डारी ।
तन-कारागृहमाहिं, मोहि दियो दुख भारी ॥
इनको नेक बिगार, मैं कछु नाहिं कियो जी ।
विन कारन जगवंद्य, बहुविध वैर लियो जी ॥
अब आयौ तुम पास, सुन जिन सुजस तिहारौ ।
नीति-निपुन जगराय, कीजै न्याव हमारो ॥
दुष्टन देहु निकाल, साधनकौं रखि लीजै ।
विनवै 'भूधरदास' हे प्रभु ढील न कीजै ॥

शारदा स्तवन

वीर हिमाचलतैं निकरी, गुरु गौतमके मुख-कुंड ढरी है ।
मोह-महाचल भेद चली, जगकी जडतातप दूर करी है ॥
ज्ञान पयोनिधिमांहि रली, बहुभंग-तरंगनिसों उछरी है ।
ता शुचि शारद गंगनदी प्रति, मैं अंजुलिकर शीश धरी है ॥
या जगमंदिरमें अनिवार अज्ञान अँधेर छयो अति भारी ।
श्रीजिनकी धुनि दीप-शिखासम, जो नहिं होत प्रकाशन-हारी ॥
तो किस भांति पदारथ-पांति, कहां लहते रहते अविचारी ।
या बिधि संत कहैं धनि हैं, धनि हैं जिन-वैन बड़े उपकारी ॥

आलोचना

दोहा

बंदों पांचों परम-गुरु, चौबीसों जिनराज ।
करूँ शुद्ध आलोचना, शुद्धिकरनके काज ॥१॥

सखीछन्द

सुनिये जिन अरज हमारी, हम दोष किये अति भारी ।
तिनकी अब निर्वृत्ति काज, तुम सरन लही जिनराज ॥
इक वे ते चउ इंद्री वा, मनरहित सहित जे जीवा ।
तिनकी नहिं करुणा धारी, निरदइ ह्वै घात विचारी ॥
समरंभ समारंभ आरंभ, मन वच तन कीने प्रारंभ ।
कृत कारित मोदन करिकैं, क्रोधादि चतुष्टय धरिकैं ॥
शत आठ जु इमि भेदनतैं, अघ कीने परिछेदनतैं ।
तिनकी कहुँ कोलौं कहानी, तुम जानत केवलज्ञानी ॥
विपरीत एकांत विनयके, संशय अज्ञान कुनयके ।
वश होय घोर अघ कीने, वचतैं नहिं जाय कहीने ॥
कुगुरनकी सेवा कीनी, केवल अदयाकरि भीनी ।
यःविधि मिथ्यात भ्रमायो, चहुँगति मधि दोष उपायो ॥

हिंसा पुनि झूठ जु चोरी, पर-वनितासों दृग जोरी।
आरंभ परिग्रह भीनो, पन पाप जु या विधि कीनो॥

सपरस रसना घ्राननको, चखु कान विषय-सेवनको।
बहु करम किये मनमाने, कछु न्याय अन्याय न जाने॥

फल पंच उदंबर खाये, मधु मांस मद्य चित चाये।
नहिं अष्ट मूलगुण धारी, विसनन सेये दुखकारी॥

दुइवीस अभख जिन गाये, सो भी निस दिन भुंजाये।
कछु भेदाभेद न पायो, ज्यों त्यों करि उदर भरायो॥

अनंतानु जु बंधी जानो, प्रत्याख्यान अप्रत्याख्यानो।
संज्वलन चौकरी गुनिये, सब भेद जु षोडश मुनिये॥

परिहास अरति रति शोग, भय ग्लानि तिवेद संयोग।
पनवीस जु भेद भये इम, इनके वश पाप किये हम॥

निद्रावश शयन कराई, सुपने मधि दोष लगाई।
फिर जागि विषय-वन धायो, नानाविध विष-फल खायो॥

कियेऽहार निहार विहारा, इनमें नहिं जतन विचारा।
विन देखी धरी उठाई, विन शोधी वस्तु जु खाई॥

तब ही परमाद सतायो, बहुविधि विकलप उपजायो।
कछु सुधि बुधि नाहिं रही है, मिथ्या मति छाय गयी है॥

मरजादा तुम ढिंग लीनी, ताहूमें दोष जु कीनी।
भिन भिन अब कैसैं कहिये, तुम ज्ञानविषैं सब पइये॥

हा हा! मैं दुठ अपराधी, त्रस-जीवन-राशि विराधी।
थावरकी जतन न कीनी, उरमें करुना नहिं लीनी॥

पृथिवी बहु खोद कराई, महलादिक जागां चिनाई।
पुनि विन गाल्यो जल ढोल्यो, पंखातैं पवन विलोल्यो॥

हा हा! मैं अदयाचारी, बहु हरितकाय जु विदारी।
तामधि जीवनके खंदा, हम खाये धरि आनंदा॥

हा हा! परमाद बसाई, विन देखे अगनि जलाई।
तामधि जे जीव जु आये, ते हू परलोक सिधाये॥

बीध्यो अन राति पिसायो, ईंधन बिन सोधि जलायो।
झाड़ू ले जागां बुहारी, चिंवटी आदिक जीव बिदारी॥

जल छानि जिवानी कीनी, सो हू पुनि डारि जु दीनी।
नहिं जल-थानक पहुँचाई, किरिया विन पाप उपाई॥

जल मल मोरिन गिरवायो, कृमि-कुल बहु घात करायो।
नदियन बिच चीर धुवाये, कोसनके जीव मराये॥

अन्नादिक शोध कराई, तामैं जु जीव निसराई।
तिनका नहिं जतन कराया, गरियालैं धूप डराया॥

पुनि द्रव्य कमावन काज, बहु आरँभ हिंसा साज।
किये तिसनावश अघ भारी, करुना नहिं रंच विचारी ॥
इत्यादिक पाप अनंता, हम कीने श्री भगवंता।
संतति चिरकाल उपाई, वानी तैं कहिय न जाई ॥
ताको जु उदय अब आयो, नानाविध मोहि सतायो।
फल भुंजत जिय दुख पावै, वचतैं कैसें करि गावै ॥
तुम जानत केवलज्ञानी, दुख दूर करो शिवथानी।
हम तो तुम शरण लही है, जिन तारन विरद सही है ॥
जो गांवपती इक होवे, सो भी दुखिया दुख खोवै।
तुम तीन भुवनके स्वामी, दुख मेटहु अंतरजामी ॥
द्रोपदिको चीर बढ़ायो, सीताप्रति कमल रचायो।
अंजनसे किये अकामी, दुख मेट्यो अंतरजामी ॥
मेरे अवगुन न चितारो, प्रभु अपनो विरद सम्हारो।
सब दोषरहित करि स्वामी, दुख मेटहु अंतरजामी ॥
इंद्रादिक पदवी नहिं चाहूँ, विषयनिमें नाहिं लुभाऊँ।
रागादिक दोष हरीजै, परमातम निज-पद दीजै ॥

दोहा

दोषरहित जिनदेवजी, निजपद दीज्यो मोय।
सब जीवनके सुख बढ़ै, आनँद मंगल होय ॥
अनुभव माणिक पारखी, 'जौहरि' आप जिनन्द।
यही वर मोहि दीजिये, चरन शरन आनन्द ॥

बारह-भावना

[कविवर भूधरदासजी]

दोहा

राजा राणा छत्रपति, हाथिनके असवार ।
मरना सबको एक दिन, अपनी अपनी बार ॥

दल बल देई देवता, मात पिता परिवार ।
मरती बिरियां जीवको, कोई न राखनहार ॥

दाम विना निर्धन दुखी, तृष्णावश धनवान ।
कहूँ न सुख संसारमें, सब जग देख्यो छान ॥

आप अकेलो अवतरै, मरै अकेलो होय ।
यूं कबहूं इस जीव को, साथी सगा न कोय ॥

जहां देह अपनी नहीं, तहां न अपनो कोय ।
घर संपति पर प्रगट ये, पर हैं परिजन लोय ॥

दिपै चाम-चादरमढ़ी, हाड पींजरा देह ।
भीतर या सम जगतमें, अवर नहीं घिन-गेह ॥

सोरठा

मोह-नींदके जोर, जगवासी घूमै सदा ।
कर्म-चोर चहुं ओर, सरवस लूटैं सुध नहीं ॥

सतगुरु देय जगाय, मोह-नींद जब उपशमै।
तब कछु बनैं उपाय, कर्म-चोर आवत रुकैं॥

दोहा

ज्ञान-दीप तप-तेल भर, घर शोधै भ्रम छोर।
या विध विन निकसै नहीं, पैठे पूरब चोर॥
पंच महाव्रत संचरण, समिति पंच परकार।
प्रबल पंच इंद्री-विजय, धार निर्जरा सार॥
चौदह राजु उतंग नभ, लोक पुरुष-संठान।
तामें जीव अनादितैं, भरमत हैं विन ज्ञान॥
धन कन कंचन राजसुख, सबहि सुलभकर जान।
दुर्लभ है संसारमें, एक जथारथ ज्ञान॥
जाचे सुर-तरु देय सुख, चिंतत चिंतारैन।
विन जाचै विन चिंतये, धर्म सकल सुख दैन॥

मेरी भावना

[पण्डित जुगलकिशोर जी मुख़्तार]

जिसने राग दोष कामादिक जीते सब जग जान लिया।
सब जीवोंको मोक्षमार्गका निस्पृह हो उपदेश दिया॥
बुद्ध वीर जिन हरि हर ब्रह्मा या उसको स्वाधीन कहो।
भक्ति-भावसे प्रेरित हो यह चित्त उसीमें लीन रहो॥

विषयोंकी आशा नहिं जिनके साम्य-भाव धन रखते हैं।
निज-परके हित-साधनमें जो निश-दिन तत्पर रहते हैं ॥

स्वार्थ-त्यागकी कठिन तपस्या विना खेद जो करते हैं।
ऐसे ज्ञानी साधु जगतके दुख-समूहको हरते हैं ॥

रहै सदा सत्संग उन्हींका ध्यान उन्हींका नित्य रहै।
उनहीं जैसी चर्यामें यह चित्त सदा अनुरक्त रहै ॥

नहीं सताऊँ किसी जीवको जूठ कभी नहिं कहा करूँ।
परधन-वनितापर न लुभाऊँ, संतोषामृत पिया करूँ ॥

अहंकारका भाव न रक्खूँ नहीं किसीपर क्रोध करूँ।
देख दूसरोंकी बढ़तीको कभी न ईर्षा-भाव धरूँ ॥

रहै भावना ऐसी मेरी सरल-सत्य-व्यवहार करूँ।
बनै जहां तक इस जीवनमें औरौंका उपकार करूँ ॥

मैत्रीभाव जगतमें मेरा सब जीवोंसे नित्य रहे।
दीन-दुखी जीवोंपर मेरे उरसे करुणा-स्रोत बहे ॥

दुर्जन-क्रूर-कुमार्गरतों पर क्षोभ नहीं मुझको आवै।
साम्यभाव रक्खूँ मैं उनपर, ऐसो परिणति हो जावै ॥

गुणी जनोंको देख हृदयमें मेरे प्रेम उमड़ आवै।
बनै जहांतक उनकी सेवा करके यह मन सुख पावै ॥

होऊँ नहीं कृतघ्न कभी मैं द्रोह न मेरे उर आवै।
गुण-ग्रहणका भाव रहै नित दृष्टि न दोषोंपर जावै॥
कोई बुरा कहो या अच्छा लक्ष्मी आवै या जावै।
अनेक वर्षों तक जीऊं या मृत्यु आज ही आ जावै॥
अथवा कोई कैसा ही भय या लालच देने आवै।
तो भी न्याय-मार्गसे मेरा कभी न पद डिगने पावै॥

होकर सुखमें मग्न न फूलै दुखमें कभी न घबरावै।
पर्वत नदी श्मशान भयानक अटवीसे नहिं भय खावै॥
रहै अडोल-अकंप निरंतर यह मन दृढ़तर बन जावै।
इष्टवियोग-अनिष्टयोगमें सहन-शीलता दिखलावै॥

सुखी रहैं सब जीव जगतके कोई कभी न घबरावै।
वैर-पाप अभिमान छोड़ जग नित्य नये मङ्गल गावै॥
घर-घर चर्चा रहै धर्मकी दुष्कृत दुष्कर हो जावैं।
ज्ञान-चरित उन्नत कर अपना मनुज-जन्म-फल सब पावैं॥
ईति भीति व्यापै नहिं जगमें वृष्टि समयपर हुआ करै।
धर्मनिष्ठ होकर राजा भी न्याय प्रजाका किया करै॥
रोग मरी दुर्भिक्ष न फैले प्रजा शांतिसे जिया करै।
परम अहिंसा-धर्म जगतमें फैल सर्व-हित किया करै॥

फैलै प्रेम परस्पर जगमें मोह दूर ही रहा करै।
अप्रिय कटुक कठोर शब्द नहिं कोई मुखसे कहा करै ॥
बनकर सब 'युगवीर' हृदयसे देशोन्नति रत रहा करें।
वस्तु-स्वरूप-विचार खुशीसे सब दुख-संकट सहा करैं ॥

[खण्ड ७]

आरती-जापादि

आरती श्रीवर्द्धमानजिन

[कविवर द्यानतरायजी]

करौं आरती वर्द्धमानकी, पावापुर निरवान-थानकी ॥टेक॥

राग बिना सब जग जन तारे, द्वेष बिना सब करम विदारे ।
करौं आरती वर्द्धमानकी, पावापुर निरवान-थानकी ॥

शील-धुरंधर शिव-तिय-भोगी, मन-वच-कायन कहिये योगी ।
करौं आरती वर्द्धमानकी, पावापुर निरवान-थानकी ॥

रतनत्रय-निधि परिगह-हारी, ज्ञान-सुधा-भोजन-व्रतधारी ।
करौं आरती वर्द्धमानकी, पावापुर निरवान-थानकी ॥

लोक अलोक व्याप निजमाहीं, सुखमय इंद्रिय-सुख-दुख नाहीं ।
करौं आरती वर्द्धमानकी, पावापुर निरवान-थानकी ॥

पंचकल्याणक-पूज्य विरागी, विमल दिगंबर अंबर-त्यागी ।
करौं आरती वर्द्धमानकी, पावापुर निरवान-थानकी ॥

गुन-मनि-भूषन-भूषित स्वामी, जगत-उदास जगंतर-स्वामी ।
करौं आरती वर्द्धमानकी, पावापुर निरवान-थानकी ॥

कहै कहां लौं तुम सब जानौ, 'द्यानत' की अभिलाष प्रमानौं ।
करौं आरती वर्द्धमानकी, पावापुर निरवान-थानकी ॥

पञ्चपरमेष्ठीकी आरती

[कविवर द्यानतरायजी]

इह विधि मंगल आरति कीजै, पंच परम पद भज सुख लीजै ।
पहली आरति श्रीजिनराजा, भव-दधि-पार-उतार-जिहाजा ॥
इह विधि मंगल आरति कीजे, पंच परम पद भज सुख लीजे ।
दूसरि आरति सिद्धनकेरी, सुमरन करत मिटै भव-फेरी ॥
इह विधि मंगल आरति कीजे, पंच परम पद भज सुख लीजै ।
तीजी आरति सूर मुनिंदा, जनम-मरन-दुख दूर करिंदा ॥
इह विधि मंगल आरति कीजे, पंच परम पद भज सुख लीजै ।
चौथी आरति श्रीउवझाया, दर्शन देखत पाप पलाया ॥
इह विधि मंगल आरति कीजे, पंच परम-पद भज सुख लीजे ।
पांचमि आरति साधु तिहारी, कुमति विनाशन शिव-अधिकारी
इह विध मंगल आरति कीजे, पंच परम पद भज सुख लीजै ।
छट्ठी ग्यारह प्रतिमाधारी, श्रावक वंदों आनँद-कारी ॥
इह विधि मंगल आरति कीजै, पंच परम पद भज सुख लीजै ।
सातमि आरति श्रीजिनवानी, 'द्यानत' सुरग-मुकति-सुखदानी ॥
इह विधि मंगल आरति कीजे, पंच परम पद भज सुख लीजै ।

दीप चढ़ाने का मन्त्र

ध्वस्तोद्यमान्धीकृत-विश्व-विश्वान्मोहान्धकार-प्रतिघात-दीपान्।
दीपैः कनत्काञ्चन-भाजनस्थैर्जिनेन्द्र-सिद्धान्त-यतीन् यजेऽहम्॥

दोहा

स्व-पर-प्रकाशकज्योति अति, दीपक तमकर हीन ।
जासों पूजौं परमपद, देव शास्त्र गुरु तीन ॥१॥

ॐ ह्रीं मोहतिमिरविनाशनाय देवशास्त्रगुरुभ्यो दीपं निर्वपा० स्वाहा ।

धूप चढ़ाने का मन्त्र

दुष्टाष्ट-कर्मेन्धन-पुष्टज्वाल-संधूपने भासुर-धूमकेतून् ।
धूपैर्विधूतान्य-सुगन्धिगन्धैर्जिनेन्द्र-सिद्धान्त-यतीन् यजेऽहम्॥

दोहा

अग्निमाहिं परिमल दहन, चन्दनादि गुणलीन ।
जासों पूजौं परमपद, देव शास्त्र गुरु तीन ॥२॥

ॐ ह्रीं अष्टकर्मविनाशनाय देवशास्त्रगुरुभ्यो धूपं निर्वपा० स्वाहा ।

नित्य-नैमित्तिक जाप

प्रतिदिन करने योग्य जाप

पणतीस-सोल-छप्पण-चदु-दुगमेगं च जवह ज्झाएह ।
परमेट्ठिवाचयाणं अण्णं च गुरूवएसेण ॥

परमेष्ठीके वाचक पैंतीस, सोलह, छह, पाँच, चार, दो और एक अक्षरवाले मंत्रका प्रतिदिन जाप और ध्यान करना चाहिए ।

१–३५ अक्षरका मन्त्र—

णमो अरिहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आयरियाणं ।
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं ॥

२–१६ अक्षरका मन्त्र—

अरिहंत-सिद्ध-आयरिय-उवज्झाय-साहू ।

३–६ अक्षरका मन्त्र–अरिहंत-सिद्ध ।

४–५ अक्षरका मन्त्र–अ सि. आ. उ सा ।

५–४ अक्षरका मन्त्र–अरिहंत ।

६–२ अक्षरका मन्त्र–सिद्ध ।

७–१ अक्षरका मन्त्र–अ, ओम् ।

अष्टाह्निकाव्रत

समुच्चय—ॐ ह्रीं श्रीनन्दीश्वरसंज्ञाय नमः ।

१—ॐ ह्रीं श्रीनन्दीश्वरसंज्ञाय नमः ।

२—ॐ ह्रीं अष्टमहाविभूतिसंज्ञाय नमः ।

३—ॐ ह्रीं त्रिलोकसागरसंज्ञाय नमः ।

४—ॐ ह्रीं चतुर्मुखसंज्ञाय नमः ।

६—ॐ ह्रीं स्वर्गसोपानसंज्ञाय नमः ।

७—ॐ ह्रीं सिद्धचक्रसंज्ञाय नमः ।

५—ॐ ह्रीं पञ्चमहालक्षणसंज्ञाय नमः ।

८—ॐ ह्रीं इन्द्रध्वजसंज्ञाय नमः ।

षोडशकारणव्रत

समुच्चय—ॐ ह्री श्रीषोडशकारणभावनाभ्यो नमः ।

१—ॐ ह्रीं श्रीदर्शनविशुद्धये नमः ।

२—ॐ ह्रीं श्रीविनयसम्पन्नतायै नमः ।

३—ॐ ह्रीं श्रीशीलव्रतेष्वनतिचाराय नमः ।

४—ॐ ह्रीं श्रीआभीक्ष्णज्ञानोपयोगाय नमः ।

५—ॐ ह्रीं श्रीसंवेगाय नमः ।

६—ॐ ह्रीं श्रीशक्तितस्त्यागाय नमः ।

७—ॐ ह्री श्रीशक्तितस्तपसे नमः ।

८—ॐ ह्रीं श्रीसाधुसमाधये नमः ।
९—ॐ ह्रीं श्रीवैयाव्रत्यकरणाय नमः ।
१०—ॐ ह्रीं श्रीअर्हद्भक्त्यै नमः ।
११—ॐ ह्रीं श्रीआचार्यभक्त्यै नमः ।
१२—ॐ ह्रीं श्रीवहुश्रुतभक्त्यै नमः ।
१३—ॐ ह्रीं श्रीप्रवचनभक्त्यै नमः ।
१४—ॐ ह्रीं श्रीआवश्यकापरिहाणये नमः ।
१५—ॐ ह्रीं श्रीमार्गप्रभावनायै नमः ।
१६—ॐ ह्रीं श्रीप्रवचन-वत्सलत्वाय नमः ।

दशलक्षणव्रत

समुच्चय ॐ ह्रीं श्रीउत्तमक्षमामार्दवार्जवशौचसत्यसंयम-तपस्त्यागाकिंचन्यब्रह्मचर्यधर्माङ्गाय नमः ।

१—ॐ ह्रीं श्रीउत्तमक्षमाधर्मांगाय नमः ।
२—ॐ ह्रीं श्रीउत्तममार्दवधर्मांगाय नमः ।
३—ॐ ह्रीं श्रीउत्तमार्जवधर्मांगाय नमः ।
४—ॐ ह्रीं श्रीउत्तमशौचधर्मांगाय नमः ।
५—ॐ ह्रीं श्रीउत्तमसत्यधर्मांगाय नमः ।
६—ॐ ह्रीं श्रीउत्तमसंयमधर्मांगाय नमः ।
७—ॐ ह्रीं श्रीउत्तमतपोधर्मांगाय नमः ।
८—ॐ ह्रीं श्रीउत्तमत्यागधर्मांगाय नमः ।
९—ॐ ह्रीं श्रीउत्तमआकिञ्चन्यधर्मांगाय नमः ।
१०—ॐ ह्रीं श्रीउत्तमब्रह्मचर्यधर्मांगाय नमः ।

पंचमेरुव्रत

१–ॐ ह्रीं श्रीसुदर्शनमेरुजिनचैत्यालयेभ्यो नमः ।
२–ॐ ह्रीं श्रीविजयमेरुजिनचैत्यालयेभ्यो नमः ।
३–ॐ ह्रीं श्रीअचलमेरुजिनचैत्यालयेभ्यो नमः ।
४–ॐ ह्रीं श्रीविंद्युन्मालिजिनचैत्यालयेभ्यो नमः ।
५–ॐ ह्रीं श्रीमन्दरमेरुजिनचैत्यालयेभ्यो नमः ।

रत्नत्रयव्रत

१–ॐ ह्रीं श्रीअष्टांगसम्यग्दर्शनाय नमः ।
२–ॐ ह्रीं श्रीअष्टांगसम्यग्ज्ञानाय नमः ।
३–ॐ ह्रीं श्रीत्रयोदशप्रकारसम्यक्चारित्राय नमः ।



श्री कुन्थुनाथजिन-पूजा

[श्री बख्तावरसिंह जी]

गजपुर नगर मझार भानप्रभु भूप जी,
कुंथुनाथ जिन पुत्र भये सुखरूप जी।
लच्छण अजा अनूप मात लक्ष्मीमती,
तुंग धनुष पैंतीस तिष्ठ करुणापती ॥ १ ॥

ॐ ह्रीं श्रीकुन्थुनाथ जिनेन्द्र ! अत्रावतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्रीकुन्थुनाथ जिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं श्रीकुन्थुनाथ जिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

अष्टक

त्रिभंगी छन्द

पद्महद्-नीरं गंध-गहीरं अमल सहीरं भर लायो।
कंचनमय झारी भर सुखकारी पूज तिहारी कर धायो॥
श्री कुंथु दयालं जग-रिछपालं हन भव-जालं गुण-मालं।
तेरम मक्रेश्वर षट् चक्रेश्वर विघन-हनेश्वर दुख टालं॥

ॐ ह्रीं श्रीकुन्थुनाथजिनेन्द्राय गर्भ-जन्म-तपो-ज्ञान-निर्वाण-पञ्चकल्याणकप्राप्ताय जन्म-जरा-मृत्यु-रोगविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

घस चंदन बावन दाह-मिटावन निरमल पावन सुखकारी।
तुम चरण चढ़ाऊं दाह नसाऊं शिव-पुर पाऊं हितधारी।
श्री कुंथु दयालं जग-रिछपालं हन भव-जालं गुण-मालं।
तेरम मक्रेश्वर षट् चक्रेश्वर विघन-हनेश्वर दुख टालं॥

ॐ ह्रीं श्रीकुन्थुनाथजिनेन्द्राय गर्भ-जन्म-तपो-ज्ञान-निर्वाण-पञ्चकल्याणकप्राप्ताय संसारातापरोगविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

अत्तत अनियारे प्राशुक धारे पुंज समारे तुम आगे।
अत्तय पद दीजे विलम न कीजे निज लख लीजे सुख जागे।
श्री कुंथु दयालं जग-रिछपालं हन भव-जालं गुण-मालं।
तेरम मक्रेश्वर षट् चक्रेश्वर विघन-हनेश्वर दुख टालं॥

ॐ ह्रीं श्रीकुन्थुनाथजिनेन्द्राय गर्भ-जन्म-तपो-ज्ञान-निर्वाण-पञ्चकल्याणकप्राप्ताय अत्तयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

वर कुसम सुवासं अमल विकाशं षट्पदरासं गुंज-करा।
भर कंचन-थारी तुम ढिग धारी काम-निवारी सौख्य-करा॥
श्रीकुंथु दयालं जग-रिछपालं हन भव-जालं गुण-मालं।
तेरम मक्रेश्वर षट् चक्रेश्वर विघन-हनेश्वर दुख टालं॥

ॐ ह्रीं श्रीकुन्थुनाथजिनेन्द्राय गर्भ-जन्म-तपो-ज्ञान-निर्वाण-पञ्चकल्याणकप्राप्ताय कामबाणविनाशनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

पकवान सुकीनें तुरत नवीने सित-रस भीने मिष्ट महा ।
तुम पद तल धारे नेवज सारे छुधा निवारे शर्म लहा ॥
श्री कुंथु दयालं जग-रिछपालं हन भव-जालं गुण-मालं ।
तेरम मक्रेश्वर षट् चक्रेश्वर विघन-हनेश्वर दुख टालं ॥

ॐ ह्रीं श्रीकुन्थुनाथजिनेन्द्राय गर्भ-जन्म-तपो-ज्ञान-निर्वाण-पञ्चकल्याणकप्राप्ताय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

दीपक उजियारे तम क्षयकारे जोय समारे स्वर्णमई ।
मोहान्ध-विनाशी निज-परकाशी हम घट-भासी ज्ञान लई ॥
श्री कुंथु दयालं जग-रिछपालं हन भव-जालं गुण-मालं ।
तेरम मक्रेश्वर षट् चक्रेश्वर विघन-हनेश्वर दुख टालं ॥

ॐ ह्रीं श्रीकुन्थुनाथजिनेन्द्राय गर्भ-जन्म-तपो-ज्ञान-निर्वाण-पञ्चकल्याणकप्राप्ताय मोहान्धकार-विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा ।

दश गंध मिलावें परिमल आवें अलिगण छावें कर शोरी ।
संग अगनि जराऊँ कर्म नसाऊँ पुण्य बढ़ाऊँ कर जोरी ॥
श्री कुंथु दयालं जग-रिछपालं हन भव-जालं गुण-मालं ।
तेरम मक्रेश्वर षट् चक्रेश्वर विघन-हनेश्वर दुख टालं ॥

ॐ ह्रीं श्रीकुन्थुनाथजिनेन्द्राय गर्भ-जन्म-तपो-ज्ञान-निर्वाण-पञ्चकल्याणकप्राप्ताय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ।

श्रीफल सहकारं लौंग अनारं अमल अपारं सब रितके ।
तुम चरण चढ़ाऊँ गुण-गण गाऊँ शिवफल पाऊँ विधि हतके ।।
श्री कुंथु दयालं जग-रिछपालं हन भव-जालं गुण-मालं ।
तेरम मक्रेश्वर षट् चक्रेश्वर विघन-हनेश्वर दुख टालं ।।

ॐ ह्रीं श्रीकुन्थुनाथजिनेन्द्राय गर्भ-जन्म-तपो-ज्ञान-निर्वाण-पञ्चकल्याणकप्राप्ताय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा ।

जल फल वसु लीजे अर्घ करीजे पूज रचीजे दुखहारी ।
संसार हनीजे शिव-पद दीजे ढील न कीजे बलिहारी ।।
श्री कुंथु दयालं जग-रिछपालं हन भव-जालं गुण-मालं ।
तेरम मक्रेश्वर षट् चक्रेश्वर विघन-हनेश्वर दुख टालं ।।

ॐ ह्रीं श्रीकुन्थुनाथजिनेन्द्राय गर्भ-जन्म-तपो-ज्ञान-निर्वाण-पञ्चकल्याणकप्राप्ताय अनर्घपदप्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

पंचकल्याणक

अमर सावन दशमी गाइयो, कूष मात श्रीकांता आइयो ।
धनद देव आय बरषा करी, हम जजें धन मान वही घरी ।।

ॐ ह्रीं श्रीकुन्थुनाथजिनेन्द्राय श्रावणकृष्णदशम्यां गर्भ-कल्याणकप्राप्ताय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

कुंथु जिनवर जन्म लियो जबै, हरिन के विष्टर कांपे तबै ।
शुकल एकम जान वैशाखजी, हम जजें करके अभिलाष जी ।।

ॐ ह्रीं श्रीकुन्थुनाथजिनेन्द्राय वैशाखशुक्लप्रतिपदायां जन्म-कल्याणकप्राप्ताय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

जनमको दिन पावन आइयो, चित विषे वैराग सु भाइयो ।
राज षट् खंडको तुम त्यागियो, ध्यानमें प्रभु आप सुलागियो ॥

ॐ ह्रीं श्रीकुन्थुनाथजिनेन्द्राय वैशाखशुक्लप्रतिपदायां तपः-कल्याणकप्राप्ताय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

चैत उजियारी तृतिया जु है, जिन सुपायो केवलज्ञान है ।
सभा द्वादशमें वृष भाषियो, भव्य-जन सुनके रस चाखियो ॥

ॐ ह्रीं श्रीकुन्थुनाथजिनेन्द्राय चैत्रशुक्लतृतीयायां ज्ञान-कल्याणकप्राप्ताय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

कर सुयोग निरोध महान है, गिरि समेद थकी निरवान है ।
प्रतिपदा वैशाख उजासमें, हमें शिवपुर दो निज-बासमें ॥

ॐ ह्रीं श्रीकुन्थुनाथजिनेन्द्राय वैशाखशुक्लप्रतिपदायां मोक्ष-कल्याणकप्राप्ताय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

जयमाला

दोहा

कीड़ी कुंजर कुंथवा, सब जीवन रछपाल ।
कुंथुनाथ पद नमन कर बरनूं तिन गुणमाल ॥

छंद पद्धड़ी

जय जय श्रीकुंथु जिनंद-चंद, जय जय श्रीभानु-नरेन्द्र-नंद ।
उपजे गजपुर नगरी मझार, लीजे स्वामी मोको उबार ॥
जय काम रूप शोभा अमान, जय भव्य-कमलको रवि समान ।
जय अजर-अमर-पद देनहार, लीजे स्वामी मोको उबार ॥

जय चक्रवर्ति-पदको लहाय, जय नव निधि चौदह रतन पाय।
सिर नावत नृप बत्तिस हजार, लीजे स्वामी मोको उबार॥
जय नार छानवें सहस जोय, जय रूप लखे रवि थकित होय।
इत्यादि सौज शोभे अपार, लीजे स्वामी मोको उबार॥
जय भोगन वर्ष गये महान, जय सवा इकत्तर सहस जान।
कछु कारण लख संवेग धार, लीजे स्वामी मोको उबार॥
जय गजपुर नग्री तज दयाल, जय सिद्धनको कर नमन भाल।
जय तज दीने सब ही सिंगार, लीजे स्वामी मोको उबार॥

जय पंच महाव्रत धरण-धीर, जय मनपरजय पायो गहीर।
जय षष्ठमको शुभ नेम धार, लीजे स्वामी मोको उबार॥

जय मंदिरपुरमें दत्तराय, जय तिन घर पारणको कराय।
जय पंचाश्चर्य भये अपार, लीजे स्वामी मोको उबार॥

जय मौन सहित बहु धरत ध्यान, जय षोडश वर्ष गये सुजान।
चउ घाति कर्म कीने निवार, लीजे स्वामी मोको उबार॥

जय केवलज्ञान जगो रिसाल, जय तत्त्व प्रकाशे तुम दयाल।
सब भव्य बोध भव-सिंधु तार, लीजे स्वामी मोको उबार॥

जय आरज देशन कर विहार, जय आये गिरि संमेद सार।
सब विधि हन पाई मोक्ष-नार, लीजे स्वामी मोको उबार॥

जय जग-जीवनके तुम दयाल, जय तुम ध्यावत हूए निहाल।
जय दारिद-गिरि-नाशन-कुठार, लीजे स्वामी मोको उबार ॥
जय सिद्ध-थानके वसनहार, बखता रतना की यह पुकार।
मो दीजे निज आवास सार, लीजे स्वामी मोको उबार ॥

घत्ता छन्द

यह दुःख विनाशन सुख परकाशन जयमाला अघकी टरनी।
मैं तुम पद ध्याऊं पूज रचाऊं शिव-पद पाऊं भव-हरनी ॥

ॐ ह्रीं श्रीकुन्थुनाथजिनेन्द्राय गर्भ-जन्म-तपो-ज्ञान-निर्वाण-पञ्चकल्याणकप्राप्ताय अनर्घपदप्राप्तये महाऽर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

दोहा

कुन्थु जिनेश्वर देवको, जो पूजे मन लाय।
पुत्र मित्र सुख संपदा, तिन घर सदा रहाय ॥

[इत्याशीर्वादः। पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि]